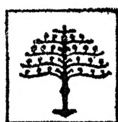
इन्कलाब

ख्वाजा अहमद अब्बास



राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

अनुवादक
मुनीश सक्सेना

मूल्य	छः रुपये
प्रथम संस्करण	अप्रैल, १९६१
प्रकाशक	राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक	युगान्तर प्रेस, दिल्ली

घिरती घटाएं

हूरें और कबूतर

मौलवी साहब की रोबदार दाढी पर जब भी अनवर की नजर पडती वह हैरत से उसे देखता रह जाता। उस सफेद और लम्बी दाढी पर जब जमुना के किनारे की सुबह की ठडी हवा के झोके लगते तो वह अजीब-अजीब शक्ले अख्तियार कर लेती। कभी अबाबील की दुम की तरह नुकीली हो जाती और कभी उड़ते हुए कबूतर के पखो की तरह फैल जाती, कभी तो इतनी शान्त रहती जैसे कोई बिल्ली सो रही हो और कभी सडक के उस आवारा कुत्ते की तरह बिफर जाती जिससे पास-पडौस के सारे बच्चे डरते थे। जब हवा के तेज झोके से उनकी दाढी पखे की तरह फैल जाती उस वक्त उसे सभालने मे बूढे मौलवी साहब की जो हालत होती उसे देखकर बहुत मजा आता, क्योकि उस वक्त वे बच्चो को कुरान ठीक से याद न करने के लिए डाटना भूल जाते थे।

अनवर झूम-झूमकर कुरान की आयते पढता रहता था और बार-बार उन्हे दुहराता रहता था, क्योकि कुरान रट लेना बहुत सवाब का काम था, चाहे अरबी का एक भी लफ्ज समझे बिना उसे तोते की तरह ही क्यो न रट लिया जाए। मौलवी साहब बच्चो को यह बताना कभी न भूलते थे कि यह जन्नत मे पहुचने का सबसे सच्चा रास्ता है। और जो बच्चे शरीर होते थे और ध्यान देकर कुरान नही पढते थे, या मौलवी साहब का अदब नही करते थे उनको साफ बता दिया जाता था कि वे जहन्नुम मे जाएगे, जहा बेहद गर्मी पडती है, दिल्ली की मई-जून की गर्मी से ज़्यादा। अनवर को गर्मी से भी सख्त नफरत थी क्योकि इस मौसम मे हर वक्त पसीना टपकता रहता था और दोपहर मे बाहर निकलने से लू लगकर मर जाने का डर रहता था। पर इस गर्मी की कुछ अच्छाइया भी थी। गर्मी में ठंडा शरबत पीने को मिलता था, आइसक्रीम खाने को मिलती थी—लेकिन जब भी अनवर आइसक्रीम खाता था उसका गला दुखने लगता था और उसे खासी-जुकाम हो जाता था। इसीलिए उसके बाप ने उसे न सिर्फ

आइसक्रीम खाने से बल्कि ठडा पानी तक पीने से मना कर रखा था और इन चीजो का शौक चोरी-छिपे नही पूरा किया जा सकता था, क्योकि उसके बाद खासी का होना लाजिमी था और उससे सारा भंडा फूट जाता था। अनवर अपने मन मे सोचता कि कुल मिलाकर देखा जाए तो जन्नत मे जाना ही अच्छा है, क्योकि वहा हर वक्त मौसम ठडा रहता है, दूध और शहद की नदिया बहती है, हूरे अठखेलियां करती है और पेडो पर चिडिया गाती रहती है।

आखिर ये हूरे कौन होती है ? अनवर के मन मे यह सवाल कई बार उठा था, पर आठ बरस के उस बच्चे का दिमाग इस सवाल का कोई जवाब न ढूढ सका था। उसे इसमे तो कोई शक नहीं था कि वे किसी तरह की औरते होती है। इतना तो उसे मौलवी साहब की बातो से पता लग गया था। लेकिन किस तरह की औरतें होती है ? क्या वे फूफी-अम्मा की तरह होती है ? अनवर की फूफी विधवा थी और उनके कोई बच्चा नही था और बचपन मे ही जब अनवर की मा मर गई थी तो फूफी-अम्मा ने ही अनवर को पाला-पोसा था। उनके सफेद बाल बहुत खूबसूरत थे, वे हर वक्त सफेद कपडे पहनती थी और बहुत कम बोलती थी। या ये हूरे गुलाबो की तरह होती है, उस मुटल्ली काली नौकरानी की तरह जिसकी जबान कैंची की तरह चलती थी लेकिन जो खाना इतना अच्छा पकाती थी कि उसका नाम याद आते ही अनवर के मुह मे पानी भर आता था। अनवर ने अपनी जिन्दगी मे इन्ही दो औरतो को अच्छी तरह जाना था और वह इनमे से किसीको भी अठखेलिया करनेवाली हूरे नही समझ सकता था। या वे उन 'दूसरी औरतो' जैसी होती है जिनकी अनवर ने बस एक झलक ही देखी थी।

अनवर गा-गाकर कुरान पढता रहा और झूमता रहा। लेकिन 'उन दूसरी औरतो' की बात सोचते ही उसके चेहरे पर लाली दौड गई। उसे अच्छी तरह याद था कि एक दिन वह लाल कुएं की किसी दुकान से अपने अब्बा के साथ दरियागज अपने घर जा रहा था। उसके बाप का कद बहुत लम्बा था और उसी हिसाब से उनकी टागे भी लम्बी थी। अनवर को उनके साथ चलने के लिए बीच-बीच मे भागना पड़ता था। लाल कुएं से वे हौज काज़ी पहुंचे और वहां से बाए हाथ चावडी बाजार मे मुड गए। काफी रात हो चुकी थी। लोग दूकाने बन्द करके घर जा चुके थे, लेकिन बाजार मे काफी चहल-पहल थी। जगह-

जगह फूल-हारवाले 'ले लो फूल चमेली के !' की आवाज़े लगाकर चमेली के गजरे बेच रहे थे । अनवर और उसके अब्बा को छोडकर बाज़ार मे किसीको भी कोई जल्दी नही थी । सब लोग निहायत इतमीनान से चहलकदमी कर रहे थे, हस रहे थे और ऊपर कोठो की तरफ देखकर एक-दूसरे को कुहनी मारकर कुछ इशारे कर रहे थे । दूकानो के ऊपरवाले छज्जो पर कोई ऐसी चीज थी जिसमे सबको दिलचस्पी मालूम होती थी । अनवर की आखे भी अपने-आप ऊपर उठ गई और वहा उसने हर छज्जे पर एक औरत खडी देखी । ये औरते न तो फूफी-अम्मा जैसी थी, न गुलाबो जैसी । वे रग-बिरगे कपडे पहने थी—लाल, हरे और नीले—जिन्हे देखकर अनवर का जी बहुत खुश हुआ । उनके गाल गुलाबी थे, होठो पर भरपूर लाली थी और काले बाल तेल से चिकने और बहुत सलीके से बने हुए थे । हर औरत के पास लटकी हुई लालटेन से उसके रूप को चार चाद लग गए थे । उन्हे एक झलक देखकर ही अनवर को ऐसा लगा कि वह जितने लोगो को जानता है उन सबसे ये अलग किस्म की है और उन्हे जीवन का कोई रहस्य, कोई ऐसा अनोखा भेद मालूम है जिसके बारे मे वह कुछ भी नही जानता, पर उसे ऐसा लगा कि बाजार मे रगीलो और बेफिकरो की उस भीड का हर आदमी उस भेद को जानता है । वह अपने अब्बा से इन औरतो के बारे मे पूछना चाहता था पर उसकी हिम्मत नही पडी, क्योकि उसके अब्बा यो तो उसके साथ बडी नरमी से पेश आते थे और उसकी किसी भी बात पर झुझलाते नही थे, पर उन्होने अपने बेटे को ऊपर की तरफ नज़रे डालते देखकर बडी रुखाई के साथ उससे कहा था कि बाज़ार मे चलते वक्त कोठो की तरफ देखना शरीफो का काम नही है । उसके बाद बाकी रास्ता दोनो ने चुपचाप तै किया और अनवर की फिर ऊपर नज़र उठाने की हिम्मत नही हुई । अनवर के अब्बा ने उस दिन के बाद से यह तरीका बना लिया था कि जब भी उनका बेटा साथ होता तो वे बल्लीमारान और चादनी चौक का चक्कर लगाते हुए ज्यादा लम्बे रास्ते से घर लौटते थे ।

कू-ऊ ! कू-ऊ ! आव ! आव !

कबूतरबाजो की इस चिरपरिचित आवाज मे अनवर और उसकी बहिन

अंजुम की एक बधी हुई धुन से कुरान रटने की आवाज डूबकर रह गई। अजुम अनवर से दो बरस बडी थी और उसके पास ही बैठी कुरान पढ रही थी। कबूतरबाज़ो की आवाज़ सुनकर अनवर का ध्यान भग हो गया। वह कबूतरो के उड़ते हुए झुड को देखकर इतना खुश होता था कि उसके मन मे उन 'दूसरी औरतो' के प्रति जो थोड़ा-बहुत आकर्षण था उसे भी भूल जाता था। अनवर के अब्बा को कबूतरबाजी से भी सख्त नफरत थी। उनकी राय मे यह दिल्ली के उन रईसजादो का शौक था जिनके दिन अब पूरे हो चुके थे और जिनकी रईसी खत्म हो चुकी थी। उन्होने अपने बेटे और बेटी को कितनी ही बार बताया था कि इसी तरह की चीजो की वजह से मुगलो की सल्तनत मिट गई थी। वे चाहते थे कि उनका बेटा पतगबाजी या कबूतरबाजी जैसे फजूल शौको मे वक्त खराब करने के बजाय कुश्ती और कबड्डी जैसे खेलो मे और डड-बैठक की किस्म की कसरत मे दिलचस्पी ले जो मर्दो के खेल है और जिनसे तन्दुरुस्ती बनती है। अनवर को अपने अब्बा की बात पर पूरा यकीन था पर उसकी तन्दुरुस्ती कभी भी इतनी अच्छी नही रही कि वह उन खेलो मे हिस्सा ले सके जो उसके अब्बा बताते थे, क्योकि उनमे बहुत दमदार आदमी की ज़रूरत होती थी और फूफी-अम्मा इस बात के लिए कभी भी तैयार न होती थी कि उनका लाडला भतीजा अखाडे मे जमा होनेवाले आसपास के मुस्टडो से अपनी हड्डिया तुडवाए। जहा तक कबूतरबाजी और पतगबाज़ी का सवाल था तो अनवर को ये दोनो ही चीजे बेहद पसद थी पर वह इस बात को अपने अब्बा से छिपाता था क्योकि वे बहुत ही सख्त आदमी थे और इन सब बुरी लतो से कोसो दूर रहना चाहते थे। रग-बिरगी पतगे कितनी भली लगती थी और आसमान पर पहुचकर वे कैसी अदा से कभी ऊची चढ जाती थीं और कभी नीचे आ जाती थी! लेकिन कबूतरो से तो अनवर को और भी ज्यादा लगाव था। पतंग तो सिर्फ उतनी ही ऊची जा सकती थी जितनी लम्बी डोर हो और उंगली के एक इशारे से उसका रुख मोडा जा सकता था या ऊंचा-नीचा किया जा सकता था, और जब भी पतगबाज़ का दिल चाहे उसे नीचे उतार सकता था। लेकिन कबूतर अपनी मर्ज़ी से जहा चाहे जा सकते थे। वे अपने अड्डे पर से एक बादल की तरह उडते थे और उनका साया एक छत से दूसरी छत पर होता हुआ आगे बढता रहता था, और फिर वे आसमान पर बहुत ऊंचे उड़ जाते थे यहां तक

कि दूर क्षितिज पर केवल एक धब्बे जैसे दिखाई पडते थे। वे कहा जाते थे? वे बहुत दूर जिन अनजाने देशो मे जाते थे वहा वे क्या देखते थे? वे क्या अनुभव और स्मृतिया लेकर वापस लौटते थे? अनवर जब भी कबूतरो को उडता हुआ देखता वह मन ही मन इन सवालो पर गौर करता रहता। गुलाबो सोते वक्त उसे जो कहानिया सुनाती थी उनमे की अगर कोई परी उससे कभी यह पूछती कि वह क्या बनना चाहता है तो अनवर यही कहता, "कबूतर!"

लेकिन शीघ्र ही कबूतरबाजो की इस 'कू-ऊ! कू-ऊ! आव! आव!' के पीछे से एक नई आवाज़ सुनाई दी—मधुमक्खी के गुजन जैसी एक हलकी-सी भनभनाहट। बहुत दूर पूरब की तरफ जमुना के उस पार एक अकेला कबूतर आसमान पर उड रहा था, शायद अपने झुड से बिछुडकर पीछे रह गया था। लेकिन जैसे-जैसे वह उडकर पास आता गया उसकी आवाज तेज होती गई, यहा तक कि वह मधुमक्खी की तेज से तेज आवाज़ से भी ज्यादा तेज हो गई। यह कबूतर दूसरे कबूतरो से बिलकुल अलग था, क्योकि वह अपने पर नही फडफडाता था। वह सीधा उडता चला आ रहा था और देखते-देखते वह बडे से बडे कबूतर से भी बडा हो गया, वह तो बाज से भी बडा था और जब वह अनवर के सिर पर से होकर गुजरा तो उसे ऐसा लगा कि वह तो अलिफ-लैला की सिदबाद जहाजीवाली कहानी के उस उकाब से भी बडा था जिसके बारे मे गुलाबो ने उसे बताया था।

इस अनोखे कबूतर को देखकर अनवर और अजुम को इतना कौतूहल हुआ कि वे कुरान की रटाई छोडकर उठ खडे हुए और खुशी और आश्चर्य मे तालिया बजाने लगे। मौलवी साहब, जो बच्चो की कुरान पढ़ने की सधी हुई धुन की लोरिया सुनते-सुनते ऊघ गए थे, एकाएक चौककर जाग पडे।

"यह क्या हो रहा है?" उन्होने बनावटी गुस्से के साथ डाटते हुए कहा, क्योकि इतने मोटे और नरम स्वभाव के बूढे आदमी के लिए गुस्से मे अपनी ताकत खर्च करना बहुत ही मुश्किल काम था। "मेरी आख जरा-सी झपकी नही कि तुम दोनो का ध्यान अपने सबक की तरफ से हट जाता है।"

वह बडा-सा कबूतर उडता हुआ कुतुबमीनार की तरफ चला गया था और अब वह दूर आसमान पर एक धब्बे जैसा दिखाई दे रहा था। हालाकि अनवर जो कुछ पढ़ता था उसका मतलब वह बिलकुल भी नही समझता था, और उसे

यह भी पता नही था कि वह दुनिया की एक सबसे समृद्ध भाषा की उच्च कोटि की कविता का पाठ कर रहा है, फिर भी अनवर को उन शब्दो की ध्वनि बहुत अच्छी लगती थी, क्योकि जब इन शब्दो का उच्चारण मौलवी साहब के बताए हुए तरीके से किया जाता था तो ऐसा लगता था कि जबान से शब्द नही बल्कि गाढा शहद टपक रहा है। कुरान की इन आयतो को सही ढग से पढ सकना सचमुच एक बहुत बडा कमाल था और जब भी अनवर उनका उच्चारण सही-सही कर लेता था तो उसे बेहद खुशी होती थी और उसे ऐसा लगता था कि उसने कोई ताकत हासिल कर ली है—शब्दो पर मनुष्य के अधिकार की ताकत, वाक्‌शक्ति की अनोखी और रोबीली ताकत।

जिस वक्त अनवर कमरे मे आया वहा बहुत-से लोग बैठे हुए थे और कई आदमी एकसाथ बोल रहे थे। अनवर अपने अब्बा से उस बडे-से कबूतर के बारे मे पूछने आया था जो उसने आसमान पर उडता हुआ देखा था, वह चुपचाप एक कोने मे बैठ गया और यह मनाने लगा कि किसीने उसे देखा न हो। जब भी वह अपने अब्बा के इतने बहुत-से दोस्तो को एकसाथ देखता था तो न जाने क्यो घबरा-सा जाता था। वह उन सबको जानता था और अलग-अलग वे सब उसे बहुत अच्छे लगते थे, पर जब वे एकसाथ होते थे तो उसे उनसे डर लगने लगता था, उसे हमेशा ऐसा लगता था कि वे सब मिलकर एक ऐसी भयानक शक्ति बन गए है जो एक शर्मीले और दब्बू लडके के स्वाभाविक सकोच की दीवारो को ढा देने पर तुली हुई हो।

बाहर बरामदे मे बास की गहरे हरे रग की चिकें पडी थी ताकि सूरज की तेज रोशनी अदर न आ सके। गर्मियो में भी दोपहर के वक्त कमरा अदर से बहुत ठडा और अधेरा और आरामदेह रहता था। चूकि अनवर सीधा छत पर से आया था जहां बैठकर मौलवी साहब हमेशा कुरान पढाते थे, इसलिए कमरे मे घुसते ही पहले तो उसे कुछ भी दिखाई न दिया। धीरे-धीरे उसे अधेरे मे कुछ शक्ले दिखाई देने लगी—फर्श पर बिछी हुई सफेद चादनी, दीवार के सहारे लगे हुए सफेद गाव-तकिये ऐसे लग रहे थे जैसे बिना सिर और बिना टागो के मोटे-मोटे बछडे दीवार से लगे बैठे हो, और इनका सहारा लिए हुए

उसे अपने अब्बा और उनके दोस्तो के सफेदपोश जिस्म दिखाई दिए।

अनवर अपने अब्बा को बेहद प्यार करता था, बल्कि मन ही मन उनकी पूजा करता था। अनवर के अब्बा अकबरअली का कद लम्बा था और वे इस तरह तनकर खडे होते थे कि कोई कह नही सकता था कि वे पचास बरस के है। उनका रग गोरा और चेहरे पर कुछ गुलाबीपन था, छोटी-सी काली दाढी से उनके चेहरे का रोब दुगना हो जाता था। वे हमेशा सफेद बुर्राक कपडे पहनते थे और साकार स्वच्छता की मूर्ति दिखाई देते थे—न केवल तन की स्वच्छता बल्कि मन की भी स्वच्छता। उनके दोस्त और कारोबार मे उनके साथी उनसे मुहब्बत करते थे और उनपर पूरा एतबार रखते थे, उनके बेटे ने देखा था कि एक बार एक व्यापारी उनके पास बीस हजार रुपये अमानत रख गया था और लाख कहने पर भी उसने रसीद नही ली थी। "कमाल करते हो, अकबरअली, रसीद क्या तुम्हारी जबान से बढकर है," उस व्यापारी ने कहा था। और यह देखकर उनका बेटा, जिसके सामने यह सौदा हुआ था, गर्व से फूला नही समाया था। उसने मन ही मन दुआ मागी थी, "या खुदा, मुझे भी मेरे अब्बा जैसा बनाना।"

अकबरअली के पास ही लाला रामेश्वरदयाल बैठे थे, जो व्यापार मे उनके साझेदार थे। सच तो यह है कि वे व्यापार मे साझेदार होने से भी बढकर बहुत कुछ थे। वे अकबरअली के सबसे पुराने दोस्त थे। दोनो स्कूल मे साथ पढे थे और अनवर ने अक्सर देखा था कि दोनो उस जमाने की शरारते याद कर-करके कितने खुश होकर हसते थे। रामेश्वरदयाल का कद छोटा और उनके चेहरे का रग पीला था। बहुत ही नेक तबियत के आदमी थे और खास तौर पर अनवर पर तो बहुत मेहरबान थे। उनकी आदत थी कि बाते करते-करते अपनी आस्तीने चढा लेते थे और फर्श पर पाल्थी मारकर बैठे-बैठे अपने बाए तलुए को थपकते रहते थे। उनके कुरते के सोने के बटन उस अधेरे कमरे मे चमक रहे थे। सोने के उन बटनो को देखकर अनवर का जी बहुत ललचाता था और एक बार रामेश्वरदयाल ने, जिन्हे अनवर 'काका' कहता था, कहा था कि वे उसे सोने के बटन बनवा देगे। लेकिन अकबरअली ने बडी सख्ती के साथ यह कहकर इकार कर दिया था कि सोने के बटन बेकार की चीज है और अभी से अनवर को अगर इनका शौक पैदा हो गया तो वह बिगड जाएगा।

"मै चाहता हू कि मेरा बेटा अपने पैरो पर खडा हो, मै नही चाहता कि वह सोने के बटनो का शौक रखनेवाला निकम्मा रईस बने।"

कमरे मे दो आदमी और थे। एक थे हकीम अब्दुलरशीद जिनका पेशा तो हकीमी करना था पर तबियत मे शायरी बसी हुई थी और वे 'बेदिल' के तखल्लुस से गजले कहते थे। बहुत ही नाजुक तबियत के आदमी थे, हर वक्त कपड़ो से इत्र की खुशबू आती रहती थी, लगातार पान चबाते रहते थे और वात-बात मे गालिब, मीर और जौक के शेर दुहराते रहते थे। दूसरे थे चौधरी मुहम्मदउमर जिनकी तबियत हकीम बेदिल से बिलकुल उलटी थी। वे बहुत लम्बे-चौडे डील-डौल के आदमी थे, मिजाज मे शायरी छू भी नही गई थी, लेकिन कारोबार के मामले मे बहुत तेज थे। कई बरस पहले पजाब से आए थे और बहुत छोटे पैमाने पर कारोबार शुरू करके उन्होने चीनी और अल्यूमिनियम के बरतनो का बहुत बडा कारोबार खडा कर लिया था। बहुत पढे-लिखे नही थे और अकसर हकीम बेदिल की बातो की बारीकी और उनके शेर चौधरी साहब की समझ मे नही आते थे। लेकिन अकबरअली उनकी बडी इज्जत करते थे और वे अक्सर अनवर से कहते थे कि ज्यादा से ज्यादा मुसलमानो को मुहम्मद-उमर की तरह तिजारत का रास्ता अपनाना चाहिए, क्योकि तिजारत के जरिये ही आदमी और कौमे दुनिया मे तरक्की कर सकती है। वे कहा करते थे, "अग्रेजो को देखो, सिर्फ तिजारत के बल पर वे दुनिया के मालिक बन बैठे है।"

अनवर कोने मे बैठा इन बडे लोगो की बातो का मतलब समझने की कोशिश कर रहा था। आज की बातचीत मे हमेशा से ज्यादा गरमी थी। कुछ देर तक तो वह समझ ही नही पाया कि किस चीज के बारे में बाते हो रही हैं। उसके कान मे बार-बार कुछ ऐसे शब्द पड रहे थे जिनसे वह बिलकुल अपरिचित था, जैसे 'रौलट बिल,' 'मार्शल ला', 'हडताल', 'काग्रेस', 'मुस्लिम लीग', इत्यादि। एक नाम जो बार-बार लिया जा रहा था वह 'गांधीजी' का था। और हर शख्स 'सत्याग्रह' नाम की किसी चीज के बारे मे बहुत जोश दिखा रहा था। धीरे-धीरे जब उसकी आखे कमरे के अधेरे की आदी हो गई तो उसने वहा पर एकत्र लोगो को पहचानना शुरू किया; उसके कान भी बातचीत के प्रवाह

का साथ देने लगे और उसका दिमाग बहस की कुछ बुनियादी बातो को समझने लगा। जैसे-जैसे इस बातचीत मे उसकी दिलचस्पी बढती गई, अनवर उस अजीब चिडिया को बिलकुल भूल गया जिसके बारे मे वह अपने अब्बा से पूछने आया था। अब उसके दिमाग पर उससे भी विचित्र चीजे, उससे कही महत्त्वपूर्ण बाते छाई हुई थी।

अनवर को ऐसा लगा कि अग्रेज सरकार का रवैया बहुत खराब था। योरुप मे 'चार साल तक कोई बडी लडाई' हुई थी और हिन्दुस्तानियो ने उस लडाई को जीतने मे अग्रेजो की मदद की थी और उन्होने वादा किया गया था कि इसके बदले मे उन्हे राजकाज के काम मे ज्यादा हिस्सा दिया जाएगा। लेकिन अब लडाई खतम हो जाने के बाद अग्रेज इन वादो को भूल गए थे। ऐसा लगता था कि लोगो मे इस बात पर गुस्सा था, और कुछ लोग इसके बारे मे शोर मचाना चाहते थे और कुछ लोग अग्रेजो को गोली से उडा देना चाहते थे जैसाकि १८५७ मे किया गया था। उधर अग्रेजो ने एक नया कानून बनाया था जिसका नाम 'रौलट बिल' था और इस कानून मे सरकार के खिलाफ कोई बात कहने या कोई काम करने के लिए बहुत सख्त सजा रखी गई थी। गाधी नाम का कोई आदमी, जो अभी तक बहुत दूर दक्षिणी अफ्रीका मे बैरिस्टरी करता था, लौटकर हिन्दुस्तान आया था और अपने देशवासियो को 'सत्याग्रह' के हथियार के बारे मे बता रहा था कि यही एक ऐसा हथियार है जिसकी मदद से सरकार के खिलाफ कामयाबी के साथ लडा जा सकता है। अकबरअली और उनके दोस्तो को भी 'सत्याग्रह' के बारे मे ज्यादा कुछ नही मालूम था, लेकिन ऐसा लगता था कि रामेश्वरदयाल ने गाधी का लिखा हुआ कोई लेख पढा था और उन्हे थोडा-बहुत मालूम था कि इसका मतलब क्या है। शायद यह लेख लिखनेवाले का मतलब यह था कि अगर सब लोग बेइसाफी के कानूनो को मानने से इकार कर दे तो सरकार उन कानूनो को वापस लेने पर मजबूर हो जाएगी और फिर अग्रेजो को गोली से उडाने की कोई जरूरत ही नही रह जाएगी। दरअसल ऐसा लगता था कि यह आदमी किसीको भी जान से मारने के बिलकुल खिलाफ था, यहा तक कि बेइसाफ और जालिम अग्रेज अफसरो को भी नही। अनवर इन बातो का पूरा मतलब तो नही समझ पाया पर दो बाते कुदरती तौर पर उसे बहुत अच्छी लगी—एक तो सरकार के बेइसाफी के कानूनो को न मानना

ग्रोर दूसरे किसीको भी जान से न मारना। अनवर के अब्बा ने उसे सिखाया था कि सच्चे मुसलमान के लिए बेइंसाफी के सामने सिर झुकाना गुनाह है। अपने खानदान मे ही उसके दादा की मिसाल थी जो दिल्ली के आखिरी बादशाह के दरबार मे शायर थे लेकिन एक बार अपनी किसी नज्म मे उन्होने बादशाह और उनके दरबारियो की ऐयाशी की जिन्दगी को बुरा-भला कहने की गुस्ताखी की थी और इसके लिए माफी मागने से इकार किया था जिसकी सजा मे उन्हे दरबार से अलग कर दिया गया था। अकबरअली अपने बाप के इस किस्से को बडे गर्व के साथ बयान करते कभी न थकते थे और अनवर के दिल मे भी अपने दादा मरहूम के लिए बहुत इज्जत हो गई थी। किसी भी जानदार चीज को मारने के ख्याल से ही उसे घिन आती थी। एक बार उसने गुलाबो को बावर्चीखाने मे चूहा मारते देख लिया था तो दो दिन तक उससे खाना नही खाया गया था। किसी आदमी को मारना तो इससे भी भयानक बात थी। अनवर ने फैसला किया कि वह मालूम करेगा कि आखिर यह आदमी गाधी कौन है।

बहस अभी चल रही थी और अनवर अभी तक यह पता भी नही लगा पाया था कि उसके अब्बा गाधी के इन नये विचारो से सहमत है कि नही कि इतने मे घर का पुराना नौकर फकीरा कमरे मे आया और उसने अकबरअली के हाथ मे एक तार दिया। अपने अब्बा को तार की रसीद पर दस्तखत करते और खाकी लिफाफा फाडते देखकर अनवर का दिल जोरो से धडकने लगा। तार आने पर उसके दिल मे हमेशा खलबली मच जाती थी। पहली बात तो यह थी कि उसे इस बात पर बडी हैरत होती थी कि खत इतनी जल्दी कैसे आ जाता है—कलकत्ता तक से वह घटे या दो घटे मे पहुच जाता था। वह जानना चाहता था कि यह कैसे होता है—क्या ये खत कबूतर लाते है, जिस तरह गुलाबो की पुराने बादशाहोवाली कहानियो मे लाते थे, या इन खतो को वह बडा-सा कबूतर लाता था जिसे उसने सुबह आसमान पर उडते देखा था।

तार आने का मतलब हमेशा यह होता था कि कोई बहुत बडी बात हुई है। एक बार तार से दस हजार कम्बलो का आर्डर आया था, एक बार और तार से ऊनी कपडे की एक फैक्ट्री मे, जहा से अकबरअली और रामेश्वरदयाल का माल आता था, आग लगने की खबर आई थी। अक्सर तार का मतलब होता

था कोई लम्बा सफर—कानपुर या अमृतसर या कलकत्ता तक का सफर। अनवर का मन कितना चाहता था कि वह भी अपने अब्बा के साथ इन जगहो के सफर पर जा सके। वह उन तमाम अनोखी जगहो के स्वप्न देखा करता था जहा उसके अब्बा जाया करते थे, पर ये जगहे बहुत दूर थी और किसी लम्बी यात्रा पर जाने की उसकी अभिलाषा अभी तक पूरी नही हुई थी।

अकबरअली ने तार अपने साझेदार के हाथ मे दे दिया। रामेश्वरदयाल ने अपनी आदत के मुताबिक उसे बडे गौर से धीरे-धीरे पढा।

"इसका मतलब है कि आपको अमृतसर जाना पडेगा," उन्होने तार अकबर-अली को वापस करते हुए कहा।

"हा, लगता तो ऐसा ही है," अकबरअली ने तार को मोडकर लिफाफे मे रखते हुए उत्तर दिया।

तो यह बात थी। अब्बा फिर अमृतसर जा रहे है। अनवर के दिल को बडी तसल्ली हुई और उसके दिल मे जो दुविधा बैठी हुई थी वह दूर हो गई। लेकिन जैसाकि ऐसे मौको पर हमेशा होता था अनवर ने आखे बद करके मन ही मन अल्लाह मिया से दुआ मागी—"या अल्लाह मिया, कुछ ऐसा कीजिए कि अब्बा मुझे भी अपने साथ ले जाए। अल्लाह मिया, बस अगर आप मेरी यह मुराद पूरी कर दीजिए तो मै वादा करता हू कि मै कभी कोई शरारत नही करूगा। मै अब्बा का और फूफी-अम्मा का, और हा मौलवी साहब का भी, कहना हमेशा मानूगा।"

"लेकिन अकबरअली, यह वक्त तुम्हारे लिए इस सफर पर जाने के लिए बिलकुल मुनासिब नही है," अनवर ने चौधरी मुहम्मदउमर को कहते सुना और उसने आखें खोलकर अल्लाह मिया की तरफ से ध्यान हटाकर वहा पर एकत्र लोगो की ओर ध्यान दिया। "पजाब मे मार्शल ला लगा हुआ है और वहा हर आदमी के लिए जान का खतरा है।"

"जी हा," हकीम बेदिल ने हमेशा की तरह बहुत धीरे से अपनी आवाज खीचकर कहा, "आसमान पर नहूसत के बादल घिर रहे है और जमाना बहुत खराब है। जैसाकि गालिब ने कहा है —"

"जाने भी दीजिए कि गालिब ने क्या कहा है," अकबरअली ने उनकी बात बीच ही मे काटते हुए कहा, "मै घर पर औरतो की तरह चूडिया पहनकर नही

बैठ सकता। और बहरहाल मैं तो अपने कारोबार के सिलसिले मे जा रहा हूं। मैं वहां कोई सियासी तहरीक चलाने तो जा नही रहा हू, फिर मुझे कुछ क्यो होने लगा ?"

"फिर भी भाई साहब," रामेश्वरदयाल ने हिम्मत करके कहा—रामेश्वरदयाल यों तो उम्र मे अकबरअली के बराबर ही थे पर वे हमेशा उन्हें अपना बडा भाई मानकर 'भाई साहब' कहते थे—"अगर जरा भी खतरा है तो मैं तो यही कहूगा कि आप वहा न जाए।"

"रामेश्वर, नादानी की बातें न करो। जब तक मै अमृतसर जाकर मिलो के साथ माल का बदोबस्त नही करू गा तब तक हम अपना यह ठेका पूरा नही कर सकते। मैं कल सुबह ही चला जाऊगा।"

अनवर को अब्बा का इस तरह दो टूक अपना पक्का इरादा जाहिर कर देना बहुत पसद था। वे किसी बात से घबराने या डरनेवाले नही थे। अगर कोई काम करना होता था तो वे उसे पूरा करके ही छोडते थे, चाहे कुछ भी हो जाए। अनवर का हृदय एक बार फिर गर्व से भर उठा। और फिर उसका गर्व से भरा हुआ हृदय जोर से धडका, उसके कानो मे घटिया-सी बजने लगी, और खुशी के मारे उसके सारे शरीर मे हलकी-सी कपकपी दौड गई।

"अनवर !" उसके अब्बा ने उसकी तरफ देखकर पुकारकर कहा।

"जी अब्बा !"

"मेरे साथ अमृतसर चलोगे ?" और यह कहकर वे मुस्करा दिए।

यह सवाल इस तरह अचानक उसपर टूट पडा कि अनवर हक्का-बक्का रह गया; उससे कोई जवाब देते न बन पडा। वह यह सुनने के लिए भी वहा न रुका कि अकबर अभी अपने दोस्तो को यह समझा रहे थे कि वे अपने आठ बरस के बेटे को अपने साथ इसलिए ले जा रहे थे कि वे चाहते थे कि उसे दुनिया की खबर हो, यात्राए करके उसका दृष्टिकोण व्यापक हो और वह साहसी और निडर बने। अनवर भागकर जनानखाने मे पहुच चुका था और अपनी बहिन के गले से लिपटकर बेहद खुश होकर कह रहा था, "बाजी अजुम, मैं अमृतसर जा रहा हूं।"

गरमी के दिन थे। रात के वक्त आसमान बिलकुल साफ था और उसपर लाखो सितारे इस तरह जगमगा रहे थे जिस तरह बाजी अजुम का आसमानी रग का वह कामदानी का धारीदार दुपट्टा जो उन्होने ईद के दिन पहना था। अनवर घर के अदरवाले आगन मे फूफी-अम्मा, अजुम और गुलाबो के पास सोता था। वह बिस्तर पर आखे खोले लेटा था। उसकी बूढी फूफी-अम्मा दिन-भर घर का काम-काज करने के बाद थककर सो गई थी। अजुम भी गहरी नीद सो रही थी, गुलाबो हमेशा की तरह रात को घटे-दो घटे के लिए पडौस मे गप्पे लड़ाने के लिए गई हुई थी। सिर्फ अनवर सितारो का साथ दे रहा था। आनेवाले सफर के ख्याल से उसके मन में इतनी खलबली मची हुई थी कि उसे नीद भी नही आ रही थी।

रात के सन्नाटे मे पुराने भारी फाटक के कब्जो की चू-चू की आवाज सुनाई दी और अनवर ने गुलाबो को अदर आते देखा। गुलाबो ने यह कोशिश करते हुए कि कम से कम आवाज हो दरवाजा बद किया और कुडी चढा दी। फिर वह दबे पाव आकर अपनी चारपाई की तरफ बढी।

"बुआ गुलाबो!" हालाकि वह नौकरानी थी लेकिन अनवर को सिखाया गया था कि वह उसे हमेशा इज्जत के साथ 'बुआ' कहा करे।

"हा बेटा, क्या बात है?"

"मुझे नीद नही आ रही है।"

"तो तुम्हारा मतलब है कि मैं तुम्हे कोई कहानी सुनाऊ।"

"हा बुआ। मेरी अच्छी बुआ!"

ऐसा लगता था कि सारे सितारो की चमक और भी बढ गई है, मानो वे गुलाबो की कहानी सुनने के लिए और पास आ गए हो। अनवर को पक्का यकीन था कि गुलाबो जैसी मजेदार कहानिया सुनाती थी वैसी सितारो ने भी कभी न सुनी होगी।

जैसे ही बुआ गुलाबो अपने भारी डील-डौल के साथ अनवर की चारपाई पर बैठीं, चारपाई चरमरा उठी, शायद उसे गुलाबो का वहा बैठना अच्छा नही लगा। गुलाबो ने मुह का पान थूक दिया और कहानी कहना शुरू किया। गुलाबो की हर कहानी एक ही तरह से शुरू होती थी और अनवर कहानी के

शुरू के इन शब्दो से भली भाति परिचित हो चुका था ।

"सोवे ससार जागे पाक परवरदिगार। हमारा-तुम्हारा खुदा बादशाह, खुदा का बनाया नबी बादशाह । एक था बादशाह !"

गुलाबो उसे जो भी कहानी सुनाती थी वह इसी तरह शुरू होती थी। उसमे हमेशा एक बादशाह होता था । फर्क सिर्फ इसका होता था कि उसके औलाद कितनी है। कभी उसके सात बेटिया होती थी, कभी उसके सात बेटे होते थे। एक कहानी मे उसके तीन बेटिया थी । इस कहानी मे उसके सिर्फ एक बेटा था।

"बादशाह अपने बेटे से बहुत प्यार करता था," गुलाबो अपनी नर्म मीठी आवाज मे कहानी कहती रही । गुलाबो का शरीर जितना भारी-भरकम और कुरूप था उतनी ही उसकी आवाज मीठी और खूबसूरत थी। "तो जब शाहज़ादा अठारह बरस का हुआ तो एक दिन बादशाह ने उसे बुलाकर एक घोडा और एक तलवार दी और दिशा मालूम करने के लिए उसे एक कुतुबनुमा डिबिया दी।

" 'बेटा, जाओ, जाकर दुनिया की सैर करो,' बादशाह ने उससे कहा, 'और खुद दुनिया को देखो ।' उसने शाहजादे को एक बात के लिए मना भी किया। 'बेटा, पूरब जाना, उत्तर जाना, दक्खिन जाना, मगर देखो पच्छिम कभी न जाना। क्योकि उधर बहुत बुराई और बहुत खतरा है। खुदा हाफिज !' यह कहकर बादशाह ने अपने बेटे को रुखसत किया।

"सो शाहजादा घोडे पर सवार होकर सफर के लिए निकल पड़ा। पहले वह उत्तर की तरफ गया । वह गडरियो और सीधे-सादे पहाडी लोगो के साथ रहा और उसने देखा कि उन्हे अपना पेट पालने के लिए कितनी मेहनत करनी पडती है और वे आधी-तूफान और बरफ का कितनी बहादुरी के साथ मुकाबला करते है। फिर वह दक्खिन की तरफ चला।

"उत्तर के बर्फीले इलाको के बाद दक्खिन का इलाका उसे बहुत हरा-भरा दिखाई दिया और वहा का मौसम भी अच्छा था । खूबसूरत घाटियो में होकर नदिया बह रही थी, खेतो में धान और गेहू के खेत लहलहा रहे थे, पेड फूलो से लदे थे और जमीन पर से नारियल, आम और अमरूद उठाकर ही आदमी अपना पेट भर सकता था । वहा जिन लोगो से वह मिला वे बात बडी नरमी से करते थे और घर आए मेहमान की बडी आवभगत करते थे, लेकिन साथ ही वे

बहुत काहिल और आलसी भी थे। वे अपना बहुत काफी वक्त नाचने-गाने मे और अपने जिस्मो को धुनक के सातो रगो मे रगने मे खराब करते थे।

"इसके बाद शाहजादा पूरब की तरफ मुडा और बहुत बडे-बडे शहरो मे जा पहुचा। वहा के बाजार तरह-तरह की अनोखी चीजो से भरे पडे थे। वहा के मदिरो पर सोने के कलश थे और वहा के रईस चादी की पालकियो मे चढकर चलते थे। यहा के लोग बडे तहजीबवाले थे और जिन लोगो से वह मिला उनमे बडे-बडे विद्वान और हजारो वर्ष का इल्म जाननेवाले लोग थे।

"पूरब का सफर पूरा करके शाहजादा एक जगह ठहर गया। अब सिर्फ पच्छिम की तरफ जाना रह गया था, बादशाह ने उसे उधर जाने से बिलकुल मना कर रखा था। लेकिन इतना घूमने-फिरने के बाद वह पच्छिम की तरफ जाने को इतना बेचैन हो गया था कि उसने अपने बाप की नसीहत न मानकर पच्छिम के भेद भी मालूम करने का फैसला किया।

"और सो शाहजादे ने अपना थका-मादा घोडा पच्छिम की तरफ मोडा। न जाने कितनी पहाडियो और दूर तक फैले तपते हुए रेगिस्तानो के पार उसे सफर करना पडा। आखिर मे शाहजादा आधी और तूफान का मुकाबला करता हुआ एक भयानक नगरी मे पहुचा। यहा उसकी आखो ने जो कुछ देखा वह सचमुच बहुत ही भयानक था। हजारो मर्द, औरते और बच्चे जजीरो से एक बहुत बडी चक्की से बधे हुए थे जिसे वे घुमा रहे थे। उनके बीच मे एक बहुत लम्बा-चौडा देव खडा हुआ था जिसका सिर बादलो को छू रहा था और जिसके पाव जमीन मे बहुत मजबूती से गडे हुए थे। उसके हाथ मे एक कोडा था और जो कोई भी काम मे ढील करता था उसकी पीठ पर वह बडी बेरहमी से कोडा फटकार देता था। इस चक्की के पाटो से, जो पहाड जितने बडे थे, बहुत भयानक आवाज निकल रही थी। शाहजादे ने जब पास जाकर चक्की के पाटो को ध्यान से देखा तो उसके होश उड गए, क्योकि इस चक्की मे इसान पीसे जा रहे थे। थोडी-थोडी देर बाद वह देव कुछ लोगो को उठाकर उस भयानक चक्की मे झोक देता था। और उस चक्की को चलानेवाले गुलाम सिर झुकाए कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते जा रहे थे, उनकी बेडियो की झकार चारो तरफ गूज रही थी, पर वे खुद अपनी तबाही की इस चक्की को रोक नही सकते थे।

" इन बेचारे बदनसीब लोगों को देखकर शाहजादे का दिल दहल गया और उसने तरस खाकर एक आदमी की जजीरे खोलने की कोशिश की, लेकिन उस आदमी ने उसे रोकते हुए कहा, 'भाई, तुम बेकार परेशान न हो। हम लोग इस चक्की से उस वक्त तक बधे रहेगे जब तक आसमान पर एक खास सितारा नही दिखाई देगा। उस सितारे के दिखाई देने के बाद ही हम आजाद होगे। तुम जाओ, और जाकर हरी आखवाले राक्षस का पता लगाओ और उसे मार डालो, क्योंकि वह हमारे बहुत-से भाइयो को खा गया है।

" और सो शाहजादा हरी आखवाले राक्षस की तलाश मे निकल पडा। रास्ते मे हूरो का बाग पडा। हवा मे सगीत था, शराब की नदिया बह रही थी, पेडो की डाले सुनहरे फलो के बोझ से लचकी जा रही थी और चारो तरफ से खूबसूरत-खूबसूरत हूरे पुकार-पुकारकर उससे कह रही थी, 'परदेसी, थोडी देर के लिए हमारे पास इस खूबसूरत जगह पर ठहर जाओ। ऐसी जल्दी क्या है ?' लेकिन शाहजादा जानता था कि ये सब लालच उसे इसलिए दिए जा रहे है कि वह जिस काम को पूरा करने निकला है उसे पूरा न कर सके। उस चक्की से बधे हुए गुलामो की भयानक तस्वीर उसकी आखो के सामने नाच रही थी, इसलिए उसने हूरो को एक तरफ ढकेल दिया और तेजी से घोडा दौडाता हुआ हूरो के बाग को पार कर गया।

" लेकिन इसके बाद उसका रास्ता खौफ की घाटी से होकर गुजरता था, जिसपर जहालत की काली छाया पड रही थी। जब वह वहा से गुजरा तो भूतो ने उसका गला घोटने की कोशिश की और चट्टानो से भयानक आवाजे निकलकर उसके कानो मे गूजने लगी। इन आवाजो ने चिल्लाकर कहा, 'वापस लौट जाओ, तुम हमारे चगुल से बचकर आगे नही जा सकते। हम तुम्हे मार डालेगे।' डरावने राक्षसो ने आग के भालो से उसपर हमला कर दिया और जोर-जोर से चिल्लाकर उससे कहने लगे, 'वापस लौट जाओ। आज तक कोई भी इस खौफ की घाटी को जिदा नही पार कर सका है। हम तुम्हे मार डालेंगे।' लेकिन शाहजादे को उसके बाप ने सिखाया था कि खुदा के अलावा किसी और से न डरना और शाहजादे को उनसे डर नही लगा। उसने तलवार खीच ली और कलमा पढकर उनसे चिल्लाकर बोला, 'हट जाओ मेरे रास्ते से। मैं इंसान हूं, इंसान की औलाद हू, मैं सारी दुनिया का मालिक हू।' और उसका

इतना कहना था कि भूत-प्रेत गायब हो गए और डरानेवाली खौफनाक आवाजे सुनाई देना बद हो गई ।

"चलते-चलते शाहजादे को हरी आखोवाला राक्षस मिला । उसके पुखराज की हरी-हरी चमकदार आखे और सोने की दुम थी और उसका मु ह बहुत बडा था । हर बार जब वह मु ह खोलकर सास लेता था तो न जाने कितने मर्द, औरते और बच्चे खिचकर उसके मु ह मे चले जाते थे और उन्हे वह जिदा निगल लेता था । शाहजादे ने तलवार खीची और राक्षस पर हमला करने के लिए आगे बढा । लेकिन उसपर तलवार का वार करने से पहले वह कुछ सोचकर रुक गया। राक्षस अपने शिकार के पीछे एक गोल दायरे मे घूम रहा था कि अचानक उसने अपनी ही सुनहरी दुम पकड ली और खुद अपने-आपको निगलने लगा ।

"शाहजादे ने ऊपर नजर उठाकर देखा तो आसमान पर एक नया सितारा चमक रहा था । थोडी देर मे उसे बिजली कडकने की आवाज और तूफान का शोर सुनाई दिया, लेकिन बाद मे उसे पता चला कि यह चक्की से बचे हुए उन गुलामो का ही शोर था जो अब आजाद होकर खुशी के मारे चिल्ला रहे थे । शाहजादा·· "

लेकिन अनवर तो सो चुका था। उसने कहानी आखीर तक सुनी ही नही ।

उस रात अनवर ने एक बहुत अजीब सपना देखा । वह जानता था कि वह सपना देख रहा है फिर भी उसके मन मे एक गहरा आभास यह था कि यह स्वप्न नही बल्कि सत्य है । पहले तो उसने आसमान पर एक बहुत बडा कबूतर उडते देखा जो एक चमकदार सितारे की तरफ चला जा रहा था । फिर उसने देखा कि वह कबूतर नही है बल्कि वह खुद उस बहुत बडे कबूतर की पीठ पर बैठा हुआ है जिसे उसने उस दिन सुबह आसमान पर उडते देखा था । उसके दोनो तरफ डैनो के बजाय मौलवी साहब की सफेद दाढी लगी हुई थी जो हवा मे अजीब तरह से फडफडा रही थी । उसके अब्बा कही से उसे आवाज़ दे रहे थे पर जब उसने मुडकर देखा तो वे उसके अब्बा नही बल्कि काका रामेश्वरदयाल थे। वह आसमान की तरफ उडता चला जा रहा था जिसका रग नीला था और जिसपर सितारे टके हुए थे, पर जब उसने उसे पकडकर नीचे खीचने की कोशिश

की तो वह बाजी अंजुम का आसमानी धारीदार दुपट्टा निकला। एक चिड़िया उड़ती हुई उसकी तरफ आ रही थी—लेकिन नही, वह चिड़िया नही थी बल्कि अमृतसर से आया हुआ तार था जो हवा मे फड़फड़ा रहा था। और इतने मे वह बड़ा कबूतर एक सफेद घोड़ा बन गया था और चिड़िया की तरह उड़ा चला जा रहा था। लेकिन थोड़ी देर मे वह जमीन पर उतर आया और एक घाटी मे से होकर दुलकी चाल से चलने लगा। एक हूर हवा मे उड़ती हुई आई और बोली, "परदेसी, थोड़ी देर को रुक जाओ न।" लेकिन वह हूर नही थी, बल्कि चावड़ी बाजार की 'उन दूसरी औरतो' मे से एक थी। और इसलिए अनवर ने जवाब दिया, "मै इसान हू, इसान की औलाद हू, मैं सारी दुनिया का मालिक हू।" और इसपर हूर ने जवाब दिया, "मै औरत हू, औरत की बेटी हू, और तुम मुझसे बचकर नही जा सकते।" और इतना कहकर वह अपनी बाहे फैलाकर अनवर से लिपट गई लेकिन वह वहा नही था—और न ही वह थी। अब वह खौफ की घाटी मे पहुच गया था और हरी आखोवाला राक्षस उसकी तरफ आ रहा था। वह वही सहमकर खड़ा हो गया और उसे यकीन हो गया कि वह राक्षस उसे मार डालेगा। इतने मे एक अजनबी, एक दुबला-पतला छोटा-सा आदमी आकर उसके और राक्षस के बीच मे खड़ा हो गया और बोला, "मै गाधी हू और मै अफ्रीका से आया हू। राक्षस, इस मासूम बच्चे को न मारना नही तो मै तुम्हारे बेइसाफी के कानूनो को नही मानूगा। मारना तो तुम्हे किसीको भी नही चाहिए—चूहे तक को नही।" राक्षस ने अपने नथुने फुफकार-कर जोर से सास ली और वह अजनबी और अनवर दोनो उस राक्षस के पेट मे पहुच गए। लेकिन असल मे वह राक्षस का पेट नहीं बल्कि उसके अब्बा की बैठक थी और वहा हकीम बेदिल बैठे गालिब के शेर सुना रहे थे। "आसमान पर मनहूस घटाए घिर रही है," हकीम बेदिल ने कहा और सचमुच आसमान पर गहरे काले-काले बादल घिर आए थे और थोड़ी ही देर मे पानी बरसने लगा—कमरे के अदर भी बरसने लगा।··

लेकिन पानी का छीटा तो अंजुम ने हमेशा की तरह अनवर को जगाने के लिए उसके मुह पर मारा था। अनवर ने हड़बड़ाकर आखे खोल दी। उसकी बहन शरारत-भरे अदाज से मुस्करा रही थी। "उठ, काहिल कही का! अगर अमृतसर जाना है तो फौरन उठ जा, नही तो अब्बा तुझे छोड़कर चले जाएंगे।"

वह लम्बी सड़क

रेलवे स्टेशन अनवर के लिए एक नई ही दुनिया थी। कभी सपने मे भी उसने ऐसी जगह नही देखी थी। भयानक काले देव जैसे बडे-बडे इजन धुआ उडाते हुए रेल की चमकती हुई पटरियो पर इधर से उधर आ-जा रहे थे। गाडिया आती थी और बहुत दूर बम्बई, कलकत्ता और पेशावर तक चली जाती थी। स्टेशन मे आते हुए और स्टेशन से बाहर निकलते हुए मुसाफिरो की भीड एक अजीब पचमेल खिचडी थी—हर रग की पगडिया, हर शक्ल की टोपिया, सलवारे पहने हुए पठान और धोतिया बाधे हुए बगाली, छोलदारी जैसे बुरको मे लिपटी हुई मुसलमान औरते और मुह पर छोटा-सा घूघट काढे हुए शरीफ घरानो की हिन्दू औरते और इनके साथ ही कुछ गोरी चमडी-वाली औरतें ऐसी भी जो बहुत ही बारीक कपडे पहने थी जिनमे से उनका सारा शरीर दिखाई देता था। शायद यही चावडी बाजार वाली वह 'दूसरी औरतें' थी। लेकिन ऐसा नही था। अनवर के अब्बा ने उसे बताया कि ये उन साहब लोगो की, अग्रेज़ अफसरो की, बीविया या बेटिया थी जो प्लेटफार्म पर रेल के इंजन की तरह सिगरेट का धुआ उडाते हुए चहलकदमी कर रहे थे।

बाद मे उसके अब्बा ने उसे बताया कि वे सीधे अमृतसर न जाकर एक दिन के लिए पानीपत मे रुकेंगे जो वहा से सिर्फ पचास मील दूर था।

"अब्बा, हम लोग रात तक वहा पहुच जाएगे ?" उसने पूछा।

"रात तक ? अरे, अभी तीन घटे मे पहुचे जाते है।"

इतने मे वे उस प्लेटफार्म पर पहुच गए जहा उनकी गाड़ी खडी थी। चारो तरफ एक अजीब चहल-पहल थी और शोर-गुल हो रहा था—मुसाफिर और उन्हे छोडने के लिए आए हुए उनके दोस्त, कुली और फल और शर्बत बेचनेवाले, किताबे और अखबार बेचनेवाले सब एकसाथ बोल रहे थे और चिल्ला-चिल्लाकर अपना माल बेचने की कोशिश कर रहे थे। और इन तमाम

आवाजो के शोर-गुल मे उसे दो आवाजे बिलकुल साफ सुनाई दे रही थी, 'हिन्दू पानी', 'मुस्लिम पानी'।

मुस्लिम पानीवाले के दाढी थी और वह अपने कधे पर एक मशक लटकाए हुए था; उसका जोडीदार हिन्दू पानीवाला दोनो हाथो मे एक-एक बाल्टी लिए हुए था। अनवर सोचने लगा कि क्या इन दोनो के पानी मे सचमुच कोई फरक है। लेकिन इतने मे वह देखता क्या है कि दोनो पानीवालो ने प्लेटफार्म के बीच में जाकर एक ही नल से पानी भरा।

अनवर ने देखा कि गाडी मे भी कई तरह के डिब्बे है। फर्स्ट और सैकड क्लास के डिब्बो के बाहर सोने की तरह चमकते हुए डडे लगे हुए थे, उनमे चमडे की गद्दिया थी, आईने लगे थे और बिजली के पखे चल रहे थे। इनमे से ज्यादातर डिब्बो मे अग्रेज मर्द और औरते बैठी थी। कुछ पैसेवाले हिन्दुस्तानी भी इन डिब्बो मे सफर कर रहे थे। लेकिन जाहिर है उन्हे गोरो के साथ नही बैठने दिया जाता था। अनवर ने देखा कि एक हिन्दुस्तानी सज्जन ऐसे ही एक डिब्बे मे घुसने की कोशिश कर रहे थे और उसमे बैठे हुए दो अग्रेज उन्हे डाट रहे थे, "गेट आउट, तुम काला आदमी को हम इधर नईं बैठने मागटा।" हिन्दुस्तानी सज्जन ने अपना टिकट निकालकर उन्हे दिखाया कि उन्हे सैकड क्लास के डिब्बे मे बैठने का अधिकार है और इस सिलसिले मे उन्होने एक हिन्दुस्तानी टिकट बाबू से भी फरियाद की लेकिन कोई फायदा न हुआ। उन्हे मजबूर होकर सैकड क्लास के एक दूसरे डिब्बे मे बैठना पड़ा जो सिर्फ हिन्दुस्तानी लोगो से खचाखच भरा हुआ था। अनवर को यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ, क्योकि उसने सुन रखा था कि अग्रेजो के राज मे सब बराबर है। वह सोचने लगा कि अगर ऐसा है तो फिर वह हिन्दुस्तानी सज्जन अंग्रेजो के साथ बैठकर एक ही डिब्बे मे सफर क्यो नही कर सकते? उसके लिए यह एक और पहेली थी—बिलकुल उस पहेली जैसी कि एक ही नल के पानी के दो धर्म कैसे हो जाते है और वह 'हिन्दू पानी' और 'मुस्लिम पानी' कहकर क्यो पिलाया जाता है।

वे ड्योढे दर्जे के एक डिब्बे मे घुसे ही थे कि इजन ने जोर से सीटी दी और गाडी इतने जोर के झटके के साथ चली कि अनवर अपने अब्बा की गोद मे जा गिरा। ऐसा लग रहा था कि प्लेटफार्म और उसपर खडे हुए सब

लोग दूर भागे जा रहे ह । अनवर के लिए यह बहुत ही आश्चर्य की बात थी।

"अब्बा, अब्बा, स्टेशन भागा जा रहा है !" अनवर ने घबराकर चिल्लाते हुए कहा और डिब्बे मे बैठे हुए सारे मुसाफिर हस पडे ।

अकबरअली ने मुस्कराकर धीरे से अपने बेटे की बाह को थपक दिया और बोले, "बेटा, स्टेशन नही, हमारी गाडी भागी जा रही है । वह देखो, सब्जीमडी के बाग है । चूकि हम उनसे दूर हटते जा रहे है इसलिए तुम्हे ऐसा लगता है कि वे दूसरी तरफ हमसे दूर भागते जा रहे है ।"

अनवर अपनी इस बेवकूफी की बात पर बहुत लज्जित हो रहा था । लेकिन उसने यह सोचकर अपने-आपको तसल्ली दी कि यह मेरा पहला ही रेल का सफर तो है, और यह सोचकर उसे बडी खुशी हुई । जूते उतारकर वह आराम से सीट पर बैठ गया और खिडकी के बाहर पीछे की तरफ भागते हुए तार के खभो को देखने लगा—लेकिन अब उसकी समझ मे आ गया था कि वे भागकर कही गायब नही हो जाते बल्कि सिर्फ ऐसा लगता है कि वे गायब हो जाते है।

गाडी तेज़ी से पानीपत की तरफ भागी जा रही थी । अनवर खिडकी के पास से तेज़ी से गुजरते हुए दृश्यो को मुग्ध होकर देख रहा था—खेत और फलो के बाग, रेल की गुमटी पर छोटी-छोटी झोपडिया, कही दूर पर किसी मकबरे का सफेद गुम्बद, गाव के पास से धडधडाती हुई गाडी को गुजरते देखकर हाथ हिलाते और शोर मचाते हुए बच्चे । अनवर जानता था कि उसके दिल मे जो खलबली मची हुई थी उसकी वजह सिर्फ यह नही थी कि वह किसी खास जगह, पानीपत या अमृतसर, जा रहा था, बल्कि इसकी वजह यह थी कि वह रेल से जा रहा था । यह सोचकर ही उसके खून मे एक सनसनी-सी दौड जाती थी कि वह बहुत तेज़ चलनेवाली रेलगाडी पर सफर कर रहा था । उसका जी चाहता था कि वह खुशी के मारे तालिया बजाने लगे, वह चाहता था कि खूब ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाए, उछले-कूदे और जी भरकर नाचे। लेकिन उसका पालन-पोषण बहुत अच्छे ढग से किया गया था और वह इस बात को जानता था कि इस तरह की चीजें सबके सामने नही की जानी चाहिए। उसके अब्बा इस चीज़ को सख्त नापसन्द करते थे कि कोई अपनी खुशी या गम का ढिढोरा पीटे।

अनवर को सिखाया गया था कि अगर कही गिरने से बहुत सख्त चोट भी लग जाए तो भी जोर से न रोए, हकीम बेदिल के अच्छे से अच्छे मजाक पर भी कभी जोर से न हसे और जब दर्जी उसके लिए ईद की कमख्वाब की शेरवानी सीकर लाए तब भी वह खुशी से नाचने न लगे। और इसलिए वह खिडकी के पास चुपचाप बैठा रहा था लेकिन अदर ही अदर वह खुशी के मारे फूला नही समा रहा था। उसे ऐसा लगा कि उसमे पहले से ज्यादा जान आ गई है, उसे लगा कि वह पहले से ज्यादा ताकतवर और तन्दुरुस्त हो गया है और गुलाबो की कहानियोवाले शाहजादे की तरह कोई भी काम कर सकता है, कही भी जा सकता है—हरी आखोवाले राक्षस को मारने भी जा सकता है। लेकिन वह जानता था कि इस तरह के राक्षस, परिया, देव, भूत और प्रेत दरअसल कही होते नही है। उसके अब्बा ने उसे यह बात खास तौर पर बताई थी और उससे कह दिया था कि वह गुलाबो की कहानियो की हर बात को सच न मान लिया करे, नही तो वह भी बडा होकर फूफी-अम्मा की तरह हो जाएगा जो इन सब चीजो पर यकीन करती थी। लेकिन कभी-कभी अनवर का जी चाहता था कि काश सचमुच ऐसे राक्षस होते ! उसे इसकी कोई चिन्ता नही थी कि उस राक्षस की आखे कैसी हो, पर इस तरह का एकाध राक्षस हो जरूर, जिससे जाकर उसका जैसा बहादुर लडका लड सके और उसे मार सके और फिर शाहजादी से ब्याह कर सके, जैसाकि गुलाबो की कई कहानियो मे होता था।

रेलगाडी बहुत लम्बे-चौडे सपाट मैदान को पार करती हुई भागी चली जा रही थी। रेल की पटरी के किनारे-किनारे अनवर को साप की तरह लहराती और बल खाती हुई सफेद सडक दिखाई दे रही थी जो कभी पेडों के पीछे छिप जाती थी और कभी फिर अचानक बाहर निकल जाती थी। वह कभी रेल की पटरी के इतने पास आ जाती थी कि अनवर उसपर जाती हुई ऊटगाडियो को साफ देख सकता था, और दूसरे ही क्षण इतनी दूर हो जाती थी कि क्षितिज के छोर पर केवल एक रेखा जैसी दिखाई देती थी। बहस कुछ ठंडी पड गई थी और इसलिए अकबरअली को अपने बेटे को कुछ बाते समझाने का मौका मिला। अनवर को अपने अब्बा की बाते सुनना बहुत अच्छा लगता था। उन्हें हर बात मालूम थी और वे कभी उसके सवालो का जवाब देने से उकताते नही

थे। उन्होने अनवर को बताया कि इस सडक का नाम ग्राड ट्रक रोड है जो कलकत्ता से दिल्ली होती हुई पेशावर तक चली गई है और हिन्दुस्तान के पूरब से उत्तर-पश्चिमी सिरे तक डेढ हजार मील लम्बी है। "यह सडक अग्रेजो ने बनवाई है ?" अनवर ने पूछा। "नही," उसके अब्बा ने जवाब दिया, "यह सडक एक हिन्दुस्तानी बादशाह ने बनवाई थी जिसका नाम शेरशाह सूरी था। उसने यह सडक इसलिए बनवाई थी कि इस लम्बे-चौडे मुल्क मे लोगो के लिए एक जगह से दूसरी जगह जाना आसान हो जाए।"

'मेरे अब्बा भी कितने अक्लमद है !' अनवर ने सोचा।

गाडी की रफ्तार धीमी पडने लगी। खिडकी से बाहर उसने नज़र दौड़ाकर देखा तो उसे उस सपाट मैदान के क्रम को भग करता हुआ, जिसका अब तक वह आदी हो चुका था, टीले पर बसा हुआ एक छोटा-सा शहर दिखाई दिया। पक्की ईंट के मकानो की कतारे एक-दूसरे के ऊपर दूर तक चली गई थी और उन सबके ऊपर मस्जिदो की मीनारे और गुबद सूरज की तेज रोशनी मे चमक रहे थे।

"तैयार हो जाओ," उसके अब्बा ने कहा, "पानीपत आ गया।"

पानीपत बहुत ही ऊघता हुआ-सा शहर निकला। अनवर दिल्ली की चहल-पहल का आदी था। उसे यहा की हर चीज इतनी सुस्त, इतनी बेरग और इतनी बेजान मालूम हुई कि वह बयान भी नही कर सकता था। बाजारो मे लोग निहायत इतमीनान से आ-जा रहे थे; हर दूकान पर रुककर थोडी देर गप लडाते या थोडी देर हुक्के का कश खीचते। कचरे से लदे हुए गदहे टेढी-मेढी और ऊबड-खाबड सडको के ठीक बीचोबीच खडे ऊघ रहे थे जिसकी वजह से उस फटीचर तागे का आगे बढना भी मुश्किल हो रहा था। इस शहर की एक और खास चीज यहा की मक्खिया थी—लाखो-करोडो मक्खिया। और अनवर जिसे आबनूस की लकडी पर बहुत खूबसूरत नक्काशी का काम समझ रहा था वे पास से देखने पर एक हलवाई की दूकान के दरवाजे पर चिपकी हुई मक्खिया निकली। ऐसा लगता था कि वहा बहुत-से लोग उसके अब्बा को जानते थे और अकबरअली ने अपने बेटे को समझा दिया था कि जब भी कोई 'अस्सलामलैकुम'

कहे तो वह अदब से सलाम का जवाब दे—'वालेकुम-अस्सलाम'।

बाजार से गुजरकर वे मीर फैयाजअली के घर पहुचे जो अकबरअली के बहुत पुराने दोस्त थे और लडाई के दिनो मे चार बरस तक कम्बलो के व्यापार मे उनके साथ काम कर चुके थे। अकबरअली और रामेश्वरदयाल ने फौज को हज़ारो कम्बल सप्लाई किए थे और ये कम्बल ज़्यादातर पानीपत से बनकर आते थे। फैयाजअली का कहना था कि वहा के कम्बलवाले लडाई के ठेको की बदौलत बेहद पैसेवाले हो गए थे और वे अपनी नई कमाई हुई दौलत शादी-ब्याहो पर, नये घर बनवाने पर और अपनी औरतो के लिए गहने बनवाने पर तबाह कर रहे थे। "हम शरीफ लोगो के लिए नीच जात के इन हरामियो को काबू मे रखना मुश्किल हो गया है।" मीर फैयाजअली की आदत थी कि वे अपनी बातो के बीच-बीच मे चुनी हुई गालियो का चटखारा देते रहते थे। और हर बार जब वे अकबरअली के कमउम्र नासमझ बेटे के सामने 'हरामी' के किस्म का कोई लफ्ज कहते थे तो उनके जैसे शायस्ता आदमी के दिल पर गहरी चोट लगती थी। जब बात-बात मे गाली बकनेवाले शहर के खानदानी रईस मीर फैयाजअली उठकर जनानखाने मे गए तो अनवर ने अपने अब्बा से पूछा, "अब्बा, मीर साहब कम्बल बनानेवालो को 'हरामी' कह रहे थे। यह हरामी कौन होता है ?"

अकबरअली अपने बेटे के कोई सवाल पूछने पर बहुत खुश होते थे और हमेशा बडे सब्र के साथ खुशी-खुशी उसके सवालो का जवाब देते थे। लेकिन कुछ सवाल ऐसे भी होते थे जिनका उनसे कोई जवाब देते न बन पडता था और इस लफ्ज 'हरामी' का मतलब भी ऐसे ही सवालो मे आता था। फिर भी उन्होने अपनी तरफ से उसे इसका मतलब समझाने की पूरी कोशिश की।

"यों समझ लो बेटा,...इसका मतलब होता है—बुरा आदमी।"

"तो इसका यह मतलब है कि अगर मै कोई बुरी बात करू—जैसे अगर मैं आपका कहना न मानू या अपना सबक ठीक से न याद करू—तो मुझे भी हरामी कहा जाएगा ?"

अकबरअली पर इस बात का यकायक इतना गहरा असर पडा, उनका चेहरा इतना सुर्ख हो गया और वे लाचारी मे इतनी बुरी तरह हकलाने लगे कि अनवर समझ गया कि उसने यह सवाल पूछकर कोई बहुत बडी गलती की थी।

"नही, नही' । ऐसी बात नही है। हर बुरे आदमी को हरामी नही कहते। वह तो बुरे आदमी से भी बदतर होता है।"

जाहिर था कि इस लफ्ज 'हरामी' मे कोई ऐसा भेद था जो अनवर के अब्बा अपने बेटे को नहीं बताना चाहते थे। इतने मे मीर फैयाजअली पानो की तश्तरी हाथ मे लिये हुए जनानखाने से निकल आए और बाप-बेटे दोनो को बातचीत का रुख बदल जाने पर बहुत खुशी हुई।

"अच्छा मीर साहब, यह तो बताइए," अकबरअली ने कहना शुरू किया, "मुल्क मे जो कुछ हो रहा है उसके बारे मे पानीपत के लोगो का क्या खयाल है?"

"मुल्क मे जो कुछ हो रहा है! क्या हो रहा है?" पुराने खानदानी रईस मीर फैयाजअली ने जिनकी रईसी अब नाम ही को रह गई थी, एक पुरानी आरामकुर्सी पर लेटकर इतमीनान से हुक्के का कश खीचते हुए चौककर कहा। फिर कुछ रुककर पान की पीक थूकते हुए बोले, "··· आपका मतलब इस 'सत्याग्रह' से है? कम से कम पानीपत के हम शरीफ लोग तो आटा-दाल बेचनेवाले इस टटपूजिए बनिये से कोसो दूर रहेगे।"

शाम को मीर फैयाजअली अपने मेहमानो को बू-अलीशाह कलदर का मकबरा दिखाने ले गए। बू-अलीशाह सैकडो बरस पहले कोई फकीर गुजरे थे और उनका नाम कलदर इसलिए पड गया था कि वे चीथडे पहनकर पागलो की तरह रहते थे और दुनिया की हर बात को भुलाकर खुदा के ध्यान मे मग्न रहते थे।

यह खूबसूरत सफेद मकबरा पत्थर के फर्शवाले एक बहुत बडे लम्बोतरे आगन के एक कोने मे बना हुआ था। अपने जूतो से खट-खट की आवाज करते हुए वे अन्दर के आगन मे पहुचे। अन्दर के आगन मे काफी भीड जमा थी और अचानक उन्हे गाने की आवाज सुनाई दी। जूते उतारकर वे सगमरमर के चबूतरे पर चढ गए। वहा अनवर ने एक अनोखा दृश्य देखा।

पतले-से दरवाजे मे से कोठरी के अदर फूलों से ढकी हुई कलदर साहब की कब्र धुधली-धुधली दिखाई पड रही थी। उसके सामने एक चौडा-सा बरामदा

था जिसमे बीस-पच्चीस आदमी घेरा बाधकर बैठे हुए थे। उनमे से एक आदमी पूरी आवाज के साथ फारसी के शेर गा रहा था और बाकी लोग तालिया बजा-बजाकर ताल दे रहे थे, शेर के आखिरी टुकडे पर पहुचकर सब लोग साथ मिलकर गाते थे। समुद्र की चढती हुई लहरो की तरह गाने की लहर भी लगातार ऊची चढती गई, तालिया और ज़ोर से बजने लगी और लोग तूफान की तरह चढती हुई धुन पर सिर हिला-हिलाकर झूमने लगे। लोगो ने आखे बन्द कर ली और हर शख्स रूमी की सूफियाना शायरी की भावनाओ के प्रबल प्रवाह मे विलीन हो गया। फिर अनवर यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि भीड के बीच मे खडे हुए एक आदमी ने अपनी आखे खोली और पागलो की तरह सूनी-सूनी नजरो से सामने घूरने लगा। एक क्षण तक वह आदमी बिलकुल खामोश रहा, तूफान से पहले की खामोशी की तरह, चारो तरफ भावनाओ का जो तूफान उमड रहा था उसके बीच वही एक ऐसा था जो बिलकुल चुपचाप खडा था। फिर यकायक उसपर जुनून सवार हुआ, उसका सारा शरीर कापने और हिलने-डुलने लगा। गाना अब तक खौफनाक हद तक तेज हो चुका था और लगातार उसकी धुन तेज होती जा रही थी और गानेवालो की आवाजे ऊची होती जा रही थी। उस आदमी ने अपने हाथ हवा मे ऊपर उठा रखे थे मानो किसी अदृश्य रस्सी को पकडे हो। अचानक वह ऊपर की तरफ उछला और पागलो की तरह, बिलकुल दीवाना होकर नाचने लगा। नाचते-नाचते वह अपने कपडे फाडता जा रहा था, अपने बाल नोच रहा था। उसे अपने तन-बदन का होश न था, वह अपने काबू से बिल्कुल बाहर हो चुका था। उसे किसी भी चीज का होश न था, उसके अन्दर कोई ऐसी रहस्यमयी लहर उठ रही थी जो इस उन्मत्त नृत्य के रूप मे प्रकट होना चाहती थी। इतने मे यकायक गानेवालो के होठो पर गीत ने दम तोड दिया, भावनाओ का ज्वार उतर गया और एकत्र जनसमूह पर मरघट जैसी खामोशी छा गई। इस खामोशी मे भीड के बीच मे खडे हुए उस आदमी की सूरत बहुत ही हास्यास्पद और डरावनी लग रही थी, कुछ क्षण के लिए तो वह इस तरह खडा रहा मानो फिर उसे हाल आनेवाला हो, लेकिन भावनाओ से गीत का सहारा छिन जाने के कारण उसके घुटने जवाब दे गए और वह वही जमीन पर ढेर हो गया।

इस दृश्य का अनवर के हृदय पर इतना गहरा असर पडा कि कई मिनट

तक तो वह बोल ही न सका। उसकी नब्ज तेज चलने लगी, उसका दिमाग चकराने लगा और जब गाना यकायक रुक गया तो उसे ऐसा महसूस होने लगा कि उसके अन्दर से कोई चीज निकल गई है और यह खालीपन अन्दर ही अन्दर उसे कुरेदने लगा।

तो यह थी कव्वाली, वह उन्मादपूर्ण प्रथा जिसे फारस के सूफियो ने चलाया था। मीर फैयाजअली को उसपर बहुत नाज था। उन्होने कहा, "पानीपत जैसी कव्वाली तो कही होती ही नही।" लेकिन अकबरअली कुछ झुझलाए हुए, कुछ लज्जित और कुछ अपमानित अनुभव कर रहे थे। उन्हे भावनाओ का यह उन्मादपूर्ण प्रदर्शन अच्छा नही लगा था और उन्होने यह बात कह भी दी, जिसपर बूढे मीर साहब के साथ उनकी बहस छिड गई। वे अभी बहस कर ही रहे थे कि इतने मे एक आदमी उठा और मज़ार की चौखट पर माथा टेककर सिजदा करने लगा। अकबरअली ने बडे विजयोल्लास के साथ उसकी तरफ इशारा करके कहा, "यह देखिए। यह है आपका इस्लाम। एक कब्र पर सिजदा—फिर आपमे और बुतपरस्त काफिरो मे फर्क ही क्या रह गया ?"

लेकिन बाहरवाले आगन मे एक और छोटी-सी कब्र थी जिसके सामने जाकर अकबरअली ने चुपचाप अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की और अपने बेटे को बताया कि वह उर्दू के मशहूर शायर 'हाली' की कब्र थी, जिन्होने अपनी अमर रचना 'मुसद्दस' मे इस्लाम के उत्थान और पतन का वर्णन किया था।

अकबरअली ने शायर की रूह के लिए दुआ मागने के बाद एक बार कनखियो से मीर फैयाजअली को देखा और फिर एकत्र जनसमूह को, जो एक दूसरी कव्वाली की तैयारिया कर रहा था, और फिर बोले, "उन्होने एक पूरी कौम को जगा दिया लेकिन अफसोस कि खुद उनका शहर अभी तक गफलत की नीद सो रहा है।"

जब अनवर और उसके अब्बा पानीपत से रेलगाडी मे बैठकर अमृतसर के लिए रवाना हुए तो वह बडी सडक अब भी रेल की पटरी के किनारे-किनारे चल रही थी। जब पानीपत का ऊंघता हुआ शहर पीछे रह गया तो अकबरअली ने एक लम्बे-चौडे मैदान की तरफ इशारा करके कहा, "यही वह मैदान है जहा

पानीपत की बडी-बडी लड़ाइया लडी गई थी। और उससे भी बहुत पहले महाभारत की लडाई का फैसला भी इसी मैदान मे हुआ था।"

तो इसका मतलब यह था कि वे बहुत ऐतिहासिक महत्त्व की पवित्र भूमि से होकर गुजर रहे थे। अनवर ने उस लम्बे-चौडे मैदान को देखा और शीघ्र ही उसकी कल्पना ने वहा कौरवो और पाडवो की सेनाए लाकर खडी कर दी। हाथी लाशो को और दम तोडते हुए घायल सिपाहियो को रौदते हुए आगे बढते जा रहे थे, रथो की गडगडाहट सुनाई दे रही थी, घोडे सरपट दौडते चले जा रहे थे और मौत का सदेश लानेवाले कबूतरो की तरह तीर हवा मे उड रहे थे। भारत का बहुत कुछ इतिहास रक्त की रेखाओ मे इसी विस्तृत मैदान पर अकित था। इस बडी सडक पर होकर आक्रमणकारियो और विजेताओ की सेनाए, देशभक्त और अत्याचारी शासक और लुटेरे सभी गुजरे थे। लेकिन वह दूर पर क्या दिखाई दे रहा था ?

सडक कोई मील-भर तक बिलकुल रेल की पटरी के साथ-साथ चली गई थी और उस सडक पर घुडसवार सिपाहियो की एक टुकडी चली जा रही थी —घुडसवार सिपाही, तोपो की गाडिया जिन्हे घोडे खीच रहे थे और कुछ मोटरे। गाडी मे बैठे-बैठे अनवर ने पगडिया बाधे हुए हिन्दुस्तानी सिपाहियो, खाकी टोप लगाए हुए अंग्रेज अफसरो और टट्टुओ पर बैठे हुए साईसो और कोचवानो को पहचाना। उसने आगे बढती हुई इस घुडसवार टुकडी को बडे ध्यान से देखा, घोडो की टापो की आवाज साफ सुनाई दे रही थी और वे सफेद धूल के बादल उडाते हुए आगे बढते जा रहे थे—हिन्दुस्तान मे अंग्रेजो की बहुत बडी फौज की एक छोटी-सी टुकडी अमृतसर की तरफ कूच कर रही थी।



मौत का सामना

अमृतसर।

गाडी स्टेशन पर पहुची और सैकडो मुसाफिरो को प्लेटफार्म पर उगल दिया। लेकिन वहा पर कोई भी कुली दिखाई नही दे रहा था। कुछ मुसाफिर जो खुद अपना सामान ले जाना पसद नही करते थे 'कुली! कुली!' चिल्ला रहे थे, पर कुली कोई होता तो आता।

जब वे स्टेशन से बाहर निकले तो दूर-दूर तक कही कोई तागा दिखाई न दिया। कोई मजदूर भी ऐसा नही था जो उनका सामान उस होटल तक पहुचा देता जहा अकबरअली अमृतसर मे हमेशा ठहरते थे। बडी अजीब बात थी।

"होटल बहुत दूर नही है। अनवर, क्या तुम बिस्तर उठाकर होटल तक ले चल सकोगे?" अकबरअली ने अपने बेटे से पूछा। बेटा भी अपने अब्बा को निराश करना नही चाहता था, इसलिए बडे गर्व से बोला, "जी हा अब्बा।"

और अपना सामान सिर पर लादकर बाप-बेटे बहुत-से दूसरे मुसाफिरो की तरह ही धूल से अटी सडक पर चल पडे। सूरज आसमान पर बहुत ऊचा चढ चुका था लेकिन शहर मे एक भी दुकान अभी तक नही खुली थी। कपडे की दूकाने, मिठाई की दूकाने, दूध की दूकाने, खाने-पीने की दूकानें, शरबत की दूकानें—सब बद थी। फिर भी बाजारो मे सन्नाटा नही था। लोग छोटे-छोटे गिरोहो मे दूकानो के पटरो पर बैठे बहुत जोश के साथ बाते कर रहे थे। सडको के नुक्कडो पर इससे भी बडी-बडी भीडे जमा थी और बहुत-से लोगो की भर्राई हुई आवाज़े हवा मे गूज रही थी। पुलिसवाले लाठिया लिए हुए रोब के साथ चुपचाप गश्त लगा रहे थे।

"ऐसा लगता है कि आज शहर मे पूरी हडताल है," अकबरअली ने दूकानो की कई कतारो के सामने से गुज़रने के बाद कहा। और थोडी ही देर मे वही के एक आदमी ने, जो उनके साथ चल रहा था, उनके इस अनुमान की पुष्टि

कर दी। उसने बताया कि सरकार को यह बताने के लिए कि रौलट बिल के खिलाफ लोगो मे कितना गुस्सा है छ अप्रैल को सारे देश मे पूरी हडताल करने का फैसला किया गया है।

अनवर के लिए यह विचार बडा रोमाचकारी था—दिल्ली, अमृतसर, बम्बई और कलकत्ता मे, पेशावर और मद्रास मे हजारो दूकाने एकसाथ बद हो जाएगी, जिसका नतीजा यह होगा कि अग्रेज अफसर सिगरेटे, गोश्त और सब्जी और दूध कुछ भी नही खरीद सकेगे। इतने जबर्दस्त प्रदर्शन का असर न पडे, यह नामुमकिन है और अपनी दूकाने बद कर देने का सीधा-सादा तरीका अपनाकर वे सरकार को अपने बुरे कानूनो को रद्द कर देने पर मजबूर करने मे कामयाब हो जाएगे।

"अब्बा, क्या दिल्ली मे हमारी दूकान भी बद रहती है ?" अनवर ने भारी बिस्तर से बोझ की वजह से हाफते हुए पूछा। हडताल के विचार से उसके मन मे उत्साह की एक अजीब-सी लहर दौड गई थी।

"क्यो नही बेटा! रामेश्वर ने हमारी दूकान भी जरूर बद कर दी होगी। जब सब लोग हडताल करने का फैसला करे तो हम सबको उसमे शामिल होना ही चाहिए। लेकिन..." और यह कहते-कहते अकबरअली का स्वर उदास हो गया, "मुझे तो ऐसा लगता है कि हडताल पर ही यह किस्सा खतम नही होगा। इससे भी ज्यादा गडबडी होना लाजिमी है।"

जिस समय वे होटल मे घुस रहे थे अनवर ने सडक पर पुलिसवालो की एक टुकडी कदम मिलाकर जाते हुए देखी। उनके आगे-आगे एक अग्रेज अफसर जा रहा था जिसकी पेटी से एक रिवाल्वर लटक रहा था।

सहसा अनवर के दिमाग मे घुडसवारो के उस दस्ते की तसवीर घूम गई जिसे उसने ग्राड ट्रक रोड पर कतार बाधकर जाते देखा था—उसी सडक पर जिसे पहले भी कई विजेताओ ने अपनी सेनाए एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए इस्तेमाल किया था।

रतन से दोस्ती हो जाने की अनवर को बहुत खुशी थी। रतन का बाप जमादार अजीतसिह पेशनयाफ्ता फौजी था जो रामपाल ऐड सज नामक ऊन

की दूकान मे दरबान का काम करता था। अकबरअली को हिसाब-किताब के सिलसिले मे रोज इस दूकान मे आना पडता था और उन्होने खुद ही अनवर से कहा था कि वह कुछ देर जमादार अजीतसिह के बेटे के साथ खेल लिया करे। रतन था अनवर की ही उम्र का पर उससे ज्यादा तगडा और लबा था और उसमे अनवर जैसा शर्मीलापन और सकोच भी नही था। वह बहुत ही हस-मुख और चचल लडका था और जब वह मुस्कराता था तो उसके मोती जैसे दात चमक उठते थे। उसने अनवर को बताया कि वह तैरना जानता है, पेड पर चढ लेता है और अपनी उम्र के किसी भी लडके के साथ कुश्ती लड सकता है। जाहिर है कि दिल्ली के एक नाजुक लडके के लिए ये सारी बाते बेहद बहादुरी का सबूत थीं। सभी सिखो की तरह रतन भी दाहिनी कलाई पर लोहे का एक कडा पहने था और उसके लबे रेशमी बालो पर एक बसती रग की पगडी बधी थी, पर उसके बालो की कुछ लटे पगडी के बाहर निकल आई थी, जिसकी वजह से उसके कासे की मूर्ति की तरह ठोस चेहरे पर एक आकर्षण पैदा हो गया था।

अनवर का बचपन बहुत अकेलेपन मे बीता था। जब वह दूधपीता बच्चा था तभी उसकी मा का देहान्त हो गया था और उसकी विधवा फूफी-अम्मा ने ही उसे पाला था। उसकी फूफी उससे बहुत लाड करती थी। उसकी बडी बहन अजुम भी उससे बेहद प्यार करती थी, पर उसे अपनी गुडिया से खेलना पसद था जबकि अनवर बाहर जाकर भाग-दौड के खेल खेलने के लिए बेकरार रहता था। उसे बाहर जाकर पास-पडौस के लडको के साथ खेलने की इजाजत नही थी, क्योकि उसके अब्बा को डर था कि कही वह भी उन बच्चो की तरह गाली बकना न सीख ले, और उसकी फूफी-अम्मा तो यहा तक डरती थी कि वह किसी दिन कही अपनी हड्डी-पसली न तुडवा आए। इसलिए अनवर कछुए की तरह अपने खोल मे सिकुडता गया और उसने कल्पना के खेल खेलना सीख लिया। जिन्दगी मे रतन उसका पहला दोस्त था और जब दोनो साथ खेलते और बाते करते और हसते थे तो अनवर को ऐसा महसूस होता था कि रतन के प्रति उसकी भावनाए वही नही है जो अपने अब्बा, या अपनी फूफी या अपनी आपा अजुम की तरफ है। रतन के साथ उसके सम्बन्ध मे एक अजीब रहस्य, एक अनोखेपन का पुट था जो दूसरे लोगों के साथ उसके सम्बन्धो मे नही था।

वह जानता था कि किसी बात का उसके अब्बा या फूफी पर क्या असर होगा, पर वह यह नही बता सकता था कि उसकी किसी बात या हरकत का रतन पर क्या असर होगा—और इस कारण उनके पारस्परिक सम्बन्ध मे अनवर के लिए एक अनोखा आकर्षण पैदा हो गया था। मिसाल के लिए जब उसने सकुचाते हुए अपना बडा-सा फूलदार रूमाल निकालकर रतन को दिया था उस समय उसे यह पता नही था कि उसका यह नया मित्र फौरन उसे अपनी पगडी पर बाध लेगा और भागा हुआ अपने बाप को दिखाने जाएगा और वापस आकर अनवर को एक छोटी-सी काली खिलौने की पिस्तौल देगा।

"बाबा मेरे लिए विलायत से लाए थे," रतन ने जल्दी से कहा ताकि अनवर को यह उपहार अस्वीकार करने का मौका ही न मिले।

"तुम्हारे बाबा विलायत हो आए है ?" अनवर ने पूछा। उसे इस बात पर इतना आश्चर्य हुआ कि वह इस सुन्दर उपहार के लिए अपने मित्र को धन्यवाद देना भी भूल गया।

"हा," रतन ने उत्तर दिया। अपने बाबा के बारे मे बातें करते हुए वह खुशी से फूला न समाता था। "मेरे बाबा लडाई मे विलायती फौज के साथ लडे थे। पहले वे फ्रास मे थे फिर वहा से लदन गए थे। वहा बादशाह जार्ज पजुम ने उनकी बहादुरी की तारीफ की थी। बाबा बहुत बहादुर है। सरकार ने उन्हे बहुत-से तमगे दिए है।"

अनवर ने जमादार अजीतसिंह की खाकी वर्दी पर ऊपरवाली जेब के पास छोटे-छोटे रगीन फीतो से लटकते हुए ये सोने और चादी के तमगे देखे थे। इन्हे देखकर उसके मन मे बहुत कौतूहल पैदा हुआ था और उसे ऐसा लगा था कि उनके पीछे बहादुरी की कोई बहुत रोमाचकारी कहानी छिपी हुई है। पर वह इतना शर्मीला था कि उस समय डरावनी काली दाढीवाले उस बूढे सिपाही से अपने लडाई के कारनामे सुनाने को नही कह सकता था। परन्तु अब उसने महसूस किया कि रतन के साथ उसकी दोस्ती की वजह से अब उसे यह फरमाइश करने का हक हो गया है।

"क्या तुम्हारे बाबा," उसने झिझकते हुए पूछा, "मुझे बताएगे कि उन्होने विलायत मे क्या-क्या देखा ? आज तक मैंने किसी ऐसे आदमी से बात नही की है जो विलायत हो आया हो और लडाई मे लड चुका हो।"

"क्यो नही, ज़रूर बताएगे। बाबा मेरे किसी भी दोस्त के लिए कुछ भी बडी खुशी से करेगे।"

'मेरा दोस्त !' रतन ने उसे यही तो कहा था। मेरा दोस्त ! दो सीधे-सादे शब्द ! पर अनवर के कानो को कितने मधुर प्रतीत हुए। उसका जी चाहा कि उसके मन मे रतन के प्रति स्नेह और प्रेम की जो भावना उमडी पड़ रही थी उसे वह किसी तरह व्यक्त कर दे—अब उसकी समझ मे आ गया था कि इसी भावना को तो दोस्ती कहते है। उसका जी चाहा कि वह अपने दोस्त को गले लगा ले जैसे ईद के दिन लोग गले मिलते है, उसे प्यार कर ले जैसे फ़ूफी-अम्मा उसे प्यार करती थी, कम से कम उसी तपाक से उससे हाथ तो मिला ही ले जिस तपाक से उसके अब्बा काका रामेश्वरदयाल से हाथ मिलाते थे। पर उसे तो अपनी भावनाओ को व्यक्त करने के बजाय छिपाना सिखाया गया था और इसलिए वह बहुत उदास हो गया। उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उससे उसका मुख छीन लिया हो और उसकी आखे डबडबा आई। पर अपने आसुओ को पीकर उसने फैसला किया कि वह और रतन जिन्दगी-भर वैसे ही गहरे मित्र रहेगे जैसे कि उसके अब्बा और काका रामेश्वरदयाल थे। और न जाने क्यो यह फैसला करते ही उसकी उदासी दूर हो गई और उसे ऐसा लगा कि उसमे नई ताकत आ गई है, उसे ऐसा लगा कि अब वह अकेला नही रह गया है।

वहा पर एक नही बल्कि दो स्वर्णमदिर थे। एक तो चट्टान की तरह अडिग था, पर दूसरा वाला कुछ हिलता था। पहले वाले के ऊपर से जब सफेद रुई जैसे बादल गुजरते थे तो ऐसा लगता था कि वह आकाश पर तैर रहा है और दूसरा पवित्र तालाब के गहरे नीले पानी के अदर तैर रहा था। अनवर टकटकी बाधे स्वर्णमदिर का प्रतिबिम्ब देख रहा था और इसलिए जमादार अजीतसिंह उसे उसके इतिहास और धार्मिक महत्त्व के बारे मे जो कुछ बता रहे थे उसकी ओर से भी उसका ध्यान एक क्षण के लिए हट गया। परंतु इतना उसने अवश्य सुना कि मदिर के कलश पर सोने का पत्र चढा हुआ है जिसके लिए लाखो रुपये खर्च किए गए है। जमादार अजीतसिंह ने उसे यह भी बताया कि यह सिखो का सबसे पवित्र मदिर है और देश के कोने-कोने से गरीब और अमीर

यात्री यहा माथा टेकने आते है और इस सुनहरे कलश की देखभाल के लिए पैसा दे जाते है।

अनवर को स्वर्णमदिर मे उतनी दिलचस्पी नही थी जितनी कि जमादार की वर्दी पर लगे हुए तमगो मे। गौर से देखने पर अनवर को पता लगा कि उनमे से कुछ पर बादशाह का वैसा ही चित्र बना हुआ है जैसा कि रुपये पर या इकन्नी-दुअन्नी आदि पर बना होता है, कुछ पर एक औरत की शक्ल बनी हुई थी, जिसके एक हाथ मे भाला था और दूसरे मे ढाल। शायद यह किसी देवी की तस्वीर थी जिसकी कि अग्रेज पूजा करते थे। हर तमगे पर अग्रेजी मे कुछ लिखा था जो अनवर पढ नही सकता था। अनवर का कौतूहल बढता जा रहा था पर अपने शर्मीलेपन की वजह से वह कुछ कह न सकता था, इसलिए उसने याचना-भरी दृष्टि से रतन की तरफ देखा मानो कह रहा हो, "वह मैने जिस बात के लिए कहा था उसका क्या हुआ ?" रतन समझ गया।

उसने सीधे-सीधे कहा, "बाबा, अनवर आपसे लडाई के बारे मे कुछ जानना चाहता है।"

"लडाई !" बूढे सिपाही ने कहा और कुछ इस तरह सकुचाते हुए खासा मानो उसे लडाई मे अपने कारनामे बयान करते हुए शर्म आ रही हो। "लडाई के बारे मे कोई सिपाही तुम्हे इसके अलावा क्या बता सकता है कि जिस तरह उससे लडने को कहा गया वह लडा और वाह गुरु की कृपा से दुश्मन की गोलियो का निशाना बनने से बच गया।"

पर रतन अपने मित्र को इस तरह निराश करने को तैयार नही था। उसने अनुरोध करते हुए कहा, "बाबा, अनवर को फ्रास के बारे मे और मोर्चे पर की उन खदको के बारे मे और जर्मन की उन बडी-बडी तोपो के बारे मे कुछ बताइए जो सौ मील तक गोले फेकती है।"

अनवर की आखे आश्चर्य के मारे फटी की फटी रह गई। "जमादार साहब, क्या सचमुच ऐसी तोपे होती है ?"

"हा बेटा, होती है, बल्कि इससे भी ज्यादा खौफनाक चीजे होती है।" अब वह अपने युद्ध के सस्मरण सुनाने को तैयार हो गया था। "लेकिन अगर मै तुम्हे बताऊंगा तो शुरू से बताऊगा।"

तीनो उस पवित्र तालाब के किनारे आराम से बैठ गए। रतन तो एक क्षण

के लिए भी शांत नही बैठ सकता था, उसने एक छोटी-सी ककरी पानी मे फेकी और दूसरा स्वर्णमन्दिर आख से ओझल हो गया।

अनवर अब जिस लडाई का वर्णन सुन रहा था वह एक नये किस्म की लडाई थी। ऐसा लगता था कि अब नौजवान शाहज़ादा सफेद घोडे पर बैठकर लडने नही जाता था, अब तीरदाज तीर-कमान के कमाल नही दिखलाते थे, अब दुश्मन पर धावा बोलने के लिए हाथी और रथ इस्तेमाल नही किए जाते थे।

रतन अपने बाबा के इन बहादुरी के कारनामो की कहानी पहले भी कई बार सुन चुका था। इसलिए वह बीच मे बोल उठा, "लेकिन बाबा बडी-बडी तोपो और हवाई जहाजो को तो आप छोड ही गए। उनके बारे मे भी तो अनवर को बताइए।"

"हां, तो दुश्मन के पास बहुत-सी बडी-बडी तोपे थी जो उसने कही मोर्चे के पीछे लगा रखी थी। थोडी-थोडी देर बाद कोई गोला हमारे सिर के ऊपर से सनसनाता हुआ गुजरता था और ज़बर्दस्त धमाके के साथ हमारी खदको के पास आकर फट जाता था। जिस वक्त जर्मन पेरिस से सत्तर मील दूर थे उस वक्त उन्होने एक ऐसी तोप लगा दी, जो सब तोपो की 'नानी' थी। यह तोप सत्तर मील दूर पेरिस के सबसे ऊचे गिरजाघर की चोटी पर गोला फेक सकती थी। और यह हवाई जहाज तो एक बहुत बडी-सी मनहूस चिडिया होती है। सिर के ऊपर से उडते वक्त एक अडा छोडती है और यह अडा फटकर हजारो की जान ले लेता है। ऐसी चीजो के खिलाफ बहादुर से बहादुर आदमी भी कैसे लड सकता है! यह सब कुछ साइस का करिश्मा है और साइस जर्मनो के घर की लौडी है।"

अनवर के दिमाग मे उस बडे-से कबूतर की तस्वीर घूम गई जो उसने उडता हुआ देखा था और उसे याद आया कि उसके अब्बा ने भी उसे बताया था कि वह मौत और तबाही फैलाता है।

"फिर जमादार साहब, आपने जर्मन को हराया कैसे?" उसने हिम्मत करके पूछा।

वह बूढा सिपाही जवाब देने से पहले कुछ देर रुका। "बेटा, ऐसा नही था कि हमारे पास कोई साज-सामान थी ही नही। यह जरूर है कि हमारे पास दुश्मन के मुकाबले मे कम हथियार थे। लेकिन जिस वजह से जर्मन की हार

हुई वह बिलकुल ही दूसरी चीज थी।"

"वह क्या चीज थी ? क्या चीज थी वह ?" अनवर ने बडी उत्सुकता से पूछा।

जमादार अजीतसिंह को इस सवाल का जवाब देने मे कुछ सकोच हो रहा था, ऐसा लगता था कि वे अपने-आपको ऐसे सवाल के बारे मे राय देने के लायक नही समझते थे। "मै तो एक जाहिल सिपाही हू। मै राजनीति-वाजनीति क्या जानू। लेकिन सुलह होने से कुछ दिन पहले मैने खदक मे एक गोरे से यह बात सुनी थी। यह गोरा टामी फौज मे भरती होने से पहले किसी कालेज मे पढाता था इसलिए वह ठीक ही कहता होगा। हा, तो वह कहता था कि जर्मन लोगो ने, खास तौर पर कारखानो के मजदूरो ने, अपने बादशाह कैसर के खिलाफ बगावत कर दी थी। उनका कहना था कि वे लडाई और ज्यादा नही चलाना चाहते थे, क्योकि यह लडाई कैसर और उसके मत्रियो ने अपना राज्य फैलाने के लिए चलाई थी। उन्होने कैसर को गिरफ्तार कर लिया और खुद अपनी सरकार बना ली। हजारो जर्मन सिपाहियो ने हथियार डाल दिए। 'हमे कैसर ने बेवकूफ बनाकर अंग्रेजो और फ्रासवालो से लडवा दिया। हमारा उनसे क्या झगडा है ? अब कैसर नही रहा तो लडाई भी नही रहेगी।' ऐसा वे कहते थे। तो बेटा, लडाई तो जर्मन लोगो ने हमे जितवाई है।"

लेकिन पूरे वर्णन मे जमादार अजीतसिंह ने लडाई मे अपने किसी कारनामे का उल्लेख नही किया था। उसने यह भी नही बताया था कि उसे वह सारे तमगे कैसे मिले थे ? लेकिन अब अनवर के दिल मे उसकी बडी-सी काली दाढी का भय नही रह गया था इसलिए उसे सीधे-सीधे यह सवाल पूछ लेने मे कोई सकोच नही हुआ।

"अरे, ये तमगे !" जमादार अजीतसिंह ने कहा, "ये तो ऐसे ही है। मुझे इसलिए इनाम मे दिए गए थे कि मै सरकार का वफादार था और जो कुछ मुझे हुक्म दिया गया उसे मैने पूरा किया।"

"और," रतन ने बात जोडते हुए कहा, "इसलिए भी तो कि आपने अपनी जान जोखिम मे डालकर एक अग्रेज अफसर की जान बचाई थी।"

"हा," जमादार अजीतसिंह ने स्वीकृति मे सिर हिलाते हुए कहा। "एक बार रात को हमने हमला किया जिसमे कर्नल स्मिथ साहब घायल हो गए और

जब हम लोग पीछे हट रहे थे तो वे हमारे और दुश्मन के मोर्चे के बीच बेहोश होकर गिर पडे। वे हमारे अफ़सर थे और हमारे साथ उनका सलूक हमेशा बहुत अच्छा रहा था। उनकी जान बचाने की कोशिश करना हमारा फर्ज़ था। इसलिए मैं रात के अधेरे मे अपनी खदक के बाहर रेगकर गया और उनको अपने साथ ले आया।"

"लेकिन क्या जर्मनवालो ने आपपर गोली नही चलाई ?"

"हा, हा, चलाई क्यो नही। किसी जर्मन निशानेबाज की गोली आकर मेरी टाग मे लगी।" और यह कहकर जमादार अजीतसिह ने बाया पायचा उठाकर अपनी पिडली पर रुपये के बराबर घाव का निशान दिखाया। घाव बहुत दिन हुए भर चुका था पर उसके विचार से ही अनवर को मतली-सी होने लगी।

दिन बहुत ढल चुका था। मदिर के विशाल आगन मे मदिर का साया लम्बा होता जा रहा था। अजीतसिह ने सोचा कि अकबरअली अपने बेटे का इन्तजार कर रहे होगे। इसलिए तीनो होटल की तरफ लौट चले। अनवर ने तो आज छुट्टी का पूरा मजा लूटा था। लौटते समय इस बात की ओर अनवर का ध्यान ही नही गया कि लोग जल्दी-जल्दी अपने घरो को जा रहे है, उसके चारो ओर लोग दबी जबान मे कुछ खुसुर-पुसुर कर रहे हैं और हर नुक्कड पर पुलिसवाले तैनात हैं।

अकबरअली बहुत चिन्तित होकर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। यह उनके लिए एक असाधारण बात थी, क्योकि वे कभी अकारण चिन्तित या परेशान नही होते थे। लेकिन शहर मे बडी गडबड हो गई थी। चार दिन पहले जो हडताल हुई थी उसके सिलसिले मे जनता के दो नेता, किचलू और सत्यपाल, गिरफ्तार कर लिए गए थे। यह खबर पाकर विरोध प्रकट करने के लिए एक जन-समूह ने डिप्टीकमिश्नर की कोठी पर जुलूस ले जाने की कोशिश की थी। पर इन लोगो को हाल गेट पुल के पास ही रोक दिया गया था और पुलिस ने उनपर गोली चलाई थी। बहुत-से लोग घायल हुए थे और कुछ लोग मारे भी गए थे।

अजीतसिह और रतन जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर चल दिए और अनवर कुछ बौखलाया हुआ-सा चारपाई पर बैठ गया। अकबरअली उस अधेरे कमरे मे टहल रहे थे। दूर से लोगो के चिल्लाने की धुधली-सी प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी, उसके बाद भागते हुए लोगो के कदमो की आवाज सुनाई दी आर फिर उनके पीछे भागते हुए पुलिसवालो के भारी बूटो की आवाज। लोगो का शोर बढता जा रहा था कि इतने मे घोडो की टापो की आवाज सुनाई दी। फिर एकाएक सन्नाटा छा गया, पर यह खामोशी अनवर को और भी भयानक लग रही थी और उसके लिए असह्य हो उठी थी। जब उसके अब्बा ने मेज पर रखा हुआ लैम्प जलाने के लिए माचिम सुलगाई तो अनवर चौककर चारपाई पर से गिरते-गिरते बचा।

इतने मे होटल का एक नौकर हापता हुआ और घबराया हुआ कमरे मे आया। उसने बताया कि शहर मे गडबडी फैलती जा रही थी। हाल गेट पुल पर पुलिस ने जो गोली चलाई थी उसपर क्रुद्ध होकर लोगो ने कई इमारतो को आग लगा दी थी और बहुत-से अग्रेजो को मौत के घाट उतार दिया था।

जब नौकर वहा से चला गया तो अकबरअली ने फिर कमरे मे टहलना शुरू कर दिया। परिस्थिति ने जो उग्र रूप धारण कर लिया था उसका अनवर के दिल पर इतना गहरा असर पडा था कि वह बिलकुल चुप बैठा रहा। स्वर्ण-मंदिर के जिस मनोरम वातावरण मे उसने सारा दिन बिताया था—सरोवर का वह शात जल, सहृदय जमादार अजीतसिह का प्यार-भरा बरताव, और रतन की दोस्ती—वह दुनिया सहसा चकनाचूर हो गई थी। खिडकी मे से हवा का एक झोका अदर आया और उसके साथ ही कई बदूके एकसाथ चलने की आवाज और फिर रुककर मशीनगन चलने की तडतडाहट।

१३ अप्रैल, १९१९। अनवर इस तारीख को कभी नही भूल सकता था।

उस दिन आकाश और दिनों से अधिक स्वच्छ और सूर्य का प्रकाश और दिनो से ज्यादा तेज़ था। अनवर को जो दो दिन होटल मे बद रहकर बिताने पडे थे, वे सुदूर अतीत की एक भूली हुई घटना मालूम हो रहे थे। खिडकी की चौखट पर एक पूरा गौरैया-परिवार खुशी से चहक रहा था और हाथ-मुह धोते

समय तथा कपडे बदलते समय अनवर बराबर यही उम्मीद कर रहा था कि आज रतन से उसकी मुलाकात जरूर होगी। वह अपने दोस्त से कई दिन से नही मिला था और उसे ऐसा लग रहा था कि उससे बिछडे हुए न जाने कितने युग बीत गए है।

अकबरअली ने अखबार अलग रखते हुए बताया कि शहर की हालत बहुत सुधर गई थी और कोई नया दगा-फसाद नही हुआ था। उन्होने उठकर अपनी शेरवानी पहनी और ऊन के व्यापारियो से हिसाब-किताब करने के लिए बाजार जाने की तैयारा करने लगे, क्योकि यह काम दो दिन से टल रहा था। चलने से पहले उन्होने अपने बेटे से कहा, "अगर कोई गडबड न हुई तो हम लोग कल वापस लौट सकते हैं।"

अनवर अकेला रह गया। उसका साथ देने को वहा केवल उसके विचार थे। उसने सडक के पत्थरो पर सहसा भारी बूटो की आवाज सुनी और भागकर छज्जे पर देखने पहुच गया। एक फौजी टुकडी शहर के गश्त पर जा रही थी। आगे-आगे सिख घुडसवार थे, उनके पीछे एक मोटर मे कुछ लाल मुहवाले अग्रेज अफसर थे। इन अग्रेज अफसरो के पास पिस्तौले थी और ऐसा लगता था कि वे किसी भी क्षण इन्हे चला देगे। सबसे पीछे गुरखो की एक टुकडी थी, जिनके सिरो पर एक तरफ को बेहद झुके हुए टोप लगे हुए थे और पेटियो से खुखरिया बधी हुई थी। होटल का नौकर बगलवाले कमरे मे झाडू लगा रहा था। उसने अचानक इस फौजी टुकडी को देखकर, जो अब दूसरी सडक पर मुड रही थी, बडे तिरस्कार के साथ जमीन पर थूका और बोला, "सुअर के बच्चे हमे डराना चाहते है।"

अनवर अपने कमरे में जाकर आरामकुर्सी पर लेट गया और गौरैया-परिवार की हरकते देखने लगा। मा अपने बच्चो को दाना खिला रही थी और उन्हे उडना सिखा रही थी।

किसीने दरवाजा खटखटाया और रतन ने अदर प्रवेश किया। "रतन! मेरे यार"—अनवर मारे खुशी के फूला न समा रहा था। शुरू-शुरू मे तो दोनो कुछ सकोच मे पडे रहे पर शीघ्र ही दोनो जी खोलकर बाते करने लगे और हसने लगे और दिन-भर के लिए योजनाए बनाने लगे। रतन ने अनवर को बताया कि आज बैसाखी का त्योहार है और शहर मे बहुत बडा मेला लगेगा। नये वर्ष का त्योहार

बैसाखी बडी धूम-धाम से मनाया जा रहा था। आसपास के गावो से आए हुए किसानो की भीड सडको पर घूम रही थी। अनवर ने सोचा इस भीड के साथ घूमने-फिरने मे बडा मजा रहेगा। अनवर ने अपने अब्बा से शहर जाने की इजाजत नही ली थी पर उसके अब्बा ने उसे होटल से बाहर निकलने के लिए मना भी तो नही किया था। और फिर वे लोग तो अब्बा के वापस लौटने से बहुत पहले ही घटे-दो घटे मे बाजार घूमकर लौट आएगे। वातावरण मे एक विचित्र उत्तेजना थी, उसके मन मे किसी अज्ञात अनुभव की खोज मे जाने की एक अस्पष्ट-सी भावना थी और उसे सबसे बडा सहारा यह था कि रतन उसके साथ था। अनवर अपने दोस्त के साथ निकल पडा। उसका दिल हमेशा से ज्यादा तेज़ी से धडक रहा था।

सडको पर लम्बे-चौडे डीलडौलवाले काले रग के किसानो की भीड थी। उनके सिर पर बडी-बडी पगडिया, तन पर खद्दर के कपडे तथा पैरो मे नोकदार जूते थे जिनपर गर्द की एक तह जमी हुई थी। अनवर ने सोचा यह उसी बडी सडक की गर्द होगी। दोनो लडके बाजारो मे निरुद्देश्य घूमते रहे, कभी किसी दूकान के आगे रुककर उसमे सजी हुई चीजे देखने लगते और फिर भीड के साथ आगे बढ जाते। उन्हे न दिशा का कोई ध्यान रहा न समय का।

एक सडक के नुक्कड पर अनवर की ही उम्र के एक लडके के चारो ओर एक भीड जमा हो गई थी। वह लडका फटे-पुराने कपडे पहने था और एक दूकान के तख्ते पर खडा होकर टीन का पीपा बजाकर डुग्गी पीट रहा था। अनवर ने सोचा यह तो सचमुच कोई मजेदार बात होगी।

डुग्गी पीटनेवाले लडके ने काफी बडी भीड जमा करने के बाद ऊची आवाज मे कहना शुरू किया, "भाइयो, आज शाम को चार बजे जलियावाला बाग मे लाला हरदयाल की सदारत मे एक आम जलसा होगा। आप सब लोग हजारो की तादाद मे शरीक होकर जलसे को कामयाब बनाइए।" फिर उसने टीन को कई बार लकडी से पीटा और दूकान के पटरे पर से नीचे कूदकर दूसरी जगह डुग्गी पीटने चला गया।

अनवर कभी किसी 'आम जलसे' मे नही गया था और उसे यह जानने की उत्सुकता थी कि आखिर यह 'आम जलसा' कैसा होता है। रतन को ज्यादा आजादी मिली हुई थी इसलिए वह इस तरह की कई मीटिंगें देख चुका था।

उसने अनवर को बताया कि इन मीटिगो मे बहुत मजा आता है और किसी भी हालत मे इनमे जाने से नही चूकना चाहिए।

"तो फिर चलो, इसमे चलेगे," अनवर ने बडे उत्साह से कहा। "उस लडके ने क्या बताया था कि मीटिग कहा होगी ? किस बाग मे ?"

"जलियावाला बाग मे," अमृतसरवासी रतन ने उत्तर दिया।

जब वे बाग मे घुसे तो अनवर को कुछ निराशा हुई। उसने कल्पना की थी कि यह बाग भी दिल्ली के बागो और पार्कों की तरह होगा—हरी-हरी मखमली घास, छायादार वृक्ष, फूलो की क्यारिया और फव्वारे। लेकिन यह बाग तो दूर तक फैला हुआ एक बजर इलाका था, जिसके बीच मे एक सफेद मकबरे के खडहर थे, एक कोने मे तीन-चार पेड थे और उनके पास ही एक बिलकुल अकेला ताड का पेड खडा था जिसकी कमर बुढापे की वजह से झुक गई थी। सारा इलाका चारों ओर के मकानो से बिलकुल घिरा हुआ था, बस उसमे घुसने के लिए एक ही फाटक था। लेकिन इमारतो के बीच मे जहा कही जगह छूटी हुई थी उसमे से होकर इक्का-दुक्का लोग मैदान मे आकर जमा होने लगे थे।

दोनो लडके अप्रैल की तेज धूप से बचाव की कोई जगह ढूढ रहे थे पर कोई जगह दिखाई ही नही दे रही थी। देखते-देखते मैदान भरने लगा। फाटक के पास लकडी का एक मच बनाया गया था जिसपर खडे होकर लोग भाषण देनेवाले थे। रतन भीड के बीच से रास्ता बनाता हुआ मच के जितना पास हो सकता था पहुच गया। उसने कहा, "अगर हम मच के पास नही बैठेगे तो हमे कुछ भी सुनाई नही देगा। सबकी तरह वे भी ज़मीन पर बैठ गए और एक-दूसरे की समीपता का सुख अनुभव करने लगे। शीघ्र ही चारो ओर लोगो की भीड जमा हो गई और उनकी सख्या लगातार बढती ही जा रही थी।

अनवर के अब्बा ने उसे एक घडी दी थी। उसने घडी देखी कि अभी उसे कितनी देर और इतजार करना पडेगा। घडी मे साढे चार बजे थे। रतन ने अनवर को कुहनी से ठेलते हुए कहा, "देखो, देखो, मीटिंग शुरू हो रही है।"

मच पर एक वक्ता के आते ही खामोशी छा गई। लोगो ने बाते करना बद कर दिया। वक्ता ने कहा कि जनता के प्रिय नेता डा० किचलू सभापति का

पद ग्रहण करेगे। उसने कहा, "हां, मै जानता हू कि सरकार ने उनको नजरबद कर रखा है पर वे अभी तक हमारे दिलो मे मौजूद है।" यह कहकर उसने कुर्सी पर डा० किचलू की एक तसवीर रख दी। डा० किचलू बहुत खूबसूरत आदमी थे और उनके एक छोटी-सी काली दाढी थी। चारो ओर से तुमुल करतल-ध्वनि गूज उठी और तालियो की इस तूफानी आवाज को चीरता हुआ एक ज़ोरदार नारा इस तरह गूज उठा जैसे समुद्र मे ज्वार की बडी लहर असख्य छोटी-छोटी लहरो को रौदकर आगे बढ जाती है—'इन्कलाब जिन्दाबाद!' अनवर 'इन्कलाब' लफ्ज का पूरा मतलब भी नही समझता था, वह बस मोटेतौर पर यह जानता था कि जब कोई बुनियादी उथल-पुथल होती है तो उसे इन्कलाब कहते है। पर न जाने क्यो इस नारे से उसके सारे शरीर मे उत्तेजना की चिगारिया प्रज्वलित हो उठी, उसे ऐसा लगा जैसे कोई उसका एक-एक रोगटा नोचे ले रहा हो। उसका चेहरा तमतमा उठा और उसका सर उसी तरह चकराने लगा जैसे एक बार लू लग जाने पर हुआ था। उसने रतन की तरफ देखा और उसे ऐसा लगा कि उसके मित्र की भावनाओ पर भी ऐसा ही प्रभाव हुआ था। उसकी मुट्ठिया भिची हुई थी, वह दात पीस रहा था और उसकी पीली पगडी मे से पसीना बहकर बाहर आ रहा था। वास्तव मे पूरे जन-समुदाय ने उत्तेजित स्वर मे इस नारे को दुहराया, इन्कलाब जिन्दाबाद! इन्कलाब जिन्दाबाद! इन्कलाब जिन्दाबाद! बीस हजार कठो के गगनभेदी स्वर से वायुमडल गूज उठा, और फिर वह चारो ओर की दीवारो से टकराकर प्रतिध्वनित हो उठा। यह स्वर क्रमश ऊचा होता गया और फिर सहसा शात हो गया क्योकि लोग दम लेने को रुक गए थे और फिर एक बार यही क्रम आरम्भ हो गया। इन्कलाब जिंदाबाद! इन्कलाब जिंदाबाद!! केवल इन दो शब्दो के उच्चारण से एक स्फूर्ति पैदा हो जाती थी। अनवर के लिए यह बिलकुल वैसा ही अनुभव था जैसे पानीपत की कव्वाली। अन्तर केवल यह था कि यह बिलकुल ही दूसरे किस्म की कव्वाली थी। और इससे मन मे भावनाओ का जो तूफान उठता था उसमे दरगाहवाली आध्यात्मिक पुट नही बल्कि रण-क्षेत्रवाला उन्माद होता था—बिलकुल उन रात्रिकालीन आक्रमणोवाला उन्माद जिनका वर्णन रतन के बाबा ने किया था।

अन्त मे जब नारेबाजी खत्म हुई तो भाषणो का सिलसिला आरम्भ

हुआ और अनवर के लिए लहर का यह उतार बहुत ही निराशाजनक साबित हुआ। इन भाषणो मे हिन्दू-मुस्लिम एकता की अपील की गई, १० तारीख के गोलीकाड के शहीदो के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई और सरकार से नेताओ को रिहा कर देने तथा रौलट ऐक्ट को रद्द कर देने की प्रार्थना की गई। किसी-ने बहुत ही मातमी आवाज मे एक कविता पढी जिसमे इस बात पर खेद प्रकट किया गया था कि जनता की फरियाद पर ध्यान नही दिया जा रहा था और बीच-बीच मे लोग 'हिन्दू-मुसलमान की जय' का नारा लगा देते थे। परन्तु इन सब मे उस 'इन्कलाब' के बारे मे एक शब्द भी नही था जिसके बारे मे वे अभी कुछ देर पहले गला फाड-फाडकर चिल्ला रहे थे। अनवर को ये सारी बाते बहुत नीरस प्रतीत हुई और उसे लगा कि ये लोग बात को बहुत घुमा-फिराकर कह रहे है। वह परिस्थिति की बारीकियो को पूरी तरह नही समझता था। उसकी समझ मे तो बस इतना ही आया था कि सरकार ने जनता के साथ बुरा सलूक किया था और लोगो मे इस बात पर बडा गम और गुस्सा था। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारो से जो उत्साह पैदा हुआ था वह अब ठडा पडता जा रहा था और जन-समुदाय पर एक शैथिल्य छाता जा रहा था। पार्क के एक सिरे पर कुछ लोगो ने ताश खेलना शुरू कर दिया था, बच्चे इधर-उधर भाग-दौड रहे थे और बीच-बीच मे कही से किसी बच्चे के रोने की आवाज भी आ जाती थी। अनवर घर वापस जाना चाहता था और उसे सहसा जमादार अजीतसिह को आता देखकर बहुत धीरज बधा। जमादार साहब को रतन को वहा देखकर बडा आश्चर्य हुआ।

"अरे रतन, यह तेरा क्या तरीका है ? तू मुझे बगैर बताए घर से चला आया और अकबर साहब के बेटे को भी अपने साथ लेता आया। उसके अब्बा उसके लिए बेहद परेशान हो रहे है। चलो, दोनो अब चलो यहा से।"

अनवर जब जमादार साहब के साथ चलने के लिए उठा तो वह यह सोच-सोचकर डर रहा था कि वह अपने अब्बा को क्या बताएगा कि वह कहा चला गया था। लेकिन इतने मे आकाश पर गडगडाहट सुनाई दी और सब लोग सिर ऊपर उठाकर हवाई जहाज को देखने लगे। एक शिकारी चिडिया की तरह हवाई जहाज उनकी तरफ झपटता चला आ रहा था। वह लगातार नीचा होता जा रहा था और ऐसा लगता था कि वह उनके बीच मे ही गिर पडेगा। मर्द

घबराकर उसे देख रहे थे, औरतें चिल्ला रही थी और बच्चे भय के मारे चीख रहे थे। लेकिन सहसा हवाई जहाज फिर ऊचा उठना शुरू हुआ और थोडी देर मे वह दूर पर केवल एक धब्बे की तरह दिखाई देने लगा। वक्ता ने अपना भाषण फिर शुरू किया। जो लोग घबराहट के मारे उठ खडे हुए थे वे फिर बैठ गए और अनवर और रतन जमादार साहब के पीछे चल दिए। जमादार अजीतसिह अपनी फौजी वर्दी और तमगो का रोब डालता हुआ भीड को चीर-कर आगे बढता रहा पर एक बार फिर उन्हे रुक जाना पडा। किसीने चेतावनी दी और शीघ्र ही इस चेतावनी के शब्द पूरी भीड मे प्रतिध्वनित होने लगे—"वे आ गए, वे आ गए।"

अनवर ने अपनी घडी देखी। साढे पाच बजे थे। फिर उसने फाटक की तरफ नज़र दौडाई और जो कुछ उसने देखा उसे देखकर उसका खून जम गया।

तीस या चालीस अंग्रेज और गुरखा सिपाहियो की एक टुकडी आकर बाग के फाटक के सामने तैनात हो गई थी। उनके सबके पास रायफले थी, कुछ गोरे अफसरो के पास रिवाल्वर भी थे। उनमे वह लालमुहा अफसर भी था जिसे अनवर ने अक्सर मोटर पर फौजी सिपाहियो के साथ गश्त लगाते देखा था।

इसके बाद पलक मारते मे जो घटनाए हुई वे अनवर की समझ से बाहर थी पर वे अनवर के स्मृतिपट पर वर्षो तक अकित रही। अनवर मूर्तिवत् एक जगह पर खडा था और सारी घटनाए एक स्वप्न की तरह उसकी आखो के सामने से गुज़र रही थी। उसे इतना गहरा आघात पहुचा था कि उसे डर भी नही लग रहा था; वह यह सोच भी नही पा रहा था कि उसके चारो ओर जो भयानक घटनाए हो रही थी उनका महत्त्व क्या है। लालमुहे अफसर ने गोरखो से चिल्लाकर कुछ कहा और उन्होने अपनी बंदूके तान ली और भीड की तरफ निशाना लगाकर खडे हो गए। इतने मे उसी अफसर ने कर्कश स्वर मे आज्ञा दी "फायर!" और गोरखो ने फौरन आज्ञा का पालन किया। परन्तु अनवर ने देखा कि गोली चलाने से पहले उन्होने अपनी बंदूको का मुह कुछ

ऊपर को उठा लिया था। सहसा गोलियो की मनहूस खनक से निस्तब्धता कांच की दीवार की तरह भग हो गई। पेडो पर से कबूतरो और कौओ का एक झुड शोर करता हुआ उड गया। चारो ओर भगदड मच गई। लोग उठ-उठकर भागने लगे। औरतो ने अपने बच्चो को इस तरह सीने से लगा लिया जैसे बाज़ के झपटने पर मुर्गी अपने बच्चो को परो के नीचे छुपा लेती है। पर कोई गोली से घायल नही हुआ। बल्कि भीड मे से किसीने चिल्लाकर कहा भी, "डरो नही। वे खाली कारतूसे चला रहे हैं!" कुछ लोग भागते-भागते रुक गए और कुछ पलटकर सिपाहियो का सामना करने के लिए खडे हो गए। वह लालमुहा अग्रेज गुस्से से पागल हो रहा था। वह अपना रिवाल्वर हिला-हिलाकर गोरखो से टूटी-फूटी हिंदुस्तानी मे कह रहा था, "टुम शाला, शुअर का बच्चा लोग इटना ऊचा मे गोली क्यो चलाता है। नीचा मे गोली चलाओ नई टो हम टुमको गोली मार देगा।" सारे गोरे अफसरो ने अपने-अपने रिवाल्वर निकाल लिए और गोरखो की तरफ निशाना लगाकर खडे हो गए। लालमुहे अफसर ने आज्ञा दी "फायर!" और गोरखो ने गोली चला दी। इस बार उनकी रायफलो की नालिया सीधी भीड की तरफ थी। "लेट जाओ!" जमादार अजीतसिंह ने भी बिलकुल फौजी ढग से आज्ञा दी और दोनो लडके तुरत जमीन पर लेट गए। जरा-सी भी देर हो जाती तो वे बच न सकते, क्योकि वे जमीन पर लेटे ही थे कि उनके ऊपर से गोलिया सनसनाती हुई गुजर गईं।

अनवर जमीन पर औधा लेटा-लेटा यह खूनी नाटक देख रहा था। उसके लिए यह अत्यत भयावह अनुभव था। रायफले कुत्तो की तरह भूक रही थी, गोलियो की बौछार एक क्षण के लिए भी नही रुकी थी, मर्द और औरते और बच्चे चारो ओर गोलियो का शिकार होकर गिर रहे थे, हर तरफ लोगो की चीख-पुकार और कराह सुनाई दे रही थी। बाग से बाहर निकलने के सकरे रास्तो की तरफ भागते हुए लोगो को अपने जूतो और पगडियो का भी होश नही रहा था, कुछ लोगो की तो धोतिया तक पीछे रह गई थी। जो लोग जमीन पर लेटे हुए थे उन्हे अपने पैरो तले रौदते हुए भागनेवाले आगे बढे जा रहे थे। एक बार तो अनवर की टाग पर भी किसीका भारी-सा बूट पडा और उसकी हड्डी टूटते-टूटते बची। जो लोग बाहर निकलने के रास्तो तक पहुच भी गए उनकी भी खैरियत नही थी। उस लालमुहे अफसर ने रायफलो के मुह उनकी

तरफ करवा दिए और बाहर निकलने मे पहले ही उन्हे गोलियो से भून दिया गया।

उनके चारो ओर मरे हुए, दम तोडते हुए और घायल लोग पडे थे और गोलियो की तडतडाहट के बीच उनका करुण चीत्कार और 'या अल्लाह !' और 'हे भगवान !' और 'अरे मेरी मा !' की आवाजे सुनाई दे जाती थी। उनके पास ही कोई आदमी बहुत जोर से कराह रहा था। अनवर ने ज़रा-सा सिर उठाकर देखा तो वह होटल का नौकर नदू निकला। उसे देखने मे साफ पता चलता था कि गोली उसके पेट मे लगी थी, क्योकि जब भी दर्द की लहर उठती थी वह अपना पेट पकड लेता था। एक बार उसने बडी कोशिश करके अपना सिर जरा-सा घुमाया और दोनो हाथो से पेट पकडकर जोर से थूका—खून !

नदू के मुह से गाढा-गाढा कत्थई रग का खून निकलते देखकर अनवर को मतली होने लगी। नदू निढाल होकर फिर पहले की तरह लेट गया था और खून की एक पतली-सी धार उसके मुह के कोने से धीरे-धीरे बह रही थी। यो तो हर तरफ लाशे और घायल शरीर पडे हुए थे, परतु यह तो एक ऐसा आदमी था जिसे अनवर जानता था, जिसके साथ वह बाते कर चुका था और हस चुका था। नदू एक नौजवान आदमी था और अभी कल ही तो उसने अनवर को बताया था कि हाल ही मे उसकी शादी हुई है। एक क्षण के लिए सारे जन-समुदाय की व्यथा नदू की उस पीडा मे सिमट आई।

अनवर के लिए अपने-आपको और ज्यादा देर वश मे रखना असभव हो गया था। अनजाने ही वह कुहनी के बल कुछ ऊपर की ओर उठा और थोडी ही दूर पर तडपते हुए नदू की तरफ सकेत करके ऊचे स्वर मे बोला, "जमादार साहब, जमादार साहब, इसके लिए हम कुछ नही कर सकते क्या ?"

"सिर नीचे करो," जमादार अजीतसिह ने कडककर हुक्म दिया और अनवर ने खट से अपना सिर नीचे कर लिया। वह बाल-बाल बच गया क्योंकि उसी वक्त एक गोली सनसनाती हुई उसके पास से निकल गई। यह आभास होते ही कि वह मौत के मुह से किस तरह बाल-बाल बच गया था अनवर के सारे शरीर से ठंडे पसीने छूटने लगे।

अजीतसिह नदू को देख रहा था। "ज्यादा कुछ तो हम कर नही सकते

लेकिन कम से कम इसे पेट के बल औधा तो लिटा ही देना चाहिए ताकि खून बह जाए और यह शाति के साथ मर सके।" यह कहकर अजीतसिंह धीरे-धीरे रेगता हुआ नद्दू के पास पहुच गया। अनवर और रतन दम साधे बडी चिंता के साथ उसे देखते रहे। नन्दू खून का बहाव रोकने की कोशिश मे अपना पेट दोनो हाथो से दबाए था। जमादार अजीतसिंह ने धीरे से उसे पलट दिया और शीघ्र ही उसकी पीडा कम हो गई। अनवर अपना मुह जमीन से सटाकर चुपचाप लेट गया। परन्तु उनके ऊपर गोलिया अब भी अपना भयावह मृत्यु-संगीत सुना रही थी। जब अजीतसिंह फिर रेगकर अपनी जगह पर वापस लौटा तो उसके चेहरे पर क्रोध का एक नया भाव था, उसकी आखों मे खून उतर आया था।

"क्या सरकार पागल हो गई है ? क्या सरकार पागल हो गई है ?" उसने कई बार दुहराया। और फिर इससे पहले कि रतन और अनवर उसे रोक पाते अजीतसिह उठकर खडा हो गया और सीधा उन सिपाहियो की ओर बढा जिनकी बन्दूके मौत उगल रही थी।

"ओह, जरनैल साहब," उसने किसी भी चीज़ की परवाह न करते हुए ज़ोर से कहा। हर तरफ चलती हुई गोलियो की मनहूस सनसनाहट को चीरता हुआ उसका कडकदार स्वर गूज उठा।

चारो ओर सनसनाती हुई गोलियो के बीच उसने एक बार फिर चिल्लाकर कहा "ओह, जरनैल साहब, मैं लडाई मे आपकी तरफ से लड चुका हू। मैंने एक अंग्रेज़ अफसर की जान भी बचाई थी। अगर मेरी बात पर विश्वास नही है तो इन तमगो को देख लो। लेकिन यह तो लडाई नही। आप निहत्थे लोगों पर गोली नही चला सकते। अगर इसी तरह आप गोली चलाते रहे तब तो आप बीस हज़ार लोगो को भूनकर रख देगे। हमने तो कभी निहत्थे जर्मनों पर भी गोली नही चलाई।"

जमादार अजीतसिंह को इस तरह आगे बढता देखकर कुछ डर भी लगता था पर साथ ही गौरव का अनुभव भी होता था। अनवर मन्त्रमुग्ध होकर उसे देख रहा था। वह यह भी भूल चुका था कि उसकी जान खतरे मे है। सारी भीड स्तभित होकर उसी दिशा मे देख रही थी और एक क्षण के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो उस बूढे सिपाही ने बन्दूकधारी सिपाहियो पर जादू कर दिया हो, एक क्षण के लिए उनकी उगलियां बन्दूक की लबलबी पर जमी रह गईं।

जमादार अजीतसिंह उस लालमुहे अफसर से कुछ ही गज की दूरी पर रह गया था। वह लालमुहा अफसर हाथ मे रिवाल्वर लिए निशाना साधे चबूतरे पर खडा था। "बोलो साहब, बोलो! अपने सिपाहियो को गोली चलाना बन्द करने का हुक्म दो।" अजीतसिह की आवाज़ मे अब भी चुनौती थी पर उसकी कडकदार आवाज़ कुछ लडखडाने लगी थी। "जरनैल साहब, हम सब लोग सरकार के वफादार है। हममे से कोई भी बागी या गद्दार नही है। आप हम लोगो पर क्यो इस तरह गोली चला रहे है? सरकार, हमारे ऊपर रहम करो। आप हमारे माई-बाप है।..." उसकी आवाज़ मे चुनौती की जो कडक थी वह गायब होकर खुशामद के लडखडाते हुए स्वर मे बदल गई। यह कह चुकने के बाद अजीतसिह का तीस बरस की आदत से सधा हुआ हाथ यन्त्रवत् ऊपर उठा और उसने एडिया खडकाकर उस गोरे अफसर को फौजी सलाम झाडा।

उसी क्षण एक गोली दगने की आवाज़ गूज उठी और जमादार अजीतसिंह का शरीर सहसा निश्चल हो गया। उसका हाथ अभी तक माथे से लगा हुआ था मानो वह चिरकाल तक यो ही सलाम किए खडा रहेगा।

वह इस तरह खडा था मानो अब आगे कदम बढानेवाला हो, पर सहसा वह वही ज़मीन पर ढेर हो गया। गोली चलना बन्द हो गई। लालमुहे अफसर ने अपने सिपाहियो को कुछ हुक्म दिया और सारे अफसर और सिपाही कदम मिलाए हुए फाटक से बाहर चले गए। जलियावाला बाग पर मौत का सा सन्नाटा छा गया, जो गोलियो की आवाज से भी ज्यादा भयावह था। अनवर और रतन पेट के बल रेगते हुए जमादार अजीतसिह के पास पहुच गए। गोली एक तमगे को चीरती हुई पार निकल गई थी। अजीतसिह मर चुका था।

अनवर से जमादार अजीतसिह के चेहरे की तरफ देखा न गया। उसके चारो ओर ज़मीन पर लाशे और घायलो के शरीर इस तरह पडे थे जैसे गेहू की फसल काट दी गई हो। एक बच्चा अपनी मा को जगाने की कोशिश कर रहा था, पर मा चिरनिद्रा में सो रही थी। अनवर की ही उम्र का एक और लडका निष्प्राण पडा था। हर तरफ खून ही खून दिखाई देता था। अनवर का सिर चकराने लगा। उसे मतली हो रही थी। लाख चाहने पर भी वह उलटी न कर सका। उसने अपना सिर ज़मीन पर टिका दिया और उसे ऐसा लगा कि आकाश

घूम रहा है, सितारे नाच रहे है, मृत्यु का ताडव नृत्य कर रहे है। और खजूर का वह टेढा पेड भी तो नाच रहा था। लेकिन बेहोश होने से पहले अनवर ने रतन के चेहरे की एक झलक देखी। रतन के चेहरे पर शोक या विषाद नही था बल्कि एक निरीहता थी। वह सिसकियो को रोकने के लिए अपने होठ काट रहा था और उसकी आंखो मे प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी।



सारी दुनिया से ऊपर

समय हर घाव को अच्छा कर देता है और बचपन मे तो शरीर और मन के घाव बहुत जल्दी भर जाते है। लेकिन अनवर के लिए अमृतसर की उस बीभत्स घटना को भूल जाना आसान नही था। उस पूरे कत्ले-आम से भी बढकर जमादार अजीतसिह और नदू की मौत से उसके दिल पर बहुत गहरा घाव लगा था। उस घटना के आठ महीने बाद भी उन दोनो की सूरते अनवर को सपने मे दिखाई देती थी। जब भी वह अपने दोस्त रतन के बारे मे सोचता उसे उसकी आखो मे वही प्रतिशोध की ज्वाला धधकती हुई दिखाई देती। और वह उस अविस्मरणीय अपमानजनक घटना को भी नही भूला था जिसकी चर्चा उसने आज तक किसीसे नही की थी। अमृतसर से चलने से एक दिन पहले जबकि उसके अब्बा बाजार गए हुए थे, अनवर चुपके से होटल से निकलकर शहर के उस इलाके मे गया था जहा रतन अपनी विधवा मा के साथ रहता था। उस सकरी गली के नुक्कड पर कुछ गोरे सिपाही बदूको पर सगीने लगाए खडे थे। एक बार तो अनवर के जी मे आया कि वह उलटे पैर वापस आ जाए। पर वह उस दिन के कत्ले-आम के बाद से अपने दोस्त से मिला नही था और दूसरे दिन वह दिल्ली वापस जा रहा था। कौन जाने फिर कब मिलना हो। अनवर डरता-डरता सडक के किनारे-किनारे सिपाहियो की तरफ बढा। लेकिन उसने गली मे कदम रखा ही था कि एक सिपाही ने उसकी गरदन पकडकर नीचे ढकेल दिया और उसे गली के ऊबड़-खाबड और गदे फर्श पर रेंगकर चलने पर मजबूर किया—बिलकुल चूहे की तरह रेंगकर। बीच मे एक बार वह अपनी दुखती हुई कमर सीधी करने के लिए रुककर ज़रा-सा ऊपर को उठा ही था कि किसीने भारी फौजी बूट से उसे एक ठोकर मारी। गुस्से और लाचारी से अनवर की आखो मे आसू छलक आए। अनवर को अपनी ज़िदगी मे इतना बड़ा अपमान नही सहना पडा था, इतनी लाचारी भी उसने कभी महसूस नही

की थी। वह इतना बौखला गया कि उसने अपने अब्बा से भी इस घटना का ज़िक्र नही किया।

समय हर घाव को भर देता है और बचपन मे असख्य ऐसी घटनाएं होती रहती है जो अतीत की दु खद स्मृतियो को भुलाए रखने मे सहायता देती हैं। अनवर को दिन-भर मे फुरसत ही कहा मिलती थी। सुबह उठते ही मौलवी साहब से कुरान पढता था और उसके बाद जल्दी से उलटा-सीधा कुछ खा-पीकर स्कूल भागता था। गर्मिया बहुत दिन हुए बीत चुकी थी और फिर बरसात आ गई थी और अब तो बरसात भी खत्म होकर सर्दिया शुरू हो चुकी थी। अनवर को सर्दियो का मौसम सबसे ज्यादा अच्छा लगता था। यह लिहाफ का मौसम होता था जो रात के समय अपनी गर्म गोद मे छिपा लेता था, यह हिमालय पहाड की चोटी पर जमी हुई बर्फ की तरह, जिसके बारे मे उसने अपनी भूगोल की किताब मे पढा था, गरम-गरम खिचड़ी के पहाड पर घी का डला रखकर खाने का मौसम था, यह रसदार गन्ने चूसने का मौसम था और यही बेर खाने का मौसम भी था जो खाने के काम भी आते थे और उनकी गुठलिया स्कूल की खाने की छुट्टी के समय खेलने के काम भी आती थी।

अपनी उम्र के बच्चो के बीच अनवर को स्कूल की जिन्दगी मे बहुत मजा आता था, हालाकि स्वभावतः शर्मीला होने की वजह से उसके दोस्त बहुत नही थे। आजकल उसे अपने अब्बा के कमरे मे बैठकर वहा की बातचीत सुनने का भी वक्त नही मिलता था। उसे यह नही मालूम था कि सरकार ने उस 'लाल-मुहे' अफसर को सज़ा देने से इंकार कर दिया था और देश मे बड़ी राजनीतिक उथल-पुथल थी। स्कूल में मास्टर साहब ने लडको को यह बताया था कि अग्रेज़ सरकार बहुत न्यायप्रिय और उदार सरकार है और बच्चों को स्कूल मे 'ब्रिटिश राज के वरदानो' की एक लम्बी सूची याद कराई जाती थी—रेलें, सडके, स्कूल, डाक-तार इत्यादि। अनवर के दिमाग मे जलियावाला बाग का दृश्य इन सारी चीज़ो पर एक प्रश्नवाचक चिह्न की छाया डालता रहता था। न जाने क्यो उसे ऐसा लगता था कि जो सज्जन हर समय बेत फटकारते रहते थे और अक्सर लड़को को सज़ा देने के लिए उसे इस्तेमाल भी करते थे, वे न उसकी

बात समझेंगे न उसके साथ सहानुभूति करेंगे।

अनवर के चारो ओर की दुनिया मे और भी बहुत-से परिवर्तन हो रहे थे। ऐसा लगता था कि उसके और उसकी बहिन के बीच अतर बढता जा रहा है, हालाकि वे अब भी एक-दूसरे को बेहद प्यार करते थे। वे दोनो स्कूल जाने लगे थे, लेकिन अब अजुम को मौलवी साहब से कुरान पढने की इजाज़त नही थी। फूफी-अम्मा ने उसकी कुरान की पढाई छुडाने की वजह यह बताई थी कि "अजुम अब ग्यारह बरस की होने को आई, अब उसे परदा करना चाहिए।" इसका मतलब यह था कि अब अजुम कभी-कभार के अलावा घर से बाहर नही निकल सकती थी और सो भी फूफी-अम्मा की तरह सिर से पैर तक बुर्का ओढकर। बुर्के के खयाल से ही अनवर का दम घुटने लगता था और उसकी समझ मे नही आता था कि एक पूरी छोलदारी ओढकर औरते आखिर सास कैसे ले पाती होगी।

एक दिन जब गुलाबो बैठी अजुम का बुर्का सिल रही थी और अजुम अपने पहले बुर्के की खुशी मे इतरा रही थी, अनवर ने अपनी फूफी से पूछा, "फूफी-अम्मा, जब औरते बाहर निकलती हैं तो उन्हे बुर्का क्यों पहनना पडता है?"

पहले तो फूफी-अम्मा अनवर के इस दो टूक सवाल को सुनकर बहुत चकराईं, फिर उन्होने किसी तरह यह जवाब दिया, "बेटा, औरतो को परदा इसलिए करना पडता है कि हमारे इस्लाम मे इसका हुक्म दिया गया है।"

अनवर को भला इस उत्तर से कहा सतोष होता। उसने दूसरा सवाल पूछा, "लेकिन हमारे मजहब मे सिर्फ औरतो के लिए ही क्यो परदा बताया गया है, मर्दों के लिए क्यों नही?"

"इसलिए...इसलिए कि," फूफी-अम्मा ने अटक-अटककर जवाब दिया, "सड़क पर चलनेवाले लोग बहुत बुरे होते है और वे औरतों को बुरी नीयत से घूरते हैं।"

'बुरी नीयत!' यह अनवर के लिए एक नई पहेली थी, यह ज़िंदगी का कोई ऐसा राज़ था जिसके बारे मे वह कुछ भी नही जानता था। उसने चावडी बाज़ार मे मर्दों को उन 'दूसरी औरतो' को घूरते देखा था। क्या वे बुरी नीयत से उन्हें घूरते थे? उनकी बुरी नीयत क्या होती थी? शायद किसी औरत के

गहने छीन लेने को बुरी नीयत कहते हो !

उसने बडी मासूमियत से पूछा, "फूफी-अम्मा, अगर आप बगैर बुर्का ओढे बाहर निकले तो क्या लोग आपको भी बुरी नीयत से देखेगे ?" और वह समझ न सका कि उसका यह सवाल सुनते ही फूफी-अम्मा के झुर्रीदार चेहरे पर लाली क्यो दौड गई और उनकी आवाज रुंध क्यो गई।

लेकिन अजुम शायद परदे मे रहने के खयाल से खुश थी। अपने बुर्के को देखते ही वह नाच उठती थी और यह महसूस करने लगती थी कि वह अब बडी हो गई है और उसका भी कुछ महत्त्व हो गया है। यह बात अनवर की समझ के बाहर थी और उसे ऐसा लगता था कि शायद अजुम फूफी-अम्मा को दिखाने के लिए ही यह सब करती है। लेकिन अंजुम मे एक दूसरा परिवर्तन भी आ रहा था।

वह अपना बहुत काफी समय फूफी-अम्मा और गुलाबो से खाना पकाना और सीना-पिरोना सीखने मे बिताने लगी थी। और अनवर के लिए सबसे बडी पहेली तो यह थी कि अजुम अब पहले की तरह अपने भाई से लडती नही थी बल्कि बहुत शात रहती थी और उसमे एकसाथ बुजुर्गी आ गई थी जो उसकी उम्र की लडकी को शोभा नही देती थी।

स्कूल मे अनवर का एक दोस्त था—गोपाल। गोपाल एक ठेकेदार का बेटा था। उसके बाप ने लडाई के जमाने में बहुत पैसा बनाया था और अजमेरी गेट के बाहर बहुत-सी बजर ज़मीन खरीद ली थी। सुना जाता था कि वहा लाट साहब के लिए बहुत बडी बस्ती बसाई जानेवाली थी। अनवर को गोपाल से ईर्ष्या होती थी। वह अग्रेज़ी ढग के कपडे पहनता था, साहब लोगो की तरह बाल बढाता था, उसके पास एक फाउटेन पैन और एक सुनहरी घडी थी। लेकिन हर चीज से बढकर अनवर को गोपाल की साइकल से ईर्ष्या होती थी—वह काली चमकदार साइकल, चादी की तरह चमकता हुआ उसका हैडिल का डडा और मस्त धुन में टिन-टिन करती हुई उसकी घटी। गोपाल रोज इसी साइकल पर चढकर स्कूल जाता था और शाम को जब स्कूल की छुट्टी होती थी तो न जाने कितने लड़के साइकल के कैरियर पर बैठने के लिए गोपाल की खुशामद

करते थे। अनवर अपनी ओर से कभी भी कैरियर पर बैठने के लिए गोपाल से न कहता लेकिन एक दिन गोपाल ने, जो पढाई मे हमेशा पीछे रहता था, घर पर करने के लिए दिए गए कुछ सवाल हल करने मे अनवर की मदद ली और इसके बदले मे उसे साइकल पर बैठकर घर चलने का निमन्त्रण दिया।

"पहले कहा चले ?" गोपाल ने घटी की धुन पर पैडिल मारते हुए पूछा। अनवर अपना पूरा ज़ोर लगाकर कैरियर से चिपका हुआ था। ऐसा लगता था कि वह किसी समय भी गिर पडेगा। साइकल की घटी लगातार बज रही थी।

"चलो, स्टेशन चले," अनवर ने सुझाव रखा। उसे याद था कि अमृतसर जाते हुए उसने स्टेशन पर कैसी-कैसी अनोखी और शानदार चीजें देखी थी।

स्टेशन के फाटक पर बेहद भीड थी इसलिए उन्हे साइकल से उतर जाना पडा। दोनो सैर-सपाटे के लिए निकले थे, इसलिए साइकल मे ताला लगाकर हिफाज़त से रख देने के बाद गोपाल ने दो प्लेटफार्म टिकट खरीदे और भीड के रेले के साथ वे भी स्टेशन के अदर पहुच गए। सब लोग तिलक नामक किसी व्यक्ति के बारे मे बाते कर रहे थे जो बम्बई से अमृतसर जाते हुए दिल्ली से गुज़रनेवाला था। गोपाल को शरबतवाले की दूकान पर रखी हुई हरी, लाल, पीली बोतलो मे ज्यादा दिलचस्पी थी, लेकिन अनवर तिलक नामक इस व्यक्ति के बारे मे जानना चाहता था। अमृतसर का नाम सुनकर उसका कौतूहल और बढ गया। उसने एक शरीफ बूढे से जाकर तिलक के बारे मे पूछा। बूढे ने इस जिज्ञासु बालक के प्रश्न का उत्तर देने मे कोई सकोच नही किया। उसने अनवर को बताया कि तिलक भारत के बहुत बडे राष्ट्रीय नेता हैं और अपने देशवासियो के अधिकारो के लिए लडने के कारण उन्होने कई वर्ष जेल मे बिताए थे। वे वैसे तो मराठा थे पर उन्होने राष्ट्र की जो सेवा की थी उसके कारण सारे देश के लोगो के दिलो पर उनका सिक्का जम गया था। अब वे काग्रेस के अधिवेशन मे भाग लेने अमृतसर जा रहे थे और सब लोग उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने के लिए वहा जमा हुए थे।

इतने मे गाडी आ गई। पूरे प्लेटफार्म पर और गाडी के चारो ओर लोगो की ऐसी भीड थी कि कही तिल रखने की जगह न थी। हर आदमी इस महान नेता के दर्शन के लिए बेचैन था। हज़ारों लोग स्टेशन के बाहरवाले बरामदे में जमा थे। रेलवे के अधिकारी भीड़ को बाहर ही रखने की कोशिश मे सिर्फ

उन्ही लोगो को अंदर जाने देते थे जिनके पास प्लेटफार्म टिकट होता था। लेकिन आखिरकार लाचार होकर उन्होने फाटक खोल दिए और लोग इस तरह अदर घुस पडे जैसे नदी का बाध टूट गया हो। इस धक्का-मुक्की मे एक फलवाले का ठेला उलट गया, न जाने कितनो के पैर कुचले गए, अनवर की तुर्की टोपी गुम हो गई और भीड के धक्को से वे दोनो एक दीवार से जा लगे। भीड़ नारे लगा रही थी, "लोकमान्य तिलक की जय!" "महात्मा गाधी की जय!" "हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई!"

स्टेशन से बाहर निकलते हुए अनवर ने कहा, "कैसे कमाल की बात है कि इतने बहुत-से लोग यहा तिलक का स्वागत करने को जमा हुए हैं, जो यहा से बहुत दूर बम्बई के रहनेवाले है। सचमुच कोई बहुत बडे आदमी होगे।"

"हा, कोई काग्रेसी है।" गोपाल ने कहा। अनवर की समझ मे न आया कि गोपाल ने ये शब्द इतने तिरस्कार से क्यो कहे थे। "मेरे पिताजी इन लोगो को पसद नही करते। वे कहते है कि ये लोग सरकार का तख्ता उलटना चाहते हैं। और अगर सरकार ही न होगी तो फिर मेरे पिताजी को ये ठेके कौन देगा? आओ चले, हमे इस तरह के लोगो से कोई सरोकार नही रखना चाहिए।"

लेकिन अनवर यह महसूस करता था कि उसे इस तरह के लोगो से बहुत सरोकार रखना होगा। वह न जाने कौन-सी शक्ति थी जो बरबस उसे इन लोगो की ओर आकर्षित करती थी। लेकिन वह गोपाल के साथ बहस करके अपनी इस नई दोस्ती को बिगाड़ना नही चाहता था।

जब अनवर घर पहुचा तो उसे रतन का खत मिला। उसने बडी उत्सुकता से खत खोलकर उसे कई बार पढा। रतन के सभी खतो की तरह यह खत भी बहुत छोटा था और उसी जानी-पहचानी खुली-खुली लिखाई मे लिखा हुआ था जिसकी वजह से पेज पर छः-सात लाइनो से ज्यादा नही आती थी। रतन भी अनवर की तरह ही स्कूल जाता था और अपना सारा वक्त पढाई मे लगाता था। उसने वज़ीफा पाने की ठान ली थी क्योकि इसके बिना उसकी मा उसे हाई स्कूल मे पढने नही भेज सकती थी। रतन ने लिखा था, "कई महीने तक स्कूल के सब लड़को को ज़बर्दस्ती पैदल चलाकर छावनी ले जाया जाता था और वहा हमसे

अग्रेजो के झण्डे को सलामी दिलवाई जाती थी। हम लोगो के साथ कुछ टामी भी रहते थे। अगर कोई लडका ढील-ढाल करता था तो उनमे से कोई टामी उसे ठोकर से मारता था। अब यह सिलसिला बद हो गया है। लेकिन यकीन जानो मैं इसे भूलूगा नही—और न ही मै अपने पिता की हत्या को भूला हू।" पत्र के नीचे लिखा था—"तुम्हारा दोस्त रतन", और उसके बाद फिर लिखा था—"काग्रेस का सालाना अधिवेशन यहा होने जा रहा है। तिलक, गाधीजी, मुहम्मदअली और शौकतअली सभी लोग आ रहे हैं। ये नेता जितने दिन यहा रहेगे उनकी सेवा करने के लिए मैं भी स्वयसेवको मे भरती हो गया हू। मैं बहुत खुश हू कि मुझे उनको इतने नजदीक से देखने का मौका मिलेगा। अपने अगले खत मे मै तुम्हे इसके बारे मे और भी बहुत-सी बाते लिखूगा।"

अनवर सोच रहा था कि रतन ज्यादा सजीदा आदमी है और बडी-बडी घटनाओ मे हिस्सा ले रहा है जबकि मै बच्चो की तरह गोपाल की चमकदार साइकल देखकर मन ही मन ललचाता रहता हू। पर वह ज्यादा देर अपने इन विचारो मे डूबा न रह सका। उसके अब्बा ने, जो फूफी-अम्मा से बाते कर रहे थे, अनवर को बुलाकर बताया कि उसके ताया-अब्बा अमजदअली—अकबर-अली के बडे भाई—कुछ दिन के लिए दिल्ली आ रहे है। अनवर को यह जानकर खास तौर पर खुशी हुई कि वे अपने साथ अपने बेटे रऊफ को भी ला रहे हैं। अनवर जानता था कि उसके ताया-अब्बा बडे रोबदाबवाले आदमी थे, जिनसे सबकी रूह फना होती थी। वे बच्चो को पास नही फटकने देते थे और नौकरो को हर दम डाटते-फटकारते रहते थे। वे गुडगाव जिले मे तहसीलदार थे और बरसो से सरकारी नौकरी करते-करते उनमे एक अकड आ गई थी। लेकिन अनवर रऊफ से कभी नही मिला था। रऊफ अनवर से कुछ ही साल बडा था। "भाई साहब रऊफ को दिल्ली की सैर कराने ला रहे है," अकबरअली ने कहा। लेकिन अनवर को असली खुशी तो उनकी इस बात से हुई कि "तुम दोनो सब जगहे एकसाथ देख आना। भाई साहब अपनी मोटर मे आएगे इसलिए घूमने-फिरने मे कोई दिक्कत नही होगी।"

ऊची-सी मोटर खडखड़ की आवाज़ करती भोपू बजाती हुई दिल्ली दरवाज़े

से शहर के बाहर निकली। दोनों लडके सामनेवाली सीट पर ड्राइवर के पास बैठे थे। अमजदअली और अकबरअली पीछे बैठे बातें कर रहे थे। बीच-बीच मे उनकी बातचीत का कुछ हिस्सा अनवर के कानो मे भी पड जाता था। उसके ताया-अब्बा कह रहे थे, "ये बागी और इतशारपसद लोग—अमृतसर मे जनरल डायर ने इन लोगो के साथ जो सलूक किया वह बिलकुल ठीक था। ये लोग इसी लायक हैं। अगर मेरी तहसील मे इस किस्म का कोई आदमी मेरे हाथ लग गया तो मै उसे मजा चखा दूगा।" अनवर की समझ मे नही आ रहा था कि आखिर 'इतशारपसद' (अराजकतावादी) कौन होते हैं। वह सोच रहा था कि क्या जमादार अजीतसिंह और नदू और वे सारे लोग जो गोली से मारे गए थे 'इतशारपसद' थे ? लेकिन शीघ्र ही उसका ध्यान सडक के बाईं ओर पत्थरो की बनी हुई एक इमारत के शानदार खंडहरो की ओर आकर्षित हुआ। यह पुराना किला था। इसके चारो ओर एक ऊची-सी दीवार और खाई थी।

अकबरअली को दिल्ली के इतिहास और उसके प्राचीन स्मारको के बारे मे बहुत जानकारी थी और जब भी उन्हे मौका मिलता था वे अपने बेटे को इन चीजो के बारे मे बताते थे। रऊफ दिल्ली पहली बार आया था इसलिए उसे उसके इतिहास के बारे मे बहुत कम जानकारी थी। अपने बडे भाई पर अपनी जानकारी का रोब झाडकर अनवर बहुत खुश हो रहा था। उसने रऊफ को बताया कि दिल्ली हजारो बरसो से हिंदुस्तान की राजधानी रही है। कितने ही शाही खानदान यहा हुकूमत कर चुके है, सैकडो बादशाह यहा के तख्त पर बैठ चुके हैं। इसका नाम हमेशा से दिल्ली नही था। सबसे पहले इसका नाम था इद्रप्रस्थ—यानी इद्र का शहर। जब मुगल बादशाह शाहजहा, जिसने आगरा का ताजमहल बनवाया था, अपनी राजधानी आगरा से यहा लाया तो उसने इसका नाम शाहजहानाबाद रख दिया। सात बार दिल्ली उजडी और हर बार पुराने खडहरो से एक नया शहर बसाया गया। इसीलिए हर तरफ इन पुरानी दिल्लियो के खडहर आज भी दिखाई देते है—महल, मकबरे, वेधशालाए और सराये। अनवर ने यह भी बताया कि सडक के दाहिनी तरफ दूर तक जो खाली जगह पडी है वहा कुछ दिन मे एक नई दिल्ली बसाई जाएगी—आठवी दिल्ली—अग्रेजो की दिल्ली। अनवर जानता था कि इसमे से कुछ जमीन गोपाल के पिताजी की थी। वे वहा उन अग्रेज अफसरो के लिए बगले बनवानेवाले थे, जो बडे लाट

साहब का शहर बन जाने के बाद वहा आकर रहने लगेगे।

हुमायू के मकबरे, हजरत निजामुद्दीन की दरगाह और सूफी शायर व फलसफी अमीर खुसरो के छोटे-से मजार से होते हुए वे महरौली गाव पहुचे और वहा पहुचकर मोटर रुक गई। और अनवर ने रऊफ को आसमान को छूती हुई शानदार कुतुबमीनार इस गर्व के साथ दिखाई जैसे वही उसका मालिक हो। दोनो लडके नजरें उठाए सिर पीछे झुकाकर कुतुबमीनार की चोटी देखने की कोशिश कर रहे थे। उन्हे ऐसा लग रहा था कि कुतुबमीनार उनके ऊपर झुकती आ रही है—वह झुकती चली आ रही थी, यहा तक कि उन्हे ऐसा लगा कि वह किसी भी क्षण उनके सिर पर आ गिरेगी। रऊफ डर के मारे सफेद पड गया, लेकिन अनवर ने एक तजुर्बेकार आदमी की तरह उसे समझाया कि वह वास्तव मे गिर नही रही है बल्कि आसमान पर चलते हुए बादलो की वजह से ही ऐसा लगता है।

लडके कुतुबमीनार के ऊपर चढने की जिद करने लगे और सब लोगों ने अधेरी, बदबूदार, चक्करदार सीढियो पर चढना शुरू किया। ऊपर जैसे-जैसे मीनार का घेरा कम होता गया वैसे-वैसे सीढिया भी छोटी होती गईं; अधेरे मे चमगादड अपने पख फडफडाते हुए सामने से गुजर जाते थे। रऊफ का उत्साह ठडा पडने लगा था और वह वापस जाने की बात कर रहा था। लेकिन अनवर जानता था कि ऊपर पहुचकर कितना मजा आएगा इसलिए वह अपने भाई को समझा रहा था कि मजिल के इतने पास पहुचकर उसे हिम्मत नही हारनी चाहिए।

सारी दुनिया से ऊपर—मीनार की चोटी पर पहुचकर चारो ओर नजर दौड़ाने पर कम से कम उन्हे लग ऐसा ही रहा था—उनकी आखो के सामने सातो दिल्लिया फैली हुई थी। जिस सडक से होकर वे आए थे वह एक पतली-सी पट्टी की तरह पेडो के बीच से चक्कर काटती हुई दूर तक चली गई थी। और इन तमाम दिल्लियो से परे जमुना बह रही थी—जो अब जाडे मे घटकर एक पतली-सी धारा रह गई थी। तीसरे पहर की हवा में कुछ खुनकी थी जो बहुत अच्छी लगती थी। अनवर ने अपनी टोपी उतारी और हवा के सर्द झोके उसकी मुडी हुई चाद को गुदगुदाने लगे। कुतुबमीनार की चोटी पर खडे होकर उसे बहुत खुशी हो रही थी। नीचे जमीन पर चलते हुए औरत-मर्द चीटियो

जैसे दिखाई देते थे। मोटर बिलकुल खिलौने की मोटर मालूम होती थी। वे बहुत ऊंचाई पर खडे थे—पर कुछ चीज़े उनसे भी ऊंची थी। नीचे से देखने पर जो बादल मीनार की चोटी के चारो ओर एक घेरा बनाए हुए दिखाई देते थे वे अब भी बहुत दूर और बहुत ऊंचाई पर थे। पश्चिमी क्षितिज पर जैसे-जैसे सूरज कुहासे के एक अथाह सागर में डूबता जा रहा था, वैसे-वैसे हवा और ठडी होती जा रही थी। सर्दी की एक लहर-सी अनवर की गरदन से रीढ की हड्डी के सहारे नीचे तक दौड गई। अनवर को छींक आ गई।

"अब घर चले। बहुत देर हो गई है," अकबरअली ने कहा और सब लोग उन अंधेरी सीढियो से नीचे उतरने लगे। ऊपर की खुली ठडी हवा मे खडे रहने के बाद सीढियो की बदबू और घुटन कुछ ज्यादा ही मालूम होने लगी थी।



दीवा बले सारी रात

देखने मे बहुत डरावनी थी वे मूछे—बेहद घनी, कुछ बाल सफेद हो चले थे, और मोम लगाकर उनके सिरे ऐंठकर नुकीले कर दिए गए थे। दाढी बहुत साफ बनी हुई थी जिसकी वजह से गाल बहुत चिकने थे, पर भवो के बाल इतने घने और लम्बे थे कि ऐसा लगता था जैसे आखो के ऊपर एक छप्पर पडा हो। हाथो पर, उगलियो पर, यहा तक कि कानो पर भी घुघराले बालो के गुच्छे थे। लेकिन बिना फ्रेमवाली ऐनक के साफ-सुथरे शीशो के पीछे से जो आखे चमक रही थी उनमे दया थी और वे अनवर को बडे वात्सल्य के भाव से देख रही थी।

अनवर डाक्टर मुख्तारअहमद अंसारी के दवाखाने मे था। अकबरअली ने उसे बताया था कि डाक्टर असारी दिल्ली के सबसे अच्छे डाक्टर थे। उन्होने विलायत की सबसे अच्छी यूनिवर्सिटियो मे डाक्टरी पढी थी और विलायत के कई अस्पतालो मे काम भी कर चुके थे।

पन्द्रह दिन तक अनवर हकीम बेदिल का यूनानी इलाज करा चुका था लेकिन कुतुबमीनार की चोटी पर एक छीक से जो जुकाम शुरू हुआ था वह अभी तक ठीक नही हुआ था। वास्तव मे उसने बढते-बढते ब्राकाइटिस का रूप धारण कर लिया था जिसकी वजह से उसे रात-भर नीद नही आती थी और दिन-भर वह निढाल रहता था। अब वह अपने ताया-अब्बा और अपने भाई रऊफ के साथ सैर-सपाटे के लिए भी नही जा सकता था। फूफी-अम्मा उसके कमरे की हर खिडकी और दरवाज़ा बद रखती थी और हकीम बेदिल उसे ढेरो जोशादा और दूसरी दवाए पिलाते थे, पर इन तमाम इलाजो के बावजूद उसकी हालत बिगडती गई। आखिरकार अकबरअली ने उसे डाक्टरी असारी को दिखाने का फैसला किया जो पास ही दरियागज के सिरे पर एक बगले मे रहते थे। उनके बंगले के एक तरफ पुरानी दिल्ली की फसील थी और दूसरी तरफ जमुना।

अनवर ने जिस वक्त से डाक्टर साहब के कमरे में कदम रखा था तभी से उसका दिल बुरी तरह धडक रहा था। उसने सुन रखा था कि डाक्टर लोग कैसे-कैसे भयानक आपरेशन कर डालते है, और पेट चीर देना या हाथ-पैर काटकर अलग कर देना उनके बाए हाथ का खेल होता है। फूफी-अम्मा ने उसके दिल मे डाक्टरो का और भी डर बिठा दिया था और इसलिए अनवर ने अपने मन मे यह चित्र बनाया था कि जिन डाक्टर साहब के यहा उसे ले जाया जा रहा है वे जल्लाद या कसाई किस्म की कोई चीज़ होगे। और वे खौफनाक मूछें सचमुच किसी जल्लाद की ही लगती थी, लेकिन अनवर को उन भयानक मूछो का उनकी दया-भरी आखो और नर्म मीठी आवाज से कोई सबन्ध नही दिखाई देता था। डाक्टर साहब अपने विलायती ढंग के कपडे पहने हुए थे पर बोल खालिस हिंदुस्तानी रहे थे।

"क्यो बेटा, क्या हाल है ?"

उन्होने सिर्फ इतना ही कहा लेकिन उनकी इस एक बात से अनवर का सारा डर दूर हो गया और वह उन्हे अपनी स्कूल की पढाई और अपनी अमृतसर की यात्रा के बारे मे सारी बाते बताने लगा। उसने उन्हे जलियावाला बाग के बारे मे भी बताया। जलियावाला बाग के गोलीकांड की बात सुनते ही डाक्टर साहब के माथे पर बल पड गए, उनकी आखे कुछ धुधली पड गई, उनमे आसू-से छलक आए और उन्होने कागज़ काटने का चाकू गुलाबी ब्लाटिंग पेपर मे गडा दिया। यह स्पष्ट था कि वे इस विषय पर ज्यादा देर अनवर को बाते नही करने देना चाहते थे इसलिए उन्होने बडी होशियारी से बातचीत का रुख बदल दिया। अब वे कबूतरो और पतगो और हवाई जहाज़ो की बात कर रहे थे और जब डाक्टर साहब ने कहा कि "अनवर, जानते हो, जब तुम बडे होगे उस वक्त हवाई जहाज़ उतने ही आम हो चुके होगे जितनी कि आज रेलगाडिया हैं," तो अनवर की आखे आश्चर्य के मारे फटी की फटी रह गईं।

•

डाक्टर साहब से बाते करते हुए अनवर को न झिझक हो रही थी न डर ही लग रहा था। अचानक उसे यह महसूस करके आश्चर्य हुआ कि उसकी बीमारी बिलकुल गायब हो गई है। उसका गला अब नही दुख रहा था, उसे

बुखार भी नही लग रहा था और हालाकि चारो तरफ की खिडकिया खुली हुई थी, फिर भी जब से वह कमरे मे आया था उसे न छीक आई थी न खासी। ये डाक्टर साहब तो सचमुच जादूगर थे। वे अनवर से इस तरह बातें कर रहे थे जैसे वह बीमार हो ही नही—और वास्तव मे वह बीमारी था भी नही। डाक्टर असारी अनवर से रेलगाडियो, मोटरो और दूसरी ऐसी चीजो के बारे मे बाते कर रहे थे जिनमे बच्चो को दिलचस्पी हो सकती है। इस बातचीत के दौरान ही मे उन्होने अनवर से एक कोच पर लेट जाने को कहा और एक अनुभवी डाक्टर की तरह बडे ध्यान से उसकी डाक्टरी जाच की—उसकी नब्ज़ देखी, आला लगाकर उसका सीना देखा और उगलियो से उसका पेट ठोक-पीटकर देखा। उनका स्पर्श इतना कोमल था और उनकी लम्बी-लम्बी पतली उगलिया इतनी नर्म और नाज़ुक थी कि अनवर को यकीन हो गया कि उन उगलियो से कभी किसीको कोई नुकसान नही पहुच सकता और वह इस बात पर आश्चर्य करने लगा कि डाक्टर अंसारी उन खौफनाक आपरेशनो को कैसे करते होगे जिनके बारे मे उसने सुन रखा था।

डाक्टर असारी ने अनवर को उठाकर खडा कर दिया और उसका कन्धा थपकते हुए बोले, "बेटा, तुम्हे कोई बीमारी नही है। लेकिन मै इस बात को पसन्द नही करता कि तुम्हारे जैसे होनहार लडके स्कूल मे अपना वक्त खराब करे। तुम्हारी तो अभी खुले मैदानो और बागो मे दौडने-भागने की उम्र है। तुम्हे तो देहात की खुली हवा मे सैर करनी चाहिए।" अनवर को उनके ये शब्द ऐसे लगे जैसे कोई बडी ममता से अपने कोमल हाथो से उसे थपक रहा हो। फिर डाक्टर साहब अनवर के अब्बा को सम्बोधित करके बोले, "अकबर साहब, क्या आप अपने बेटे को कुछ दिन के लिए शहर के शोर-गुल से दूर किसी गाव मे नही भेज सकते ?"

अकबरअली डाक्टर असारी से भली भाति परिचित थे। उन्होंने डाक्टर साहब को आश्वासन दिलाया कि इसमे कोई कठिनाई नही होगी। अनवर कुछ दिन के लिए जाकर अपने ताया-अब्बा के साथ रह सकता था, जो इस समय गुडगाव मे तहसीलदार थे और उनके साथ ही उनकी तहसील के गावों के दौरे पर जा सकता था।

वे लोग उठकर जाने ही वाले थे कि अनवर ने लम्बे-चौडे डीलडौल के दो

दाढीवाले बुजर्गों को उस छोटे-से कमरे मे दाखिल होते देखा। वे दोनो अरब लोगो की तरह ढीले-ढाले लबादे पहने थे और ऐसा लगता था कि उन दोनो के आ जाने से कमरा बिलकुल भर गया था। अनवर उनकी अजीब चाल-ढाल देखकर और उनकी गूजती हुई आवाजो को सुनकर कुछ भयभीत हो गया था। डीलडौल तो दोनो ही बुजुर्गों का लम्बा-चौडा था पर उनमे से एक दूसरे के मुकाबले मे ज्यादा तगडे थे और जब बोलते थे तो ऐसा लगता था कि बादल गरज रहे है। बोले, "असारी, अभी तो हम लोग बाहर जा रहे है। तीसरे पहर तुमसे मुलाकात होगी।" दूसरे बुजुर्ग ने, जिनके हाथ मे कुछ कागज़ थे, एक कागज़ मेज पर रखते हुए कहा, "तुम जरा इसे देख लेना और शाम को इसके बारे मे अपनी राय बताना।" फिर दोनो उसी तरह अचानक बाहर चले गए जैसे वे अन्दर आए थे और चिक मे से अनवर को सिर्फ दो ढीले-ढाले काले लबादे हवा मे उडते हुए दिखाई दिए।

"जानते हो कौन थे?' डाक्टर असारी ने विदा होती हुई उन दोनो विभूतियो की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा और अनवर को उनसे अपरिचित देखकर बताया कि वे मुहम्मदअली और शौकतअली थे। अनवर को सहसा याद आया कि अपने अब्बा की बैठक मे एक बार किसी बहस के दौरान मे उसने इनका नाम सुना था। ये दोनो भाई खिलाफत आन्दोलन के नेता थे और अभी हाल ही मे जेल से छूटकर आए थे। अनवर को यकीन था कि ऐसे रोबदार आदमियो से तो सरकार भी डरती होगी।

"अनवर, फिर आना, लेकिन खासी या जुकाम की शिकायत लेकर न आना," डाक्टर असारी ने अनवर और उसके अब्बा को बिदा करते हुए कहा।

•

ऐसा लगता था कि डाक्टर असारी के बगले मे अजीब-अजीब लोग रहते थे। जिस समय अनवर अपने अब्बा के साथ लॉन पार करके फाटक की ओर जा रहा था उसने देखा कि कई लोग लॉन पर धूप मे बैठे हुए एक आदमी को देख रहे है। अनवर ने भी देखा कि पतली-पतली टागोवाला एक आदमी मोटे खद्दर की धोती और कुर्ता पहने बैठा चर्खा कात रहा है। उसने अपने सिर पर एक सफेद अगोछा भी डाल रखा था जिसकी वजह से अनवर को यह भ्रम हुआ

कि शायद कोई औरत है। जब दोनो उस आदमी के पास से होकर गुजरे तो चर्खा एक क्षण के लिए रुक गया और अगोछे मे से बडे-बडे गोल शीशोवाली ऐनक पहने हुए एक चेहरा दिखाई दिया और अनवर को देखकर दो आखे ऐनक के पीछे मित्रता के भाव से मुस्करा दी। अनवर सिटपिटा गया और उसकी समझ मे कुछ न आया कि वह इस अभिवादन का उत्तर कैसे दे, इसलिए वह भी जवाब मे केवल मुस्करा दिया। वह छोटा-सा गजा सिर फिर अगोछे मे छिप गया और चर्खा फिर अपनी लय के साथ चलने लगा।

जब वे लोग वहा से काफी आगे बढ गए तो अकबरअली ने बताया, "ये महात्मा गाधी थे। ये, मुहम्मदअली, शौकतअली और डाक्टर अंसारी सब स्वराज के लिए मिलकर काम कर रहे है।"

"स्वराज क्या होता है अब्बा ?" अनवर ने पूछा।

"स्वराज का मतलब होता है अपनी हुकूमत। हिन्दुस्तानियो की हुकूमत बेटा।"

अनवर को कई महीने पहले की वह बात याद आई जब उसके अब्बा और काका रामेश्वरदयाल गाधी के बारे मे और अग्रेजो को मारे बिना उन्हे यहा से निकाल देने की बाते कर रहे थे। तो यह था वह महान आदमी जो सपने मे उसे राक्षस से बचाने आया था।

उसने सोचा यह आदमी देखने मे तो इतना छोटा है पर इसे राक्षस से डर नही लगता।

"अब्बा !"

"हा बेटा !"

"महात्मा गाधी बुढियो की तरह, हमारी गुलाबो बुआ की तरह चर्खा क्यो चला रहे हैं ?"

यो तो अकबरअली हमेशा ही अनवर को कोई बात समझाकर बहुत खुश होते थे पर अनवर के इस सवाल का जवाब देकर उन्हे हमेशा से ज्यादा खुशी हुई। "उनका कहना है कि हम विलायती कपड़ा खरीदकर करोडो रुपया अपने देश के बाहर भेज देते है। इसलिए अगर हम अपने देश का बना हुआ खद्दर पहनें तो वह रुपया हिन्दुस्तान मे ही रहेगा। इसके अलावा हमारे देश में करोडों लोग बरोजगार हैं और करोडो लोग ऐसे हैं जो अपनी कमाई से अपनी सारी

जरूरते पूरी नही कर सकते। गरीब किसानो को दो फसलो के बीच खाली बैठे रहना पडता है। अगर हम सब लोग खद्दर पहनने लगे तो उनको भी कुछ और आमदनी हो सकती है। उनका यह भी कहना है कि चर्खा कातने से हमारे अदर सादगी और ईमानदारी पैदा होती है।"

"अब्बा।"

"हा बेटा।"

"आपको महात्मा गाधी अच्छे लगते है ?"

"हा अनवर। वे बहुत बडे आदमी है। वे मुझे बहुत अच्छे लगते है।"

"अब्बा।"

"हा बेटा।"

"मुझे भी महात्मा गाधी बहुत अच्छे लगते है।"

गुडगाव की खुश्क और ठण्डी आबोहवा मे रहकर अनवर की खांसी बिलकुल जाती रही। वहा वह खुली हवा मे स्वास्थ्यप्रद जीवन व्यतीत करता था। उसके ताया-अब्बा बहुत सख्त आदमी थे और इस बात पर जोर देते थे कि तीनो बच्चे—अनवर, रऊफ और रऊफ की नौ साल की बहन बिलकीस—बहुत सुबह उठा करे। इतने सुबह गरम-गरम बिस्तरो से निकलना बहुत बुरा लगता था, लेकिन एक बार जब वे खुले मैदानो मे निकल जाते थे और उन्हे ठण्डो हवा मे सास लेने का मौका मिलता था तो उन्हे बहुत खुशी होती थी। वे एक-दूसरे का पीछा करते थे। रऊफ सबसे आगे निकल जाता था क्योकि वह सबसे बडा था और सबसे लम्बा भी और बिलकीस सबसे छोटी होने की वजह से सबसे पीछे रह जाती थी और जब अनवर उससे बहुत आगे निकल जाता था तो वह बहुत रोती-चिल्लाती थी। उसे रोता देखकर अनवर रुक जाता था और जब तक वह उसके बराबर नही पहुच जाती थी तब तक वह आगे नही बढता था और अगर वह बहुत थकी होती थी तो दोनो खेतो के बीच से होकर मन्द गति से बहती हुई जलधारा के किनारे बैठ जाते थे।

बिलकीस अनवर को बहुत अच्छी लगती थी। वह छोटी थी और नाज़ुक थी लेकिन उसमे ज़िन्दगी भरपूर थी। उसके बाल गहरे भूरे रग के थे जिन्हे

गूधकर एक छोटी-सी चोटी बाध दी जाती थी और जब वह दौडती थी तो यह चोटी बहुत ही हास्यास्पद ढग से ऊपर-नीचे उछलती रहती थी। अनवर को रऊफ भी बहुत अच्छा लगता था लेकिन चूकि उसका पालन-पोषण बिलकुल ही दूसरे वातावरण मे हुआ था इसलिए रऊफ की कुछ आदतो पर अनवर को बहुत ताज्जुब होता था। अकबरअली अपने बेटे को कभी नौकरो से बदतमीजी से बात भी नही करने देते थे। एक बार उसने जब 'बुआ गुलाबो' के बजाय खाली 'गुलाबो' कह दिया था तो उसके अब्बा ने सजा के तौर पर उसे दिन-भर खाना नही दिया था। लेकिन रऊफ न सिर्फ अपने नौकरो पर चिल्लाता था बल्कि उन्हे ऐसी-ऐसी गालिया भी देता था कि अनवर तो सुनकर ही शर्म से पानी-पानी हो जाता था।

तहसीलदार अमजदअली के घर मे नौकरो की कोई कमी नही थी। उनके जाती नौकरो के अलावा कोई आधा दर्जन सरकारी चपरासी हर वक्त अनवर की खुशामद और चापलूसी करने के लिए मौजूद रहते थे और वह भी उनपर रोब झाडकर बहुत खुश होता था।

जब वे सुबह टहलकर लौटते तो उन्हे बेहद भूख लगी होती थी। रऊफ की मा, जिन्हे अनवर 'बडी अम्मा' कहता था, नाश्ता रखती थी और तीनो डटकर नाश्ता करते थे। बडी अम्मा अनवर पर बहुत मेहरबान रहती थी। वे हद दरजे की काहिल थी और दिन-भर मे कम से कम सौ पान चबा जाती होगी। चूकि घर का सारा काम नौकर करते थे इसलिए अनवर ने अपनी बडी अम्मा को कभी कोई काम करते नही देखा था। वे फूफी-अम्मा की तरह नही थी जो दिन-भर बरतन माजने, खाना पकाने, सिलाई करने वगैरह मे फसी रहती थी और अजुम को भी, घर का कामकाज करने मे गुलाबो का हाथ बटाने पर मजबूर करती थी। लेकिन अनवर के ताया-अब्बा ठहरे सरकारी अफसर। उनके घर मे बच्चो का सारा काम नौकर करते थे। अनवर को यह बात कुछ अजीब लगती थी और उसकी समझ से बाहर थी कि कोई दूसरा उसका बिस्तर लगाए या उसके जूतो पर पालिश करे।

नाश्ता करके रऊफ स्कूल चला जाता था, अमजदअली कचहरी चले जाते

थे, बडी अम्मा दोपहर का खाना खाने से पहले एक नीद सो लेने के लिए लेट जाती थी और बिलकीस अपनी गुडिया निकालकर बैठ जाती थी। अनवर भी अपनी कोठरी मे जाकर अपने सन्दूक मे से अपना खुफिया खजाना निकालता था। यह खजाना वे किताबे थी जो उसके अब्बा ने चलते वक्त उसे दी थी और कहा था, "अगर तुम इन सबको पढ लोगे तो तुम्हारी स्कूल की पढाई का जो नुकसान होगा वह पूरा ही नही हो जाएगा बल्कि तुम्हे उससे भी ज्यादा फायदा पहुचेगा।"

अकबरअली ने सब किताबो पर एक जैसी जिल्द बधवा दी थी। अनवर को ये मोटी-पतली किताबे बहुत अच्छी लगती थी—उसे उनपर चढी हुई लाल चमडे की जिल्द और उनपर सुनहरे अक्षरो मे लिखा हुआ किताब और लेखक का नाम बहुत ही पसन्द था। उसे उनकी साफ-सुथरी खुशबू भी बेहद पसंद थी—ताजे कागज की खुशबू, छापेखाने की स्याही, लेई और चमडे की खुशबू और वह एक नामालूम खुशबू जो सभी किताबो मे आती है। उसे उन्हे पढने मे भी बहुत मजा आता था क्योकि उन्हे पढकर उसे ऐसा लगता था जैसे उसकी आखो के सामने अनोखी और आकर्षक दुनियाओ के द्वार खुलते जा रहे है। अनवर जब भी कोई किताब खोलता तो उसे ऐसा लगता कि वह किताब नही पढ रहा है बल्कि विस्तृत अनजानी दुनियाओ की यात्रा कर रहा है।

उसने उनमे से कई किताबे पढ डाली थी और उनको पढकर उसकी कल्पना-शक्ति बहुत जागरित हो उठी थी। जब उसने 'चार दरवेश' पढी तो उसे ऐसा लगा कि ईरान के उन चार दरवेशो के साथ वह भी उन विचित्र और अनोखे अनुभवो से गुजर रहा है। सीधी-सादी ज़बान मे लिखी हुई 'हयाते-लुकमान' से उसने वह बहुत-सा व्यावहारिक ज्ञान सीखा था जो ईसप ने इसानो और जानवरो के बारे मे अपने इन किस्सो मे भर दिया था। शरर की 'बहिश्ते-बरी' पढकर उसे ऐसा लगा था कि वह फिर असासियो के उस दुष्ट नेता के जमाने मे पहुच गया है जिसने भोले-भाले लोगो को बहकाकर अपना अनुयायी बनाने के लिए इस ज़मीन पर एक जन्नत बनाई थी जहा हूरे भी थी और दूध-शहद की नदिया भी और चहचहाती हुई चिडिया भी। लेकिन उसपर सबसे गहरा असर 'मुसद्दसे-हाली' का हुआ था—जिस प्रेरणामय महाग्रथ मे इस्लाम के उत्थान और पतन का रोचक वर्णन पानीपत के उसी शायर ने किया था

जिसकी कब्र पर अनवर और उसके अब्बा ने श्रद्धाजलि अर्पित की थी। नौ बरस का अनवर शायरी की बारीकियो के बारे मे कुछ नही जानता था, उसमे जिन ऐतिहासिक घटनाओ की ओर सकेत था उनसे भी वह सर्वथा अपरिचित था, पर हाली की इस अमर काव्य-कृति के शब्दो मे ऐसा सगीत और ऐसा प्रवाह था कि उनको पढकर उसकी भावनाओ मे एक लहर-सी पैदा हो जाती थी। इन पक्तियो को पढकर उसे वैसा ही आनन्द आता था जैसा कुरान की आयतो को पढते समय और इन पक्तियो मे ज़ोर भी वैसा ही था।

हर बार जब अनवर उसे पढता था तो उसे ऐसा लगता था कि शायर का मकसद ही यह था कि पाठको मे कभी उत्साह पैदा हो, कभी वे गर्व अनुभव करे, कभी वे निराश हो और कभी लज्जित। पर इन सब चीज़ो के मिलने से मन मे यह भावना अवश्य पैदा होती थी कि कोई परिवर्तन फौरन होना चाहिए। इन पक्तियो को पढकर ज्ञान की ज्योति से अज्ञान के अधेरे को दूर करने की इच्छा पैदा होती थी—और निश्चय ही कवि का यही उद्देश्य भी था।

मौसम प्रकृति के नियम के अनुसार बदलते रहे। तहसीलदार साहब के बंगले मे जो ठडी हवा चलती थी उसमे अब वह बर्फीली चुभन नही रह गई थी; आसपास के खेतो पर सुबह जो कुहरे के बादल छाए रहते थे वे धूप मे गायब हो गए, कुछ दिन बाद मकई के खेत कट गए और गेहू बोने के लिए खेत तैयार किए जाने लगे। फिर जून मे सूरज तपने लगा और पसीना छूटने लगा। लू लग जाने के डर से बच्चो को दोपहर से शाम तक घर से बाहर निकलने की बिलकुल मनाही कर दी गई। इस लू मे तो खस के पर्दे भी इतनी जल्दी सूख जाते थे कि तहसीलदार अमजदअली के तीन नौकरो को लगातार उनपर पानी छिडकते रहना पडता था।

अनवर सारा वक्त अपने भाई-बहिन के साथ खेलने, अपने अब्बा की भेजी हुई किताबे पढने और कभी-कभी रतन को ख़त लिखने मे खर्च करता था। अमृतसर से उसका दोस्त भी लगभग हर हफ्ते खत लिखता था और उसके खत तहसीलदार साहब के बगले के ठडे तथा सुरक्षित वातावरण मे हकीकत के तेज़ झोको की तरह आते थे। उसके खतो से पता लगता था कि अमृतसर मे कांग्रेस

के अधिवेशन के अवसर पर उसने नेताओ के कैम्प मे वालटियर की हैसियत से काम किया था और एक बार तो गाधीजी के लिए पानी भी ले गया था। रतनसिंह ने बडे विस्तार के साथ इन मीटिंगो और उनमे भाग लेनेवाले नेताओ के बारे मे लिखा था—तिलक के बारे मे, अलीबधुओ के बारे मे और अनवर के डाक्टर असारी के बारे मे—और इन सब बातो को पढकर अनवर को रतन के सौभाग्य पर ईर्ष्या होने लगी।

रतन के दिन बहुत मुसीबत मे कट रहे थे जिसकी वजह से अनवर को अपनी ऐशो-आराम की जिन्दगी पर शर्म आने लगी। जमादार अजीतसिंह के मरते ही उसकी पेशन भी बन्द हो गई थी और रतन की विधवा मा को अपने सारे गहने गिरवी रख देने पडे थे ताकि उसका बेटा स्कूल मे अपनी पढाई जारी रख सके। अब तो यह पैसा भी खर्च हो गया था और अब वह दिन-भर चर्खा चलाकर और सूत बेचकर अपना पेट पालती थी। रतन ने लिखा था, "महात्माजी ने अगर हमे यह चर्खा न दिया होता तो हम भूखो मरने लगते और मुझे शायद पढाई छोडकर स्टेशन पर बोझ ढोना पडता।" बडी मुसीबत मे उनके दिन कटते थे। एक बार महीने-भर तक रतन का कोई खत नही आया। बाद में उसके खत से पता चला कि उसके पास पोस्टकार्ड खरीदने को भी पैसे नही थे। उस वक्त अनवर के सन्दूक मे दस रुपये थे। उसके अब्बा हर महीने उसे दो रुपये भेजते थे, उसीको बचा-बचाकर उसने ये दस रुपये जोडे थे। वह चुपचाप डाकखाने गया और दस रुपये के टिकट खरीदकर एक लिफाफे मे रतन को भेज दिए। लेकिन ऐसा लगता है कि जिसके पास जितना ही कम पैसा होता है उसे इस तरह के उपहार स्वीकार करने मे उतना ही ज्यादा सकोच होता है। रतन ने अपने अगले खत के साथ सारे टिकट वापस कर दिए और अपने दोस्त का खत पढकर अनवर की आखो मे आसू आ गए। उसने अपने खत मे लिखा था—"अब कभी मुझे इस तरह की कोई चीज न भेजना। मै जानता हूं तुमने दोस्ती का हक निभाने के लिए ही ऐसा किया था फिर भी मुझे इससे ठेस पहुची। मा कहती है कि खैरात लेने से अच्छा है कि आदमी भूखा मर जाए।"

आकाश पर वर्षा के बादल छाने लगे और पहला छीटा पडते ही धरती से

गीली मिट्टी की सोधी-सोधी महक आने लगी। सूखी हुई धरती ने स्पज की तरह सारा पानी सोख लिया और शीघ्र ही हर तरफ नये जीवन की कोपले फूटने लगी। गुडगाव का छोटा-सा गन्दा कस्बा नहा-धोकर निखर आया। सडको पर गर्द उडना बन्द हो गया और तहसीलदार साहब के बगले मे जहा भी खाली जगह थी वहा घास और हरियाली उग आई। बडी अम्मा ने नीम के छायादार पेड की सबसे ऊची डाल पर सूत की रस्सी का झूला डलवा दिया और तीनो बच्चे लम्बे-लम्बे पेग लेकर उसपर झूलने लगे।

इसी मौसम मे, जब न बहुत गर्मी पडती थी न बहुत सर्दी, तहसीलदार साहब अपनी तहसील के दौरे पर जाते थे। दौरे पर जाने की तैयारिया जोरो पर जारी थी और बच्चे गाव की सैर के खयाल से बहुत खुश थे। रऊफ पहले भी अपने अब्बा के साथ दौरे पर जा चुका था। उसने अनवर और बिलकीस को बताया कि दौरे पर कितना मजा आता है। उसने उन्हे बताया कि "गावो मे अब्बा की हैसियत बिलकुल बादशाह जैसी होती है और मेरी शाहजादे जैसी। सब लोग झुक-झुककर हमे सलाम करते है।" अनवर पर इस बात का कोई खास रोब नही पडा लेकिन उसने यह बात रऊफ से कही नही। नौकरो से किस तरह बात की जानी चाहिए, इस सवाल को लेकर उसका और रऊफ का झगडा हो चुका था और अनवर अपने ताया के यहा इतने दिन हसी-खुशी गुजार देने के बाद अब चलते वक्त और ज्यादा कटुता नही पैदा होने देना चाहता था।

कुछ ही समय बाद उसे यह देखने का अवसर मिला कि रऊफ ने जो बात कही थी उसका क्या मतलब था। अमजदअली तहसीलदार दौरे पर जाते थे तो एक पूरा काफिला उनके साथ होता था। सबसे आगे वे खुद घोडे पर चलते थे, उनके पीछे एक तागे पर बच्चे और सबसे पीछे एक बैलगाडी पर खेमे, बिस्तर, चारपाइया, कुर्सिया और बर्तन-भाडे लदे हुए। इस शाही ठाठ से वे एक गाव से दूसरे गाव का दौरा करते थे। उन्हे देखते ही गाववाले सर्वशक्तिमान सरकार के इस प्रतिनिधि को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए लपकते थे। वे हाथ जोडकर उनका स्वागत करते थे और फिर गाव में सबसे अच्छी जगह पर खेमा लगाने, सेवा-टहल करने, लकडी चीरने और पानी भरने मे तहसीलदार साहब की मदद करने मे एक-दूसरे से होड करते थे। खेमा लगते ही तहसीलदार साहब अपना हुक्का लेकर एक आरामकुर्सी पर बैठ जाते थे और चीथड़े पहने

हुए मैले-कुचैले किसानो का ताता लग जाता था, जिनमें से हरएक कोई न कोई फरियाद लेकर उनकी कृपादृष्टि की भीख मागता हुआ आता था। "हुजूर, इस साल फसल बहुत खराब हुई," और "हुजूर, हमारे पास लगान देने को पैसा है ही नही" और "हुजूर माई-बाप है"—यही उन सबकी फरियाद होती थी। रऊफ कहता था कि जब कोई 'माई-बाप' कहता था तो उसे बहुत हंसी आती थी। इससे यही पता चलता था कि ये किसान कितने बेवकूफ है।

नूरपुर बहुत ही छोटा गाव था। उसमे एक कच्चे रास्ते के दोनो तरफ लगभग झोपडिया पडी थी। जब पानी बहुत बरसता था तो यह रास्ता बिलकुल नाला बन जाता था। चारो तरफ गदा पानी खडा रहता था जिसपर हरी-हरी काई की एक मोटी तह जमी रहती थी जिसमे मच्छर पलते थे। अमजदअली ने सब बच्चो से कह दिया था कि जब तक वे नूरपुर मे रहे तब तक बिना उबाला हुआ पानी न पिएं।

तहसीलदार साहब ने गाव के बाहर एक आम के बाग मे अपना खेमा लगाया था और खेमा लगते ही बाग का मालिक एक टोकरी मे पके हुए रसदार आम लेकर हाजिर हो गया था। खेमे के पीछे बावर्ची ने अपना बावर्चीखाना लगाया था और वहा से मसालेदार खानो की खुशबू आ रही थी और आमो की मीठी-मीठी बोझल खुशबू से होड कर रही थी। अनवर ने अपने-आप उस बाग मे एक छायादार जगह ढूढ ली और अपनी किताब लेकर वहा जा बैठा। वह उर्दू मे राबिसन क्रूसो का किस्सा था। पढते-पढते वह अपनी कल्पना मे एक रेगिस्तानी द्वीप पर पहुच गया और वहा रेत पर आदमी के पैरो के निशान देखकर उसने फ्राइडे को खोज लिया था। उसे इस तरह के किस्से बहुत पसद थे। उन्हे पढकर उसे हमेशा बहुत रोमाच होता था। लेकिन उसने मुश्किल से कुछ ही पेज पढे होगे कि उसे कुछ शोर सुनाई दिया। बावर्ची किसीपर चिल्ला रहा था और उसे गालिया दे रहा था और वह आदमी भी उससे झगड रहा था। जब अनवर भागकर बावर्चीखाने मे पहुचा तो उसने देखा कि उसके ताया का पहलवान जैसा बावर्ची याकूब, जिसके एक बहुत भयानक काली दाढी थी, अनवर की ही उम्र के एक छोटे-से पतली-पतली टागोवाले लड़के को पीट

रहा है।

"याकूब, याकूब, क्या कर रहे हो? खबरदार, जो अब मारा।" अनवर ने चिल्लाकर कहा। बावर्ची अपने मालिक के भतीजे का हुक्म तो नही टाल सकता था लेकिन उसे यकीन था कि जब वह सारी बात अनवर को बताएगा तो उसकी समझ मे आ जाएगा कि उस लडके को बिला वजह सजा नही दी जा रही है।

याकूब ने सरकारी अफसरो के सभी नौकरो की तरह बहुत ही खुशामद-भरे लहजे मे कहना शुरू किया, "सरकार, आप इस बदमाश को नही जानते। मुझे तहसीलदार साहब के लिए आमलेट बनाना है और सारे गाव मे मुझे सिर्फ इसीके घर मे अडे मिले है। लेकिन यह किसी तरह अडे देता ही नही। न जाने उन्हे रखकर क्या करेगा। मेकर बच्चे निकालेगा!"

अनवर ने उस भूखे-नगे लडके को देखा और उसकी समझ मे नही आया कि वह उन अडो को बेचकर कुछ पैसे क्यो नही बना लेता जबकि जाहिर था कि उसे पैसो की सख्त जरूरत होगी। "क्यो जी, तुम अपने अडे बेच क्यो नही देते?"

याकूब ने खीसे निकाल दी, लेकिन अनवर को इसका मतलब उसी वक्त समझ मे आया जब उस लडके ने जवाब दिया, "हुजूर, मैं तो बेचना चाहता हू, लेकिन यह हमे पैसा नही देता। यह रामू की बगिया से सब्जी और बनिये की दूकान से घी भी मुफ्त लाया है। मेरे और मेरी मा के पास सिर्फ छः मुर्गिया हैं और हम उनके अडे बेचकर अपना पेट पालते है। हुजूर, आप हमे छः अडो के तीन आने दिला दे तो मैं चला जाऊगा।"

अब सारा मामला अनवर की समझ मे आया। याकूब जोर-जबर्दस्ती से इन गरीबो से सारा सामान मुफ्त लाता था और अपने मालिक से उनके पूरे पैसे वसूल करता था। उसने सोचा कि एक बार जहा उसने इसकी शिकायत अपने ताया से कर दी तो यह सारी धाधली खत्म हो जाएगी।

वह लडका आसू पोछकर अब अपनी सिसकिया रोकने की कोशिश कर रहा था। अनवर ने उससे कहा, "तुम मेरे साथ आओ। और तुम भी आओ याकूब। मैं ताया-अब्बा से तुम्हारी शिकायत करूगा।" बावर्ची ने खानसामा को आख मारकर कुछ इशारा किया और अनवर के साथ हो लिया।

तहसीलदार अमजदअली के पास ही एक कुर्सी पर सफेद गलमुच्छोवाला एक बूढ़ा आदमी बैठा उनसे कुछ बाते कर रहा था।

वह बूढा उनसे कह रहा था, "तहसीलदार साहब, अब मैं आपको क्या बताऊ ? ये सुअर के बच्चे किसान, इनके दिमाग सातवे आसमान पर पहुच गए है। इनमे से कुछ तो ऐसे है जो न हमारी बात सुनते है न सरकारी अफसरो की। ये अब हर काम के लिए मजदूरी मागते है, जैसे इनके बाप-दादा को जमीदार का काम करने की मजदूरी ही तो मिलती थी। और मैं आपसे सच कहता हू कि यह सब उस बनिये की औलाद गाधी का किया-धरा है, उसने ही जनता के अधिकारो की बाते कर-करके इनके दिमाग बिगाड दिए है।"

तहसीलदार साहब ने हुक्का गुडगुडाते हुए जवाब दिया, "लेकिन आप फिक्र न करे, ठाकुर साहब। सरकार ऐसे लोगो से निबटना अच्छी तरह जानती है। पानी मे रहकर कोई मगर से बैर नही कर सकता।"

"ताया-अब्बा," अनवर ने उनकी बातचीत मे दखल देते हुए ऊचे स्वर मे कहा, "याकूब इस लडके को अडो के पैसे नही देता और ऊपर से उसे गालिया दे रहा है और पीट रहा है।"

लेकिन अमजदअली को अपने भतीजे की शिकायत बिलकुल समझ मे नही आई। वे बोले, "क्यो याकूब, क्या हुआ ? जब वह अडे देने को तैयार है तो तुम इस लडके को पीट क्यो रहे हो ?"

"लेकिन सरकार, यह हरामी तो इकार करता है और कहता है कि पैसे लिए बिना तो वह लाट साहब को भी अडे नही देगा। सरकार असल मे इसने आपकी बडी तौहीन की है।"

यह सुनकर उस गाव के पुश्तैनी जमीदार ठाकुर चननसिंह ने मामला अपने हाथ मे ले लिया। यह तहसीलदार साहब पर अपनी धाक जमाने का अच्छा मौका था और बूढे जमीदार साहब यह मौका हाथ से नही जाने देना चाहते थे।

'क्यो बे लौडे, क्या नाम है तेरा ?"

"मेरा नाम भोला है ठाकुर साहब।"

"तेरे बाप का क्या नाम है ?"

"मेरा बाप तो मर चुका है ठाकुर साहब। पिछले साल जब हैज़े की बीमारी फैली थी उसीमे मर गया था। उसका नाम रामू था।"

"तू जानता है, ये कौन साहब है ?" उन्होने अमजदअली की तरफ इशारा करते हुए पूछा। भोला चुप खडा रहा, केवल उससे अपना सिर हिला दिया।

"तू इन्हे जानता है फिर भी तू इनके नाश्ते के लिए कुछ अडे देने से इकार करता है ? जानता है ये तुझे उस पेड से बाधकर तेरी खाल खिचवा सकते है ? खैरियत जान कि तहसीलदार साहब बहुत दयालु आदमी है, नही तो सरकार का हुक्म न मानने के जुर्म मे तुझे गिरफ्तार करवाकर जेल मे बद करवा देते । समझा ?" भोला डर के मारे पत्ते की तरह काप रहा था—"अच्छा, इस बार तो मै तुझे माफ कराए देता हू । सलाम कर तहसीलदार साहब को और भाग जा यहा से ।"

"सलाम तहसीलदार साहब ! सलाम ठाकुर साहब !" और भोला खाल खिचवा ली जाने के डर से कापता हुआ अपनी फुर्तीली टागो से वहां से जान बचाकर भागा । बूढे ठाकुर साहब ने विजय-गर्व के साथ अमजदअली की तरफ देखा और याकूब भी वहा से चल दिया । चलते-चलते उसने अनवर को इस तरह देखा मानो कह रहा हो, 'मै तो पहले ही से जानता था कि यही होगा ।' अनवर बहुत अपमानित अनुभव कर रहा था । वह जानता था कि उसने भोला का पक्ष लेकर बहुत बडी बेवकूफी की थी । अब हर आदमी उसका मजाक उडाएगा , रऊफ और बिलकीस भी उसपर हसेगे । लेकिन उसका मन कहता था कि उसने ठीक किया । उसकी आखो मे आसू छलक आए और इस विचार से कि कही कोई उसे रोता देख न ले और उसे लज्जित न होना पडे, वह भागकर अमराई के एक कोने मे जा बैठा । दोपहर के खाने के वक्त उसे बिलकुल भूख नही लगी । वह जानता था कि अब जिंदगी में कभी भी वह आमलेट शौक से नही खा पाएगा ।

•

अनवर गाव की तरफ जा रहा था । रास्ते मे उसे दो किसान बैसाख की तपती हुई धूप मे खेत जोतते हुए दिखाई दिए । उनकी काली नगी पीठें धूप मे चमक रही थी । खेमे मे सब लोग तीसरे पहर खाना खाकर सो रहे थे लेकिन अनवर की आखो मे नीद नही थी । भोला का भयभीत चेहरा उसका पीछा कर रहा था, उससे फरियाद कर रहा था और उसपर इल्जाम भी लगा रहा था । अब वह इसी भूत को शात करने जा रहा था । उसकी जेब मे लगभग दो रुपये की रेजगारी खनक रही थी जो वह भोला को देने जा रहा था । इस प्रकार वह

उन तीन आनो का बदला चुका देना चाहता था जो याकूब ने भोला को नही दिए थे। लेकिन उस बेचारे जाहिल बावर्ची का क्या कसूर ? अनवर ने सोचा। इस शर्मनाक हरकत की असली जिम्मेदारी उसके ताया-अब्बा अमजदअली पर थी। एक क्षरण के लिए उसके मन मे अपने ताया-अब्बा के लिए सख्त नफरत पैदा हुई और उसने फैसला किया कि वह जल्दी से जल्दी घर वापस चला जाएगा।

गाव मे घुसते ही अनवर ने एक बहुत ही दर्द-भरा गीत सुना। एक झोपडी मे कुछ लडकिया मिलकर ढोलक पर एक बंधी हुई धुन से गा रही थी जिसकी वजह से उस धुन मे और दर्द पैदा हो गया था। अनवर को दिल्ली के रईस-जादो की शायस्ता ज़बान सुनने की आदत रही थी। इसलिए वह पजाबी के इस लोकगीत के बोल तो नही समझ पाया पर गाने की टेक कुछ इस तरह थी—'दीवा बले सारी रात, मेरिया जालिमा, दीवा बले सारी रात।' दिया सारी रात क्यो जलता है ? औरत किसका इतजार कर रही है ? यदि अनवर पजाब के इस मशहूर लोकगीत से परिचित होता तो उसे यह भी मालूम होता कि औरत सदियो से अपने प्रेमी का इंतज़ार करती रही है। और वह अभी तक नही आया है।

लेकिन अनवर के दिमाग पर तो भोला का आसुओ से भीगा हुआ चेहरा छाया था। थोडी देर मे अपने प्रेमी की प्रतीक्षा करनेवाली विरहिनी का करुण गीत दूर से आती हुई एक धुन के समान प्रतीत होने लगा। फिर भी न जाने क्यो इस गीत की धुन और बोल दोनो ही भोला की हालत पर पूरे उतरते थे। आखिर प्रेमी कहा चला गया था ? क्या जमीदार ने बेगार लेने के लिए पकड लिया था ? या तहसीलदार साहब ने पेड से बाध दिया था और उसकी खाल खिचवा रहे थे।

गाव के कुछ बडे-बूढो को एक छायादार पेड के नीचे बैठकर आराम करते देखकर उसने उनसे पूछा, "रामू के बेटे भोला का घर कौन-सा है ?" उनमे से एक दाढीवाले बूढे ने एक झोपडी की तरफ इशारा कर दिया। वह झोपडी बाकी सब झोपडियो से नीची और ज्यादा टूटी-फूटी दिखाई देती थी।

अपनी मजिल पर पहुचकर अनवर को अदर जाते शर्म आ रही थी। लेकिन जो उद्देश्य लेकर वह निकला था जब तक उसे पूरा न कर लेता तब तक उसके मन को शाति नही मिल सकती थी।

"भोला ! भोला !" उसने ज़ोर से आवाज दी । सफेद बालोवाली एक दुबली-पतली औरत ने दरवाजा खोला । वह भोला की मा थी और उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि साफ-सुथरे कपडे पहने हुए एक लडका उसके दरवाज़े पर खडा है । लेकिन भोला ने, जो एक कोने में बैठा रूखी रोटी खा रहा था, अनवर को पहचान लिया और उसका स्वागत करने के लिए उठ खडा हुआ ।

"मा," उसने कहा, "ये तहसीलदार साहब के भतीजे है । इन्होने·· "

लेकिन अनवर ने उसे वाक्य पूरा नही करने दिया । उसने जल्दी से अपनी जेब से पैसो की थैली निकाली और उसे भोला की आश्चर्यचकित मा के हाथों मे रखकर बोला, "इसे आप ले लीजिए । भोला को स्कूल भेज दीजिएगा ।" और इतना कहकर वह वहा से भाग आया ।

गाव के वही बूढे जिन्हे अनवर ने आते समय देखा था, बैठे इस बात पर विचार कर रहे थे कि तहसीलदार साहब के भतीजे के गाव मे आने के पीछे क्या रहस्य हो सकता है । कुछ ही मिनट बाद उन्हे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वही लडका तेज़ी से भागा चला जा रहा है जैसे कोई भूत उसका पीछा कर रहा हो । शहर के इन अमीरो के ढग भी निराले होते है ।

अनवर ने गाव के बाहर ही निकलकर दम लिया । उसे डर था कि कही भोला या उसकी मा पैसे वापस करने उसके पीछे न आ रहे हो। खेतो के किनारे पहुचकर वह दम लेने के लिए रुका । उसके मन मे सतोष की एक विचित्र-सी पुलक थी । पीछे से एक धुन के साथ ढोलक की आवाज सुनाई दे रही थी और लडकिया मिलकर अभी तक वही गीत गा रही थी—दीवा बले सारी रात ।

उसके सामने जुते हुए खेत फैले थे । कुछ खेतो को किसान अभी तक जोत रहे थे । बीच-बीच मे वे अपने बैलों की रफ्तार तेज करने के लिए उनकी पीठ पर एक चाबुक जड देते थे । और खेतो के ऊपर थोडी ही ऊचाई पर काले-काले बादल मडरा रहे थे । यह आनेवाले तूफान का स्पष्ट सकेत था ।

तूफान से पहले

सुसराल

जिन दिनो अनवर अपने ताया-अब्बा के यहा था उन्ही दिनो एक तूफान की तैयारी हो रही थी। देश-भर मे कानून तोडने की एक अजीब हवा फैल गई थी। हर तरफ विद्रोह की भावना फैली हुई थी और इस भावना की अभिव्यक्ति बिलकुल ही अप्रत्याशित क्षेत्रो मे हो रही थी। जिन लोगो को राजनीति मे कोई दिलचस्पी नही थी, जो स्वभावत: नम्र तथा शातिप्रिय थे, जो स्वार्थी और दब्बू थे, जिन्होने जिन्दगी-भर सरकारी अफसरो के तलुए चाटे थे और उनकी खुशामद की थी—वे सभी लोग राजनीतिक आदोलन मे खिचकर आ गए थे। दिल्ली लौटने के कुछ दिन बाद अनवर ने एक दिन अपने अब्बा की बैठक मे सुना कि मरकार को अवज्ञा के जुर्म मे सारे देश मे जो पहले दो आदमी गिरफ्तार किए गए थे वे पानीपत के दो मुसलमान थे, पानीपत के उसी सोए हुए शहर के जहा वह पिछले साल गया था। अकबरअली को मीर साहब के ये शब्द याद आ गए कि "कम से कम पानीपत के हम शरीफ लोग तो आटा-दाल बेचनेवाले इस टटपूजिए बनिये से कोसो दूर रहेगे।" और इन शब्दो को याद करके वे मुस्करा दिए। जब पानीपत मे इतनी जबर्दस्त लहर आई थी तो बाकी देश मे क्या हुआ होगा ?

इस तूफान के पीछे, जिसने सारे देश को अपनी लपेट मे ले लिया था, ऐतिहासिक, जातीय, राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तिया काम कर रही थी। अनवर की समझ मे यह तो नही आया था कि यह सारा झगडा किन समस्याओ को लेकर हो रहा था, पर उसे इतना आभास जरूर था कि सरकार जुल्म कर रही थी और लोग त्रस्त होकर सरकार के इस जुल्म का विरोध कर रहे थे—उसके मन मे यह चित्र जलियावाला बाग की घटना के रूप मे अकित हो चुका था और इस भयानक घटना की छाप जिसे उसने स्वय अपनी आखो से देखा था, उसके हृदय से कभी नही मिट सकती थी। इस राजनीतिक आदोलन की

जड मे गहरा आर्थिक असंतोष छिपा हुआ था। दरिद्रताग्रस्त किसानो मे अपने अधिकारो की चेतना पैदा हो रही थी, वे इस बात को समझते जा रहे थे कि वे जीवन-भर दूसरो की गुलामी करने और भूखो मरने के लिए ही नही पैदा होते, उनका भविष्य अधिक उज्ज्वल हो सकता है। अनवर ने गुडगाव के आसपास के गावो मे किसानो की हालत देखी थी और वह उस छोटे-से किसान लडके भोला को नही भूल सकता था जिसने तहसीलदार साहब के जालिम बावर्ची को छ अडे देने से इकार कर दिया था। सारे देश मे अवज्ञा की जो भावना फैलती जा रही थी, भोला उसीका प्रतीक था।

अनवर फिर स्कूल जाने लगा लेकिन ऐसी हलचल के जमाने मे पढाई मे मन लगने का कोई सवाल ही नही हो सकता था। हर तरफ जुलूसो, सार्वजनिक सभाओ, देशभक्ति के गानो और नारो का दौरदौरा था। हर तरफ एक नया शब्द सुनाई देता था—'बायकाट'। हर चीज का बायकाट किया जा रहा था—सरकारी नौकरियो का, अदालतो का, स्कूलो और कालेजो का और विलायती कपडे का। रोज सरेबाजार विलायती हैटो और सूटो के ढेर जलाए जाते थे और बडे-बडे फैशनवाले लोग भी गर्व के साथ खद्दर के कपडे पहनते थे। एक दिन जब अनवर ने डाक्टर असारी को दरियागंज मे अपनी मोटर पर जाते देखा तो वह उन्हे आसानी से पहचान भी न सका। उनका ठाठदार विलायती सूट अब उनके जिस्म पर नही था। उसके बजाय वे खद्दर का लम्बा-सा कुरता और पाजामा पहने हुए थे। उनकी मूछे अब भी डरावनी लगती थी पर उनकी मुस्कराहट मे पहले जैसी ही मिठास थी। अनवर को इस बात पर बडा गर्व हुआ कि डाक्टर साहब उसे भूले नही थे। उसे देखते ही उन्होने अपनी मोटर रोकी और उसके स्वास्थ्य के बारे मे पूछने लगे।

बहुत ही रोमाचकारी और अविस्मरणीय दिन थे। इससे पहले शायद ही कभी हिदुओ और मुसलमानो ने इतने खुले तौर पर और इतने उत्साह के साथ आपस मे भाईचारा दिखाया होगा। जुलूसो मे हिदू और मुसलमान मिलकर 'अल्लाहो-अकबर' और 'वदेमातरम्' के नारे लगाते थे। अपनी सद्भावना का प्रमाण देने के लिए वे एक-दूसरे के हाथ से पानी पीते थे और हिदू नेताओ

को जुम्मे की नमाज के बाद मुसलमानो के सामने भाषण देने के लिए जामा मस्जिद मे भी बुलाया जाता था।

रोज़ सडको पर नये-नये गीत सुनाई देते थे, जोशीले गीत जिन्होने देश के नौजवानो मे उत्साह की ज्योति जगा दी थी। कराची मे अली-बधु गिरफ्तार कर लिए गए थे और उनकी बूढी मा महात्मा गाधी के साथ आदोलन मे शामिल हो गई थी। जैसे-जैसे समय बीतता गया दर्जनो नये गीत हवा मे गूजते गए। अनवर ने भी बिना किसी कठिनाई के इनमे से कुछ गीत सीख लिए थे :

कह रहे है कराची के कैदी
हम तो जाते है दो-दो बरस को।
बोली अम्मा मुहम्मदअली की
जान बेटा खिलाफत पे दे दो।

कुछ गीत ऐसे भी थे जिनमें अग्रेज़ो का मज़ाक उडाया गया था, जैसे ·

बोल गई माई लार्ड कुकड़ू-कू

जब कभी कोई अग्रेज़ अकेला जाता हुआ दिखाई दे जाता तो लडके मुर्गे की बोली की नकल करते और हवा मे कुकड़ू-कू की आवाज़ गूज उठती जिसकी वजह से अपनी अकड मे भूले हुए अग्रेज साहब को बडी उलझन होती। अनवर स्वभाव से ही बहुत दब्बू था इसलिए वह खुले-आम उपहास के इन प्रदर्शनो मे कोई भाग नही लेता था, लेकिन विद्रोह की जो भावना चारो ओर फैली हुई थी उसका असर उसपर भी हुआ था और एक दिन स्कूल से लौटते समय उसे चादनी चौक मे एक अग्रेज सिपाही अकेला जाता हुआ दिखाई दिया। उससे न रहा गया और उसने चिल्लाकर कहा, "बोल गई माई लार्ड कुकड़ू-कू।" सिपाही ने मुडकर देखा कि उसका यह अपमान किसने किया था। अनवर ने जब उसका क्रोध से लाल चेहरा देखा तो वह जान लेकर भागा। इससे पहले कि शासक-जाति का वह क्रुद्ध सिपाही उसका पीछा करता, वह वहा से भाग खडा हुआ। लेकिन अनवर के दिल मे उस अग्रेज का भय समा गया था इसलिए वह पूरी तेजी से भागा चला जा रहा था। उसकी कल्पना मे जलियावाला बाग का वह भयानक चित्र घूम रहा था—लालमुहें सिपाही उसकी तरफ बदूके ताने कतार बाधे चले आ रहे थे और उस रात इन सिपाहियो ने स्वप्न मे भी उसका पीछा नही छोडा।

अनवर एक ऐसे युग से गुजर रहा था जब हर तरफ उथल-पुथल हो रही थी। लेकिन अभी तक यह उसके लिए एक रोचक तथा रोमाचकारी नाटक-मात्र था। उसकी निजी जिन्दगी पर इसका कोई असर नही पडा था। वह तट पर खडा हुआ तूफान की लहरो से सघर्ष करनेवालो का तमाशा देख रहा था।

अमृतसर से खत आया था। रतन की मा ने लिखा था कि रतन गिरफ्तार कर लिया गया था और एक गैरकानूनी जुलूस मे शामिल होने के जुर्म मे उसे साल-भर की कैद की सज़ा दी गई थी। अनवर रोज सारे देश मे गिरफ्तारियो की खबरे पढता और सुनता आया था। इनमे बडे-बडे नेता भी थे, पर यह खबर पाकर कि उसका दोस्त जेल मे था उसे आघात-सा पहुचा। मध्यमवर्ग के रूढियो मे जकडे हुए वातावरण मे पालन-पोषण होने के कारण अनवर जेलखाने को एक बुरी जगह समझने लगा था, जहा चोर, डाकू और बदमाश लोग रखे जाते थे। लेकिन अब हालत बदल गई थी और जेल मे सज़ा काटना बडी इज्जत की बात समझा जाने लगा था। देश-भर मे हजारो लोग जेल जा रहे थे। अखबारो मे इतनी जगह नही थी कि उन सबके नाम छाप सके। कुछ दिन बाद उसके पास अमृतसर डिस्ट्रिक्ट जेल से रतन का खत आया।

"मेरे प्यारे दोस्त अनवर, तुम्हे यह जानकर खुशी होगी कि मैं यहा आजकल अपनी सुसराल मे हू "

सुसराल ! रतन ने जेल को सुसराल कहा था और फिर जेल के जीवन का वर्णन किया था। वहा वह बहुत खुश मालूम होता था। उसके साथ काग्रेस और खिलाफत के बहुत-से कार्यकर्ता थे। रतन ने बडे गर्व से लिखा था—"मैं यहा सबसे छोटा हू और सब लोग मेरा बेहद ध्यान रखते है। मेरा साल-भर की स्कूल की पढाई का तो हर्ज होगा पर यहा बहुत-से विद्वान लोग हैं जो मुझे हर वक्त कुछ न कुछ सिखाने को तैयार रहते है। मुझे यकीन है कि यहा मैं स्कूल के मुकाबले मे ज्यादा काम की बाते सीखूंगा।" ज़ाहिर है कि रतन मानसिक स्तर पर अनवर से बहुत आगे था। अनवर का दिमाग अभी तक बच्चो जैसा था।

सुसराल ! जेल हिन्दुस्तान के लाखो लोगो के लिए सुसराल बन गई थी। जब भी कोई गिरफ्तार किया जाता था तो उसके दोस्त और साथी उसे हार

पहनाते थे, उसपर फूलो की वर्षा करते थे, उसे बधाइया देते थे, उससे देर तक हाथ मिलाते थे और गले मिलकर हस-हसकर उसे इस तरह विदा करते थे जैसे वह सचमुच अपनी दुलहिन को लेने जा रहा हो।

एक दिन वह भी आया जब अकबरअली ने काका रामेश्वरदयाल और अपने दूसरे दोस्तो के साथ बातचीत के दौरान मे बिलकुल इस ढग से कहा जैसे वे व्यापार के काम से अमृतसर या कानपुर जाने की बात कहते थे, "कल मैं सुसराल जा रहा हू।"

कोने मे बैठे हुए अनवर का दिल धक् से रह गया और उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उसके दिल मे छुरा उतार दिया हो। इस विचार से कि उसके अब्बा साल-भर के लिए या शायद दो साल के लिए चले जाएगे, अनवर को बहुत दुख हो रहा था। लेकिन साथ ही यह उसके लिए बडे गर्व की भी बात थी। अनवर जानता था कि अब वह गर्व से अपना सिर ऊंचा करके चल सकेगा और अपने मित्रो से कह सकेगा, "मेरे अब्बा भी सुसराल गए है।" और सब लोग उसकी उसी तरह इज्जत करेगे जैसे किसी बहादुर आदमी के बेटे की इज़्ज़त की जाती है।

दूसरे दिन अकबरअली गिरफ्तार कर लिए गए और रस्मी अदालती कार्रवाई के बाद उन्हे पद्रह महीने की सजा हो गई।

अनवर को इस महान घटना की एक-एक बात याद थी। उसके अब्बा रोज के मुकाबले मे जल्दी उठे थे और नहा-धोकर उन्होने धुले हुए कपडे पहने थे और फिर अपनी दाढी पर कघा किया था। हर जुम्मे को उनका यही दस्तूर था, पर आज उन्होने हर बात की ओर कुछ ज्यादा ही ध्यान दिया था, उन्होने नहाने-धोने और कपडे बदलने मे कुछ ज्यादा ही वक्त लगाया था। जब वे तैयार हो गए तो उन्होने फूफी-अम्मा को नोटो की एक गड्डी देकर कहा, "लो, यह रखो। शायद मै काफी दिन तक वापस न लौट सकू।" फिर उन्होने अजुम को गले लगाकर उसे प्यार किया और अनवर की बाह पकडकर उसे अपने साथ जनानखाने से बाहर ले गए।

दोपहर के वक्त अनवर अपने अब्बा के साथ जुम्मे की नमाज पढने जामा

मस्जिद गया। जामा मस्जिद के लाल पत्थर सूरज की रोशनी मे चमक रहे थे। मस्जिद मे लोग खचाखच भरे हुए थे और मुअज्जिन के इशारे पर एक के बाद एक लोगो की न जाने कितनी कतारे खडी हो जाती थी। अनवर इस दृश्य से हमेशा बहुत प्रभावित होता था। उसे धर्म के बारे मे इससे ज्यादा कुछ नही मालूम था कि उसके अब्बा सचाई और सदाचार पर जोर देते थे और मौलवी साहब जन्नत और जहन्नुम की जो बाते करते थे, उससे ज्यादा अनवर को मज़हब के बारे मे कुछ भी नही मालूम था। हजारो लोगो को एकसाथ नमाज पढते देखकर, उन्हे एकसाथ उठते और एकसाथ सिजदे मे गिरते देखकर वह मन्त्रमुग्ध रह जाता था। उसके अब्बा ने अक्सर उसे बताया था कि इस्लाम मे जमात बाधकर नमाज़ पढने का जो तरीका बताया गया है उसका एक लोकतान्त्रिक आधार है। हमेशा की तरह आज भी जब अनवर ने चारो ओर नजर डाली तो उसने देखा कि सभी वर्गो के लोग कधे से कधा मिलाकर वहा नमाज पढ रहे है—कलफदार मलमल के कुरते पहने हुए गोरे-चिट्टे रईस, कढी हुई गोल टोपिया पहने हुए छोटे-मोटे दूकानदार, करखनदार और मोटे गाढे के कपडे पहने हुए किसान सभी वहा मौजूद थे। जब सारे नमाजी एकसाथ सिजदे मे गिरते थे और कुरान की आयते पढते थे तो अनवर के हृदय मे धार्मिक उत्साह के बजाय भाईचारे और बिरादरी की एक अजीब भावना पैदा होती थी।

नमाज़ के बाद एकत्र जनसमूह ने एक सार्वजनिक सभा का रूप धारण कर लिया और कई खद्दरपोश हिन्दू मस्जिद मे आए और उन्हे नमाजियो के मजमे के सामने लाल पत्थर के फर्श पर बैठने की जगह दी गई। लोगो ने भाषण दिए। सबसे आखिर मे अकबरअली का भाषण हुआ और वह सबसे अच्छा भाषण था। अनवर ने बडे गर्व के साथ अपने अब्बा को उठकर मिम्बर पर जाते देखा। घनी काली दाढी मे उनके चेहरे पर गर्व और तेज की चमक थी। उनके मच पर आते ही चारो ओर से 'अल्लाहो-अकबर' के नारे लगने लगे। इतने मे एक कोने से भीड को चीरती हुई 'इन्कलाब जिन्दाबाद' की आवाज सुनाई दी और फौरन भीड ने नारा उठा लिया। बार-बार लोगो ने एक आवाज से इस नारे को दुहराया और इस गूजते हुए स्वर की लहरे मच

की ओर बढती रही। जनता के उत्साह के इस प्रथम प्रदर्शन के बाद अकबर-अली ने अपना भाषण शुरू किया। अनवर उस आवाज़ से भली भाति परिचित था। अकबरअली की आवाज ज़रूरत के मुताबिक बहुत सख्त भी हो जाती थी और बहुत नर्म भी। अपनी इसी आवाज मे उन्होने बताया कि विदेशी शासन मे लोगो को कितने जुल्म और कितनी बेइन्साफिया सहनी पडती थी, किस तरह लोगो को जलील किया जाता था। उन्होने बताया कि इतिहास मे कितनी ही बार योरुप की ताकतो ने तुर्की के टुकडे-टुकडे कर देने की कोशिश की थी। उन्होने जलियावाला बाग के कत्ले-आम का जिक्र इतने जोशीले शब्दो मे किया कि कई सुननेवालो की आखो मे आसू आ गए।

उन्होने हजारो गिरफ्तारियो का ज़िक्र किया, जिसमे मुहम्मदअली और शौकतअली भी शामिल थे और यह ऐलान किया कि और भी बहुत-से लोग गिरफ्तार किए जाएगे। शायद इसी मस्जिद मे मीटिंग के बाद कुछ लोग गिरफ्तार किए जाए। लेकिन साथ ही उन्होने यह भी कहा कि जनता शात रहे और अपने-आपको काबू मे रखे। उन्होने कहा, "महात्मा गाधी ने कसम ली है कि हमारी आजादी की लडाई अहिसा की बुनियाद पर लडी जाएगी और हम उन्हे मायूस नही करेगे।" जब उन्होने अपना भाषण खत्म किया तो लोगो ने फिर 'अल्लाहो-अकबर' और 'इन्कलाब ज़िन्दाबाद' के नारे लगाए। अकबरअली के भाषण के दौरान मे अनवर ने उनके एक-एक शब्द को बडे ध्यान से सुना, भले ही उसकी समझ मे हर बात न आई हो। वह खुशी और गर्व के मारे फूला नही समा रहा था। "मेरे अब्बा सचमुच कितने शानदार और होशियार आदमी है!"

मीटिग खत्म हुई और लोग मस्जिद के तीन फाटको से बाहर निकलने लगे। घबराहट मे अनवर अपने अब्बा का कोट पकडे हुए उनके साथ चिपका रहा। उसे डर था कि कही वह इस भीड मे अपने अब्बा से अलग न हो जाए। भीड के साथ वे भी मस्जिद के पूर्वी फाटक से बाहर निकले। इतने मे पुलिस के एक दारोगा छ:-सात सिपाहियो के साथ वहा आ पहुचे और अकबरअली के पास आकर बडी शराफत से बोले, "अकबरअली साहब, आप मेहरबानी करके मेरे साथ कोतवाली तक चलिए।"

हर आदमी जानता था कि इसका क्या मतलब है। अनवर को भी कोतवाली

के इस बुलावे के बारे में किसी तरह का शुबहा नही था। वह जानता था कि उसके अब्बा वहा गिरफ्तार कर लिए जाएगे। न जाने क्यो वह इस बात के बारे मे नही सोच रहा था कि उसकी अपनी जिन्दगी मे कितनी गडबडी पैदा होगी बल्कि उसे इस बात पर ताज्जुब हो रहा था कि उसके अब्बा को गिरफ्तार करने के लिए जो पुलिस का अफसर आया था वह भी हिन्दुस्तानी था। बडे आश्चर्य के साथ वह दारोगा साहब की खाकी पगडी के कलफदार तुर्रे को घूरता रहा। फिर उसकी नजरे नीचे उतरी और उनकी काली चमकदार पेटी और उतने ही चमकदार काले चमडे के केस मे रखे हुए रिवाल्वर पर जम गई।

"अच्छा, तो सुसराल से बुलावा आ गया," अकबरअली ने हसते हुए कहा। "चलिए, मैं तो तैयार हू।"

लेकिन जो लोग वहा जमा थे उनका रवैया दूसरा ही था। उन्होने चिल्लाकर कहा, "नही, यह नही हो सकता! इस दारोगा को शर्म नही आती? गद्दार कही का! इस तरह के हिन्दुस्तानी तो अग्रेजो से भी बदतर है। उतार लो इसकी पगडी।" अनवर ने देखा कि दारोगा साहब के चेहरे का रग उड गया, उनकी ऐठी हुई मूछे कापने लगी, उनकी रगे तन गई और उनका हाथ रिवाल्वर पर पहुच गया। अनवर समझ गया कि कोई गडबड होनेवाली है। वहा हजारो की तादाद मे लोग जमा थे और पुलिसवाले थे कुल छ-सात। लोगो की आवाज मे गुस्सा बढता जा रहा था। "टोडी बच्चा! गद्दार! यह अपने को समझता क्या है? कही का लाट साहब है? ह:, ह, ह! और अब लाट साहब को भी कौन पूछता है!" इतने मे किसी हिम्मतवाले ने जोर का एक हाथ मारा और दारोगा साहब की पगडी धूल चाटने लगी। लोगो ने बहुत गुस्से मे आगे बढकर दारोगा साहब को घेर लिया था और वे भीड मे इस तरह घिर गए थे कि अपना रिवाल्वर भी नही निकाल सकते थे। दारोगा साहब की आखो मे खौफ था। अनवर यह सोचकर घबरा उठा कि 'ये लोग उसे मार डालेगे। ये लोग उसे मार डालेगे।' लेकिन इतने मे भीड की गुस्से से भरी हुई आवाजो के ऊपर अकबरअली की गूजती हुई आवाज सुनाई दी—"भाइयो, यह मत भूलिए कि हमने अहिंसा की कसम खाई है।" उन्होने ये शब्द बहुत नर्मी से लेकिन बहुत ही दृढता के साथ कहे थे और किसीको उनकी बात टालने की मजाल नही हो

सकती थी। भीड पीछे हटने लगी। जो लोग दारोगा साहब के बिलकुल पास खडे थे वे पीछे हटने लगे और दारोगा साहब ने अपनी पगडी फिर अपने सिर पर रख ली। उसका तुर्रा टेढा हो गया था और धूल मे भर गया था।

"अनवर, अब मै जा रहा हू," उसके अब्बा ने कहा। "मेरे पीछे ठीक से रहना। फूफी-अम्मा का कहना मानना और अगर किसी चीज की जरूरत हो तो रामेश्वर काका के पास चले जाना। अच्छा, खुदा हाफिज।" बस इतना कहकर वे दारोगा साहब के साथ चले गए। न उन्होने प्यार का कोई लफ्ज कहा, न अपने बेटे को प्यार से गले लगाया, न चलते वक्त प्यार ही किया, न पीठ पर थपथपाया ही। अनवर अपने अब्बा को अच्छी तरह जानता था इसलिए उसे इस बात की आशा ही नही थी कि वे खुले-आम अपनी भावनाओ का प्रदर्शन करेगे, फिर भी न जाने क्यो उसका हृदय अपने पिता से प्यार का कोई शब्द सुनने के लिए, उनके प्यार का कोई प्रदर्शन देखने के लिए तडप उठा ताकि बिदाई के इस क्षण की व्यथा कुछ कम हो सके। अकबरअली दारोगा साहब के साथ चल दिए और भीड भी उनके साथ हो ली। अनवर लाल पत्थर की उन सीढियो के ऊपर अकेला खडा रह गया। उन सीढियो का हर जीना पिछले जीने से ज्यादा चौडा था और सबसे नीचे सडक से मिला हुआ जो जीना था वह सबसे चौडा था। वह कुछ देर आराम करने के लिए वही सीढी पर बैठ गया, उसे पत्थर की गर्मी भी महसूस नही हुई। बडी देर तक वह वहा धूप मे बैठा रहा और यह सोचता रहा कि अब्बा के बिना उसकी जिन्दगी कैसी गुजरेगी। वह सोच रहा था कि क्या वह अब्बा के बिना रह भी पाएगा कि नही। फिर उसका ध्यान फूफी-अम्मा और अजुम की ओर गया और वह सोचने लगा कि अब्बा की गिरफ्तारी की खबर सुनकर उनपर क्या असर होगा। फिर उसे अपने अब्बा की यह बात याद आई कि "अगर किसी चीज की जरूरत हो तो रामेश्वर काका के पास चले जाना।" हा, वह दूकान पर जाकर काका से मिलेगा। जब वह चलने के लिए उठा तो उसे सामने लालकिला दिखाई दिया जिसके सदर फाटक पर यूनियन जेक लहरा रहा था। 'यह झडा यहा कितने दिन तक अभी और लहराएगा,' अनवर सीढिया उतरते हुए सोच रहा था।

इतिहास का एक कण

लाला रामेश्वरदयाल नियम के बहुत पाबद थे। उनका शरीर बहुत दुबला-पतला था और आए दिन कोई न कोई बीमारी उन्हे लगी ही रहती थी, इसलिए डाक्टरो ने उन्हे राय दी थी कि अगर वे जिन्दा रहना चाहते है तो उन्हे खाने-पीने के मामले मे बहुत परहेज करना होगा; काम करने, आराम करने और सोने का वक्त बाधना होगा। डाक्टरो ने यह भी कहा था कि वे जोश-खरोश-वाली बातो से दूर रहे, और इसीलिए उनकी बीवी उन्हे मीटिंगो मे नही जाने देती थी। लाजवती का शरीर जितना भारी था उतनी ही भारी उसकी आवाज भी थी। उसने सारी गृहस्थी को, और अपने पति को भी, मजबूती से जकड रखा था। उसके कोई बच्चा नही हुआ था और इसलिए वह अपनी सारी ममता अपने बीमार पति की देखभाल करने और उनका हद से ज्यादा ध्यान रखने मे दिखाती थी, लेकिन साथ ही यह भी चाहती थी कि जो वह कहे उसका पालन किया जाए, मानो वह उनकी पत्नी नही बल्कि उनकी मा हो। बधे वक्त से वह लालाजी को गोलिया खिलाती, दवा पिलाती, उनके गिरते हुए बालो मे तेल मलती, उन्हे खाना खिलाती और आराम करने या दूकान जाने की आज्ञा देती और अगर वे ठीक वक्त से वापस न लौटते तो उनकी खैरियत नही थी। तीसरे पहर तीन बजे से पाच बजे तक उनका आराम करने का वक्त था और अगर इस बीच मे दूकान से कोई जरूरी से जरूरी सदेश भी आता तो वह उन तक न पहुचाती। इस समय वह किसी भी प्रकार का विघ्न बर्दाश्त नही कर सकती थी।

वह अपने पति को पलग पर लेट जाने की आज्ञा तो दे सकती थी पर उनकी आखो मे नीद बुलाना उसके बस मे नही था। और आम तौर पर रामेश्वर-दयाल यह दो घटे का वक्त अजीब-अजीब बाते सोचने मे खर्च करते थे, जिनके बारे मे वे अपनी बीवी को कुछ भी बताने का साहस नही कर सकते थे। वे पडे-पडे अपने बचपन के बारे मे, अपने स्कूल के दिनो के बारे मे और अपने

दोस्तो के बारे मे सोचते रहते थे। वे सोचते रहते थे कि जवानी मे उनके दिल मे कैसी-कैसी तमन्नाए थी, कहा-कहा की यात्राए करने के मसूबे उनके दिल मे थे, और जिन्दगी मे किन रगीनियो की योजनाए उन्होने बनाई थी। परतु शरीर कमजोर होने के कारण और इरादा उससे भी कमजोर होने के कारण वे घर-गृहस्थी से बधकर रह गए थे और ब्याह हो जाने के बाद तो उनके लिए आखिरी रास्ता भी बद हो गया था। अब जिन्दगी की सारी रगीनी उनके दिमाग मे ही रह गई थी और अपनी पत्नी के नादिरशाही क्रोध से बचने का उनके पास केवल यह उपाय रह गया था कि वे दो घटे के लिए सोने का बहाना करके लेट जाते थे।

आज वे खास तौर पर अकबरअली के बारे मे सोच रहे थे। उनके दोस्त और साझेदार को जेल गए तीन महीने से ज्यादा हो चुके थे जिसकी वजह से रामेश्वरदयाल पर काम का बोझ बढ गया था। उन्हे इसका कोई दुख नहीं था, क्योकि वे अकबरअली से मुहब्बत करते थे और कौम की खिदमत मे जेल जाने के लिए उनकी बडी इज्जत करते थे। वे मन ही मन सोच रहे थे कि काश वे भी अकबरअली की तरह लम्बे-तगडे, निडर और हिम्मतवाले होते। उनका जी चाह रहा था कि काश वे भी अकबरअली के साथ जेल मे होते और उनके साथ उन दिलचस्प बहसो मे हिस्सा लेते जिनमे उन्हे बहुत मजा आता था और जो उनके दोस्त की गिरफ्तारी के बाद खत्म हो गई थी।

वे जेल मे अकबरअली से जाकर मिलने की भी सोच रहे थे। पर साथ ही उन्हे इस बात की भी फिक्र थी कि उनकी बीवी को इसका पता न चलने पाए। क्योकि उनकी पत्नी अकबरअली को बिलकुल पसद नही करती थी और हमेशा बडे तिरस्कार से उन्हे 'वह तुम्हारा मुसलमान दोस्त' कहती थी और यह बात उनके गले के नीचे नही उतरती थी कि उनके पति की एक दूसरे मजहब के आदमी के साथ इतनी गहरी दोस्ती हो। लेकिन वे जानती थी कि अब इतनी पुरानी दोस्ती को तोडना असभव था और इसलिए उन्होने किसी तरह अपने मन को समझा लिया था।

पासवाले कमरे मे कुछ आवाजे सुनकर रामेश्वरदयाल का ध्यान भग हो

गया। लाजवती किसीसे बाते कर रही थी। सहसा दूसरी ग्रावाज को पहचानकर उनका दिल खुशी से उछल पडा। वह ग्रनवर की ग्रावाज थी।

"मैंने तुमसे कह दिया है कि लालाजी सो रहे है और मैं उनको जगा नही सकती," लालाजी ने अपनी पत्नी को कहते सुना। "अगर तुम्हे मिलना ही है तो कल दूकान पर मिल लेना।"

"लेकिन काकी मैं अकबरअली साहब का बेटा अनवर हू। मेरे अब्बा ने कहा था कि अगर कोई जरूरत पडे तो काका से मिल लेना। सुबह मुझे स्कूल जाना होता है। इसलिए अगर आपको कोई एतराज न हो तो काका के उठने तक मैं यहा इतजार कर लूगा।" अनवर की आवाज़ मे बडी शिष्टता और विनम्रता थी, पर ललाइन पर उसका कोई असर नही हुआ।

"नही, नही। तुम किसी और वक्त उनसे मिल लेना। मालूम नही कितनी देर मे उठेगे।"

"अच्छी बात है काकी। काका से इतना कह दीजिएगा कि अनवर आया था।" अनवर के स्वर मे घोर निराशा थी। वह निराश होकर वापस जा रहा था।

"अनवर! अनवर! अदर आ जाओ। मैं जाग रहा हू।" उन्होने चिल्लाकर कहा और अनवर भागकर कमरे मे पहुच गया। उसका चेहरा खुशी से खिला हुआ था। लाजवती भी झुंझलाई हुई उसके पीछे-पीछे आईं और उन्होने तीसरे पहर का आराम करने का नियम भग करने के लिए अपने पति को घूरकर देखा और फिर झल्लाकर पैर पटकती हुई कमरे के बाहर चली गईं।

"कहो बेटा, कैसे हो?" रामेश्वर काका ने बडे प्यार से अनवर को गले लगाकर कहा। वे अनवर को हमेशा 'बेटा' कहते थे और हालाकि इसमे कोई असाधारण बात नही थी कि पिता के मित्र पिता जैसा व्यवहार करे पर अनवर को इससे हमेशा उलझन होती थी। उसके अब्बा अपनी मुहब्बत को इतना कम ज़ाहिर करते थे कि इस तरह के लाड-प्यार से अनवर को कुछ शर्म भी आती थी और वह कुछ झुंझलाता भी था।

"तो बेटा, बताओ किस काम से आना हुआ?" अजुम और फूफी-अम्मा और खुद अनवर के स्वास्थ्य और उसकी स्कूल की पढाई के बारे मे सारी पूछ-ताछ करने के बाद उन्होंने पूछा।

"काका, जेल से अब्बा का खत आया है," अनवर ने बडे उत्साह से कहा। "उन्होने लिखा है कि मैं आपके साथ उनसे मिलने आ सकता हू। हम दोनो को सरकार से उनसे मिलने की इजाजत मिल सकती है। काका, आप डिप्टी-कमिश्नर को खत लिख दीजिए और हम लोग जल्दी उनसे मिलने चले। तीन महीने से मैंने अब्बा को नही देखा है। क्या हम लोग कल चल सकते है ?"

रामेश्वरदयाल लडके की अधीरता पर बडे स्नेह से मुस्करा दिए। "हा, हा अनवर। तुम्हारे अब्बा से मिलने जरूर चलेगे। लेकिन मुलाकात की इजाजत लेने मे एक दिन से ज्यादा का वक्त लग जाएगा। पर तुम चिन्ता न करो। जब सब कुछ तै हो जाएगा तो मै तुम्हे खबर कर दूगा।"

अनवर को यह जानकर बहुत सतोष हुआ कि रामेश्वर काका अब्बा से मुलाकात का इतजाम करने की पूरी कोशिश करेगे। वह चलने के लिए उठा पर उसके काका ने उसे रोक लिया।

"जरा रुको अनवर, यह लो।" और इतना कहकर उन्होने तकिये के नीचे से एक रुपया निकालकर उसकी तरफ बढा दिया। अनवर के अब्बा उसे खर्च करने के लिए रोज सिर्फ एक आना देते थे। चादी का चमकता हुआ रुपया देखकर अनवर बहुत खुश हुआ। पर उसका पालन-पोषण बहुत सख्ती के वातावरण मे हुआ था और उसे इस प्रकार के उपहार लेने से मना किया गया था।

"एक रुपया काका !" उसने आश्चर्य से कहा। "मै इसका क्या करूंगा ?"

"ले लो बेटा," और यह कहकर रामेश्वरदयाल ने रुपया उसके हाथ मे रखकर जल्दी से उसे कमरे के बाहर कर दिया।

जेल की ऊची-उची दीवारे किसी किले की दीवारे लगती थी। लोहे के बडे-से फाटक मे मोटी मोटी सलाखे लगी थी, लेकिन अनवर और रामेश्वरदयाल के अदर आने के लिए फाटक की एक छोटी-सी खिड़की खोल दी गई। एक सतरी कधे पर सगीन लगी हुई बदूक रखे, उस बरामदे के आगे पहरा दे रहा था जिसमे जेल के दफ्तर के दरवाज़े खुलते थे। जिस समय उन्हे सुपरिटेडेट के दफ्तर मे ले जाया जा रहा था उस समय अनवर बहुत डर रहा था। कहानियो मे उसने सुना

और पढा था कि लोगो को किस तरह तहखानो मे डाल दिया जाता था और उन्हे कैसी-कैसी यातनाए दी जाती थी। इस समय उसकी कल्पना मे वही चित्र आ रहे थे। वह समझ रहा था कि इस जेल का सुपरिंटेडेट भी वैसा ही कोई पिशाच होगा। लेकिन वह तो बहुत ही शरीफ आदमी निकला। वह कुछ थका हुआ जरूर मालूम पडता था लेकिन उसने अनवर को देखते ही मुस्कराकर उसका स्वागत किया। रामेश्वर काका ने उसे मुलाकात की इजाज़त दिखाई और सुपरिटेंडेट उन्हे बगलवाले कमरे मे ले गये जहा कुछ राजनीतिक कैदी बैठे अपने रिश्तेदारो और दोस्तो से बाते कर रहे थे। एक वार्डर कोने मे स्टूल पर बैठा चुपचाप उन्हे देख रहा था।

"तुम्हारे अब्बा अभी एक मिनट मे यहा आते हैं," सुपरिटेंडेट साहब ने अनवर से कहा और उन लोगो से बैठने को कहकर बाहर चले गए।

अनवर ने चारो तरफ नजर दौडाकर कमरे को देखा। सुपरिंटेडेट के कमरे से वे जिस दरावजे से निकलकर आए थे उसीकी बगल मे एक दूसरा दरवाज़ा था। शायद यही जेल के अदर जाने का दरवाजा था। उस कमरे मे एक ही खिडकी थी जिसमे से चारो तरफ से घिरे हुए आगन मे कुछ कैदी जेल के मोटे कपडे पहने हुए काम करते दिखाई दे रहे थे। वे सिरो पर टोकरिया रखे ईंटे और गारा और सीमेट ढोकर कही ले जा रहे थे। शायद जेल के अदर कोई इमारत बन रही थी। अनवर को यह देखकर बडा तरस आया कि उनमे से कुछ के पैरो मे बेडिया पडी हुई थी ताकि वे भाग न सके। रामेश्वर काका ने बताया कि ये बहुत खतरनाक कैदी है जिन्हे कत्ल या डाके के जुर्म मे लम्बी-लम्बी सज़ाए दी गई है। अनवर पर पहली प्रतिक्रिया यह हुई कि उसे इस बात पर बडी झुंझलाहट हुई कि उसके अब्बा को, जो सबसे ज्यादा शरीफ आदमी थे, ऐसे गुडो और बदमाशो के साथ रखा जाए। उसे यह बात भी समझ में नही आती थी कि आखिर लोग दूसरे लोगो को लूटते क्यो है या उनका खून क्यो कर डालते है।

वह इसी समस्या पर विचार कर रहा था, जिसपर बहुत पहले से उससे बडे-बडे विचारक अपना सिर खपाते आए थे। इतने में जेल के अदर जानेवाला दरवाज़ा खुला और उसके अब्बा कमरे मे दाखिल हुए।

"अब्बा!" अनवर खुशी के मारे चिल्लाया और अपने अब्बा के गले से

लिपट जाने के लिए आगे बढा । अकबरअली ने हमेशा की तरह बडे शात भाव से अपने बेटे की पीठ थपथपाई और अपने प्रेम का इससे अधिक कोई प्रदर्शन किए बिना उन्होने बडे तपाक से रामेश्वरदयाल से हाथ मिलाया । फिर उन्होने उन दोनो से इशारे से कुर्सी पर बैठ जाने को कहा और खुद भी एक कुर्सी लेकर उनके पास बैठ गए ।

दोनो दोस्त बाते कर रहे थे और अनवर अपने अब्बा को देख रहा था। वे पहले से कुछ दुबले हो गए थे और उनका चेहरा कुछ पीला पड गया था। लेकिन वे हमेशा की तरह ही हसमुख थे और बारी-बारी से कभी वे अपने साझेदार से व्यापार की बाते करते और कभी अपने बेटे से घर का हालचाल पूछते । लेकिन अनवर जेल मे अब्बा की जिंदगी के बारे मे जानने के लिए बेचैन था । अकबरअली उन लोगो मे से नही थे जो अपनी मुसीबतो का दुखडा रोते और खास तौर पर अपने बेटे के सामने । उन्होने अनवर को बताया कि जेल मे उन्हे किसी तरह की तकलीफ नही थी । उन्होने कहा, "मै आजकल बहुत-सी किताबे पढ रहा हू, जो काम मै कारोबार मे फसे रहने की वजह से बाहर नही कर पाता था और मेरे साथ यहा बहुत अच्छे लोग है।" उसी जेल मे राजनीतिक कैदियो मे वकील और बैरिस्टर, बडे-बडे विद्वान, प्रोफेसर, मौलवी और पडित थे और उनके बीच दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक समस्याओ के बारे मे लम्बी-चौडी बहसे चलती रहती थी । अनवर के मन मे इस बात से बडा कौतूहल पैदा हुआ और उसने अपने अब्बा से पूछा, "क्या यहा लडके भी है—मेरा मतलब है मेरी उम्र के लडके ?" और जब उसके अब्बा ने जवाब मे 'हा' कहा तो उसने अपने मन मे फौरन फैसला कर लिया, वह भी वही आएगा जहा उसके अब्बा थे ।

जब मुलाकात का वक्त पूरा हो गया तो सुपरिटेडेट ने एक बार फिर बडी विनम्रता से आकर उन्हे इस बात की सूचना दी और उन्होने एक-दूसरे से बिदा ली । अनवर ने सुपरिटेडेट साहब से हाथ मिलाया और रामेश्वरदयाल ने, जो स्वभावत. बहुत विनम्र थे, सुपरिटेडेट साहब को उनकी शिष्टता के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया । लेकिन जब वे बरामदे से निकलकर उसी छोटी-सी खिडकी के रास्ते बाहर की रोशनी मे निकले तो अनवर के मन मे यह विश्वास पैदा हुआ कि वह जल्द ही फिर जेल आएगा, लेकिन इस बार किसीसे मिलने

नही बल्कि कैदी बनकर।

वही हिन्दुस्तानी जो अभी कुछ दिन पहले तक कानून के पाबद और शाति-प्रेमी थे उन्हे अचानक न जाने क्या हो गया था ! उन्हे अचानक न जाने क्यो जेल जाने का शौक पैदा हो गया था—व्यापारियो ने अपनी दूकाने छोड दी, विद्यार्थियो ने स्कूलो और कालेजो मे अपनी पढाई छोड दी, मुल्लाओ और पुरोहितो ने अपने-अपने मस्जिद-मदिर छोड दिए, औरते जनानखाने की ऊची-ऊची दीवारो के बाहर निकल आई, वकीलो को जिस कानून की हिफाजत करना सिखाया गया था उसी कानून को वे खुद तोडने लगे, बडे-बडे रायबहादुरो और खानबहादुरो ने अपने खिताब वापस कर दिए। सरकारी नौकर राज के दुश्मनो से जा मिले—और ये सब लोग जाकर जेलो मे भर गए। ससार के इतिहास मे इससे पहले कभी भी इतने बहुत-से लोग अपनी मर्जी से जेल नही गए थे।

जब से अनवर जेल मे अपने अब्बा से मिलकर आया था उस वक्त से उसपर जेल जाने का भूत सवार था। वह मोटे खद्दर के कपडे पहनने लगा था और गाधी टोपी लगाने लगा था, जिसे अब विद्रोह की निशानी समझा जाने लगा था। रात को जब वह अपने कमरे मे अकेला होता और घर के बाकी लोग सो जाते तो वह चुपचाप अपना बिस्तर चारपाई पर से उतारकर नीचे जमीन पर बिछा लेता ताकि उसे फर्श पर सोने की आदत हो जाए। उससे किसीने कहा था कि जेल मे बहुत खुरदुरे कम्बल ओढने के लिए दिए जाते है, इसलिए वह भी अब्बा की दूकान से अपने लिए ऐसा ही एक कम्बल ले आया था। वह काला कम्बल था और उसके रोए बहुत सख्त थे और उसमे से एक अजीब-सी बू आती थी लेकिन अनवर ने उसकी आदत डाल लेने की ठान ली थी। रोज रात को वह नर्म रेशमी लिहाफ छोडकर उसी कम्बल को ओढकर सो जाता था, हालाकि शुरू-शुरू मे आदत न होने की वजह से उसे नीद बिलकुल नही आती थी। धीरे-धीरे उसे इसकी आदत पड गई और अपनी इस कामयाबी पर वह मन ही मन बहुत खुश भी हुआ। लेकिन बहुत सवेरे ही और लोगो के जागने से पहले वह उठ जाता और बिस्तर फिर चारपाई पर लगाकर कम्बल

गद्दे के नीचे छिपा देता। अगर कोई उसे यह तपस्या करते हुए देख लेता तो वह शर्म से मर जाता।

वह स्कूल जाता रोज था पर पढाई मे उसका मन नही लगता था। उसे जुलूसो मे और गिरफ्तारियो की खबरो मे और किसी न किसी नेता की गिरफ्तारी पर आए दिन होनेवाली हड़तालो मे ज्यादा दिलचस्पी थी। चौराहो पर विलायती कपडे की जो होली जलाई जाती थी वह उसके लिए एक नई दिलचस्पी का सामान था। सडक के बीचोबीच विलायती कपडो की बहुत बडी-बडी होलिया जलाई जाती थी और बेहद कीमती सूट, शेरवानिया, औरतो की जार्जेट की साडिया और ज़री के ब्याह के जोडे आग की इन लपटो मे झोक दिए जाते थे। लडको के लिए यह भी एक खेल था और कुछ लड़के तो अपने घर से कपडे चुराकर ले आते थे और इस होली मे जला देते थे। अक्सर यह दृश्य देखने मे आता था कि कोई लडका आगे-आगे कोई रेशमी कोट या शेरवानी लिए भागा चला आ रहा है और उसके पीछे-पीछे गुस्से मे लाल-पीला होता हुआ उसका बाप उसे कोसता और गालिया देता चला आ रहा है और इससे पहले कि बाप लडके को रोक सके वह कपड़ा आग की नजर हो चुकता था और लडका बडी ढिठाई से अपने बाप की तरफ इस तरह देखता था मानो कह रहा हो कि अब जो सज़ा आप चाहे दे ले। लेकिन देशभक्ति का इतना ज़ोर था कि बाप को सबके सामने अपने बेटे को डाटने की भी हिम्मत नही पडती थी, उसे डर रहता था कि कही लोग उसे गद्दार न ठहरा दे।

अनवर ने भी फूफी-अम्मा के डर के मारे कुछ विलायती कपडे अलग छिपाकर रख छोडे थे और उन्हे वह एक-एक करके लाकर इस आग मे झोक देता था। जाहिर है कि फूफी-अम्मा इस बात के बिलकुल खिलाफ थी कि अच्छे-अच्छे नये कपडे इस तरह जला दिए जाए। अनवर ने एक चमकदार रेशमी शेरवानी, जो पिछली ईद पर उसके लिए बनवाई गई थी, बचाकर रख छोडी थी। लेकिन जब आदोलन ने ज़ोर पकड़ा और ज्यादा से ज्यादा तादाद मे नेता पकडकर जेल मे बद किए जाने लगे और ढेरो विलायती कपडा रोज़ जलाया जाने लगा तो अनवर भी ज्यादा समय तक अपने को वश मे न रख सका। वह जानता था कि उस शेरवानी को जलते देखकर उसे बडा दु ख होगा, लेकिन देशभक्ति के लिए तो अपनी प्यारी से प्यारी चीज की भी कुरबानी दे देनी

पडती है। अगर वह अपना जी कडा करके अपनी शेरवानी भी नही जला सकता तो फिर वह जेल कैसे जाएगा ?

एक दिन सुबह नाश्ता करने के बाद वह अपने कमरे मे गया और शेरवानी निकालकर उसने बडी हसरत-भरी निगाह से उसे आ'खिरी बार देखा और फिर उसे एक कागज़ मे लपेट लिया। अपनी स्कूल की किताबो के नीचे एक बडल छिपाए वह चुपके से घर से खिसक रहा था कि इतने मे उसने गली मे एक तागा आकर रुकने की आवाज़ सुनी और बाहर निकलते ही वह अपने ताया-अब्बा अमजदअली से टकराते-टकराते बचा। वे अभी-अभी तागे से उतरे थे और उनका चपरासी उनका सदूक लिए हुए उनके पीछे-पीछे आ रहा था।

"सलाम, ताया-अब्बा।" अनवर बस इतना कहकर जल्दी से आगे बढा।

"जीते रहो बेटा," ताया-अब्बा ने अपनी आदत के मुताबिक नाक के सुर मे बडी बेपरवाही और रुखाई से कहा। "इतनी जल्दी कहा चल दिए ?"

"स्कूल जा रहा हू, ताया-अब्बा !" अनवर किसी सूरत से अपनी जान छुडाकर वहा से भाग निकलना चाहता था।

अमजदअली कचहरी मे बरसो तक मुजरिमो को देखते-देखते हर चीज़ को शुबहे की नजर से देखने के आदी हो चुके थे; उन्होने फौरन भाग लिया कि दाल मे कुछ काला ज़रूर है। अनवर किसी चीज़ को अपनी किताबो के नीचे छिपाने की कोशिश कर रहा था।

"यह क्या है ?" उन्होने पूछा।

अनवर जानता था कि उसके ताया-अब्बा उसे कभी भी यह शेरवानी विलायती कपड़ो की होली मे जलाने नही देगे। फूफी-अम्मा ने उसे पहले ही बता रखा था कि वह अपने छोटे भाई से इसलिए खफा थे कि वह 'इन बागी काग्रेसियो के साथ अपनी औकात खराब कर रहा है और जेल जाकर उसने खानदान के नाम पर बट्टा लगा दिया है।' अनवर जानता था कि अगर उन्होने देख लिया कि उस बडल मे क्या है तो उसका सारा बना-बनाया खेल बिगड जाएगा।

"कुछ नही ताया-अब्बा, कुछ भी तो नही," उसने घबराहट में अटक-अटककर जवाब दिया और वहां से भाग खडा हुआ। उसके ताया-अब्बा चिल्ला-चिल्लाकर उसे रोक रहे थे पर उसने इसकी ओर कोई ध्यान ही नही दिया।

उस दिन जब अनवर रात को घर लौटा तो ताया-अब्बा उसका इंतज़ार कर रहे थे। हर तरफ एक अजीब तनाव और खामोशी थी। फ़ूफी-अम्मा और आपा अजुम के चेहरो पर उसने गहरी चिन्ता के चिह्न देखे।

"अनवर !" अमजदअली की आवाज़ मे वह कडक थी जिसके आगे पुराने से पुराने मुजरिम भी उनकी कचहरी मे पेश किए जाने पर थरथर कापने लगते थे।

"जी ताया-अब्बा," अनवर ने दबी जबान मे उत्तर दिया।

"सारे दिन कहा रहे ? बोलो ! बताओ !" और जब बेहद गुस्से में पूछे गए इस सवाल के जवाब मे अनवर चुपचाप खडा रहा, जैसे वह गूगा हो गया हो, तो अमजदअली ने खुद अपने सवाल का जवाब दिया। "अगर तुमने न बोलने की कसम खा रखी है तो मैं बताता हू कि तुम कहा थे। तुम काग्रेस और खिलाफत के इन बदमाशो के साथ दिन-भर वाही-तबाही घूमते रहते हो, गैर-कानूनी जुलूसो मे हिस्सा लेते हो और विलायती कपडा जलाते हो। सुबह तुमने मुझसे कहा था कि तुम स्कूल जा रहे हो लेकिन तुम वहा गए ही नही। मै तुम्हारे हैडमास्टर साहब से मिला था। वे तुम्हारी हरकतो से बहुत नाराज है।"

सारे देश मे हर तरफ जो शानदार, जोश दिलानेवाली और दिल मे एक लहर पैदा कर देनेवाली घटनाए हो रही थी वे एक क्षण मे खाक मे मिला दी गई, उनमे गौरव या देशभक्ति का गुण बाक़ी ही नही रह गया। तहसीलदार साहब की सरकारी नज़रो मे ये सारी घटनाए उन गुडो और शोहदो की शर्मनाक हरकते थी जो गोली से उडा दिए जाने के लायक़ थे। अनवर बौखला गया। उसने सोचा, शायद ताया-अब्बा ठीक ही कहते हो। लेकिन···

"लेकिन ताया-अब्बा, फिर अब्बा क्यो इस चक्कर मे पडे ? अगर जेल जाना अच्छा काम न होता तो वे कभी ऐसा न करते।"

"या खुदा !" अमजदअली का क्रोध यह सुनते ही भडक उठा। "तूने भी मुझे कैसा भाई दिया है—और कैसा भतीजा। सरकार ने तो इन गैरकानूनी हरकतों को कुचलने मे मेरी खिदमतो से खुश होकर मुझे एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिश्नर बना दिया है और हमारे खानदानवाले सरकार का शुक्रिया किस तरह अदा कर रहे है ! इन सुअर के बच्चो का—गाधी और मुहम्मदअली

और शौकतअली का—साथ देकर।"

वे इसी तरह बमकते रहे और आखिर मे फैसला करते हुए बोले, "उस अहमक अकबर ने तो जो कुछ किया है उसे मै मिटा नही सकता, लेकिन मैं इस बात को कतई बर्दाश्त नही कर सकता कि अब उसका लडका खानदान को सरकार की नजरो मे और गिरा दे। अनवर, कल सुबह तुम्हे मेरे साथ गुडगाव चलना होगा। यहा तुम्हारी फूफी-अम्मा तुम्हारी देखभाल नही कर सकती। तुम्हारे अब्बा जब तक जेल से लौटकर नही आ जाते तब तक मैं तुम्हे अपनी निगरानी मे रखूगा।"

उस रात अनवर ने न खाना खाया न उसे नीद आई। उसके ताया-अब्बा ने आज जिस तरह उससे बात की थी वैसे आज तक कोई उससे नही बोला था, और उसके अब्बा के इस तरह बोलने का तो सवाल ही नही पैदा होता था। उनकी यह बेइसाफी उसके दिल को खुरचती रही। उसे सबसे बुरी तो वह बात लगी थी जो उन्होने उसके अब्बा के बारे मे कही थी। हालाकि जिस वक्त उन्होने उसके अब्बा के बारे मे वे बाते कही थी तो गुस्से के मारे उसकी ज़बान बन्द रह गई थी, लेकिन बाद मे उसका जी चाह रहा था कि वह जाकर अमजदअली से कह दे कि वे तहसीलदार हो या एक्स्ट्रा-असिस्टेट कमिश्नर पर वे उसके अब्बा के जूतो की खाक के बराबर भी हैसियत नही रखते है। उसका जी चाहता था कि वह जाकर उनसे कह दे कि उनके जैसे लोगो को आम लोग गद्दार, टोडी और खुशामदी टट्टू समझते है। लेकिन उसके अन्दर कोई चीज़ ऐसी थी जो उसे ऐसा करने से रोकती थी। शायद इसकी वजह यह रही हो कि उसे बचपन से बडो की इज्जत करना सिखाया गया था। शायद इसकी वजह यह थी कि उसे झगडे-फसाद से स्वभावतः नफरत थी। या शायद इस वजह से कि उसका शरीर बहुत कमज़ोर था।

रात के सन्नाटे मे वह अपने बिस्तर पर पडा जाग रहा था, उसका तकिया गर्म आसुओ से भीगा हुआ था। बार-बार वह अपने मन मे कह रहा था, "मुझे अपने ताया-अब्बा से नफरत है। मुझे अपने ताया-अब्बा से नफरत है। मैं उनके साथ हरगिज़ नही जाऊंगा। मैं उनके साथ हरगिज़ नही जाऊगा।"

पडौस की मस्जिद मे मौलवी साहब लोगो को सुबह की नमाज़ के वास्ते बुलाने के लिए अजान दे रहे थे। इसी वक्त अनवर उठा और अपनी गर्म शेरवानी

पहनकर उसने गले मे एक मफलर लपेट लिया ताकि उसके कानो मे सर्दी न लगे और दबे पाव कमरे से बाहर निकल गया। बाहर आंगन मे अभी अंधेरा था। उसका पैर सोती हुई बिल्ली पर पडते-पडते बचा और बिल्ली म्याऊं-म्याऊं करती हुई एक तरफ को भाग गई। एक क्षण के लिए वह निस्तब्ध खडा रहा। अगर कोई जाग जाए तो। जल्दी-जल्दी कदम बढाता हुआ वह फाटक पर पहुंचा लेकिन उसकी कुडी इतनी ऊची थी कि वहा तक उसका हाथ नही पहुचता था। इसलिए वह एक स्टूल ले आया और घबराहट के मारे कापता हुआ स्टूल पर चढ गया। कुडी तो खुल गई पर उस डगमगाते हुए स्टूल पर वह अपना सतुलन कायम न रख सका और एक धमाके के साथ स्टूल समेत ज़मीन पर आ लगा और उसका सिर पत्थर की चौखट से टकरा गया। उस वक्त उसे चोट का होश नहीं था, उसे तो बस यह चिन्ता थी कि शोर सुनकर कही सब लोग जाग न जाए और जागकर वहा न आ जाए। बिना सोच-विचार किए उसने दरवाज़ा खोला और बाहर निकलकर सर पर पाव रखकर सुनसान गली मे भाग खडा हुआ और बडी सडक पर पहुचकर ही दम लिया। पौ फट रही थी और दरिया के उस पार पूरब की ओर क्षितिज धीरे-धीरे गुलाबी और सुनहरा होता जा रहा था। लेकिन ऊपर आकाश पर अभी तक कुछ तारे चमक रहे थे।

अनवर पहले कभी इतने सवेरे नही उठा था। वह एक विचित्र रोमाच अनुभव करने लगा। हवा तीर की तरह चुभ रही थी और जब वह मफलर अपने मुह पर लपेटने लगा तो उसे बाईं आख के ऊपर माथे पर कोई चीज़ चिपचिपी-सी लगी। खून ! यही पर उसे पत्थर की चौखट से चोट लगी थी। उसे विजय का एक विचित्र-सा आभास हुआ। लोग हमेशा उसके छोटे कद और उसके दुबले-पतले शरीर का मज़ाक उडाते थे। उसकी फूफी-अम्मा उसे हमेशा इस तरह हिफाजत से रखती थी जैसे वह कोई टूटनेवाला खिलौना हो। लेकिन उसने पत्थर पर अपना सिर फोड लिया था और सचमुच उसके खून निकल रहा था, फिर भी उसने कोई पीडा अनुभव नही की थी। और जब उसे चोट का पता लगा तब भी वह घबराया नही था। वह रोया भी नही था। उसने मर्दो की तरह उस चोट को बर्दाश्त कर लिया था। उसके अब्बा उससे इसी बात की उम्मीद रखते थे।

उसके अब्बा ! जल्द ही कुछ ही घटो मे वह उनके पास पहुच जाएगा—

जेल मे। अनवर ने तै कर लिया था कि वह कहा जा रहा है।

अनवर ने सोचा था कि जेल जाना बहुत आसान बात है। बस एक बार इरादा करने की जरूरत है, फिर कोई भी कानून तोड दो और पुलिस पकडकर कटहरेदार काली लारी मे बिठाकर ले जाएगी। अनवर ने राजनीतिक कैदियो को पहले भी ऐसी ही लारियो मे बैठकर जेल जाते देखा था।

लेकिन सरकार दूसरे ढग से सोच रही थी। उसने जेले आम मुजरिमो के लिए—चोर-उचक्को, जेबकतरो और कातिलो के लिए बनवाई थी। लेकिन अब उनके सामने एक अजीब परिस्थिति आ गई थी—ऐसी परिस्थिति जिसका सामना दुनिया की किसी भी सरकार ने इससे पहले कभी इतने बडे पैमाने पर नही किया था। हजारो ऐसे शरीफ लोगो को, जो अब तक कानून के पाबद थे और खुदा से डरते थे, अचानक न जाने क्यो जेल जाने का शौक पैदा हो गया था। दस हज़ार! बीस हजार! तीस हजार! फिर भी यह सिलसिला अभी खत्म नही हुआ था। जेलखाने ठसाठस भर गए थे। जेल के अफसरो, पुलिसवालो और मजिस्ट्रेटो पर काम का बोझ बहुत बढ गया था। वे जेल जानेवाले तीर्थयात्रियो के इस आश्चर्यजनक जुलूस से तग आ गए थे। सविनय अवज्ञा के बोझ के नीचे सरकार की पूरी मशीन चरमराने लगी थी।

इसलिए हुआ यह कि जिस वक्त अनवर ने जेल जाने का फैसला किया, उसी वक्त सरकार ने जेलो मे बहुत ज्यादा लोग न ठूसने का फैसला किया। कुछ बडे-बडे विद्रोहियो के लिए तो किसी तरह जेल मे जगह निकल भी सकती थी, पर छोटे-मोटे लोगो से निबटने के लिए कोई दूसरा रास्ता अपनाना ज़रूरी था।

घर से निकलते वक्त अनवर ने कोई खास योजना नही बनाई थी इसलिए वह निरुद्देश्य इधर-उधर भटकता रहा। थोडी देर बाद उसे अपने स्कूल के दोस्तो की एक टोली दिखाई दी जो काग्रेस का बडा-सा झडा लिए हुए जा रही थी। ये लोग किसी जुलूस मे शामिल होने जा रहे थे और उनमे से एक लडके ने बडे रोब के साथ अनवर को बताया, "आज बहुत-सी गिरफ्तारिया होनेवाली हैं।" गिरफ्तारिया! इसीकी तो अनवर को तलाश थी।

जुलूस बहुत लम्बा था। उसका एक सिरा फतेहपुरी पर था और दूसरा

पत्थरवाले कुए पर। अनवर और उसके सभी दोस्तो के मन मे सघर्ष मे कूद पडने की धुन समाई हुई थी, वे लोग अपनी इसी धुन मे जुलूस के आगे पहुच गए। एक दाढीवाले मौलवी साहब और गेरुए वस्त्र पहने हुए एक स्वामीजी जुलूस के आगे-आगे चल रहे थे। गीत गाए जा रहे थे, नारे लग रहे थे—वही नारे जो उसने अमृतसर मे सुने थे। अनवर ने भी अपनी पतली आवाज भीड की गूजती हुई आवाज मे मिला दी। अल्लाहो-अकबर! वदेमातरम्! और पहली बार अनवर ने उन जादू-भरे शब्दो के उच्चारण का रोमाच अनुभव किया जिनसे भीड के हर आदमी के अग-अग मे एक लहर-सी पैदा हो जाती थी। भीड मे अनवर मानवता के समुद्र मे एक बूद के समान खो गया था; उसका व्यक्तित्व जनसमूह के व्यक्तित्व मे विलीन हो गया था। समूह की भावनाओ से प्रेरित होकर अनवर मे एक विचित्र परिवर्तन आ गया। अब वह शर्मीला अनवर नही रह गया था, अब वह कमजोर नही था। अब उसमे एक नई शक्ति आ गई थी, नया उत्साह और नया साहस पैदा हो गया था। उस समय वह मौत का भी सामना कर सकता था।

सडक पर रास्ता रोककर खडी हुई पुलिस के रूप मे मौत से उसका साक्षात् हुआ। सिपाही अपने कधो पर बदूके साधे खडे थे, बंदूको का मुह सीधे भीड की तरफ था। जुलूस ठहर गया। पुलिस की नाकेबदी की खबर देखते-देखते जुलूस के पीछे तक पहुच गई और पूरे जुलूस मे ऐसी गूज पैदा हुई मानो लाखो मधु-मक्खियो का झुड गुजन कर रहा हो। एक क्षण पहले जो जोश दिखाई पड रहा था वह गायब हो गया। वातावरण मे एक अजीब तनाव-सा पैदा हो गया। अनवर का स्कूल का एक साथी किशन जो औरो से छोटा था, अचानक रोने लगा। इस गभीर परिस्थिति मे यह एक हास्यास्पद घटना थी और इससे जनसमूह की भावनाओ की एकरूपता भग हो गई। वे सब अब एकाकार जनसमूह न रहकर अलग-अलग लोग बन गए थे, जिनकी अपनी-अपनी छोटी-छोटी कमजोरिया और चिंताए थी—उस छोटे-से बच्चे की तरह जो फूट-फूटकर रो रहा था।

पुलिस के एक अफसर ने आगे बढकर दोनो नेताओ को गिरफ्तारी का वारट दिखाया और वे इस तरह मुस्करा दिए मानो वे अपनी गिरफ्तारी की राह ही देख रहे थे। "तो सुसराल का न्यौता आ गया। चलिए, मैं तैयार हूं," दाढीवाले मौलवी साहब ने दारोगा के साथ चलते हुए कहा। गेरुए वस्त्रो-

वाले स्वामीजी ने मुडकर भीड को सबोधित करके भाषण देना शुरू किया, "भाइयो ! हमे गिरफ्तार कर लिया गया है और हम जा रहे हैं। आप लोग शात रहिएगा और याद रखिएगा कि हमने अहिंसा की शपथ ली है। हम खुद मर जाएगे पर अपने शत्रु को नही मारेगे। सत्य ही हमारा एकमात्र हथियार है।" अनवर ने पुलिसवालो की राइफलो को देखा जो सूनी नज़रो से भीड को ताक रही थी और उसके मन मे एक अस्पष्ट-सी शका पैदा हुई कि क्या सत्य से सचमुच इन राइफलो को हराया जा सकता है। अमृतसर की याद उसके दिमाग मे बिजली की तरह कौध गई। वह देख चुका था कि इस तरह की राइफले क्या कर सकती है।

दोनो नेताओ को वहा पर खडी हुई पुलिस की बहुत-सी लारियो की तरफ ले जाया गया और जब वे उन्हीमे से किसी एक मे गायब हो गए तो अनवर को सहसा याद आया कि वह क्या करने निकला था—उसे जो करना है वह जल्दी करना चाहिए नही तो मौका हाथ से निकल जाएगा। वह पुलिस की लारियो की तरफ भागा। बाकी लडके भी यह सोचकर कि कही वे अनवर से पीछे न रह जाए उसके साथ हो लिए।

"किधर जा रहे हो ?" एक पुलिसवाले ने उनका रास्ता रोककर कहा।

"मुझे भी गिरफ्तार करो," अनवर ने उत्तर दिया, "मैं भी सरकार के खिलाफ हू।" उसे यकीन था कि इस दलील के आगे पुलिसवाले लाचार हो जाएगे।

"हा, हां," बाकी लडको ने भी एक स्वर मे चिल्लाकर कहा, "हम भी सरकार के खिलाफ हैं। हम सबको भी गिरफ्तार करके जेल ले चलो।"

यह सुनकर डरावनी सूरतवाले दारोगा के चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड गई। "अच्छा, चलो बेटा," उसने कहा और अपने किसी मातहत को आख मारकर इशारा किया, "सब लड़को को गाडी मे चढा लो।"

सब लडके पुलिस की लारी की तरफ इस तरह भागे जैसे कही पिकनिक पर जा रहे हो। कोई बीस लडके रहे होगे और सब बेहद जोश मे थे—बस एक किशन को छोडकर जिसके चेहरे पर बिलकुल मुर्दनी छाई हुई थी।

जब लारी चलने को हुई तो उसने अनवर से पूछा, "अच्छा, एक बात तो बताओ। जेल में हमे मार तो नही पडेगी ?"

"नही, नही," अनवर ने उसे तसल्ली देते हुए कहा। यह कहते समय वह अपने-आपको बहुत बडा समझ रहा था और उससे इस तरह बात कर रहा था जैसे कोई बाप अपने बेटे से बात करता है, "नही, जेल मे मार नही पडेगी। बस कोठरियो मे बद कर दिया जाएगा।"

"तुम्हे कैसे मालूम ?" एक दूसरे लडके ने पूछा। यह अनवर के लिए विजय का क्षण था। उसने फौरन उत्तर दिया, "मैं इसलिए जानता हू कि मेरे अब्बा वहा है।"

"लेकिन हम लोग जा कहा रहे है ?" जब लारी पुराने किलेवाली सडक पर बाएं हाथ को मुडी तो एक लडके ने चिल्लाकर कहा, "यह तो जेल का रास्ता नही है।"

रात बहुत काफी बीत चुकी थी। चारो ओर सन्नाटा था—अधेरा और सर्दी। सडक के दोनो ओर पेडो के नीचे कुछ अजीब-अजीब शक्ले चलती-फिरती दिखाई पड रही थी। कही दूर से उल्लू के बोलने की आवाज आ रही थी और चमगादड अपने पख फडफडाते हुए रात्रि के गहन अधकार मे उड रहे थे।

अनवर को डर लग रहा था। पर बेचारे किशन की हालत तो उससे भी बुरी थी, वह तो बिलकुल दयनीय दशा मे अनवर की बाह जोर से पकडे हुए था। सर्दी के मारे उसके दात किटकिटा रहे थे और थकन के मारे उसके पाव नही उठ रहे थे। अपने दोस्त को इतनी बुरी हालत मे देखकर अनवर को अपने डर पर काबू पाने मे कुछ सहायता मिली। वह अपने को उम्र मे बहुत बडा और बेहद ताकतवर समझने लगा और किशन के प्रति उसके हृदय मे अथाह स्नेह उमडने लगा। उस छोटे-से रोते हुए बच्चे को देखकर उसके हृदय मे उसकी रक्षा करने की भावना जागरित हुई और वह यह अनुभव करने लगा कि इस सकटमय परिस्थिति मे अपने साथी की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। वह किशन को ढाढस बधाने के लिए उससे कहने लगा कि अब दिल्ली बस थोडी ही दूर है, हालाकि वह अच्छी तरह जानता था कि उसे अभी पूरे दस मील चलना है। वह किशन को विश्वास दिला रहा था कि देहात के इस भाग में कोई जगली जानवर नही है। वह अपना दिल पक्का रखने के लिए मजाक

कर रहा था, हस रहा था और देशभक्ति के गीत गा रहा था। और उसकी यह तरकीब कामयाब भी हो रही थी—सिर्फ उसीके लिए नही बल्कि किशन के लिए भी। अब उन्हे चलने मे इतनी थकन नही महसूस हो रही थी और कुछ देर बाद जब आसमान पर पतला-सा चाद निकल आया तब तो अधेरे के भूत भी भाग गए और किशन की भी इतनी हिम्मत बध गई कि उसने अनवर की बाह ढीली छोड दी।

पुलिसवालो ने योजना यह बनाई थी कि लारी को बहुत दूर देहात की तरफ ले जाया जाए और दो-दो तीन-तीन करके बच्चो को थोडी-थोडी दूर पर रास्ते मे उतार दिया जाए और उन्हे उस सर्द अधेरी रात मे पैदल घिसटते हुए घर जाने के लिए छोड दिया जाए। पुलिसवालो को पूरा यकीन था कि बिगडे हुए कमउम्र लडको के लिए यह कैद के मुकाबले मे कही ज्यादा कारगर सजा होगी। इसके अलावा इस तरह जेल मे भीड बढने का कोई खतरा नही रहेगा, क्योकि जेले यो भी ठसाठस भर चुकी थी।

दोनो लडके रात के अधेरे मे लगातार चलते चले जा रहे थे लेकिन कुछ मील चलने के बाद किशन इतना थक गया कि उसे थोडी देर सुस्ता लेने का मौका देने के लिए उन्हे हर थोडी दूर पर रुक जाना पडता था। हालाकि अनवर अपने नन्हे साथी के सामने इस बात को कभी स्वीकार न करता लेकिन मीलो तक इस तरह चलते रहने के बाद वह खुद भी थक गया था। सुबह का वह जोश, वे जुलूस, वे गीत और नारे, जेल मे अपने अब्बा के पास पहुच जाने की वह तीव्र इच्छा—ये सब चीजे सुखद अतीत की घटनाए मालूम होने लगी थी। दिन-भर के जोशो-खरोश के बाद अब उसका उत्साह शिथिल होने लगा था। अनवर किशन की हिम्मत बढाने के लिए जो गीत गा रहा था वे धीरे-धीरे बद हो गए। अब तो बात करना भी मुश्किल हो रहा था। चुपचाप गभीर मुद्रा बनाए वे सडक पर चले जा रहे थे और उनके पीछे गर्द का एक हलका-सा बादल उड रहा था।

सहसा अनवर को खयाल आया कि उसे भूख लगी है। उसने न सुबह नाश्ता किया था, न दोपहर को खाना खाया था, न रात को। उसे याद आया कि वह थका हुआ था और उसे नीद आ रही थी। भावनाओ मे एक तूफान मचा होने के कारण पिछली रात वह सोया भी नही था। उसे उस चोट की

याद आई जो सुबह उसको लगी थी और हालाकि खून बहना जल्द ही बद हो गया था पर अब फिर उसके माथे मे पीडा हो रही थी। उसे ख्याल आया कि उसे सर्दी लग रही थी और बर्फ जैसी ठडी हवा के तीर उसकी गर्म शेरवानी को बेधकर उसकी हड्डियो तक चुभ रहे थे। वह अपने गर्म और गुदगुदे बिस्तर के लिए तडप उठा। वह उस गर्म-गर्म सालन और उन ताजी चपातियो के लिए बेचैन हो उठा जो गुलाबो ने उसके लिए बनाई होगी।

थोडी दूर आगे उन्हे एक बैलगाडी के पहिये की चू-चू सुनाई दी और दोनो लडको को बहुत ढाढस बधा। सिर्फ इसलिए नही कि कुछ दूर के लिए उन्हे गाडी मे बैठकर जाने का मौका मिलेगा बल्कि उससे भी बढकर इसलिए कि उन्हे किसी आदमी का साथ मिलेगा। उन्होने जल्दी-जल्दी अपने कदम बढाए और जल्द ही बदगोभी और फूलगोभी, गाजर और मूलियो से लदी हुई उस बैलगाडी के पास पहुच गए।

गाडीवान को यह देखकर बड़ा अचरज हुआ कि दो लडके, जो अपने पहनावे से शहर के किसी खाते-पीते घराने के लड़के मालूम हो रहे थे, इतनी रात गए उस सडक पर कहा जा रहे है। लेकिन जब अनवर ने सारा किस्सा बताया तो वह झट से बोला, "बेटा, आ जाओ, यहा गाडी पर मेरे पास आ जाओ। बहुत थक गए होगे तुम तो। रात मे छोटे-छोटे बच्चो को बीस-बीस मील अकेले चलाना।—ये पुलिसवाले भी बहुत हरामी होते है।" हरामी! फिर वही गाली का लफ्ज। लेकिन उस किसान ने इसके साथ ही कुछ और ऐसी चुनी-चुनी गालियां भी दी जो अनवर ने पहले कभी सुनी भी नही थी और जिनका मतलब तो उसकी समझ से बिलकुल बाहर था।

इतनी दूर पैदल चलने के बाद वह बैलगाडी सबसे आरामदेह सवारी मालूम हो रही थी। लेकिन गाडी के झटको से उनका खाली पेट और भी खाली मालूम होने लगा था और ताजी सब्जियो की खुशबू उनकी नाक मे घुस रही थी। अनवर भूखा ज़रूर था लेकिन एक शरीफ घर मे पला होने की वजह से वह किसी अजनबी से खाने को कैसे माग सकता था।

"क्या गाजरे ले जा रहे हो?" उसने किसान से पूछा।

"हा बेटा, गाजरे हैं, मूलियां है और गोभी के फूल भी है। सब्ज़ीमडी ले जा रहा हू।"

"मुझे गाजरे बहुत अच्छी लगती है," किशन ने बिना पूछे ही कहा, "कितनी मीठी होती है।"

"हां, अच्छी तो मुझे भी लगती है," अनवर ने कहा। "जाडे मे हम लोग बहुत गाजरे खाते है और फूफी-अम्मा उनका बहुत अच्छा हलवा बनाती हैं। क्या तुम्हारी गाजरे अच्छी और मीठी है ?"

"खाकर देखो," यह कहकर उसने दोनो को कुछ गाजरे उठाकर दे दी।

धन्यवाद दिए बिना ही दोनो लडके भूखे भेडियो की तरह उनपर टूट पडे और गाजरे चबाने लगे। उन्हे इस तरह गाजरे खाते देख किसान ने सोचा, 'मै भी कितना बेवकूफ हू। मुझे पहले ही सोचना चाहिए था कि ये भूखे होगे।'

पेट भरते ही किशन तो अनवर के कधे पर सिर रखकर फौरन सो गया। पौ फट रही थी और सामने बहुत दूर दिल्ली से भी आगे अनवर को आकाश धीरे-धीरे गुलाबी होता दिखाई दे रहा था। उनके चारो ओर सन्नाटा था, हर चीज़ सो रही थी—खेत सो रहे थे, अपनी झोपडियो मे किसान सो रहे थे और छप्परो के नीचे मवेशी सो रहे थे। गाडी चू-चू करती हुई अपनी मस्तानी चाल से चली जा रही थी और बैलो के गले मे बधी हुई घटिया मधुर ध्वनि से बज रही थी। गाडीवाला भी ऊघ-ऊघकर कुछ गुनगुना रहा था।

अनवर को भी नीद आ रही थी। लेकिन चारो ओर के आश्चर्यजनक वातावरण ने उसकी चेतनाओ को जागरित कर दिया था—प्रभात का सुहाना दृश्य, देहात का शात वातावरण, मिट्टी और पेडो की मादक सुगध, चरचराती हुई गाडी का मधुर सगीत, किसान का गीत और बैलो की घटिया। उसके हृदय मे किशन के लिए अथाह स्नेह उमड पडा जो उसके कधे पर सिर रखे सो रहा था, उसका हृदय किसान के प्रति कृतज्ञता से भर उठा जिसने उन्हे गाडी पर बिठा लिया था और गाजरे खाने को दी थी 'दुनिया कितनी सुन्दर और अच्छी और अनोखी है!' उसने सब्जियो के ढेर पर सिर टिकाते हुए सोचा और धीरे-धीरे वह भी सो गया।

डरते-डरते अनवर ने घर मे कदम रखा। यह सोचकर अनवर का दिल बैठने लगा कि उसे अपने ताया-अब्बा के सामने इस बात का जवाब देना होगा

कि वह लगभग तीस घटे तक कहा गायब रहा। या शायद ताया अमजदअली को पहले ही यह पता चल गया हो कि कलवाले जुलूस मे उसने क्या हिस्सा लिया था और बाद मे पुलिस ने क्या किया था। अगर ऐसा हुआ तो बहुत कुहराम मचेगा। लेकिन अनवर कल के अनुभव से इतना खुश था कि उसे अपने ताया-अब्बा की डाट की कोई फिक्र नही थी। वह सिर्फ यह सोच रहा था कि जो कुछ होना हो वह जल्दी ही हो जाए।

घर मे उसे जो पहला आदमी दिखाई दिया वह अब्बा थे। पहले तो उसने सोचा कि शायद वह स्वप्न देख रहा है, लेकिन नही वे अकबरअली ही थे। तकियों का सहारा लगाए बैठे थे और उनके पास हकीम बेदिल बैठे उनकी नब्ज़ देख रहे थे। सहसा अनवर की समझ मे आया कि उसके अब्बा बीमार थे और इस विचार के आगे वह और सब बाते भूल गया। वह भागकर उनके पास गया और बोला, "अब्बा, अब्बा, आप वापस आ गए!"

"हा अनवर, लेकिन तुम अब तक कहां थे? मैंने सुना है कि तुम कल सुबह से घर नही आए।" उनकी आवाज़ मे कमज़ोरी थी; यह अकबरअली की पुरानी कड़कदार आवाज नही थी।

अनवर ने थोडे-से शब्दो मे सब कुछ सच-सच बता दिया और यह देखकर उसे सात्वना हुई कि उसकी बात सुनकर उसके अब्बा बडे प्यार से मुस्करा दिए। इतने मे अमजदअली चीनी के प्याले मे कोई खौलती हुई चीज लेकर वहा आए, लेकिन अब अनवर को उनसे कोई डर नही था। जब वह अपने अब्बा के पास होता था तो उसे किसीसे डर नहीं लगता था।

"अनवर, यह भी अच्छा मजाक रहता कि इधर मै छूटकर आता और उधर तुम जेल मे बद कर दिए गए होते, रहता न?"

इसपर हकीम बेदिल बोले, "मै तो कहता हू कि आपको रिहा करने मे उन्होने कोई जल्दी नही की है। अगर आपको महीने-भर भी जेल मे और रखा जाता तो आपकी सेहत बिलकुल तबाह हो जाती। यह सारी गडबड़ जेल के खाने की वजह से पैदा हुई है।"

"लेकिन मुझे यह बिलकुल अच्छा नही लगा—मैं अपनी रिहाई से बिलकुल खुश नही हू," अकबरअली बोले। "मै यहा घायल सिपाही की तरह पडा हू और दूसरे लोग लड़ रहे है। जैसे ही मेरी तबियत कुछ ठीक होगी मै अफसरो को

इत्तिला दे दूगा कि वे मुझे फिर गिरफ्तार कर सकते है ।"

इतने मे रामेश्वर काका हाथ मे अखबार लिए आए । अनवर की पीठ थपककर और हमेशा की तरह शात भाव से एक तरफ बैठकर उन्होने अपनी जाघ पर हाथ मारते हुए कहा, "अरे अकबर, तुम फिकर क्यो कर रहे हो ? क्या तुम्हे नही मालूम कि गाधीजी ने आन्दोलन वापस ले लिया है ?"

"क्या मतलब तुम्हारा ?" अकबरअली की आवाज मे फिर वही पहले-वाला जोश पैदा हो गया था।

"हा, हा, मैं ठीक ही कह रहा हू । यह देखो अखबार मे लिखा है ।"

"लेकिन क्यो ? आखिर किस वजह से ?"

"यू० पी० की चौरीचौरा नाम की किसी जगह पर कुछ पुलिसवाले मार डाले गए थे, इसलिए गाधीजी कहते है कि लोगो के दिलो मे अभी तक हिंसा है और इसलिए सिविल नाफरमानी की तहरीक वापस ली जाती है ।"

"यह सही है कि कुछ पुलिसवाले मार डाले गए । लेकिन इससे क्या हुआ ? हर आदमी तो महात्मा या सत नही बन सकता । क्या उन लोगो ने हमारे बहुत-से आदमियो को नही मारा है ?" अकबरअली के स्वर मे एक ऐसी कटुता थी जो अनवर ने पहले कभी नही देखी थी । कुछ देर रुककर वे फिर धीमे स्वर मे अपने-आप कहने लगे, "यह क्या किया ? आखिर यह क्या किया ? जब हम मजिल के इतना करीब पहुच गए थे तब हमे रोक दिया !"

लेकिन अनवर को राजनीति की चिंता नही थी । वह सिर्फ यह दुआ माग रहा था, "या खुदा किसी तरह मेरे अब्बा को सेहतयाब कर दे ।"

झंडे उतर गए

हकीम अबुलरशीद बेदिल के इलाज और फूफी-अम्मा की तीमारदारी की बदौलत अकबरअली जल्द ही चगे हो गए। पर मौत का साया उनके सिर पर मडला रहा था और उनमे एक परिवर्तन साफ दिखाई देने लगा था। वे अपना कारोबार अब भी देखते थे और बैठक में अब भी अपने दोस्तो के साथ बैठकर बाते करते थे; वे अब भी अखबार पढते थे और राजनीतिक घटनाओ पर बहस करते थे। लेकिन उनमे वह पहलेवाला जोश बाकी नही रह गया था। उनकी दाढी सफेद होने लगी थी और बीमारी की वजह से उनके चेहरे का रग भी कुछ फीका पड गया था और उनकी आवाज मे फिर कभी वह पहलेवाली गूज पैदा न हो सकी। वे काफी कमज़ोर हो गए थे और बूढे लगने लगे थे। अक्सर वे बडी देर तक बिलकुल खामोश बैठे बहुत उदास होकर कुछ सोचते रहते थे और जब कोई उनसे कुछ कहता था तो एकाएक चौक पडते थे।

अनवर भी बडे गौर से अपने अब्बा को देखता रहा। उसने देखा कि अब वे नमाज़ मे ज्यादा वक्त लगाते थे। पहले भी वे दिन मे पाच बार पाबदी से नमाज़ पढते थे लेकिन वे इसकी सारी क्रियाए इतनी फुर्ती से पूरी कर लेते थे कि ऐसा लगता था जैसे कोई मजा हुआ सिपाही फौजी कवायद कर रहा हो। लेकिन अब वे घटो जानमाज पर बैठे कुछ सोचते रहते थे या तसबीह फेरते रहते थे। अक्सर नमाज पढते वक्त उनकी आखो से आसू ढलककर उनकी दाढी मे खो जाते थे और वे कापती हुई आवाज़ मे दुआ मागते थे, "खुदा, तू बडा रहीम है, तू बडा करीम है। मेरे बच्चो पर रहम कर। हमे ईमान के रास्ते पर ले चल और बदी से हमे बचा।" और जब अनवर यह सुनता तो उसके दिल मे उस खुदा का खौफ पैदा होता जिसके सामने उसके अब्बा भी इतने लाचार थे।

कुछ और तब्दीलिया भी हुई थी। अब अकबरअली अपना ज्यादा वक्त चौधरी मुहम्मदउमर के साथ बिताते थे और अक्सर सदर बाज़ार मे उनकी

चीनी के बरतनो की दूकान पर भी जाते थे। वे पंजाबी व्यापारी हमेशा से इस बात के खिलाफ थे कि अकबरअली राजनीति मे अपना वक्त खराब करें। वे अक्सर उनसे कहते थे, "अकबर साहब, आप सियासत के झगडे इन नेताओ पर क्यो नही छोड देते और अपने कारोबार को ज्यादा वक्त क्यो नही देते ?" न जाने क्यो अनवर को चौधरी मुहम्मदउमर अच्छे नही लगते थे। उसे उनसे कोई खास शिकायत नही थी, लेकिन उनका अक्खडपन, उनकी सख्त आवाज़ और उनका बडी बेतकल्लुफी से उसकी पीठ पर धप मारना अनवर जैसे शाइस्ता लडके को बिलकुल पसद नही था।

एक दिन जब अनवर बैठक मे गया तो उसने देखा कि उसके अब्बा चौधरी मुहम्मदउमर के साथ बैठे हुए है। उनके सामने कुछ कागज़ रखे हुए थे और वे कुछ राज़ की बाते कर रहे थे। यह सोचकर कि उनकी बातो मे खलल न पडे अनवर पीछे लौटा ही था कि मुहम्मदउमर साहब ने उसे पुकारा, "आओ अनवर, तुमसे क्या चोरी हैं।" और जब वह बैठ गया तो उसके अब्बा ने कहा, "देखो अनवर, मैने अभी चौधरी साहब के साथ साझे के एक दस्तावेज पर दस्तखत किए है। सो अब इनकी चीनी के बरतनो की दूकान मे मैं साझेदार हो गया," और फिर अपनी हमेशा जैसी मुस्कराहट के साथ बोले, "अब अगर तुम्हे कभी प्लेटो या गिलासो की ज़रूरत हो तो तुम हमेशा हमारी दूकान से मुफ्त ला सकते हो।"

'हमारी दूकान !' अनवर को न जाने क्यो यह बात कुछ अच्छी नही लगी। "लेकिन अब्बा, आपका रामेश्वरदयाल काका के साथ भी तो साझा है !"

"सो तो है अनवर, लेकिन क्या मैं दो दूकानो मे साझेदार नही हो सकता ? और फिर तुम जानते हो कि जब से लड़ाई खत्म हुई है तब से कम्बलो का कारोबार बराबर मदा पडता जा रहा है। तुम्हे इन सब बातो का पता होना चाहिए, क्योकि मेरे मरने के बाद तुम्हे ही सारा कारोबार देखना होगा।"

"हा बेटा," मुहम्मदउमर साहब ने अनवर की पीठ पर एक धप मारते हुए अपनी पाटदार आवाज़ मे कहा, "मैं चाहता हू कि तुम और शफी भी आपस मे वैसे ही पक्के दोस्त बनो जैसे हम और तुम्हारे अब्बा है।"

अनवर ने मुहम्मदउमर साहब के बेटे को देखा था। बहुत बडे डीलडौल का उजड्ड किस्म का लड़का था। जब भी वह अपने अब्बा के साथ सदर बाजार

वाली दूकान पर जाता था तो शफी उसपर हमेशा कारोबार के बारे मे अपनी बेहतर जानकारी का रोब झाडता था। उसने प्राइमरी तक अपनी पढाई पूरी करके स्कूल छोड दिया था क्योकि उसके अब्बा को कारोबार मे हाथ बटाने के लिए किसीकी ज़रूरत थी। शफी का दोस्त और साझेदार बनने की बात अनवर को बिलकुल पसद नही आई। लेकिन अपने अब्बा का लिहाज़ करके उसने कुछ कहा नही और चौधरी साहब की इस बेतकल्लुफी को चुपचाप टाल गया।

अनवर ने बैठक मे बडे लोगो की बाते सुनकर बहुत कुछ सीखा था। स्कूल से आकर वह चुपचाप बैठक मे एक कोने मे बैठ जाता था और अपने अब्बा और उनके दोस्तो की बाते सुनता रहता था।

रोज किसी न किसी नई बात पर बहस होती थी और रोज अनवर कुछ नये शब्द सीखता था। गाधीजी ने असहयोग आदोलन वापस ले लिया था फिर भी सरकार ने उन्हे पकडकर जेल मे बद कर दिया था। हकीम बेदिल अखबार से उनके मुकदमे का हाल पढकर सुना रहे थे। अनवर ने सुना कि जिस वक्त कैदी को अदालत मे लाया गया तो सब लोग उसके सम्मान मे उठ खडे हुए—यहा तक कि खुद जज साहब भी खडे हो गए थे। अनवर को अब से कई बरस पहले का वह दिन याद आ गया जब उसने डाक्टर असारी के बगले के लॉन पर पतली-पतली टागोवाले एक दुबले-पतले आदमी को चर्खा चलाते देखा था। उसे वडे-बडे गोल शीशोवाली ऐनक और उस बूढे की मित्रतापूर्ण मुस्कराहट याद आ गई। और अब उसीको जेल मे बद कर दिया गया था। क्यो ? क्योकि वह अपने दुश्मनो को मारना नही चाहता था, वह एक चूहे तक को मारना नही चाहता था ? यह दुनिया अब तक अनवर के लिए एक बहुत बडी पहेली बनी हुई थी।

लेकिन एक बात वह जानता था कि उसके अब्बा ने अभी तक गाधीजी को आदोलन वापस लेने के लिए माफ नही किया था और अक्सर उनके बारे मे बहुत व्यग से बाते करते थे। और जब रामेश्वरदयाल वहा पर मौजूद न होते थे तो चौधरी मुहम्मदउमर साहब कहा करते थे, "बनिया बहरहाल बनिया होता है—आटा-दाल बेचनेवाला।"

एक दिन अचानक पहले से कोई सूचना दिए बिना रतन अनवर के घर आया। शुरू मे तो उसे पहचानना ही मुश्किल था, क्योकि उसकी उम्र को देखते हुए वह सिख लडका काफी लम्बा-तगडा हो गया था। वह सिर पर काली पगडी बाधने लगा था और जब अनवर ने उससे पूछा कि उसने पीली पगडी बांधना क्यो छोड दिया था, तो रतन ने उत्तर दिया था, "तुम नही जानते मैं अकाली बन गया हूं ?"

"अकाली ! अकाली क्या होता है ?" अनवर को अपने दोस्त के सामने अपनी जहालत का सबूत देकर बहुत शर्म आई।

"तुम नही जानते ?" नौजवानी के जोश के साथ अपने हाथ हिलाते हुए रतन ने उसे समझाया कि अकाली आदोलन किस तरह शुरू हुआ था, किस तरह यह आदोलन सिखो के गुरुद्वारो को सरकार और उसके गुर्गों के हाथो से वापस ले लेगा और यह भी बताया कि पुलिस ने सिखो को कैसी-कैसी तकलीफे दी थी, किस तरह उन्हे पीटा था और कुछ सिखो को तो जान से भी मार दिया था। उसने बताया कि अकाली एक बढती हुई इन्कलाबी ताकत है। रतन अपने शब्दो के प्रवाह मे ऐसा खो गया था कि उसे इस बात की चिंता भी नही थी कि उसने जो कुछ कहा था वह सब उसके दोस्त की समझ मे आया भी था कि नही। "तुम देख लेना," उसने अपनी बात खत्म करते हुए कहा, "तुम देख लेना एक दिन यही अकाली हिन्दुस्तान को आजाद कराएगे।"

"लेकिन रतन यह तो बताओ दिल्ली कैसे आना हुआ ?"

"तुम नही जानते ?" और उसका यह सवाल सुनकर अनवर को एक बार फिर अपनी जहालत का एहसास हुआ। रतन ने उसे बताया, "यहा काग्रेस का इजलास होनेवाला है। इसलिए अकाली वालटियरो का एक जत्था लाहौर से यहा इसलिए भेजा गया है कि अपने आदोलन के बारे मे काग्रेसवालो को बताए। यह तो तुम जानते ही होगे कि हम काग्रेस के साथ है।"

"क्या मैं भी काग्रेस के इजलास मे आ सकता हू ?" अनवर ने पूछा और रतन ने अपने-आपको अपने दोस्त से बहुत बडा महसूस करते हुए उससे कहा कि वह उसके लिए भी एक टिकट का इतज़ाम कर रखेगा।

"अच्छा, अब मैं चलता हूं," रतन ने उठते हुए कहा।

"इस तरह बिना कुछ खाए-पीए कैसे जा सकते हो ! ज़रा ठहरो। मैं जाकर

फूफी-अम्मा से हम लोगो के लिए कुछ तैयार कर देने को कहता हूं। फिर हम साथ खाएगे—बस हम दोनो।"

फूफी-अम्मा ने अनवर से कहा कि वे उसके दोस्त को अन्दर नही आने दे सकती, "तुम्हारी समझ मे इतना भी नही आता कि अब तुम्हारी बहिन बडी हो गई है, उसे परदा करना चाहिए। तुम एक गैर आदमी को घर के अन्दर नही ला सकते।" लेकिन उन्होने दोनो के लिए खाना बाहर भिजवा दिया और चूकि अकबरअली घर पर नही थे इसलिए दोनो बैठक मे फर्श पर बैठकर खाना खाने लगे—फकीरा सालन और चावल और जायकेदार सब्जिया ला-लाकर देता जा रहा था।

रतन अनवर से अगले दिन काग्रेस के पडाल पर मिलने का वादा करके चला गया। "तुम बडे गेट पर आ जाना। मैं वही मिलूगा।"

जब अनवर अन्दर गया तो उसने फूफी-अम्मा को गुलाबो से कहते सुना, "उस सिख लडके ने जिन बर्तनो मे खाना खाया है उन्हे अलग रखना और राख से माजकर तीन बार पाक कर लेना।"

अनवर ने महसूस किया कि यह उसके दोस्त का अपमान है और वह कुछ कहना चाहता था लेकिन उसे इसी तरह की एक घटना याद आई जब उसने काका रामेश्वरदयाल के घर पर खाना खाया था और उनकी बीवी ने भी वह थाली और पीतल की कटोरिया अलग रखवा दी थी जिनमे उसे खाना दिया गया था। उस समय अनवर की समझ मे इस बात का महत्त्व नही आया था, पर अब वह समझ गया। जिस तरह वह काका की बीवी की नजरो मे अपवित्र था उसी तरह रतन फूफी-अम्मा की नजरो मे नापाक था। लेकिन क्यो? आखिर क्यो? किस वजह से?

सितम्बर, १९२३ मे दिल्ली मे कांग्रेस का जो विशेष अधिवेशन हुआ उसमे अनवर जा नही सका और रतन पडाल के बडे फाटक पर बडी देर तक खडा उसकी राह देखता रहा।

अनवर ने रतन से मिलने का जो वादा किया था उसे भी पूरा नही कर सका और उस अधिवेशन के अध्यक्ष मौलाना अबुलकलाम आज़ाद का भाषण भी

नही सुन सका। यह एक ऐतिहासिक अधिवेशन था, क्योकि इसमे काग्रेस के नेताओ ने फैसला किया था कि आदोलन को सरकार के साथ पूर्ण असहयोग की दिशा से विधानपरिषदो मे सावैधानिक विरोध की दिशा मे मोड दिया जाए।

इसी अरसे मे अकबरअली ने अपनी बेटी अजुम का ब्याह अपने भतीजे रऊफ के साथ कर देने का फैसला कर लिया था। और एक तेरह बरस के लडके के लिए बडी से बडी राजनीतिक उथल-पुथल के मुकाबले मे ब्याह की चहल-पहल मे दिलचस्पी लेना स्वाभाविक ही था। उस दिन सुबह जब अनवर सोकर उठा और रतन से मिलने के लिए काग्रेस के पडाल जाने की तैयारी करने लगा तो उसे यह देखकर कुछ ताज्जुब हुआ कि बैठक मे उसके अब्बा ताया अमजद-अली से कुछ बाते कर रहे है। ताया-अब्बा रात को ही आए थे और दोनो भाई बहुत घुल-घुलकर बाते कर रहे थे। बैठक से गुजरते वक्त अनवर ने ताया अमजद-अली को कहते सुना, "तो अकबर, यह तै रहा। अगले चाद की बारहवी का दिन बहुत मुबारक दिन है। मैने मौलवी साहब से पूछ लिया है।" और उस-पर छोटे भाई ने जवाब दिया, "मै बिलकुल राजी हू, भाई साहब। इस बीमारी ने मुझे बिलकुल कमजोर कर दिया है। कौन जाने अल्लाह ने मुझे कितनी उम्र दी है! आख बन्द होने से पहले मै चाहता हू कि अजुम का ब्याह कर जाऊ।" इसपर अमजदअली ने जवाब दिया, "माशा अल्लाह, रऊफ अब बालिग हुआ। बेहतर यही है कि इस वक्त उसकी शादी कर दी जाए। देर से शादी करने मे जवान लड़को में दुनिया-भर के ऐब पैदा हो जाते है।"

तो बाजी अजुम का रऊफ भैया के साथ ब्याह होनेवाला है! एक क्षण के लिए अनवर के दिल मे यह खयाल उठा कि रऊफ की जगह कोई दूसरा होता तो अच्छा था क्योकि रऊफ उसे अच्छा नही लगता था। वह ज़रूरत से ज्यादा रईसाना मिज़ाज का और जिद्दी था। लेकिन ब्याह की खबर सुनते ही वह इतना खुश हो उठा था कि उसमे किसी अच्छाई या बुराई पर गौर करने का कोई मौका ही नहीं था। अनवर अपने खानदान मे ही कई शादिया देख चुका था और उनकी चहल-पहल मे उसे बहुत मजा आता था—रंग-बिरगे कपडे, गहने और दावते। लेकिन जब अपने ही घर मे शादी हो! उसमे तो बेहद मज़ा रहेगा!

"अनवर, ज़रा इधर आना," उसके अब्बा ने आवाज़ दी और अनवर ने जाकर ताया-अब्बा को सलाम किया। फिर अकबरअली उससे बोले, "अगले

महीने तुम्हारी बहिन की शादी तुम्हारे रऊफ भैया से होनेवाली है ! दरीबा जाकर जरा बनारसीलाल जौहरी को तो बुला लाओ ।"

और जब वह भागकर दरीबा की तरफ गया जहा जौहरियो और सुनारो की दूकानें थी तो वह रतन और काग्रेस के बारे मे सब कुछ भूल गया, हालाकि अभी कल ही वह वहा जाने को इतना उत्सुक था ।

"बाजी अजुम, बाजी अंजुम, इस घर मे किसीकी शादी होनेवाली है। भला बताओ तो किसकी ?"

"चल यहा से, शरीर कही का ! तेरी ही शादी होनेवाली होगी किसी कानी चुडैल से ।"

अपनी बहिन को एक कोने मे बैठकर रेशमी कुर्ते पर गोटा टाकते देखकर अनवर को उसे छेडने का बहुत अच्छा मौका मिल गया । उसने बताया कि कौन-कौन-से ज़ेवर बनवाए गए थे और बाहर बैठक मे रेशम, जामेवार और मशरू के कैसे-कैसे थान रखे हुए थे । उसने बाजी अजुम से पूछा कि वे अपने ताया अमजद-अली से अचानक पर्दा क्यो करने लगी थी । और बातचीत के दौरान मे कोई न कोई मौका निकालकर वह रऊफ का भी जिक्र कर देता था जिसे सुनते ही अंजुम के गोरे-गोरे गालो पर लाली दौड जाती थी । आखिरकार फ़ूफी-अम्मा ने आकर उस बेचारी लडकी की जान छुडाई और अनवर को डाटा कि वह अपनी बहिन को तग करने के बजाय बाहर जाकर व्यापारियो और फेरीवालो से निबटने मे अपने अब्बा की मदद क्यो नही करता । ब्याह की भनक पाकर जौहरियो और सुनारो के साथ ही बहुत-से दूसरे व्यापारी और फेरीवाले भी उस घर के चक्कर लगाने लगे थे । अनवर ने बाहर जाकर देखा तो बैठक मे हर रंग के कपड़ो, चादी, पीतल और चीनी के बरतनो, मेज-कुर्सियो, कालीनो, जूतो और यहां तक कि लिहाफ-गद्दो और तकियो के ढेर लगे थे ।

सारी खरीदारी की जिम्मेदारी चौधरी मुहम्मदउमर साहब पर थी और वे हर व्यापारी से बडे रोब के साथ बात करते थे, जैसे कोई बडा व्यापारी छोटे व्यापारी से करता है । बीच-बीच मे किसी चीज को पसद करके वे कह देते थे, "अच्छा, इसे भी रख लें," और अकबरअली को तसल्ली देने के लिए जिन्हे

इन सब चीजो के पैसे देने थे, यह भी कहते जाते थे, "अकबरअली, मैं यकीन दिलाता हू कि बरसो मे किसीने अपनी बेटी का ऐसा दहेज नही दिया होगा।"

अनवर को ऐसा महसूस होता था कि ब्याह की इन सारी तैयारियो मे किसी चीज़ की कमी है, लेकिन वह यह नही बता सकता था कि वह क्या चीज थी। मुहम्मदउमर साहब की बाते सुनते-सुनते एक दिन अचानक उसकी समझ मे आ गया कि किस चीज की कमी थी। कमी थी काका रामेश्वरदयाल की। वे कई दिन से बैठक मे दिखाई नही दिए थे।

"अब्बा, अब्बा," उसने हिम्मत करके पूछा, "इतने दिन से काका क्यो नही आए हमारे यहा ?"

"अपनी दूकान के काम मे फसे होगे," अकबरअली ने छोटा-सा उत्तर दिया और अनवर को ऐसा लगा कि किसी वजह से उसके अब्बा उसके इस सवाल से खुश नही हुए थे। और 'अपनी दूकान' से उनका क्या मतलब था, क्योकि पहले तो वे हमेशा 'हमारी दूकान' कहते थे। इस बीच मे क्या हो गया था ?

इस बीच में जो कुछ हुआ था वह सिर्फ इतना ही नही था कि अकबरअली और रामेश्वरदयाल की पुरानी साझेदारी खत्म हो गई थी, बल्कि हिन्दुओ और मुसलमानो की साझेदारी भी, खिलाफत और स्वराज के संयुक्त आदोलन के दौरान मे मज़बूत होनेवाली उनकी एकता भी खतरे मे पड गई थी।

एकता और देशभक्ति की लहर उतरने लगी थी। असहयोग आन्दोलन के वापस ले लिए जाने की वजह से देश के राजनीतिक जीवन मे एक खाली जगह पैदा हो गई थी जिसे भरने के लिए दो परस्पर-विरोधी आन्दोलन चल पडे थे। एक धार्मिक हिंदू काग्रेसी नेता को सज़ा की मियाद पूरी होने से पहले ही रिहा कर दिया गया था। सुना जाता था उन्हे इसलिए रिहा कर दिया गया था कि उन्होने यह इच्छा प्रकट की थी कि वे राजनीतिक कामो मे हिस्सा न लेकर धार्मिक कामो मे ही अपना सारा समय लगाएगे। यहा तक कहा जाता था कि कुछ बडे-बडे सरकारी अफसरो ने उन्हे यह कदम उठाने के लिए 'उकसाया' था। कुछ भी रहा हो, पर उन्होने जेल से बाहर आकर 'शुद्धि' का आदोलन शुरू किया, जिसका उद्देश्य यह था कि उन सभी लोगो को जो हिंदू नही थे फिर

हिंदू बना लिया जाए। इसीके साथ एक और आदोलन भी शुरू किया गया जिसका उद्देश्य था 'सगठन' यानी हिंदू होने की हैसियत से हिंदुओ का एक लडाकू संगठन बनाया जाए। और उसकी काट के लिए फौरन 'तबलीग' यानी अल्लाह का पैगाम फैलाने की तहरीक शुरू की गई और मुसलमान होने की हैसियत से मुसलमानो का सगठन बनाने की तहरीक यानी 'तनजीम' शुरू की गई। हिंदू-आदोलन की तरह ही तबलीग और तनज़ीम करनेवाले जत्थो की रहनुमाई भी एक पुराने काग्रेसी नेता के हाथ मे थी जो किसी ज़माने मे एकता के गुण गाते थे।

अपने अब्बा की बातचीत के दौरान मे अनवर 'शुद्धि' और 'तबलीग' जैसे शब्द सुनता था पर वह इनका पूरा महत्त्व नही समझता था। लेकिन उसने कभी सोचा भी नही था कि इन सब बातो का कोई ताल्लुक काका रामेश्वरदयाल के साथ उसके अब्बा के सबध से भी हो सकता है। क्योकि अनवर को यही सिखाया गया था कि वह अपने अब्बा के पुराने साझेदार को 'काका' कहा करे और चाचा की तरह उनकी इज्जत किया करे। अनवर ने हमेशा से उन्हे अपने ही घर का एक आदमी समझा था और हमेशा समझता रहेगा। वह अपने सगे ताया अमजदअली से भी ज़्यादा उनकी इज्जत करता था।

उसने अपने अब्बा की इस दलील को मान लिया था कि कम्बलो के व्यापार मे साझेदारी इसलिए खत्म कर दी गई थी कि उन्हे सदर बाजार मे चीनी के बरतनो की दूकान मे लगाने के लिए पैसो की ज़रूरत थी और रामेश्वरदयाल खुद कोई दूसरा कारोबार करने की सोच रहे थे। उसने अपने अब्बा की बात पर यकीन तो कर लिया था फिर भी न जाने क्यो यह बात उसके गले के नीचे नही उतरती थी। और जब चौधरी मुहम्मदउमर ने उसे नसीहत करते हुए कहा था कि "और फिर, बेटा, तुम्हे यह भी समझना चाहिए कि मुसलमानो को अपना इत्तहाद बनाना सीखना चाहिए और इन काफिरो का साथ छोड देना चाहिए," तो उसे उनकी तिरस्कार-भरी मुस्कराहट बिलकुल अच्छी नही लगी थी।

•

जैसे-जैसे शादी का दिन करीब आता गया अनवर का ज्यादातर वक्त उसी-मे खर्च होने लगा और उसकी उत्सुकता भी बढ़ती गई। शादी की तैयारी मे

बहुत-सा काम करने को था—पूरे घर पर सफेदी और रग-रोगन होना था, बैठक को फिर से सजाना था, शादी मे आनेवाले सभी लोगो के लिए कई तरह की मनो मिठाई तैयार करवानी थी । बहुत ही चुनी हुई जबान मे सैकडो दावत-नामे खूबसूरत कार्डो पर छपवाकर अकबरअली के रिश्तेदारो, दोस्तो और उन लोगो को भेजे गए थे जिनके साथ व्यापार के सिलसिले मे उनका ब्यौहार था । अनवर ने भी जिद करके अपने स्कूल के बहुत-से साथियो और दोस्तो के पास ये निमन्त्रण-पत्र भिजवाए थे, वह एक निमत्रण-पत्र अमृतसर मे अपने दोस्त रतन के पास भेजना भी नही भूला था । उसे उम्मीद थी कि शायद इस निमत्रण को वह उस दिन काग्रेस के पडाल मे न पहुचने के लिए माफी का खत समझ लेगा ।

अगले चाद की बारहवी तारीख को ताया अमजदअली अपने बहुत-से रिश्तेदारो और दोस्तो के साथ दो लारियो पर गुडगाव से दिल्ली आ पहुचे । लेकिन इस बार वे सब लोग एक दूसरे घर मे ठहरे और सिर्फ ताया अमजदअली कुछ आखिरी इंतजामात के सिलसिले मे अपने भाई से बातचीत करने वहा आए । अनवर रऊफ और बिलकीस से मिलने जाना चाहता था क्योकि वह कई साल से उन दोनो से नही मिला था, लेकिन फूफी-अम्मा ने यह कहकर उसे नही जाने दिया कि निकाह की रस्म पूरी हो जाने से पहले दुलहिन के भाई का बरातियो से मिलने जाना मुनासिब नही है ।

शाम को सूरज डूबने के बाद मेहमान आकर सहन मे बैठने लगे। सहन मे दरी-कालीन बिछे हुए थे जिनपर तकिये रखे हुए थे; जगह-जगह हुक्के रखे हुए थे । ज़नानखाने मे फूफी-अम्मा कुनबे की आधा दर्जन बडी-बूढियो की मदद से भी उन औरतो के बैठने का इन्तज़ाम नही कर पा रही थी जो झुड के झुड बच्चे लेकर वहा आ गई थी और जिनकी जबान कैची की तरह चल रही थी । अनवर भी अपनी नई चमकदार रेशमी शेरवानी मे बहुत जच रहा था । दुबला और छोटे कद का होने की वजह से कोई उसे तेरह बरस का नही कह सकता था और इसलिए उसे जनानखाने मे 'फ्री एंट्री' मिली हुई थी और वह खुशी मे मग्न होकर बार-बार अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर आ-जा रहा था । एक कोने मे डोमनिया बैठी हुई ढोलक पर शादी के गीत गा रही थी, लेकिन मेहमानो के कहकहो और लगातार बोलने के शोर मे उनकी बारीक खनकदार

आवाज़ मुश्किल से ही सुनाई देती थी। औरतो के, और खास तौर पर जवान लडकियो के लिबास मे रगो की बहार थी—हर किस्म के चटकीले, लाल, नीले और हरे रग। इस मौके के लिए खास तौर पर जो गैस के हडे लगवाए गए थे उनकी रोशनी मे उनके जेवर झिलमिला रहे थे। हवा मे तरह-तरह के इत्रो की खुशबू बसी हुई थी। हर बार जब अनवर किसी काम से पान-सुपारी लेने या काका रामेश्वरदयाल की तरफ से दुलहिन को दिए गए जोडे और गहने पहुचाने अन्दर जाता था तो उसे ऐसा लगता था कि वहा का सारा वातावरण उसे अपनी ओर आकर्षित कर रहा है। कभी कोई बडी-बूढी उसके सिर पर हाथ फेरकर या सीने से लगाकर जब यह कहती कि "अरे, मेरा बच्चा इतना बडा हो गया," तो वह खिसिया जाता। जवान लडकिया कनखियो से उसे देखती पर कुछ लजाकर उससे दूर ही रहती। बिलकीस भी, जो पिछले दो बरसो मे कई इच बढ गई थी और अपने नीले गरारे-कुर्ते और कामदानी के दुपट्टे मे बिलकुल शाहजादी लगती थी, अनवर से कुछ शरमा-शरमाकर ही बात करती थी और अनवर को उसका यह अदाज बहुत अच्छा लगता था।

बरात करीब नौ बजे आई और अनवर को अपने भाई रऊफ से ईर्ष्या होने लगी क्योकि सबका ध्यान उसीकी तरफ लगा हुआ था। उसका कद उसकी उम्र के लिहाज से कुछ ज्यादा ही लम्बा था। जरी की शेरवानी और गुलाबी पगड़ी मे वह बहुत ही शानदार लग रहा था। उसके मुह पर फूलो का सेहरा पडा हुआ था जिसकी वजह से उसका चेहरा साफ नही दिखाई देता था। सजी हुई घोड़ी पर से उतरकर बहुत सभाल-सभालकर कदम रखते हुए वह अन्दर आया और उसे सहन के बीच मे मखमली मसनद पर बिठाया गया। थोडी देर मे दोनो तरफ के दो मौलवियो ने शादी की रस्मे शुरू की। अरबी मे कुरान की जो आयते पढी गईं उन्हे छोडकर बाकी सारी रस्मे बहुत ही छोटी और सीधी-सादी साबित हुईं। अनवर के साथ एक मौलवी साहब अन्दर गए और काफी शोर-गुल के बाद दुलहिन के कमरे की तरफ बढे। छ-सात बडी-बूढियो के बीच घिरी हुई लाल कपडो की एक गठरी को सम्बोधित करके मौलवी साहब ने पूछा, "अजुम बेगम बिन्ते अकबरअली, क्या तुम्हे मुबलिग पाच हजार रुपये के मेहर के एवज अब्दुलरऊफ वल्द अमजदअली के साथ निकाह मजूर है ?" लाल कपडों की गठरी चुपचाप बैठी रही, बल्कि वह तो हिली तक नही लेकिन किसी बडी-बूढी

ने चिल्लाकर कहा, "वह कहती है 'हा मजूर है'। अब क्या वह बेहया बनकर चिल्लाकर कहेगी ?"

उस छोटी-सी कोठरी मे अनवर का दम घुट रहा था और वह बिलकुल बौखला गया था। वह मौलवी साहब के साथ बाहर निकलने के लिए मुडा ही था कि दुलहिन के जोडे की परतो मे से एक हाथ बाहर निकला और उसने अनवर को रोक लिया और अजुम ने बहुत धीमे से उसके कान मे कहा, "जब यह सब काम हो जाए तो जरा आकर मुझसे मिल जाना।" इस डर से कि कही वह बाकी रस्म देखने से रह न जाए, अनवर भागकर बाहर पहुचा और सुना कि मौलवी साहब पूछ रहे थे, "अब्दुलरऊफ वल्द अमजदअली, क्या तुम्हे पाच हजार रुपये के मेहर पर अजुम बेगम बिन्ते अकबरअली को अपनी बीवी बनाना मजूर है ?" और जब नौशा ने तीन बार कह दिया कि "हा, मुझे मजूर है," तो फौरन छुहारे बाटे गए और दोनो समधियो को मुबारकबाद दी जाने लगी।

दूल्हा और उसके कुछ चुने हुए दोस्तो ने रात को बैठक मे अड्डा जमाया। दूसरे दिन वे लडकी को रुखसत कराकर उसके साथ जानेवाले थे। हर तरफ मौज और खुशी का दौर-दौरा था और किसीको सोने का खयाल भी नही आ रहा था। नौजवान आपस मे हसी-मजाक कर रहे थे और रऊफ की खुशी का तो कहना ही क्या था। वह अपने कुछ दोस्तो के साथ बैठा ताश खेल रहा था और बाकी लोग बडी दिलचस्पी से खडे तमाशा देख रहे थे।

घर के अन्दर कुछ औरते तो जा चुकी थी लेकिन करीब के रिश्तेदार रह गए थे और डोमनिया अब रात के सन्नाटे का फायदा उठाकर उन्हे जी भरकर गाना सुना रही थी। फूफी-अम्मा बावर्चीखाने मे थी और मेहतरो, भिश्तियो, कहारो, नाइयो और दूसरे नौकरो को गुलाबो से खाना और मिठाई दिलवा रही थी। अनवर के लिए अपनी बहिन के पास जाने का यह अच्छा मौका था।

अजुम अपने पलंग पर गठरी बनी लेटी थी, ब्याह के जोडे की अनगिनत परतों मे वह खोकर रह गई थी। अनवर दबे पाव उसके पास गया और बोला, "बाजी, मैं हू अनवर।"

"जरा दरवाज़ा बद कर लो," अंजुम ने दबी आवाज मे कहा, "नही तो मैं तुमसे खुलकर बात नही कर पाऊगी।"

जब अनवर चटखनी लगाकर मुडा तो उसने देखा कि अजुम पलग के किनारे पर बैठी हुई थी और मेज़ पर रखे हुए लैम्प की रोशनी मे उसका चेहरा साफ दिखाई दे रहा था।

अजुम का बदन छरहरा और रंग गोरा था, उम्र के लिहाज़ से उसका कद कुछ ज्यादा लम्बा था। उसकी बडी-बडी बादामी आखो मे अभी तक बच्चों जैसी मासूमियत थी। उसके हाथ बहुत नाजुक थे और हथेलियो पर रची हुई मेहदी की वजह से और भी सफेद लगते थे। उसकी उगलियो पर बहुत-सी नगदार अगूठिया और पतली गरदन मे सोने का एक भारी-सा हार था। उसके सिर पर लगा हुआ झूमर ऐसा लगता था जैसे कोई सुनहरी तितली आकर उसके बालों मे फस गई हो।

अनवर हैरत से उसे देखता रह गया। क्या यह आसमान की परी उसकी वही बहिन थी जिसके साथ वह हमेशा से खेलता और लडता आया था?

अजुम ने हाथ पकडकर उसे अपने पास बिठा लिया। अब जाकर अनवर ने देखा कि उसकी आखो मे आसू भरे हुए थे।

"लेकिन बाजी, तुम तो रो रही हो।" अनवर को बहुत ताज्जुब हो रहा था। उसने पूछा, "क्या तुम इस शादी से खुश नही हो?"

अजुम ने बडे प्यार से अनवर को गले से लगा लिया और जवाब दिया, "तेरी समझ मे यह नही आता कि कल मै इस घर से चली जाऊगी, अब्बा से, फूफी-अम्मा से और तुमसे अलग हो जाऊगी? अनवर, मुझे तो बहुत डर लगता है।" और यह कहकर अजुम की आखो से गर्म-गर्म आसू उसके गालो पर ढलकने लगे।

अनवर के लिए यह परिस्थिति बहुत कठिन थी क्योकि वह अपनी बहिन को हमेशा से बुद्धिमत्ता और गम्भीरता की साकार मूर्ति समझता आया था और इसलिए उसकी समझ मे नही आ रहा था कि किस तरह उसे धीरज बधाए। उसे यह तो पता नही था कि वह किस बात से डर रही थी लेकिन शादी की सारी खुशी उसी क्षण नष्ट हो गई। उसके लिए अब यह खुशिया मनाने, अच्छे-अच्छे कपडे पहनने और दावत उडाने का मौका नही रह गया था। एक क्षण

में उसे इस परिस्थिति का असली मतलब समझ मे आ गया, जिससे अब तक वह अपनी मासूमियत मे बेखबर था। उसकी खुशी मे अब एक दर्द भी शामिल हो गया था—अपनी प्यारी बहन से अलग हो जाने का दर्द। कल अजुम चली जाएगी और वह घर मे अकेला रह जाएगा। वह किसके साथ खेलेगा? अब वह किसे छेडेगा? अब स्कूल से लौटने पर कौन प्यार-भरी मुस्कराहट से उसका स्वागत करेगा। यह सब सोचकर वह भी अजुम से लिपटकर रोने लगा। अजुम फिर बडी बहिन की तरह उसको दुलारने लगी।

मकान मे सबसे ऊपरवाली मंजिल पर एक कोठरी थी जिसमे घर का सारा अंगड-खगड भरा रहता था। अनवर चुपचाप वहा चढ गया और एक टूटी हुई चारपाई पर लेट गया। वह एकान्त चाहता था।

खिडकी से उसे आसमान दिखाई दे रहा था जिसपर सितारे जगमगा रहे थे, लेकिन अनवर के हृदय को उनसे कोई शाति नही मिली। नीचे आगन मे डोमनिया बहुत दर्द-भरी आवाज मे बाबुल गा रही थी। अनवर ने यह गीत पहले भी कई ब्याहों मे सुना था लेकिन आज इस गीत का असर खुद उसके दिल पर हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसकी बहिन अपने अब्बा से रो-रोकर कह रही हो :

काहे को ब्याही बिदेस
अरे लखि बाबुल मोरे।
हम तो, रे बाबुल, बेले की कलिया
घर-घर मागी जाय!
हम तो, रे बाबुल, खूटे की गैया
हाको जिधर हंक जायं!
हम तो, रे बाबुल, झापे को चिड़िया
रैन बसे उड़ जायं!

आधी रात को डोमनियो का गाना बंद हुआ लेकिन अनवर के दिमाग मे वह गीत गूंजता रहा और वह किशोरवय बालक इस समस्या के बारे मे सोचता रहा कि खुशी और दर्द हमेशा एकसाथ मिले क्यो रहते है।

ग्रौर खुदा सोता रहा....

दिल्ली की गर्मी। सारे शहर पर गर्मी एक भूत की तरह छाई हुई थी। तारकोल की सडको से, दूकानो पर पडी हुई टीन की छतो से, पक्की दीवारों से, सडक की बत्तियो के लोहे के खभो से, गरज़ यह कि हर चीज़ से गर्मी निकल रही थी। सुनसान सडको पर लू के गर्म झोके चल रहे थे, और धूल और कूड़ा-करकट जमा करके बवडरो की शक्ल मे उडा रहे थे। ग्रासमान पिघले हुए ताबे जैसा लग रहा था और सूरज खुद अपनी तेज़ रोशनी मे खो गया था। ग्रासमान से अगारे बरस रहे थे और जमीन से आग की लपटे उठ रही थी और दोनों ने मिलकर सारे शहर को एक जहन्नुम बना दिया था, वही जहन्नुम जिसके बारे मे अनवर ने मौलवी साहब से बहुत कुछ सुन रखा था। दोपहर के बाद तीन-चार घटे तक सारा शहर सोता था। दूकानदार अपनी दूकानो के आगे मोटे-मोटे हरे पर्दे डालकर अदर सो जाते थे। पैसेवाले लोग खस के खुशबूदार पर्दे लगाकर अपने घरो के सबसे अदरवाले ठडे अंधेरे कमरो मे सो जाते थे और इन पर्दो को लगातार तर रखने के लिए बाहर एक आदमी तैनात कर देते थे। सडक पर आवाजाही बिलकुल बन्द हो जाती थी, कभी कोई बैलगाडी चर-चर करती हुई सडक पर से गुज़रती थी और प्यासे बैलो की सूखी जबाने बाहर निकली रहती थी।

अकबरअली के मकान मे एक ठडा अधेरा तहखाना था जिसमे हर वक्त सीलन की बू आती रहती थी। रोज ग्यारह बजे स्कूल से लौटकर खाना खाने के बाद अनवर इसी तहखाने मे बद हो जाता था। अकबरअली शायद ही कभी तहखाने मे जाते थे। उन्हे अपनी बैठक ज्यादा पसद थी, वे वही खस का पर्दा लगाकर लेटते थे। लेकिन फ़ूफी-अम्मा को तो हर वक्त यह डर लगा रहता था कि उनका लाडला भतीजा कही धूप मे कुम्हला न जाए, ठीक उसी तरह जैसे जाड़े-भर उन्हे इस बात की फिक्र रहती थी कि कही उसे जुकाम न हो जाए।

इसलिए आगन मे लगे हुए गुडहल का साया पूरी तरह सिमटकर उसकी जड मे आ जाने से पहले ही वे हमेशा अनवर को तहखाने मे भेज देती थी।

अनवर अपनी फूफी-अम्मा का कहना मानकर फौरन तहखाने मे चला जाता था। तहखाने मे कदम रखने से पहले वह थोडी देर आखे बद करके सीढियो पर खडा रहता था ताकि उसे अधेरे की आदत हो जाए। जब वह आखे खोलता था तो चारो ओर छाए हुए अधेरे मे से उसे चारपाइयो पर बिछे हुए बिस्तरो की सफेद चादरे दिखाई देती थी। वह जाकर अपनी चारपाई पर लेट जाता था। ठडे तकिये पर जब वह अपने गर्म गाल रखता था तो उसे बहुत मजा आता था।

अनवर चारपाई पर लेट गया और उसने अपनी आखे बद कर ली पर उसे नीद नही आई। उसके विचार इधर-उधर भटक रहे थे। अनवर को हमेशा इस बात पर ताज्जुब होता था और उसके स्कूल के मास्टरो को भी उससे यही शिकायत थी कि वह तेज़ तो बहुत था पर किसी चीज मे देर तक ध्यान नही लगा सकता था। इसकी क्या वजह थी। जब वह हिसाब का कोई सवाल करता था या ज्योमेट्री की किसी समस्या को हल करता था तो कभी-कभी उसका ध्यान भटककर बाहर तार के खभे पर बैठी हुई चिडिया की तरफ चला जाता था और वह उन बडे-बडे कबूतरो के बारे मे सोचने लगता था जो उसने कई बार आसमान पर उडते देखे थे—अब वह इतना तो जान गया था कि इन बडे-बडे कबूतरो को हवाई जहाज़ कहते है। वह अपनी कल्पना मे उन सूदूर देशो के बारे मे सोचने लगता था जहा इन कबूतरो की पीठ पर बैठकर जाया जा सकता था। वह इगलैड और अमरीका के बारे मे सोचता रहता था और यह अंदाजा लगाने की कोशिश करता था कि वहा किस तरह के लोग रहते होगे। उसने अपने स्कूल की किताबो मे इगलैड के बारे मे बहुत कुछ पढा था। वहां बादशाह रहता था और सब वाइसराय वही से भेजे जाते थे। वहा बहुत बडे-बडे शहर थे, दिल्ली से भी बडे, और उनमे सबसे बडा शहर था लदन। और अमरीका! वह तो परियो का देश था। वहा से जादू की 'चलती-फिरती' तसवीरे आती थी जिन्हे उसने बायस्कोप के पर्दे पर देखा था—हा, ऐसी तसवीरें जो सचमुच चलती थी और अजीब-अजीब हरकतें करती थी। भागती हुई

मोटरे, सरपट दौडते हुए घोडे और खूबसूरत औरतों के पीछे भागते हुए लम्बी-लम्बी मूछोवाले जगली मर्द । सचमुच यह बायस्कोप बहुत ही अद्भुत चीज़ था और अनवर यह जानना चाहता था कि ये तसवीरे आखिर 'चलती' कैसे है। ये तसवीरे बिलकुल सचमुच के आदमियो जैसी लगती थी। उसे एक बहुत ही मसखरा आदमी अच्छी तरह याद था जिसकी तसवीरे उसने देखी थी—वह बहुत ही मसखरा आदमी था, उसके बहुत छोटी-छोटी मूछें थी, वह औधे प्याले जैसी हैट पहनता था, उसकी पतलून हमेशा थैले की तरह लटकती रहती थी और वह हमेशा हाथ मे छडी लिए रहता था और वह मुह ऐसा बनाता था कि हसी रोकना मुश्किल हो जाता था। अनवर को अपने इन विचारो पर बरबस हसी आ गई।

उसके विचारो को भग करता हुआ मास्टर साहब का कर्कश स्वर गूज उठा, "अनवर ! हस किस बात पर रहे हो ? सवाल लगा लिया अपना ?"

अनवर उन्हे किस तरह समझाता कि खिडकी के बाहर नज़र जाते ही उसके दिमाग मे कबूतरो और हवाई जहाजो और 'चलती-फिरती' तसवीरों के विचार घूमने लगे थे और अपना सवाल करने के बजाय वह उस मसखरे आदमी की हरकतो पर हस रहा था जिसे उसने बायस्कोप मे देखा था। इसलिए उसने चुपचाप मास्टर साहब की डाट सुन ली।

हा, उसके विचार सचमुच बहुत ज्यादा भटकने लगे थे। तहखाने मे लेटे-लेटे सबसे पहले तो उसे अपनी बहिन अजुम का खयाल आया। अजुम की शादी को छ महीने हो चुके थे पर अनवर अभी तक घर मे उसके न होने का आदी नही हो पाया था। ऐसा लगता था कि उसकी ज़िदगी का एक कोना खाली हो गया था जिसे अजुम के हर हफ्ते आनेवाले खत भी नही भर सकते थे। वह अपने भाई को बडे प्यार-भरे खत लिखती थी लेकिन उनमे वह अपने नये घर में अपनी ज़िदगी के बारे मे कुछ नही लिखती थी। अब वे लोग गुडगाव में नही थे। अमजदअली दिल्ली से कोई सौ मील दूर सलामपुर नाम की एक रियासत मे दीवान लग गए थे। यह बहुत बडा ओहदा था और अब अमजदअली जब भी दिल्ली आते थे तो उनके साथ सुनहरी और लाल वर्दी पहने हुए दो चपरासी

होते थे और वे बहुत बढिया नई मोटर मे घूमते थे जिसकी नंबर-प्लेट पर उस रियासत का नाम भी लिखा होता था। अनवर को यकीन था कि सलामपुर मे अजुम बहुत खुश होगी क्योकि वहा इतने बहुत-से नौकर-चाकर, बेशुमार पैसा और मोटर वगैरह थे। मैट्रिक पास करने के बाद रऊफ ने कालेज मे नाम लिखाने का इरादा छोड दिया था और रियासत की पुलिस मे एक नौकरी के लिए अर्जी दी थी। चूकि पुलिस का महकमा उसके अब्बा के ही मातहत था इसलिए उसे यह नौकरी मिल जाने मे कोई शक ही नही था।

रऊफ के खयाल से अनवर को कभी खुशी नही होती थी। वह न सिर्फ उसका चचेरा भाई था बल्कि अब तो बहनोई भी था, लेकिन फिर भी न जाने क्यो अनवर उसके बारे मे प्यार और मुहब्बत के साथ नही सोच सकता था। इस जिद्दी और घमडी लडके के बारे मे सोचते ही अनवर के मन मे न जाने क्यो विरोध की भावना पैदा होती थी। इसलिए वह रऊफ की तरफ से ध्यान हटाकर उसकी बहन बिलकीस के बारे मे सोचने लगा। बिलकीस का खयाल आते ही अनवर के दिल मे प्यार उमड पडता था। उसे अब तक गुडगाव के खेतो की वह सैर याद थी और यह भी याद था कि भागते वक्त बिलकीस की चोटी किस तरह फुदकती रहती थी। उस वक्त से वह बडी होकर एक अच्छी-खासी खूबसूरत औरत बन चुकी थी। लेकिन अजुम की शादी मे बिलकीस उससे इतनी शरमाती क्यो रही और इतनी खिची-खिची क्यो रही? इन तीन बरसो मे क्या बात हो गई थी जिसकी वजह से उनके आपस के सबध मे ऐसा परिवर्तन आ गया था कि वे अब खुलकर बेझिझक हस-बोल भी नही सकते थे। अनवर काफी देर तक इस समस्या के बारे मे सोचता रहा और फिर उसके सामने खुद अपनी समस्या आ गई। तीन साल पहले उसे बिलकीस के साथ खेलने और भागने-दौडने मे, उसकी चोटी खीचने मे और उसे छेडने मे बहुत मजा आता था। लेकिन इस बार जब उसने बिलकीस को देखा था तो उसका जी चाहा था कि वह देर तक उसे तकता रहे, और जब उसकी बडी-बडी आखें लाज से झुकी हुई पलको के पीछे छिपी हुई न हो तब उन आखो मे आखे डालकर देखता रहे। इस वक्त भी उसे वे सब पोशाके याद थीं जो बिलकीस ने शादी के दिनों मे पहनी थी।...

वह इन समस्याओ को किसी तरह हल नही कर पा रहा था कि इंसान के

आपस के रिश्ते क्यो बदलते रहते हैं। इसी उधेड-बुन में उसे अपने दोस्त रतन का ख्याल आया जिसके बारे मे उसे कई महीने से कोई खबर नही मिली थी, बस बीच मे एक बार उसने अंजुम की शादी के निमत्रण के जवाब मे शुक्रिया का एक बहुत ही रस्मी-सा खत भेजा था। उसके इस खत से जाहिर था कि उसने अनवर को काग्रेस के पडाल मे वादे के मुताबिक न पहुचने के लिए माफ नही किया था। अनवर कुछ झुझलाकर सोचने लगा कि 'यह रतन जरूरत से ज्यादा सियासी हो गया है। वह किसी दूसरी चीज के बारे मे न बात कर सकता है न लिख सकता है।' फिर भी वह अपने दोस्त से मिलने के लिए कितना बेताब था।

जब सूरज ढल गया तो शहर मे जैसे फिर से जान आ गई। नहा-धोकर लोग अपने-अपने घरो से निकल आए और एक बार फिर बाजार में चहल-पहल हो गई। जामा मस्जिद की सीढियो पर शरबत की दूकानो पर और कुलफीवालों के पास भीड जमा हो गई। जामा मस्जिद और लालकिले के बीच मे जो मैदान पडा हुआ था, जहा गोरे सिपाही परेड करते थे, वहा एक अच्छा-खासा तमाशा जम गया। नट, बाजीगर, हर मर्ज की दवा बेचनेवाले, कबाड़ी, 'हर माल मिलेगा दो पैसे' वाले, ऊंची आवाज मे गा-गाकर किताबे बेचनेवाले, पीतल के कटोरे बजाते हुए मशक से बर्फ का ठण्डा पानी पिलानेवाले—ये सब-के-सब अचानक न जाने कहा से निकल पडे थे। शाह सरमद के मजार के पास, जिनका सिर मुगल बादशाह के हुक्म से उडवा दिया गया था, हमेशा की तरह फकीरो और मुरीदो की भीड लगी हुई थी और कव्वाली हो रही थी। वहा से कुछ ही दूर पर एक पादरी साहब उर्दू मे मसीही साहित्य की पुस्तके बाट रहे थे।

अनवर को अपना शाम का वक्त इस हगामे के बीच बिताना बहुत पसंद था। शाम के धुधलके मे यहा का दृश्य आधी हकीकत और आधा सपना मालूम होता था। यहा वह भीड के साथ घुल-मिल जाता था और इधर-उधर घूमता रहता था मानो समुद्र की लहरो पर सवार हो।

आज अनवर हमेशा से ज्यादा खुश था। उसके अब्बा ने उससे कहा था कि जब वह मैट्रिक पास कर लेगा तो उसका नाम अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी मे लिखा दिया जाएगा। अनवर ने इस यूनिवर्सिटी के सामुदायिक जीवन के बारे

मे बहुत कुछ सुन रखा था और यह सोच-सोचकर वह फूला नही समा रहा था कि घर की फीकी बेरंग ज़िंदगी के बजाय (जो अंजुम की शादी के बाद और भी बेरंग हो गई थी) अब उसे अपनी ही उम्र के सैकडो लडको के साथ ज़िंदगी बिताने का मौका मिलेगा।

बहुत खुश-खुश वह भीड मे इधर-उधर टहल रहा था। थोडी देर बाद वह उस जगह से गुज़रा जहां 'दो सिर और पाच टागोवाला बछडा' दिखाया जा रहा था; फिर वह घूमता-घूमता एक दूसरी भीड मे जा खडा हुआ। वहा एक बाजीगर ने एक आदमी को मेसमेरिज्म से बेहोश कर दिया था और उससे तरह-तरह के सवालो के जवाब दिलवा रहा था और वह बेहोश आदमी न जाने कैसे हर सवाल का जवाब बिलकुल सही-सही देता था। "सफ़ेद शेरवानी और लाल तुर्की टोपीवाले लडके की जेब मे कितने पैसे हे?" बाज़ीगर ने पूछा और ज़मीन पर बेहोश लेटे हुए आदमी ने चादर के नीचे से जवाब दिया "चौदह आने।" अनवर ने अपनी जेब मे हाथ डालकर पैसे बाहर निकाले—एक अठन्नी, एक चवन्नी, एक इकन्नी और चार पैसे। पूरे चौदह आने थे। हर आदमी अनवर को देखने लगा; अनवर कुछ ऐसा खिसिया गया कि उसके पसीना छूटने लगा और वह इस बात पर हैरत करता हुआ वहा से चल दिया कि इसमे कितनी बाजीगरी है और किस हद तक सचमुच गुप्त बातो का पता लगा लेने की शक्ति। उसके अब्बा जादूगरो, नजूमियो, मेसमेरिज्म करनेवालो और दूसरे बाजीगरो का हमेशा मजाक उडाया करते थे। लेकिन अनवर के दिमाग मे चौदह आनेवाली पहेली ज्यो की त्यो बनी रही।

वहा से आगे बढ़कर अनवर एक दूसरी भीड मे जा पहुचा जहा बहुत-से लोग एक आदमी के चारो ओर घेरा बाधे खडे थे और वह आदमी गला फाड-फाडकर कुछ कह रहा था। यह एक दूसरी तरह का मेसमेरिज्म था और हर आदमी अपनी जगह पर मूर्ति की तरह खडा हुआ उस वक्ता के शब्दो के प्रवाह को मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहा था। अनवर ने सोचा कि यह कोई राजनीतिक प्रचारक होगा जो किसी बहुत इन्कलाबी बात का प्रचार कर रहा होगा, क्योकि उस आदमी की आवाज़ मे बेहद जोश था और वह बडी लगन और मेहनत से अपनी बात समझा रहा था, हालाकि उसके मैले-कुचैले सूट और तेल मे चुपड़े हुए बालो को देखने से वह किसी तरफ से नेता नही मालूम होता था। वह बडे

प्रवाह के साथ लच्छेदार हिन्दुस्तानी मे भाषण दे रहा था, "भाइयो, मै आपसे पूछता हू कि किसी कौम की ताकत का क्या राज होता है ? अग्रेज किस चीज की बदौलत आज सारी दुनिया के चौधरी बने बैठे हैं ? किस चीज़ ने आज अमरीका को दुनिया का सबसे धनवान देश बना दिया है ? किस चीज के बल पर जापान देखते-देखते दुनिया की एक बडी ताकत बन बैठा है ?" फिर वह बडे नाटकीय ढग से एक क्षण के लिए रुका और हर आदमी, अनवर भी, दम साधकर इन प्रश्नो के उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। "भाइयो, मै आपको बताता हूं। इसका राज़ है अच्छी सेहत और ताकतवर जिस्म। हमारे बुजुर्ग कह गए हैं कि 'सेहत लाख नियामत है!' 'जान है तो जहान है!' लेकिन जब आप अपनी नौजवानी की गलतकारियो से अपने हाथो अपनी सेहत लुटा देते हैं, जब आप अपनी फूल जैसी जवानी को मसलकर खाक मे मिला देते है तो आपकी सेहत अच्छी कैसे बन सकती है ? मेरे पास ये गोलिया है।..."

तो यह बात थी! धुआधार भाषण करनेवाले यह साहब ताकत की गोलिया बेचते थे! यह मालूम करके अनवर मुस्करा दिया और आगे बढ गया।

एक पानवाले की दूकान पर उसे गोपाल दिखाई दिया जो पिछले साल फेल हो गया था और इसलिए अब वह अनवर के साथ नही था। लेकिन उन दोनो की दोस्ती अब भी बनी हुई थी। उनकी दोस्ती एक जैसी चीजो को पसंद करने की वजह से नही बल्कि इस वजह से थी कि अगर एक पूरब था तो दूसरा पच्छिम। गोपाल मस्त बेफिकरा किस्म का लडका था, उसे अच्छे कपडे पहनने का शौक था और हर वक्त उसकी जेब मे ढेरो पैसे खनकते रहते थे। अनवर मन ही मन गोपाल से बहुत प्रभावित था, क्योकि गोपाल मे आत्मविश्वास था और वह दुनिया को समझता था और जिन्दगी को एक दिलचस्प खेल समझकर उसका आनद लेता था। दूसरी तरफ गोपाल भी इस दुबले-पतले, शर्मीले और झेंपू लडके की तरफ इसलिए खिंचता था कि उसे खेल-कूद के मुकाबले मे किताबो मे ज्यादा दिलचस्पी थी।

अनवर को एक दोस्त से मिलने की बहुत खुशी थी और वह लपककर बडे तपाक से गोपाल से मिला। ठेकेदार के बेटे ने फौरन उसे कुलफी खाने की दावत दी।

"बस, शुक्रिया, मुझे तो कुलफी खाना मना है। मेरा गला खराब हो जाता

है।" अनवर को अपनी कमजोर सेहत का ज़िक्र करते हुए बडी शर्म आती थी।

"तो कम से कम एक पान तो खाओ।"

"नही, रहने दो। मै पान नही खाता। अब्बा पान खाने को मना करते है।"

"ओह, तुम भी कैसे फीके आदमी हो! अच्छा, हमारे साथ चलोगे तो? मुझे ज़रा साइकल का एक लैम्प खरीदना है।"

दोनो साथ-साथ कई दूकानो पर गए। कभी एक दूकान पर रुककर कोई चीज देखने लगते तो कभी दूसरी दूकान पर। साइकल के लैम्प का उन्हे ध्यान ही नही रहा। दूकानो पर बत्तिया जल गई थी पर अभी तक उनकी खरीदारी पूरी नही हुई थी। घूमते-घूमते वे मस्जिद के पश्चिम की तरफवाली दूकानो पर पहुचे जहा मस्जिद की ऊची दीवार के साये मे तरह-तरह के कपडो, रगीन रूमालो और तौलियो वगैरह की दूकाने थी। गोपाल ने एक रेशमी रूमाल खरीदा और दूकानदार पाच रुपये के नोट के बाकी पैसे अभी लौटा भी नही पाया था कि भागते हुए लोगो के कदमो की आवाज़ और 'मारो! मारो!' का शोर उनके कानो मे पडा और उसके फौरन ही बाद 'मार डाला! मार डाला!' की चीखे सुनाई दी। इससे पहले कि वे समझ पाते कि आखिर माजरा क्या है, दूकानदारो ने जल्दी-जल्दी अपनी दूकाने बद कर दी और लोग डरकर हर तरफ भागने लगे। जान का खतरा देखकर दोनो लडके चावडी बाज़ार की तरफ भागे, जहा जल्दी-जल्दी लोग अपनी दूकाने बद करके भाग रहे थे—यह कोई भी नही जानता था कि वह किस चीज से डरकर भाग रहा है। मस्जिद की मीनार पर से मुअज़्ज़िन ने अज़ान देकर मोमिनो को नमाज़ के लिए बुलाया और उसी वक्त पास के किसी मदिर मे घटा बजने लगा। एक तागा सरपट भागता हुआ उनके पास से गुज़र गया। लोग तितर-बितर हो गए—कोई दाहिने भागा तो कोई बाए और चारो तरफ और ज्यादा गडबडी फैल गई। कही कोई बच्चा रो उठा। कोई औरत चीख पडी। और किसीने अनवर और गोपाल को घसीटकर एक सकरे अधेरे ज़ीने मे पहुचा दिया।

"बेटा, हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है," उस आदमी ने बडी हमदर्दी से कहा। सडक के दूसरी तरफ से कोई दर्द-भरी आवाज़ मे चिल्लाया 'मार डाला!' और उसके बाद ही एक अजीब-सी गड़गड़ाहट और कराह सुनाई दी—और फिर

खामोशी छा गई। अनवर ने सोचा कि 'कोई मारा गया' और यह सोचते ही उसे मतली होने लगी। 'लेकिन वह हिन्दू था कि मुसलमान ?' अधेरे मे से उसी आवाज ने फिर बडे प्यार से कहा, "बेटा, अगर मै तुम्हारी जगह होता तो इस वक्त सडक पर न निकलता। तुम लोग थोडी देर यही ठहरना। मैं जाकर अपनी दूकान पर देखता हू कि वहा सब लोग खैरियत से है कि नही।" अधेरे मे से एक परछाई निकलकर सुनसान सडक पर गायब हो गई। और एक बार फिर अनवर सोचने लगा : इस आदमी ने हमारी—एक हिन्दू और एक मुसलमान लडके की—जान बचाई है और हमे यह भी नहीं मालूम कि वह खुद हिन्दू था या मुसलमान।

न जाने कितनी देर तक वे उन सकरी, अधेरी सीढियो मे बैठे रहे। गोपाल यो तो बहुत तीसमारखा बनता था, लेकिन वह बहुत बुजदिल निकला। वह लगातार घिघियाकर यही कह रहा था, "अरे भगवान, अब क्या होगा ?" डर तो अनवर को भी लग रहा था लेकिन डर से ज्यादा उसे इस घटना की क्रूरता और मूर्खता पर गुस्सा आ रहा था। हिन्दू-मुस्लिम दगा! लेकिन आखिर क्यो? उसने दूसरे शहरो मे इस तरह के दगो की खबर सुनी थी पर वे बहुत दूर की घटनाए मालूम होती थी जो दिल्ली मे कभी नही हो सकती थी। अभी कुछ ही देर पहले तक क्या हिन्दू और मुसलमान आज़ादी से अपना-अपना काम नही कर रहे थे ? उनके दिलो मे एक-दूसरे की तरफ से कोई मैल नही था, उन्हे इस बात का कोई डर नही था कि कोई उन्हे छुरा मार देगा। लेकिन एकदम से क्या हो गया था ? आखिर गोपाल भी तो हिन्दू था और वह खुद मुसलमान था। फिर भी उसके दिल मे गोपाल को मार डालने का कोई ख्याल नही था और उसे यकीन था कि गोपाल भी उसकी जान नही लेना चाहता था। फिर दूसरे गोपाल और अनवर भी इसी तरह दोस्त क्यो नही रह सकते थे ? आखिर क्यो ?

उनके पीछे से कोई सीढिया उतर रहा था और अपनी इस हालत मे दोनो लडके दहशत के मारे चीख उठे।

"कौन है ? तुम लोग यहा क्या कर रहे हो ?"

वह किसी औरत की आवाज थी। यह देखकर दोनो को ढाढस बधा।

"हम...हम...," अनवर ने हकलाते हुए कहा "आप जानती है बाहर दगा हो रहा है। लोग मारे जा रहे है। इसलिए...इसलिए...किसीने हमसे कहा कि जब तक लडाई-दगा खत्म न हो जाए तब तक हम यहा बैठे रहे।"

अब तक गोपाल की भी जान मे जान आ चुकी थी। उसने उस औरत से, जिसका चेहरा उन्हे अब भी नही दिखाई दे रहा था, कहा, "बाईजी, अगर आपको कोई एतराज न हो तो हम कुछ देर के लिए अदर आ जाए। इन सीढियो पर बैठे-बैठे तो हमारी टागे अकड गई।"

"अच्छी बात है, आ जाओ। लेकिन तुम दोनो तो अभी लौडे हो।" और जिस ढग से उसने उन्हे 'लौडे' कहा उसमे तिरस्कार भी था और निराशा भी। अनवर ने इस बात को महसूस तो किया पर वह इसका मतलब उस वक्त तक नही समझ पाया जब तक कि गोपाल ने उसके कान मे यह नही कहा कि "यार, हम लोग बडे किस्मतवाले है। यह तो रडी का घर है।"

रडी! उन 'दूसरी औरतो' मे से एक जिन्हे अनवर ने एक बार इसी बाजार से गुज़रते वक्त देखा था। लेकिन उसके अब्बा ने कह रखा था कि शरीफ आदमियो को उनकी तरफ देखना भी नही चाहिए, उनके घर मे जाना तो दूर रहा। सीढियो के ऊपर पहुचकर उसके कदम अपने-आप रुक गए, लेकिन गोपाल उसे खीचकर एक कमरे मे ले गया जो बिजली की रोशनी मे चमक रहा था। वहा पहुचकर जब अनवर बेवकूफो की तरह पलके झपकाने लगा तो हर तरफ से एक जोर का ठहाका पडा।

कमरे की सजावट कुछ अजीब ही ढग की थी। फर्श पर एक सफेद चादनी बिछी हुई थी, जिसमे बहुत-से पैरो तले रौदे जाने की वजह से बेशुमार सलवटे पड़ गई थी और कई जगह उसपर पान के धब्बे भी पडे हुए थे। दीवारो पर बडे-बडे आईने और अलग-अलग हद तक नगी औरतो की तसवीरे लगी हुइ थी जिन्हे देखकर ही अनवर का मुह शर्म से लाल हो गया। कमरे के दूसरे सिरे पर एक दरवाज़ा था जिसपर परदा पड़ा हुआ था। यह दरवाज़ा एक दूसरे कमरे मे जाता था और एक बार जब कोई नौकर अदर से निकलकर आया तो

अनवर ने देखा कि वहा एक मसहरी पडी हुई थी।

कमरे मे बहुत लोग नही थे। वह औरत, जो उन दोनो को सीढियो पर मिली थी, लगभग पैतालीस बरस की भरे बदन की औरत थी। वह बीच मे बैठी हुई सामने एक बडा-सा पानदान रखे पान लगा रही थी। दो लडकिया, जिनमे म एक की उम्र लगभग बीस बरस की थी और दूसरी की इससे कुछ कम रही होगी, एक तरफ बैठी थी। वे शलवारे और कसे हुए कुरते पहने थी जिनकी वजह से उनके जिस्म की गोलाइया बहुत ज्यादा उभरकर सामने आ गई थी। वे दोनो सावली थी लेकिन उनके गालो पर ढेरो सुर्खी और पाउडर पुता हुआ था। वे दोनो दिखावे के लिए बहुत शरमाई हुई बैठी थी लेकिन जिस तरह वे उन दोनो लडको को कनखियो से देख रही थी उसमे शरारत साफ झलकती थी। न जाने क्यो उन्हे देखकर अनवर को उस फुर्तीले चीते की याद आ गई जिसे उसने एक बार सरकस मे देखा था। इन दोनो लडकियो के जिस्म भी उसी चीते की तरह थे और ऐसा लगता था कि वे किसी शिकार पर हमला करने के लिए पर तोल रही है। अनवर को उनकी तरफ देखते भी डर लगता था कि कही उनसे उसकी आखे चार न हो जाए, क्योकि इससे उसे एक अजीब-सी उलझन होती थी और उसके मन मे ऐसी अजीब-अजीब उमगे उठती थी जिनमे आकर्षण भी था पर जिनसे दूर भागने को भी जी चाहता था। थोडी दूर पर कुछ साजिदे बैठे धीमी आवाज मे दगो के बारे मे बाते कर रहे थे और यह सोच रहे थे कि वे घर कैसे वापस पहुचेगे।

अनवर ने देखा कि गोपाल को उसकी तरह घबराहट नही हो रही थी। बल्कि ऐसा लगता था कि ठेकेदार का बेटा इस वातावरण का आदी है। उसकी जबान, जिसमे हमेशा से मिठास और तेजी थी, अब फिर कैची की तरह चलने लगी थी। अनवर को इस बात पर कुछ हसी भी आ रही थी कि गोपाल उस घर की मालकिन पर अपनी हैसियत और दौलत का रोब डालने की कोशिश कर रहा था और बीच-बीच मे उन दोनो लडकियो से नजरे भी लडाता जाता था। दोनो लडकिया गोपाल की मोटरो, बंगलो, रेशमी साडियो और जेवरो की बाते सुनकर काफी रोब मे आ गई थी। जब पान लग गए तो बाईजी ने चादी की तश्तरी मे रखकर छोटीवाली लड़की को दे दिए। मटकती हुई वह पहले गोपाल के पास गई और बड़े अदब से झुककर उसने तश्तरी उसके आगे

बढा दी।

गोपाल ने लडकी की आखो मे आखे डालकर कहा, "अगर पान खिलाना चाहती हो तो अपने हाथ से खिलाना होगा।"

लडकी खिखियाकर हसी और गिलौरी गोपाल के खुले हुए मुह मे रख दी। और पान मुह मे रखते ही गोपाल ने जोर की चटकारी लेकर उसकी उगलियो को चूम लिया। अनवर समझता था कि इसपर वह गोपाल के मुह पर थप्पड़ मार देगी, लेकिन सब लोग हस पडे मानो यह भी कोई मजाक रहा हो। गोपाल ने उसे बाह पकडकर रोका और जेब मे से पाच रुपये का नोट निकालकर उस.ी मुट्ठी मे रख दिया और ऐसा करते समय वह उसकी हथेली मे गुदगुदी करना नही भूला।

अब अनवर वी बारी थी। लडकी को अपनी तरफ आता देखकर अनवर का तो दिल बैठने लगा। जब वह उसे पान देने के लिए झुकी तो अनवर की नाक मे बहुत सस्ते इत्र की तेज खुशबू आई। इससे पहले कि अनवर यह कह पाता कि वह पान नही खाता उस लडकी ने उसके मुह की तरफ हाथ बढा दिया। अनवर बौखलाया हुआ मुह खोने बैठा था।

"यार, तुम भी बडे बेवकूफ हो," गोपाल ने उसे छेडते हुए कहा, "ऐसा मौका भी कोई हाथ से जाने देता है।" अनवर मना रहा था कि जमीन फट जाए और वह उसके अन्दर समा जाए।

लेकिन उस लडकी ने तो अनवर के खुले हुए मुह मे पान रख दिया था और तश्तरी लिए उसके सामने खडी इंतजार कर रही थी। अनाडियों की तरह पान चबाते हुए अनवर को यकायक खयाल आया कि उसे तश्तरी मे कुछ पैसे रखने चाहिए। इसलिए उसने जेब मे हाथ डालकर जो कुछ भी था बाहर निकाला—एक अठन्नी, एक चवन्नी, एक इकन्नी, और ताबे के चार पैसे। जब पैसे खनककर तश्तरी मे गिरे तो कमरे मे बैठे हुए सब लोग कहकहा मारकर हस दिए। मौके का फायदा उठाकर गोपाल ने लडकी को अपनी तरफ खीच लिया और बडी बेतकल्लुफी से उसके गाल मसलने लगा।

अनवर ने अपनी ज़िन्दगी मे पहले कभी पान नही खाया था। पान चबाते-चबाते उसके मुह मे पीक भर गई और उसकी समझ मे नही आया कि उसे निगल जाए या थूक दे। सुपारी से उसके हलक मे फंदा लग गया था। और

उस औरत ने शायद पान मे थोडी-सी तम्बाकू भी डाल दी थी जिसकी वजह से अनवर का सिर चकराने लगा। दीवार पर टंगी हुई नगी तस्वीरें, साजिन्दे, पानदान के पास बैठी हुई वह औरत, और चीते जैसी वे दोनो लडकिया जो उसे ऐसे घूर रही थी मानो अभी उसे खा जाएगी, और कहकहे लगाता हुआ गोपाल जिसके पान से लाल दात दिखाई दे रहे थे—अनवर को लग रहा था कि हर शख्स, हर चीज़ झूम रही है, नाच रही है।

किसी तरह अनवर अपने जूते ढूढकर सीढियो की तरफ लपका और एक सास मे सीढिया उतर गया जैसे उसके पीछे एकसाथ कई भूत लग गए हो। उसे यह मंजूर था कि वह दगे मे किसी गुडे के हाथो मारा जाता, पर वह उस घर में एक क्षण के लिए भी नही रुक सकता था।

कुछ दिन बाद दंगा खत्म हो गया। पता यह चला कि शहर के दो गुडो में कोई ज़ाती झगडा हो गया था। उनमे से एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान और दोनो तरफ के कट्टर मज़हबी लोगो ने इस मौके का फायदा उठाकर झूठी अफवाहे फैलाई थी और दोनो सम्प्रदायो के बीच झगडा करा दिया था। अनवर ने चावडी बाजारवाली बात अपने अब्बा को नही बताई थी। वह जानता था कि उसे मजबूर होकर ही वहा जाना पड़ा था लेकिन उसे डर था कि उसके अब्बा कही इसका गलत मतलब न लगाए।

दंगा तो खत्म हो गया लेकिन उसकी वजह से दिलो मे जो बैर पैदा हो गया था वह दूर नही हुआ। दोनो एक-दूसरे को दोष देते थे। अपने अब्बा की बैठक मे अनवर ने तरह-तरह के भयानक किस्से सुने कि हिन्दू सारे हिन्दुस्तान मे मुसलमानो पर कैसे-कैसे ज़ुल्म ढाने की तैयारिया कर रहे थे। अकबरअली न तो चौधरी मुहम्मदउमर की तरह गाली बकते थे और न ही कभी सख्ती से बोलते थे, लेकिन अनवर यह महसूस करने लगा था कि उसके अब्बा का दिल अब अपने हिन्दू दोस्तो की तरफ से हटने लगा था और इसीलिए जब कभी काका रामेश्वरदयाल आते थे—हालाकि इन दिनो उन्होने आना बहुत कम कर दिया था—तो अकबरअली उनसे बहुत ही रस्मी तरीके से मिलते थे।

अनवर अजीब मुश्किल मे फस गया था। जब भी वह अपने अब्बा और

चौधरी मुहम्मदउमर के मुह से सुनता कि फसाद के जमाने मे हिन्दुग्रो ने मुसलमानो पर कैसे-कैसे जुल्म किए थे तो उसपर पहली प्रतिक्रिया यह होती थी कि वह सभी हिन्दुग्रो से नफरत करने लगे। लेकिन जब वह काका रामेश्वरदयाल या गोपाल से या ग्रपने स्कूल के उन मास्टर साहब से मिलता था जो उसे भूगोल पढाते थे तो वह किसी भी तरह उनसे नफरत नही कर सकता था। सच तो यह था कि जब वह इनमे से किसीसे भी मिलता था तो वह यह भूल जाता था कि जिससे वह बाते कर रहा है वह ग्रादमी हिन्दू है। वह उनके साथ पहले की तरह ही ग्रदब या मुहब्बत से पेश ग्राता, लेकिन बाद मे ग्रपने-ग्रापको दोष देता कि वह चौधरी साहब या उनके बेटे शफी की तरह पक्का मुसलमान नही था क्योकि ये लोग तो खुले-ग्राम हिन्दुग्रो से नफरत का ऐलान करते थे। पजाबी व्यापारी चौधरी मुहम्मदउमर ने एक ग्रादोलन खडा किया था जिसका नाम था 'मुसलमान मुसलमान से ही खरीदे'। इस ग्रादोलन का उद्देश्य यह था कि मुसलमानो मे तिजारत का शौक पैदा किया जाए जिसे वे ग्रब तक बहुत घटिया काम समभते थे। इस ग्रादोलन के नतीजे के तौर पर ग्रगर मुहम्मदउमर ग्रौर ग्रकबरग्रली की चीनी के बरतनो की दूकान पर ज्यादा गाहक ग्राने लगे थे तो यह सिर्फ इस बात का सबूत था कि मुसलमानो मे ग्रापस मे कितना भाईचारा था। यह सब उस ग्रल्लाह की शान थी ग्रौर इसके लिए ग्रल्लाह का शुक्र ग्रदा किया जाना चाहिए।

सितम्बर मे स्कूल की छुट्टिया हुई ग्रौर हालाकि मार्च मे ग्रनवर को मैट्रिक का इम्तहान देना था लेकिन वह उसके लिए ग्रभी तक कोई खास तैयारी नही कर रहा था। वह ग्रब भी बैठक के उसी कोने मे बैठा लोगो की बाते सुनता रहता था। इन दिनो ग्राम तौर पर इसी साम्प्रदायिक समस्या पर बातचीत होती थी। उस सवेदनशील बालक के लिए दगो के बारे मे दिल दहलानेवाली बाते सुनना एक बहुत ही भयावह ग्रनुभव था। ये ग्राए दिन की घटनाए हो गई थी फिर भी उनकी भयावहता उसे स्तम्भित कर देती थी। वह विभिन्न शहरो मे होनेवाले खून-खराबे ग्रौर तबाही की जितनी ही ज्यादा खबरे सुनता था उतनी ही ज्यादा उसकी दिलचस्पी इस बात मे घटती जाती थी कि हिन्दुग्रो ने मुसलमानो को मारा या मुसलमानो ने हिन्दुग्रो को। उसे तो सिर्फ यह समभ मे ग्राता था कि जो कल तक ग्रापस मे भाई-भाई ग्रौर दोस्त थे वे ग्राज एक-दूसरे के खून के प्यासे हो

गए थे । क्या उसके देशवासियो की बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी ? अनवर को यह सब बाते वैसी ही भयानक लगती थी जैसे वह जाकर काका रामेश्वरदयाल के छुरा भोक दे या गोपाल आकर उनके घर को आग लगा दे । इस किशोरवय बालक को ऐसा लगता था कि कोई आवाज़ लगातार उसके सिर के अदर हथौडे से चोट कर रही है, "इसे रोकने के लिए कुछ किया जाना चाहिए ! जरूर किया जाना चाहिए ! फौरन कुछ किया जाना चाहिए !!" लेकिन वह क्या कर सकता था । जब इतने बडे-बडे नेता कुछ नही कर सके तो मुश्किल से पद्रह बरस का एक लडका क्या कर सकता था ।

आखिरकार उसने फैसला कर ही लिया । चौधरी मुहम्मदउमर ने हमेशा की तरह अपने हिकारत-भरे लहजे मे कहा कि गाधी दिल्ली आया है—वे उन्हे कभी भी महात्मा गाधी नहीं कहते थे । इसपर अकबरअली ने भी किंचित् निराशा से कहा, "एक जमाना था जब वे हालत को सभाल सकते थे ।" अनवर के दिमाग मे यह विचार बिजली की तरह कौध गया, 'मैं जाकर महात्मा गाधी से मिलूगा । वे जरूर कुछ कर सकते हैं । उन्हे जरूर कुछ करना पडेगा । क्या उन्होने ही मुझे ख्वाब मे उस राक्षस से नही बचाया था ? क्या उन्होंने ही हिन्दुस्तानियो को यह नही सिखाया कि वे अग्रेज़ो को न मारे ? और लोगो ने उनका कहना माना । इसलिए अगर अब वे हिन्दू-मुसलमानो से यह कहेगे कि वे एक-दूसरे को न मारे तो वे यकीनन उनका कहना मानेगे ।' यह विचार उसके मन मे इतनी तेज़ी से उठा और उसका दिल जोश के मारे इतने ज़ोरो से धडकने लगा कि वह चुपके से बैठक मे से खिसक आया । वह डर रहा था कि कही उसके अब्बा को उसके इस इरादे का पता न चल जाए और वे उसे रोक न ले ।

•

गाधीजी दरियागज के पास ही कूचा चेलान मे मौलाना मुहम्मदअली के घर पर ठहरे हुए थे । पतली चक्करदार गलियो को पार करते समय अनवर सोच रहा था कि यह तो बहुत ही अच्छी बात है । वह जानता था कि मौलाना और गाधीजी बहुत गहरे दोस्त थे और जेल से छूटने के बाद मौलाना काग्रेस के अध्यक्ष चुने गए थे । दो इतने बडे-बडे लोगो की दोस्ती का नतीजा, जिनमे

से एक हिन्दू था और दूसरा मुसलमान, अच्छा ही हो सकता था।

मौलाना मुहम्मदअली के घर पर ही उनके दो अखबारों का दफ्तर भी था—एक उर्दू का 'हमदर्द' और दूसरा अंग्रेजी का 'कामरेड'। जिस वक्त अनवर ने डरते-डरते दरवाजा खटखटाया, मौलाना बैठे अपने अखबार का सम्पादकीय लेख लिख रहे थे। अपने ढीले-ढाले काले लबादे मे उनका शरीर बहुत बडा लग रहा था।

"कौन है ?" मौलाना ने नजर ऊपर उठाए बिना गरजकर पूछा।

अनवर की समझ मे नही आ रहा था कि अपना क्या परिचय दे। उसने हकला-हकलाकर कहा, "मै हू···माफ कीजिएगा···मै···मै···"

मौलाना ने लिखना बद कर दिया और अपना खूबसूरत दाढीवाला रोबदार चेहरा ऊपर उठाकर देखा कि कौन आया है। जब उन्होने देखा कि एक स्कूली लडका दरवाजे पर बौखलाया हुआ खडा है तो उनके चेहरे पर एक मुस्कराहट दौड गई और वे बोले, "मिया साहबजादे, आ जाओ, अदर आ जाओ।"

अनवर की हिम्मत बंधी और वह बोला, "मैने एक बार आपको डाक्टर असारी साहब के यहा देखा था। मै वहा अपने अब्बा के साथ गया हुआ था···" लेकिन उसकी बात बीच मे ही काट दी गई।

"अच्छा, तो तुम्हारे अब्बा असारी के दोस्त हैं। बैठो बेटा, बैठो। कहो, इस वक्त कैसे आना हुआ।"

"मै महात्मा गाधी से मिलना चाहता हू।" अनवर ने बिना झिझके कह दिया और अपने आने का उद्देश्य बताकर उसे बडा सतोष हुआ।

"अच्छा ! तो तुम इस काम से आए हो ? ऊपर चले जाओ बेटा। वैसे गाधीजी आज किसीसे मिलना नहीं चाहते थे लेकिन नौजवानो से मिलकर उन्हें हमेशा बडी खुशी होती है।"

"शुक्रिया मौलाना साहब ! आदाब अर्ज !" अनवर ने कमरे से बाहर निकलते हुए कहा।

"जीते रहो बेटा !" मौलाना ने जवाब दिया और अनवर कमरे से बाहर निकल भी नहीं पाया था कि मौलाना फिर सिर झुकाकर लिखने लगे।

ऊपर पहुचकर अनवर ने देखा कि गांधीजी फर्श पर पाल्थी मारे बैठे चर्खा कात रहे है। वे किसी गहरे विचार मे डूबे हुए थे, इसलिए थोड़ी देर तक तो

उन्हे अनवर के आने का पता ही नही चला और अनवर को बहुत करीब से उस छोटे-से महान् व्यक्ति को गौर से देखने का मौका मिला। गोल गुम्बद की तरह घुटा हुआ सिर, लम्बी नुकीली नाक और बाहर को निकले हुए बडे-बडे कान। बडे-बडे गोल शीशोवाली ऐनक के पीछे से दोनो आखे चर्खे के तकुए पर जमी थी। उनका शरीर एक लडके से भी छोटा और दुबला-पतला था और जिंदगी मे पहली बार अनवर को अपने छोटे कद और दुबले-पतले शरीर के बारे मे कुछ तसल्ली हुई।

चर्खे की चू-चू के अलावा कमरे मे बिलकुल सन्नाटा था। अनवर डरते-डरते खासा और चर्खा चलना फौरन बद हो गया। दो उदास आखे ऊपर उठी और अनवर को देखने लगी। एकाएक उस चेहरे पर से उदासी दूर हो गई और बूढे ने अनवर को मुस्कराकर देखा, बिलकुल उसी तरह जैसे डाक्टर अमारी के बगले के लॉन पर उसने अनवर की तरफ देखा था।

"बैठो, बैठो!" गाधीजी ने अनवर से बैठने को कहा। अनवर के कान दिल्ली की मभी हुई जबान सुनने के आदी थे; उसे गाधीजी की हिन्दुस्तानी मे गुजराती की साफ झलक दिखाई दी। लेकिन उनकी आवाज़ मे बेहद नरमी थी; अनवर अब बिलकुल घबरा नही रहा था। वह जूते उतारकर फर्श पर बैठ गया। चर्खा फिर चलने लगा क्योकि गाधीजी चर्खा चलाते-चलाते बाते करने के काफी आदी मालूम होते थे।

अनवर का खद्दर का पाजामा और शेरवानी देखकर गाधीजी बहुत खुश हुए और उन्होने यह बताना शुरू किया कि हाथ के कते हुए सूत से हाथ का बुना हुआ कपडा पहनने मे कितने फायदे है—यह एक ऐसा विषय था जिसपर वे घटो बाते कर सकते थे। लेकिन अनवर तो दगो के बारे मे बात करने आया था। पर उसकी समझ मे नही आ रहा था कि किस तरह बात शुरू करे। खादी के महत्त्व के बारे मे गाधीजी की बाते सुनते-सुनते उसके विचार भटकने लगे। वह उन तमाम भयानक बातो के बारे मे सोच रहा था जो उसने दगो के बारे मे सुनी थी—हिंदुओ और मुसलमानो का एक-दूसरे को कत्ल करना, एक-दूसरे के घरो मे आग लगाना और मदिरो और मस्जिदो को गदा करना। और गाधीजी की धीमी आवाज़ और चर्खे की री-री को रौदती हुई उसे वे भयानक आवाज़े फिर सुनाई देने लगी—'मारो! मारो!' और 'मार डाला! मार डाला!'

वह अपने दिल का दर्द गाधीजी को कैसे बताए ? वह उन्हे किस तरह बताए कि उसके अब्बा मुसलमान है और उनकी वह बेहद इज्जत करता है और उसके एक हिंदू काका है जिन्हे चाचा की तरह प्यार करना और चाचा की तरह इज्जत करना उसे बचपन से सिखाया गया था—लेकिन अब वे दोनो वैसे गहरे दोस्त नही रह गए थे जैसेकि वे अब तक अपनी जिंदगी-भर रहे थे ? वह उन्हे किस तरह बताए कि गोपाल अपनी तमाम खराबियो के बावजूद उसका अच्छा दोस्त था और वह उसकी दोस्ती खोना नही चाहता था ? वह उन्हे रतन के बारे मे बताने के लिए बेताब था। वह उन्हे बताना चाहता था कि रतन की दोस्ती ने उसकी ज़िन्दगी की धारा किस तरह मोड दी थी। लेकिन अब इन सारी दोस्तियो मे साम्प्रदायिक द्वेष का जहर घुल गया था। काश वह ये सारी बाते गाधीजी को समझा सकता ! काश वह ऐसा कर पाता !······लेकिन उसे शब्द नही मिल रहे थे, उसका गला रुंध गया था और वह बहुत लाचार और दुखी महसूस कर रहा था। उसके आसू बह निकले।

चर्खा चलना बन्द हो गया और गाधीजी एक शब्द भी कहे बिना अनवर के पास आए और उसकी तुर्की टोपी उतारकर बडे प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। उनके स्पर्श मे इतना स्नेह था कि अनवर और भी लाचार महसूस करने लगा और फूट-फूटकर रोने लगा। "महात्माजी," उसने अपनी सिसकियो के बीच कहना शुरू किया, "इन हिंदू-मुस्लिम दगो के बारे मे कुछ कीजिए ! खुदा के लिए कुछ कीजिए ! आप ही हम सब लोगो को बचा सकते है।"

अपने आने का उद्देश्य इस तरह बताकर उसके दिल का बोझ हलका हुआ और आसू पोछकर जब उसने ऊपर नजर उठाई तो महात्माजी के चेहरे पर एक नया ही भाव था। अब अनवर की समझ मे आ गया कि लोग उन्हे महात्मा क्यो कहते थे। उनकी मुद्रा मे इतनी व्यथा, इतनी करुणा और दया थी कि जैसे हर इसान की पीडा वे स्वय अनुभव कर रहे हो। परन्तु साथ ही उनकी मुद्रा मे असीम शाति तथा गम्भीरता भी थी और जब अनवर ने उन कोमलता-भरी आखो मे आखें डालकर देखा तो उसके मन को कुछ शाति हुई। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था जो बिना समझाए उसकी बात समझ सकता था। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था जो एक दुखी रोते हुए लडके का मजाक उडाने की बजाय उसकी भावनाओं को समझकर मुस्कराकर उसे देख सकता था। अनवर

के गाल अभी तक आसुओं से तर थे पर उसके होठो पर बरबस मुस्कराहट की एक रेखा दौड गई।

"हा बेटा,' महात्माजी ने स्नेह-भरे स्वर मे दूर क्षितिज की ओर देखते हुए कहा, 'मेरे दिल को भी वैसी ही चोट लगी है जैसी तुम्हारे दिल को। अगर भगवान ने मुझे रास्ता दिखाया तो मैं जरूर कुछ करूगा।"

दूसरे दिन सुबह हकीम बेदिल बैठक मे जोर-जोर से अखबार पढकर सुना रहे थे। अनवर चुपके से आकर हमेशा की तरह एक कोने मे बैठ गया। गाधीजी के बयान पर, जिसमे उन्होने इक्कीस दिन तक अनशन करने की बात कही थी, हर आदमी बहुत उत्तेजित था। गाधीजी ने कहा था कि हिंदू और मुसलमान अब तक जिस एकता के साथ काम करते आए थे उसे वे आगे चलकर भी जारी रखे ताकि अत मे चलकर पूरा देश इस एकता का पूरा लाभ उठा सके।

'गाधीजी ने आखिरकार हल निकाल ही लिया! उन्होने रास्ता ढूंढ ही लिया!' अनवर मन ही मन सोचने लगा। उन्होने इतना बडा जो कदम उठाया है क्या उसमे अनवर की उनके साथ मुलाकात का भी कुछ हाथ है? क्या इतिहास की दिशा को मोडने मे सचमुच उसका भी हाथ था?

क्या यह सच हो सकता है?

यह विचार मन मे आते ही उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। वह रोज बडी उत्सुकता से अखबार पढता था और यह देखकर उसका हौसला बहुत बढता था कि गाधीजी के इस कदम पर सारे देश मे उत्साह की एक लहर दौड गई थी। दगे फौरन बन्द हो गए थे, एकता का आंदोलन फिर शुरू हो गया था, हर जगह गाधीजी के चिरायु होने की कामना के प्रस्ताव पास किए जा रहे थे और सभाएं हो रही थी। एक सप्ताह के अन्दर ही दिल्ली मे विभिन्न सम्प्रदायो के नेताओं ने एकता सम्मेलन का आयोजन किया। अकबरअली को भी सम्मेलन मे बुलाया गया और अनवर ने जिद करके उन्हे इस बात पर राज़ी कर लिया कि वे उसे भी साथ ले चलेंगे। क्या यह उसका अपना सम्मेलन नही था?

नेतागण आ-आकर मच पर बैठने लगे। अकबरअली ने एक-एक करके अनवर को बताना शुरू किया कि उनमे कौन-कौन है—शेरवानी और चूडीदार

पाजामा पहने हुए जो रोबदार सज्जन बीच मे बैठे हुए थे वे मोतीलाल नेहरू थे, जो इस सम्मेलन के सभापति थे; काला चश्मा लगाए हुए बगाल के महान नेता सी० आर० दास थे, उधर कवयित्री सरोजिनी नायडू बैठी थी जिन्हे लोग 'बुलबुले-हिंद' भी कहते थे, और वे फुर्तीला-से नौजवान आदमी जो इधर-उधर बहुत भाग रहे थे वे मोतीलाल नेहरू के बेटे जवाहरलाल थे। अनवर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि मच पर सफेद बालोवाली एक अग्रेज औरत भी बैठी थी। उसके अब्बा ने उसे बताया कि वे मिसेज बेसेंट थी जो हिंदुस्तान की दोस्त थी और स्वराज की माग को सही मानती थी।

भाषण आरम्भ होने का वक्त हो गया और अग्रेजी के धुआधार भाषणो के प्रवाह मे अनवर बहा चला जा रहा था। लेकिन मौलाना मुहम्मदअली उर्दू मे बोले और अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होने जिन जोरदार शब्दो मे एकता की अपील की उन्हे अनवर कभी नही भूल सकता था।

"मैं बहुत मजहबी आदमी हू। लेकिन मैं यह ऐलान करना चाहता हू कि इन फसादात का मजहब से कोई ताल्लुक नही है। हमारे दिलो मे जो तल्खी और कुदूरत पैदा हो गई है वह सिर्फ रवादारी और अहिंसा से दूर हो सकती है। हमे कितना भी उकसाया जाए पर हमे पुर-अम्न रहना चाहिए। एक-दूसरे से बदला लेने का जो यह खूनी सिलसिला चल रहा है उसे खत्म करने के लिए हमे कुछ करना होगा वरना हम अपनी आजादी की मजिल से दिन-ब-दिन दूर होते जाएगे और हमारे दुश्मनो को हमारी इस बेवकूफी पर हसने का मौका मिलेगा कि हम ऐसे वक्त पर आपस मे लड रहे हैं जबकि हमे आजादी की लडाई मे अपना इत्तहाद कायम रखना चाहिए।"

जब लोगो ने मौलाना के भाषण पर तालिया बजाईं तो अनवर ने मुडकर अपने अब्बा की तरफ देखा; उनकी आखो से आसू बहकर उनकी दाढी पर गिर रहे थे। न जाने क्यो यह दृश्य देखकर अनवर को खुशी हुई। अब वह समझ गया था कि गाधीजी का ध्येय सफल हुआ। मुहब्बत और इस नियत के खुदा को फिर उसके तख्त पर बिठा दिया गया था और लोगो के दिलो मे फिर उसके लिए जगह पैदा हो गई थी।

दुःख के बंधन

मैट्रिक की परीक्षा समाप्त हो चुकी थी। दिमाग पर से एक बोझ उतर गया था।

इम्तहान तो खत्म हो गया था पर नतीजा निकलने मे अभी कम से कम दो महीने की देर थी। इतने दिन तक इतजार करने और वक्त काटने का कोई अच्छा तरीका ढूढ लेने के अलावा काम ही क्या था। अनवर को तो दूसरो से भी ज्यादा वक्त काटना था, क्योकि अलीगढ यूनिवर्सिटी मे तो अक्तूबर मे नाम लिखे जाते थे। अनवर को तो पूरी गर्मिया काटने के लिए कोई रास्ता ढूढना था।

अनवर के जीवन की तरह देश मे भी एक सन्नाटा था। इस समय तो राजनीतिक क्षेत्र मे भी कोई खास हलचल नही थी। बैठक मे अब बातचीत भी ज्यादातर स्थानीय या निजी मामलो के बारे मे होती थी। चीनी के बरतनो की दूकान जोरो पर चल रही थी। ज्यादातर माल जापान से आता था। जापान ने बेहद कम दामो पर चीनी और काच की चीज़े तैयार करने का कोई तरीका मालूम कर लिया था। काका रामेश्वरदयाल ने कपडे की बहुत बडी दूकान खोल ली थी और चूकि विदेशी कपडे के बायकाट का आदोलन लगभग बिलकुल ठप हो गया था और खद्दर के कपडे से शौकीन पैसेवालो का काम नही चलता था इसलिए वे ज्यादातर विदेशी कपडा ही बेचते थे—साटन, मखमल, रेशम, मलमल और वायल।

अनवर अपना ज्यादातर वक्त किताबे पढने मे बिताता था। वह हर तरह की किताबें पढता था—अपने अब्बा की लाइब्रेरी से उर्दू की गद्य तथा पद्य की अमर रचनाए, जासूसी उपन्यास, अग्रेज़ी मे लडको के लिए बहादुरी के किस्से और शेक्सपियर की कहानिया। रोज़ शाम को वह जामा मस्जिद के पास पुरानी किताबो की दूकानो के चक्कर लगाता था और घटे-भर तक पुरानी

किताबो के धूल से अटे ढेर मे ढूढने के बाद अगर वह दो-तीन आने मे कोई अच्छी-सी किताब पा जाता था तो उसे ऐसी खुशी होती थी जैसे कोई खजाना मिल गया हो।

लेकिन कोई खाली किताबो के सहारे कितना वक्त काट सकता है। इसलिए कभी-कभी गर्मियो के पहाड जैसे दिन काटना उसके लिए दूभर हो जाता था। अनवर के दोस्त बहुत थोडे ही थे और उनके घर जाने मे भी उसे झिझक होती थी। इसलिए एक दिन जब गोपाल उसके यहा आया और बहुत देर तक अपने खास ढग से बाते करने के बाद जब उसने अनवर को चलकर रायसीना मे, जिसे वहा के लोग नई दिल्ली कहने लगे थे, वाइसराय की कोठी और दूसरी इमारते देखने का निमंत्रण दिया तो अनवर बहुत खुश हुआ। गोपाल अपने पिताजी के साथ वहा जा रहा था।

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही ठेकेदार साहब की खचडा फोर्ड गाड़ी आ पहुची और हार्न की आवाज सुनते ही अनवर खुशी से उतावला होकर भागा-भागा बाहर पहुचा। गोपाल के पिताजी लाला किशनलाल बहुत ही मोटे आदमी थे और उनकी आवाज़ भी उतनी ही मोटी थी। उनकी ठोडी के नीचे मुटापे की वजह से खाल लटक आई थी और जब वे बोलते थे तो सोने का एक दात चमक उठता था। उन्हे अपने मजाकिया होने पर बडा नाज़ था और रास्ते-भर वे अपने चुटकुलो और मज़ेदार कहानियो से दोनो लडको को हसाते रहे। अपनी बातचीत के दौरान मे वे बार-बार 'साला' और 'सुसरा' और इससे भी मोटी-मोटी गालिया इस्तेमाल करते थे। अनवर को उनके मुह से गालिया सुनकर आघात भी पहुंचता था और मज़ा भी आता था और वह मन ही मन रामेश्वर काका के साथ उनकी तुलना करता रहता था, जो बहुत शराफत और नरमी से बोलते थे।

पन्द्रह मिनट भी न लगे होगे कि मोटर लाल ईंटो की नई अधबनी पक्की इमारतो के सामने से गुज़र रही थी और किशनलाल ने बडे गर्व के साथ उन अधबने बगलों की तरफ इशारा किया जो उनकी सम्पत्ति थे। बीच-बीच मे मोटर किसी बनते हुए मकान के सामने रुकती थी और मोटे ठेकेदार साहब उतरकर अपने मिस्त्रियों को हिदायते देते थे और इस तरह अपना रोब जताते थे। इसके बाद वे इससे भी ज्यादा रोबदार इमारतो के सामने से गुजरे। अभी

कुछ साल पहले यहां दूर-दूर तक बजर रेगिस्तान था और अब वही पुराने भूले-बिसरे शहरो के खडहरो के बीच एक बिलकुल नई राजधानी बनकर तैयार हो रही थी। नई और पुरानी इमारते, अधबनी और अधगिरी इमारते एक-दूसरे के पास खडी थी और अक्सर तो यह बताना भी मुश्किल हो जाता था कि इनमे से किसका सबध अतीत के साथ है और किसका भविष्य के साथ।

एक बडी-सी गोल इमारत के सामने पहुचकर मोटर रुक गई और लाला किशनलाल ने लडको को बताया कि वह असेम्बली चैम्बर की इमारती थी जहा आगे चलकर भारत के विधान-निर्माता बैठेगे। लाला किशनलाल पी० डब्ल्यू० डी० को थोडा-बहुत इमारती सामान भी सप्लाई करते थे इसलिए वे हर इमारत में आजादी से आ-जा सकते थे। वे दोनो लडको को लेकर उस इमारत के अदर गए। वहा गारे, चूने और सीमेट की गध बसी हुई थी और विना छत के बडे-बडे कमरे अजीब भयानक लगते थे। बरामदो और छोटे-छोटे गलियारो की भूल-भुलैया मे उनके पैरो की आहट बडे डरावने ढग से गूज रही थी। अनवर को न जाने क्यो ऐसा लगा कि वे किसी पुराने महल के खडहरो मे घूम रहे हैं जिसकी छते सैकडो बरस पुरानी होकर गिर गई थी और पत्थर की दीवारो पर से पलस्तर छूट गया था जिसकी वजह से वहा एक अजीब-सी सीलन की बासी-बासी बू पैदा हो गई थी। थोडी देर बाद जब वे फिर खुली जगह मे निकल आए तो अनवर को ऐसा लगा कि वे अतीत के अधकार से निकलकर फिर वर्तमान मे आ गए हैं।

असेम्बली चैम्बर से वे लोग मोटर पर बैठकर किले जैसी दीवारो से घिरी हुई वाइसराय की कोठी देखने गए। लाला किशनलाल के एक इजीनियर दोस्त ने उन लोगो के साथ जाकर उन्हे समझाया कि हर हाल और कमरा किस काम के लिए बनाया जा रहा था। अनवर के लिए उन सब कमरो की सूची याद रखना भी मुश्किल था—हिज़ ऐक्सेलेसी का सुबह के वक्त बैठने का कमरा, हर ऐक्सेलेसी का तीसरे पहर आराम करने का कमरा, हिज़ ऐक्सेलेसी का बेड-रूम, हर ऐक्सेलेसी का बेड-रूम, देअर ऐक्सेलेसीज़ का प्राइवेट डाइनिंग रूम, स्टेट डाइनिंग रूम, बैक्वेट हाल, ब्लू रूम, लिखने का कमरा, बडे कमरो से लगे हुए छोटे कमरे, रिसेप्शन रूम, गेस्ट रूम और फिर सेक्रेटरियो, बाडी-गार्डों, घरेलू नौकरो, बावर्चियो, खानसामाओ और ड्राइवरो के रहने के कमरे, किचेन

जो खुद पूरे-पूरे बगलो के बराबर थे ; इसके अलावा मोटरखानो की एक कतार जिनमे मोटरे रखी जाएगी और तहखाने जिनमे दुनिया की बेहतरीन शराबे रखी जाएंगी।…इजीनियर साहब बडे गर्व से समझा रहे थे कि उस पूरे महल की सजावट किस ढग की होगी। उन्होने बताया कि दुनिया की बेहतरीन लकडी का बना हुआ फर्नीचर विलायत से मगाया गया था, कमरो मे और यहा तक कि बरामदो मे ईरानी कालीन बिछाए जाएगे, दीवारों पर बडी-बडी तसवीरें होगी, खाने के कमरो मे चीनी और काच के बेहतरीन बर्तन होगे और बैंक्वेट हाल मे बिल्लौरी फानूस होगे।…

अनवर अपने इस बातूनी गाइड की आधी बाते ही सुन रहा था ; वह तो इस बात पर ताज्जुब कर रहा था कि इन तमाम चीज़ो का फायदा सिर्फ दो आदमी उठाएगे—एक वाइसराय और दूसरी उनकी मेम साहब। आखिर ये किस किस्म के लोग है जिन्हे रहने के लिए सौ कमरे चाहिए ? वह मुगल ज़माने के महल देख चुका था। उस जमाने के बादशाह और शहशाह भी इसके मुकाबले मे ज्यादा सादगी से रहते थे। क्या ये नये शासक जान-बूझकर पुराने ज़माने के बादशाहो से शान-शौकत मे बढ जाना चाहते थे ? पर वह अपने इन विचारो को अपने मन मे ही छिपाए रहा, क्योकि वह जानता था कि इस रोबदार इमारत के अदर उन विचारो को व्यक्त करना न सिर्फ बदतमीज़ी होगा बल्कि ऐसा करना खतरनाक भी हो सकता था।

जिस वक्त वे बाहर निकलकर उस मैदान की तरफ चले जहा बहुत बडा बाग लगाया जा रहा था, उसी वक्त कही ज़ोर से घटा बजा और झुड के झुड मजदूर बाहर निकलकर दोपहर का खाना खाने के लिए कोई सायादार जगह ढूंढने लगे। वे लोग कुछ मज़दूरो के पास से होकर गुज़रे और उन्होने देखा कि वे खाली प्याज़ के साथ रूखी रोटी खा रहे थे। बाग की खुदी हुई ज़मीन के उस पार, जहा फूलो की झाडिया निकलने लगी थी, टीन की नीची-नीची छतोवाली झोपडियो की एक कतार थी जिनमे ये मजदूर रहते थे। परिस्थिति की यह विषमता बरबस अनवर को खटकने लगी और वह यह सोचने लगा कि इस महल को बनानेवाले ये मज़दूर क्या सोचते होगे ? और क्या उनमे सोचने की क्षमता है भी ?

इम्तहान का नतीजा निकला। अनवर फर्स्ट डिवीज़न मे पास हुआ था—अच्छा-खासा नतीजा था। लेकिन उसके अलावा कोई सौ लडके और थे जिन्हे फर्स्ट डिवीज़न मिला था और चालीस लडको का नतीजा तो उससे भी अच्छा रहा था। उन्होने अस्सी फीसदी नम्बर पाकर डिस्टिंक्शन हासिल किया था। उसके अब्बा का यही कहना था, वे नही चाहते थे कि बहुत ज्यादा तारीफ करने से उनके बेटे का दिमाग सातवे आसमान पर पहुच जाए। लेकिन उनका बेटा अच्छी तरह जानता था कि उसके अब्बा उससे बहुत खुश थे और यही उसके लिए सबसे बडी बात थी।

राजनीतिक मोर्चे पर जो गतिरोध पैदा हो गया था वह एक दूसरे ढग के आदोलन से टूट गया। एक दिन चौधरी मुहम्मदउमर इस बात पर बहुत गरम होते हुए आए कि एन० डब्ल्यू० आर० की लाइनो पर आम हडताल हो गई थी और पजाब की तरफ कोई गाडिया नही जा रही थी इसलिए वे अपने घर लुधियाना नही जा सकते थे। रेलवे मजदूरो ने अपनी मजदूरी और काम करने की परिस्थितियो के बारे मे असतोष प्रकट करने के लिए हडताल कर दी थी और इस तरह रेलो की आवाजाही बिलकुल ठप कर दी थी। चौधरी साहब को इस बात पर बडा गुस्सा था कि दो कौडी की औकातवाले लोग—सिगनलमैन, स्विचमैन और कुली लोग—इस तरह हडताल करके घर जाने के उनके सालाना प्रोग्राम मे बाधा डाले। "चीटियो के पर निकलने लगे है," उन्होने बडे तिरस्कार से थूकते हुए कहा, "ये मजदूर अपनी औकात को भूलते जा रहे हैं। यह सब उस गाधी की वजह से है—आटा-दाल बेचनेवाले उस बनिये की वजह से।"

इसी बीच मे रतन के पास से एक चिट्ठी आई जिसमे इस परिस्थिति का बिलकुल ही दूसरा चित्र पेश किया गया था। वह उन राजनीतिक कार्यकर्ताओ के दल मे शामिल हो गया था जो हडताल मे रेलवे मज़दूरो की मदद कर रहे थे। उसने हमेशा की तरह बहुत जोशीले शब्दो मे अनवर को लिखा था, "काश तू यहा लाहौर मे होता और देखता कि कल रात रेलवे मज़दूरो ने कितना शानदार जुलूस निकाला था। दस हज़ार लोग इन्कलाबी नारे लगाते हुए जुलूस मे चल रहे थे। और उनके हाथो मे मजदूरो का इन्कलाबी लाल झडा था जिसे उन्होने अपने खून से रंगा था। उन्हे देखकर ऐसा लगता था कि देश में

एक नई ताकत पैदा हो रही है—मजदूरवर्ग की ताकत ! और एक बार जहा उनमे जोश पैदा हो गया कि वे गाधीजी की सतोवाली बातो से रुकनेवाले नही ; उनके कदम एक बार भी नही झिझकेगे, वे कोई आगा-पीछा नही सोचेगे।"

अनवर स्वभाव से ही बहुत दब्बू था और जब से उसके अब्बा राजनीति से अलग हो गए थे तब से राष्ट्रीय आदोलन के प्रति उसका जोश भी ठडा पड गया था। लेकिन उसे इस बात पर गर्व था कि उसका दोस्त रतन इस आदोलन मे जूझा हुआ था और अपने इस सिख दोस्त के खत पढकर वह भी विद्रोह का रोमाच अनुभव करता था।

फूफी-अम्मा अब साठ के लगभग पहुच चुकी थी, उन्हे समय और तारीख मे कोई दिलचस्पी नही रह गई थी। लेकिन यकायक उन्हे न जाने क्यो कलैडर मे दिलचस्पी पैदा हो गई थी और वे अक्सर अपने भतीजे से पूछती रहती थी कि अग्रेजी महीने की कौन-सी तारीख है ! एक दिन अनवर से न रहा गया, उसने पूछा, "लेकिन फूफी-अम्मा, आपको पहले तो कभी तारीख और महीने की इतनी फिक्र नही रहती थी।" उसकी बूढी फूफी-अम्मा ने उत्तर दिया, "यह तो ठीक है, बेटा। लेकिन तुझे नही मालूम कि यह जून का महीना है। अगले महीने तू मामा बन जाएगा।" अनवर को इस बात का मतलब समझने मे कुछ देर लगी।

अनवर और अजुम को फूफी-अम्मा ने ही पाला-पोसा था, वे चाहती थी कि बच्चा दिल्ली मे उनकी देख-रेख मे ही पैदा हो। हर महीने वे अनवर से अपने भाई के नाम खत लिखवाती थी कि बच्चा पैदा होने के वक्त अजुम को दिल्ली भेजना न भूले। जून के आखिर मे अंजुम कई नौकर-नौकरानियो के साथ दिल्ली आ पहुंची। अनवर को यह देखकर खुशी हुई कि रऊफ उसके साथ नही आया था। साल-भर बाद वह अपनी बहिन से मिलकर बेहद खुश हुआ लेकिन उसका पीला चेहरा और आखो के चारो ओर स्याही के घेरे देखकर उसे कुछ चिंता हुई। वह पहले से बहुत दुबली हो गई थी और पेट के बोझ से उसके पैर लड़खडा जाते थे।

"अरी, मै तेरे सदके जाऊं," गुलाबो बुआ ने अजुम को गले से लगाने के लिए

लपकते हुए बडे प्यार से कहा। "मेरी बिटिया कितनी दुबली हो गई है। बिटिया, सुसराल मे क्या पेट-भर खाना नही मिलता था?"

अकबरअली ने अदर आकर बेटी को गले लगाया और उसका सिर सहलाते हुए पूछा कि रऊफ क्यो नही आया। अजुम ने शरमाते हुए सिर झुकाकर उत्तर दिया कि 'उन्हे' कोई सरकारी काम था इसलिए नही आए, लेकिन 'वे' कुछ दिन बाद आएगे।

जब सब लोग चले गए तो अजुम ने अनवर को अकेले मे अपने पास बुलाया और बडे प्यार से उसे गले लगाकर फूट-फूटकर रोने लगी। अनवर ने महसूस किया कि वह उस तरह नही रो रही थी जैसे कोई बहिन बहुत दिन बाद अपने भाई से मिलने पर रोती है। वह तो सिसक-सिसककर रो रही थी और आसुओं के उमडते हुए तूफान की वजह से उसका सारा शरीर काप रहा था। लाख कोशिश करने पर भी अनवर उसे शात न कर सका। वह कसकर उससे चिपटी रही, उसने अपने नाखून मज़बूती से उसकी बाहो मे गडा रखे थे। लेकिन कुछ देर बाद वह शात हो गई और उसने अपने भाई की बाह छोड दी। इससे पहले कि अनवर समझ पाता कि अजुम को क्या हुआ है वह बेहोश होकर उसकी गोद मे गिर पडी।

"फूफी-अम्मा! अब्बा! गुलाबो!" अनवर घबराकर चिल्लाया, "देखिए तो बाजी अजुम को क्या हो गया है।"

इसके बाद कुछ दिन ऐसे बीते कि अनवर को ऐसा लगता था कि वह कोई भयानक स्वप्न देख रहा हो। अनवर की सारी चेतनाओ मे एक भयानक तनाव बना रहा। वह न ठीक से खाता था, न उसे ठीक से नीद आती थी और न ही वह कुछ पढ पाता था। उससे न अपनी बहिन के पलंग के पास बैठा जाता था, और न वहा से दूर होने पर उसे चैन मिलता था। अगर अजुम ज़ोर से कराहती तो वह डर से काप उठता और अगर वह निढाल होकर चुपचाप पडी रहती तो वह बिलकुल ही घबरा जाता और सोचने लगता कि कही वह मर तो नही गई।

डाक्टर असारी और एक अंग्रेज़ डाक्टरनी को उसे देखने के लिए बुलाया गया था। दोनो लगभग घटे-भर तक उसे देखते रहे। बाद मे जब दोनो हाथ धो

रहे थे, तो अनवर ने उन्हे अंजुम की बीमारी के बारे मे बाते करते सुना। सारी बाते तो उसकी समझ मे नही आई क्योकि बीच-बीच मे वे डाक्टरी के बहुत-से मोटे-मोटे लफ्ज़ बोल रहे थे और अग्रेज डाक्टरनी का बोलने का ढग भी कुछ अजीब था। लेकिन जो थोडा-बहुत उसकी समझ आया वही काफी था।

"हैमरेज हो गया है"'यही तो मुश्किल हो गई है"'खून रुक जाए तो कमाल ही है।"

"बेचारी लडकी"'कितनी कमसिन और प्यारी है।"'मै उसके बाप को जानता हूं। बहुत ही अच्छे आदमी है।"

"बहुत कम उम्र मे शादी कर दी गई। "इतनी छोटी उम्र मे बच्चा होना ही नही चाहिए था।"'यह तो जान-बूझकर मार डालना है।"

"जहालत है। बला की जहालत है। न जाने कितनी औरतो की जान इसमे जाती है।"

"बच्चा निकालना होगा। हमे—आपरेशन करना होगा नही तो—हो जाने का डर है।"

बाद मे अनवर ने डाक्टर असारी को उसके अब्बा से यह कहते सुना कि अब इतनी देर हो चुकी है कि अस्पताल ले जाना नामुमकिन है। घर पर ही आपरेशन करना पडेगा।

दूसरे दिन डाक्टर असारी और वह अग्रेज़ डाक्टरनी अपने कम्पाउडरो और एक सफेदपोश नर्स को लेकर आए। वे अपने साथ लोहे के कुछ चमकदार बक्स भी लाए थे, जिनमे चीर-फाड के औज़ार रखे हुए थे। अनवर उन औजारो की तरफ देख भी न सकता था और यह सोचकर ही उसके रोगटे खडे हो गए कि उसकी बहिन का पेट चीरा जाएगा। वह भागकर एक कोने मे छिप गया।

अजुम के पेट का आपरेशन करके उसमे से मरा हुआ बच्चा निकाला गया। अनवर ने गुलाब को, जिसकी आखें रोते-रोते लाल हो गई थी, कपडे की पोटली में गुडिया जैसी कोई चीज़ लपेटकर ले जाते देखा। गुलाबो ने चुपचाप वह पोटली अकबरअली के हाथो मे थमा दी। गम के बोझ से दबे हुए अकबरअली चुपचाप मरे हुए बच्चे को दफन करने के लिए पोटली लेकर बाहर चले गए। जब डाक्टर असारी और वह अग्रेज़ डाक्टरनी लम्बे-लम्बे रबर के दस्ताने उतारते हुए कमरे मे से निकले तो दोनो बहुत थके हुए थे और उनके चेहरे का रग पीला

पड गया था ।

अनवर ने धडकते हुए दिल से डाक्टर अंसारी से जाकर पूछा, "डाक्टर साहब, बाजी अच्छी तो हो जाएगी न ?" डाक्टर साहब ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए अनवर की पीठ पर धीरे से हाथ रखकर उत्तर दिया, "हा बेटा, ज़रूर अच्छी हो जाएगी—इशाअल्लाह !"

इशाअल्लाह ! अगर अल्लाह ने चाहा ! तो इसका मतलब है कि आखिरी फैसला उसीकी अदालत मे होगा। इसीलिए उसके अब्बा इतनी देर तक जानमाज पर बैठे अल्लाह से अपनी बेटी की जान के लिए दुआ मागते रहते थे। इसीलिए फ़ूफी-अम्मा उस वक्त भी तसबीह पर अल्लाह के हज़ार नाम लेकर दुआ पढ रही थी। या कह्हार ! या जब्बार ! या गफ्फार। अल्लाह, तू रहीम है, तू करीम है। तू अजुम जैसी मासूम लडकी की जान कभी नही लेगा। बहरहाल अनवर के लिए सबसे अच्छा रास्ता यही था कि वह भी अपने अब्बा और अपनी फ़ूफी-अम्मा के साथ मिलकर दुआ मागे। उसे यही तो बताया गया था कि अल्लाह बच्चो की दुआ ज़्यादा जल्दी कबूल कर लेता है क्योकि बच्चे मासूम होते हैं। इसलिए उसने सोचा कि उसकी दुआ फौरन कबूल हो जाएगी।

वह घर से निकलकर सीधा जामा मस्जिद की तरफ चल पड़ा। अगर उसे दुआ ही मागनी है तो वह खुदा के घर मे जाकर दुआ मागेगा। जून की दोपहर मे हापता-कापता वह दो-दो जीने फादकर जामा मस्जिद की सीढियो को पार कर गया। दरवाज़े पर जूते उतारकर वह सीधा भागता हुआ मिम्बर पर जा पहुचा जहा खडे होकर उसने इमाम साहब को वाअज़ करते सुना था। कायदे के मुताबिक मगरिब की तरफ मुह करके उसने अपने दोनो हाथ ऊपर उठाए और दबी ज़बान मे बोला, "या खुदा, मुझे दुआ मागना नही आता है, लेकिन तू तो सबके दिल की बात जानता है। तू मेरी दुआ कबूल कर ले और मेरी बहिन की जान बचा ले। वह अभी कमउम्र है और अभी उसकी शादी हुई है और उसने कभी किसीको कोई नुकसान नही पहुचाया है। रहम कर, उसे मौत से बचा ले।" मस्जिद के खोखले गुम्बद से टकराकर उसकी आवाज़ लौट आई और अनवर को ऐसा लगा कि अल्लाह ने उसकी बात सुन ली है और उसकी मुराद पूरी करने का वादा कर रहा है। वह घर लौटा। उसके दिल का बोझ यकायक न जाने क्यो हलका हो गया था। उसने झांककर रोगी के कमरे मे

देखा और उसे यह देखकर तसल्ली हुई कि नर्स अंजुम को दवा पिला रही थी। उस रात कई दिन बाद उसने ठीक से खाना खाया और इतमीनान के साथ सोया। उसके दिल मे कोई खटका नही था।

अभी पौ भी नही फटी थी कि अनवर रोने की आवाज़ सुनकर जाग पडा। कुछ देर तक तो वह सोचता रहा कि शायद वह सपना देख रहा है। लेकिन जब उसने आखें खोलकर गौर से देखा तो उसे ऊपर तारो-भरा आसमान और उसकी पृष्ठभूमि पर पास ही आगन मे लगे हुए नीम के पेड की रूपरेखा दिखाई दी। फिर उसे फूफी-अम्मा के रोने की आवाज़ सुनाई दी और उनके भयानक शब्द सुनकर उसकी नीद बिलकुल गायब हो गई। फूफी-अम्मा रो-रोकर कह रही थी, "अरी अजुम, तू मुझे छोडकर कहा चली गई ? तेरी जगह मैं क्यों न मर गई ?" अनवर भागा हुआ दालान मे पहुचा जहां अजुम का पलग पडा हुआ था। पास ही मेज़ पर एक लैम्प रखा हुआ था जिसकी रोशनी का घेरा उस सफेद चादर पर पड रहा था जिससे अजुम का शरीर ढका हुआ था। "अजुम सो रही होगी।" अनवर ने दिल ही दिल मे अपने-आपको तसल्ली देने की कोशिश की। "फूफी-अम्मा को शायद दौरा पड गया है।" लेकिन उस बूढी नर्स के चेहरे पर ऐसा भाव था जिसे देखकर आशा की आखिरी किरण भी बुझ गई। "बेटा," उसने बडी धीमी आवाज़ मे कहा, "अपनी बहिन को आखिरी बार देख ले।" और फिर अनवर के दिल की धडकन यकायक रुक गई, चादर का कोना धीरे-धीरे हटा, तो उसकी प्यारी बहिन का चेहरा उसके सामने आ गया। कितनी शाति थी उसके चेहरे पर, बिलकुल ऐसा लगता था जैसे सो रही हो ! अनवर और करीब से देखने के लिए आगे बढा लेकिन यकायक ठिठककर खडा हो गया। दहशत के मारे उसे जैसे काठ मार गया हो। नहीं ! नहीं ! यह उसकी बहिन नही थी। यह उसकी बहिन नही हो सकती। यह कोई और चीज़ थी, कोई ऐसी चीज़ जो अंजुम जैसी लगती थी, लेकिन वह जानता था कि यह अंजुम नही है। यह कोई बहुत भयानक चीज़ थी, कोई ऐसी चीज जो न हिलती-डुलती थी, न सास लेती थी, जो ज़िदा नहीं थी। यह एक झूठ था, एक फरेब था, ज़िंदगी का छलावा था। यही मौत थी !

अनवर चाहता था कि वह फूट-फूटकर रोए लेकिन मौत की आखो मे आखें डालकर भी वह न रो सका। उदास होकर वह चुपचाप पीछे मुडा और पहली बार उसने वहा मुह लटकाए बैठे हुए लोगो को देखा। उसके अब्बा इस मुसीबत के वक्त भी बडी गभीर मुद्रा मे बैठे दुआ पढ रहे थे। उनके पास ही फूफी-अम्मा बैठी थी जो रोते-रोते निढाल हो गई थी। फिर ताया अमजद-अली बैठे थे जो शायद रात की गाडी से आए होगे। और उनकी बगल मे सिर झुकाए रऊफ बैठा था। रऊफ! रऊफ! डाक्टर की बातचीत के कुछ टुकडे अनवर के दिमाग मे बिजली की तरह कौंध गए और उसपर एक अजीब जुनून छा गया।

"तुम! तुम!" उसने रऊफ को सम्बोधित करके चिल्लाकर कहा, "तुमने मेरी बहिन को मार डाला!" और इतना कहकर वह घर से इस तरह भागा जैसे किसी भूत से या किसी नापाक चीज़ से दूर भाग रहा हो।

सडक पर बिलकुल सन्नाटा था। बीच-बीच मे कहीं कोई दूधवाला दूध की बाल्टी लिए हुए जाता दिखाई पड जाता था। अनवर दाहिने-बाए देखे बिना सीधा आगे बढता जा रहा था। नगे सिर और नगे पाव। अपने तन-बदन की सुध भुलाकर वह कहा जा रहा था और क्यो जा रहा था, यह तो खुद उसे भी नही मालूम था। उसके दिल मे बेहद तल्खी थी, लेकिन वह यह नही जानता कि यह तल्खी किसके खिलाफ थी। वह एक बहुत बडी ताकत का मुकाबला करने जा रहा था—दुनिया की सबसे बडी ताकत का—लेकिन वह यह नही जानता था कि वह ताकत क्या है।

जामा मस्जिद का फाटक सुबह की नमाज़ के लिए अभी-अभी खुला था। अनवर अन्दर चला गया। जल्दी-जल्दी इतनी ऊची सीढिया चढने की वजह से वह हाप रहा था। पानी के हौज़ के पास पहुचकर वह रुक गया। मस्जिद के पाकीज़ा सफ़ेद गुम्बदो और ऊची-ऊंची मीनारो की परछाइँ हौज़ के गहरे पानी मे पड रही थी और सुबह की ठडी हवा के झोको से बार-बार काप जाती थी। ऐसा लगता था कि वह सारी इमारत भूकम्प की वजह से काप रही थी। मस्जिद की परछाइँ की तरह ही अनवर का दिमाग भी गहरे अंधकारमय विचारो मे डूबा हुआ था और उसमे भवर उठ रहे थे।

मीनार पर से मुअज़्ज़िन ने अज़ान दी और उसकी तेज़ आवाज़ सन्नाटे को

चीरती हुई गूज उठी। अनवर के विचारो का क्रम भग हो गया। दुआ मागू। दुआ मागू !! वह झुझलाकर सोचने लगा। लेकिन किससे दुआ मागू ? और किसलिए दुआ मागू ? और क्यो दुआ मागू ? उसने दुआ मागी थी लेकिन फिर भी उसकी बहिन मर गई। खुदा ने भी उसे नही बचाया ! उसके मन मे इन कटु विचारो का तूफान उठते ही उसके अन्दर जैसे कोई चीज टूट गई। यही ईमान था।

आखिरकार वह रो पडा और उसके दिल मे जितना गम जमा हो गया था वह आसुओ के साथ बह निकला। वह मस्जिद के लम्बे-चौडे वीरान सहन मे ऊची-ऊची मीनारो के साये तले एक बौने की तरह खडा था। वह अकेला और लाचार महसूस कर रहा था और उसे उस बडी ताकत से डर लग रहा था जिसे उसने अभी बुरा-भला कहा था और जिसके खिलाफ उसने बगावत की थी। अपने आसू पोछकर वह थके-थके बेजान कदमो से लडखडाता हुआ बाहर निकल आया। क्या आस्था या ईमान के बिना कोई जिदा रह सकता है ?

पूरब की तरफ वाले फाटक से बाहर निकलकर सीढिया उतरने से पहले कुछ देर तक वह ऊपर खडा रहा। उसके सामने क्षितिज पर उषा की लाली का सुनहरा और गुलाबी रग झलक रहा था। नीचे लोगो की आवाजाही शुरू हो गई थी। सफेद साडिया पहने औरतो के झुड नदी की तरफ जा रहे थे। बडी सडक पर एक ट्राम खडखडाती हुई गुजर गई। अचानक उसे एक धक्का-सा लगा और उसने महसूस किया कि उसकी बहिन की मौत के साथ जिदगी खत्म नही हो गई है और यह महसूस करके उसे बड़ी तसल्ली हुई। जिन्दगी अब भी बदस्तूर चल रही थी। अब भी सुबह को सूरज निकलता था और लोग अपने-अपने काम पर जाते थे। ज़िन्दगी के बीच मौत थी और मौत के बीच ज़िदगी।

अब उसे गालिब के उस शेर का मतलब समझ मे आया जिसे वह अब तक लाख कोशिश करने पर भी न समझ सका था.

कैदे-हयातो-बदे-गम अस्ल मे दोनो एक हैं,
मौत से पहले आदमी गम से नजात पाए क्यो ?

चट्टान से टकराकर लौटती हुई आवाज़ की तरह उसके विचार फिर उसके पास वापस आ गए। इंसान पैदा होता है और इंसान मर जाता है और इस जिदगी और मौत के बीच वह तकलीफे उठाता है। वह अपनी आखो के सामने जिंदगी के

खिलते हुए फूल देख रहा था, चलते-फिरते मर्द और औरतें, स्कूल जाते हुए बच्चे, मुसाफिरो से भरी खडखडाती हुई ट्राम, सुबह् की खबरे चिल्ला-चिल्लाकर अखबार बेचनेवाला।...

अनजाने ही उस क्षण अनवर मे एक आस्था पैदा हुई। अनजाने ही उस क्षण अनवर जवान हो गया।...



बादल और बिजली

हिलाल और ताज

जिन साहसी और दूरदर्शी वयोवृद्ध सज्जन ने अपनी बिरादरी के दकियानूस लोगो के घोर विरोध की परवाह न करते हुए मोहम्मडन एग्लो-ऐरेबिक कालेज की स्थापना की थी उन्होने उसके लिए प्रतीक-चिह्न भी बहुत सोच-समझकर चुना था। इस चिह्न के बीच मे एक खजूर का पेड था जिसके द्वारा विद्यार्थियो को यह याद दिलाया जाता था कि उनके धर्म की उत्पत्ति अरब मे हुई थी। इस पेड के एक तरफ एक हिलाल बना हुआ था और दूसरी तरफ ताज—बाईं ओर बना हुआ हिलाल इस्लाम का परपरागत प्रतीक-चिह्न था और दाहिनी ओर बना हुआ ताज ब्रिटिश राज के प्रति वफादारी का सूचक था। इस प्रकार देश के नये शासक अपने साथ जो पश्चिमी विज्ञान लाए थे उसके साथ तेरह सौ वर्ष पुरानी एक सस्कृति को समन्वित करने की योजना बनाई गई थी। इस प्रकार भारत के मुसलमानो मे, जो अपना साम्राज्य समाप्त हो जाने के बाद गहरी निराशा मे डूबकर सबसे अलग होते जा रहे थे, दुबारा जागृति पैदा करने की योजना बनाई गई थी ताकि वे देश के शासन मे अपना हिस्सा माग सके।

यह कालेज, जो अब बढकर एक विश्वविद्यालय बन गया था, शुरू-शुरू मे आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के नमूने पर बनाया गया था। एक सूखे रेतीले मैदान मे बडे-बडे हाल, चौक, पढाई के कमरे और प्रयोगशालाए बनवाई गई थी। उस बजर ज़मीन पर बडी मेहनत से घास उगाई गई थी ताकि दाढीवाले बुजुर्ग शेखो, सैयदो और मिर्ज़ाओ के बेटे क्रिकेट, हाकी, टेनिस और फुटबाल खेल सकें। क्रिकेट का मैदान ऊचे गुम्बदवाली मस्जिद के ठीक नीचे था और अक्सर शाम को लार्ड के मैदान के क्रिकेट के खिलाडियो के अदाज मे "हाउ'ज दैट अम्पायर ?" चिल्लाने का अभ्यास करते हुए नौजवान लडको के स्वर को कुचलती हुई मस्जिद मे अजान देनेवाले मौलवी साहब की तेज आवाज़ गूज उठती थी। हिलाल और ताज को अपना आदर्श माननेवाले विद्या के इस केन्द्र

की अनेक विडम्बनाओं में से यह भी एक थी।

अनवर को अलीगढ आए हुए यह तीसरा साल था फिर भी वह अभी तक कुछ उखडा-उखडा रहता था। यहा पहुचने पर उसकी जो दुर्गत बनाई गई थी उसे याद करके अब भी उसके रोगटे खडे हो जाते थे। उसे सताया गया था, उसे गालिया दी गई थी और दर्जनो दूसरे तरीको से बेवकूफ बनाया गया था। यहा के पुराने लडको ने उसे बताया था कि अलीगढ मे नये आनेवाले लडको का इसी तरह स्वागत किया जाता था। पर अनवर इतना सवेदनशील था और उसका पालन-पोषण शिष्टता के ऐसे वातावरण मे हुआ था कि वह ऐसे फूहड और भोडे मजाको को पसद नही कर सकता था। उसने इन मजाक करनेवालो के आगे हथियार तो डाल दिए थे पर वह इससे खुश नही था, वह हर समय रूठा रहता था और कभी-कभी जब वह अपने कमरे मे अकेला होता था तो अपनी लाचारी पर आसू भी बहाता था। उसे वहा के वातावरण का आदी होने मे दूसरो से ज्यादा समय लग गया, क्योंकि वह जितना ही ज्यादा चिडचिडाता था पुराने लडको को उसका मज़ाक बनाने मे उतना ही ज़्यादा मज़ा आता था। तीसरे साल मे भी लोग उसे अक्सर 'रोना अनवर' या 'लाडला अनवर' कहते थे। इस तरह की बाते जितनी ही ज्यादा उसके खिलाफ की जाती थी उतना ही ज्यादा वह दूसरो से अलग-थलग रहता था।

दो बरस मे अनवर सिर्फ एक लडके को अपना दोस्त बना पाया था। उस्मान फजलभाई उसके साथ ही पढता था पर उम्र मे उससे एक साल बडा था। उसने भी अनवर की तरह ही अर्थशास्त्र और राजनीति ले रखी थी। उसके बाप बम्बई मे इत्र का व्यापार करते थे। उसमे और अनवर मे एक मामले मे समानता थी। दोनो ही कोई खेल नही खेलते थे। लेकिन उस्मान का पालन-पोषण एक बहुत बडे शहर मे होने की वजह से उसमे अनवर से ज्यादा आत्मविश्वास भी था और अपने रहन-सहन के मामले मे वह शौकीन भी ज्यादा था। खेल-कूद की तरफ उसका रवैया तिरस्कार का था और उसके प्रति वह इस तरह उदासीन रहता था जैसे वह कोई बहुत घटिया चीज हो। उसे केवल साहित्य और राजनीति मे दिलचस्पी थी। बाकी हर चीज़ को वह समय की बरबादी समझता

था। पैसेवाला होने की वजह से वह नई से नई किताबे खरीद सकता था और खुशी-खुशी अनवर को भी किताबे पढने को देता था। वह डाक से अपनी पसद का अखबार 'बाम्बे क्रानिकल' मगाता था और इसी अखबार से दोनो लडके तेजी से बदलती हुई राजनीतिक स्थिति के बारे मे जानकारी प्राप्त करते थे।

अनवर को हमेशा से राष्ट्रवादी होने पर गर्व था। परन्तु उस्मान के साथ उसकी दोस्ती ने ही उसके राजनीतिक विचारो को एक निश्चित रूप प्रदान किया। शाम को जब दूसरे लडके क्रिकेट या टेनिस खेलते होते उस समय ये दोनो रेल की पटरी के उस पार मटर और अरहर के खेतो मे सैर करते रहते। 'क्लास मे उन्हे जो कुछ पढाया जाता था उसे वे हिन्दुस्तान की राजनीतिक स्थिति के तथ्यो पर लागू करने की कोशिश करते और अक्सर वे इसी नतीजे पर पहुचते कि किताबो मे लिखे हुए सिद्धातो और जिंदगी की हकीकतो मे बहुत फर्क होता है। उस्मान हमेशा बडे यकीन के साथ अपनी बात कहता था और वह अपने विचारो का बहुत पक्का था। कभी-कभी वह अनवर के पैदाइशी दब्बूपन पर, उसकी डावाडोल रहने की प्रवृत्ति पर और हर सवाल के दोनो पहलुओ पर विचार करने की आदत पर झुझला उठता था। अनवर अपने दोस्त की स्पष्टवादिता और उसके दृढ विचारो की तो प्रशसा करता था, पर वह स्वय वैयक्तिक सम्बन्धो के बधनो मे इतनी मजबूती से बधा हुआ था कि जिन लोगो की वह इज्जत करता था या जिनसे वह प्यार करता था उनके बारे मे वह फौरन कोई आखिरी फैसला नही कर पाता था। उस्मान की राय मे गोपाल के पिताजी जैसे लोग टोडी और खुशामदी थे, काका रामेश्वरदयाल देशद्रोही महाजन थे जो विलायती कपडा बेचते थे और इस तरह 'दुश्मन' की मदद करते थे। हालाकि वह अनवर का दिल न दुखाने के ख्याल से कभी ऐसा कहता नही था पर उसके रवैये से यह स्पष्ट था कि वह अकबरअली जसे लोगो को घोर प्रतिक्रियावादी समझता था। अनवर जानता था कि तर्क की दृष्टि से उस्मान का विचार ठीक था, पर अनवर तो किसी ऐसी चीज के शिकजे मे जकडा हुआ था जो तर्क से भी ज्यादा ताकतवर थी।

लेकिन वे हमेशा राजनीति पर ही बाते नही करने थे। उस्मान अक्सर बंबई और वहां की चहलपहल की भी बाते करता था और अलीगढ की 'मुर्दा' जिंदगी से उसकी तुलना करता था। उसकी बातो से स्पष्ट था कि अगर उसके

अब्बा की यह जिद न होती कि वह एक 'मुस्लिम' सस्था मे पढे तो वह बबई मे ही पढना ज्यादा पसद करता । वह अक्सर बहुत कुढकर शिकायत करता था, "लानत है ! यहा न कोई जिंदगी है, न कोई चहलपहल है, न कोई सोसाइटी है । कही किसी लडकी की सूरत भी दिखाई नही देती ।"

इस यूनिवर्सिटी मे वैसे तो किसी चीज की कमी नही थी पर 'लडकी' यहा के लिए एक नायाब चीज थी । लडको और लडकियो के साथ पढने को बुरा समझा जाता था । यूनिवर्सिटी के साथ एक मुस्लिम गर्ल्स कालेज था लेकिन वहा बहुत सख्त परदा करवाया जाता था और कालेज की लडकियो को— 'शरीफ' मुस्लिम घरानो की बेटियो को—मर्दो की नजरो से बचाने से लिए कालेज के चारो तरफ बीस-बीस फुट ऊची दीवारे थी । यूनिवर्सिटी का इलाका शहर से कुछ दूर था और हास्टेल के वार्डन से पर्ची लिए बिना कोई शहर नही जा सकता था । इसलिए स्टेशन ही एक ऐसी जगह थी जहा किसी औरत की सूरत देखने की उम्मीद की जा सकती थी । स्टेशन पर आने-जानेवाली गाडियो को ताकना यूनिवर्सिटी के लडको की एक खास तफरीह थी जिसमे किसी तरह की रोक-टोक नही थी ।

अनवर और उस्मान जैसे लडको के लिए, जो शाम को बिलकुल खाली रहते थे, कई वजहो से स्टेशन एक अड्डा बन गया था । वही एक ऐसी जगह थी जहा रेस्तरां मे कुछ ढग की चाय मिल सकती थी, और बुकस्टाल पर नई किताबे, पत्रिकाए और अखबार मिल सकते थे और फिर यह लालच तो रहता ही था कि प्लेटफार्म का चक्कर लगाते समय गुजरती हुई ट्रेन मे कोई अच्छी सूरत दिखाई दे जाए ।

छुट्टियो के बाद अक्तूबर मे यूनिवर्सिटी फिर खुली और अनवर जब घर से लौटा तो उसे पता चला कि उस्मान एक-दो हफ्ते बाद आएगा । इसी बीच मे उसे रहने के लिए सर सैयद कोर्ट मे जगह दी गई । उसके साथ दो नये लड़के भी उसी कमरे मे रखे गए थे जिसकी वजह से उसे काफी निराशा हुई, क्योकि वह तो यह उम्मीद लगाए बैठा था कि उस्मान से उसका दो साल पुराना साथ इस साल भी जारी रहेगा । जिन दो लड़को के साथ उसे रहना था उनसे

मिलकर भी उसे कोई खास तसल्ली नही हुई।

उनमे से एक लडका लखनऊ का था। काली रगत, दुबला-पतला जिस्म और आखो पर चश्मा। नाम था मुश्ताकअहमद लेकिन शायर होने की वजह से 'राज' तखल्लुस करते थे। चाल-ढाल मे ज़नानापन। हर वक्त लम्बी-लम्बी जुल्फो से घटिया खुशबूदार तेल की महक आती रहती थी, जिसकी वजह से उनके तकिये के गिलाफ पर हमेशा तेल का चिकना धब्बा पडा रहता था। दूसरा था असगरहुसेन जो 'राज' की बिलकुल उलट था। हट्टाकट्टा कसरती जिस्म, शायरो, पढने-लिखनेवालो और इसी किस्म के दूसरे घटिया इसानो से अपनी सख्त नफरत को वह छिपाता नही था। अनवर से वह उम्र मे काफी बडा था और कई बार फेल होने के बाद इसी साल उसने बी० ए० पास किया था। पर उसे इतनी बार फेल होने की कोई चिंता नही थी। अब भी उसे इम्तिहान पास करने मे मुकाबले मे खेल-कूद का चैम्पियन बन जाने की ज्यादा फिक्र थी।

इन तीनो की जोडी भी अजीबोगरीब थी। असगर रात को दस ही बजे सो जाता था और सुबह छ बजे से उठकर डम्बल घुमाने लगता था और तीन मील लम्बी दौड लगाने निकल जाता था। 'राज' साहब कभी दो बजे से पहले सोते नही थे। रातो को जागकर वे शायरी करते रहते थे और गालिब के अदाज मे गज़ले कहने की कोशिश करते थे। सुबह दस बजे से पहले अगर जगा दिया जाए तो उन्हे सख्त नागवार गुजरता था। असगर खाने के मामले मे शेर था। सुबह नाश्ते पर ही सेर-भर दूध, आधा दर्जन मक्खन लगे हुए टोस्ट और तले हुए तीन अडे साफ कर जाता था। 'राज' एक-एक करके कितने ही प्याले चाय के पी जाता था और बीच-बीच मे बैठा बिस्कुट कुतरता रहता था। पहलवान बोलता नही गरजता था, शायर बोलता नही मिमियाता था। एक का खयाल था कि दुनिया मे सैडो से बडा कोई आदमी नही हुआ, दूसरे का यह पक्का यकीन था कि जिसने लखनऊ के अनीस और आतिश और मोमिन जैसे शायरो को नही पढा उसने अपनी जिन्दगी मे कुछ नही किया। इन दोनो के बीच अनवर की जान मुसीबत मे रहती थी। वह पूरी तरह दोनो मे से किसीसे भी सहमत नही था। फिर भी उसे अक्सर दोनो के झगडे मे बीच-बचाव करना पडता था।

असगर और 'राज' मे से वह मन ही मन असगर को ज्यादा पसन्द करता था क्योकि असगर मे हर वह चीज थी जो अनवर मे नही थी—अच्छी तन्दुरुस्ती, हर वक्त की मस्ती और फिर वह एक अच्छा खिलाडी भी तो था जो तैरना जानता था, घुडसवारी जानता था और उसे क्रिकेट खेलने या हर्डिल फांदने मे एक जैसी निपुणता प्राप्त थी। असगर को भी यह दुबला-पतला झेपू लडका बहुत पसन्द था। उसकी रक्षा करना वह अपना कर्तव्य समझता था और उसने हास्टेल के तीसमारखाओ को यह बात अच्छी तरह समझा दी थी कि अगर कोई अनवर को सताएगा या छेडेगा तो उसकी खैर नही है। जहा तक शायर साहब का सवाल था, अनवर को उन्हे देखकर न जाने क्यो साप का खयाल आता था। उसे उनकी जनानी चाल-ढाल से, उनके तेल से चुपडे हुए बालो से और घटो बैठकर छत को ताकते रहने या विचारो मे डूबे हुए शून्य मे देखते रहने की आदत से सख्त चिढ थी।

आखिरकार उस्मान बबई से वापस लौटा। वह अपने साथ बहुत-सी राजनीतिक खबरे लाया था। हालाकि उसे रहने के लिए दूसरा कमरा दिया गया था फिर भी वह पहला मौका मिलते ही अपने दोस्त से बाते करने पहुच गया। उसे अनवर को बहुत-सी बाते बतानी थी इसलिए दोनो खेतो की सैर को निकल पडे और उन्होने फैसला किया कि वापसी मे वे चाय पीने स्टेशन जाएगे। अक्तूबर खत्म हो रहा था और हवा मे थोडी-थोडी खुनकी आ चली थी। मटर के खेत बैंजनी और लाल रग के फूलो से लदे हुए थे और डूबते हुए सूरज की किरनो ने हर चीज पर सोना बिखेर दिया था।

उस्मान ने अपनी छुट्टिया दूसरे विद्यार्थियों की तरह किताबे पढने या वाही-तबाही वक्त बरबाद करने मे नही बिताई थी। वह बहुत महत्त्वपूर्ण राजनीतिक आदोलनो के सम्पर्क मे रहा था। सबसे पहले तो उसने अनवर को बार्दोली के किसान-सत्याग्रह के बारे मे बताया, जिसने पूरे गुजरात के देहातो मे विद्रोह की ज्वाला भडका दी थी। उस्मान का घर उसी जिले मे था। उस्मान ने बडे जोश के साथ बताया कि वहा के किसान अपने अधिकारो के लिए किस बहादुरी के साथ सरकार और जमीदारो की ताकत के खिलाफ लडे थे। उन्हे गिरफ्तार

करके जेलो मे बन्द कर दिया गया, उन्हे पीटा गया, उनकी जायदादे जब्त कर ली गईं लेकिन उन्होने हार नही मानी । आखिर मे जीत उन्हीकी हुई, सारे कैदी रिहा कर दिए गए और सरकार को किसानो की शिकायतो के बारे मे जाच बिठानी पडी । जिस समय उस्मान किसानो के इस सघर्ष का सजीव वर्णन कर रहा था, उस समय अनवर भी अपनी कल्पना मे इस रोमाचकारी दृश्य का चित्रण कर रहा था कि धरती के हजारो कर्मठ बेटे अपने अधिकारो के लिए कमर कसकर मैदान मे उतर आए थे और उत्पीडन की दुष्ट शक्तियो के सामने सिर झुकाने से इकार कर रहे थे । अनवर और उस्मान एक छोटे-से गाव से होकर गुजर रहे थे । दर्जनो चूल्हो से उठता हुआ नीला धुआ बल खाता हुआ नीले आसमान की तरफ बढ रहा था । किसान कधो पर हल रखे बैंलो की जोडी साथ मे लिए हुए चले आ रहे थे—सीधे-सादे, दुबले-पतले लोग जिनके तन पर एक मैली-कुचैंली लगोटी के अतिरिक्त और कुछ न था । जब वे इन दोनो नौजवानो के पास से गुजरते तो उन्हे सलाम करते । जब वे गाव की गदी बदबूदार गली पार करके बाहर निकले और रेल की पटरी की तरफ मुडे तो अनवर सोचने लगा कि बार्दोली मे जो आग भड़क उठी है वह सयुक्त प्रात के इन गावो तक कब पहुचेगी ।

इतने मे उस्मान ने एक दूसरे राजनीतिक सघर्ष का वर्णन शुरू कर दिया था जो उसने बबई मे अपनी आखो से देखा था। कपडा मिलो के हज़ारो मजदूरो ने हडताल कर दी थी और यह कहा था कि जब तक उनकी मागे नही मानी जाएगी तब तक वे एक भी कारखाना नही चलने देगे । उन्होने भी अपनी मागे मनवा ली थी । उस्मान का दावा था कि किसानो और मज़दूरो के ये सघर्ष लगान घटवाने या मज़दूरी बढवाने के छुटपुट सघर्ष नही थे बल्कि उनसे भारतीय राजनीति मे एक नई महान शक्ति के जन्म का पता चलता था। उसका कहना था कि अब काग्रेस 'अग्रेज़ी साम्राज्य के अदर डोमिनियन स्टेटस' की माग करते हुए केवल प्रस्ताव पास करवानेवाले दब्बू वकीलो की सस्था नही रह जाएगी । उसने बताया कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे 'इडिपेडेस आफ इडिया लीग' बन गई थी जो काग्रेस के पुराने नेताओ को पूर्ण स्वराज्य के क्रातिकारी लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए देश के नौजवानो को सगठित कर रही थी । अनवर इधर कई बरसो से रतन से नही मिला था

और उसके खत भी कभी-कभी ही आते थे और सो भी बहुत छोटे । लेकिन उस्मान की बाते सुनकर उसके मन मे फौरन यह विचार उठा कि 'यह उस्मान रतन से कितना मिलता है । काश मै इन दोनो की मुलाकात करवा सकता ।'

जब वे स्टेशन पहुचे तो थककर बिलकुल चूर हो चुके थे पर वे बहुत खुश थे और उनका जोश उमडा पड रहा था । सूरज डूब चुका था और पजाब मेल उसी वक्त प्लेटफार्म पर आई थी । यह ट्रेन, जो बहुत दूर से हुगली के किनारे बसे हुए कलकत्ता शहर से आती थी और दिल्ली से होती हुई पजाब के मैदानो को पार करके बहुत दूर आगे तक चली जाती थी, न जाने क्यो इतनी रोमाटिक लगती थी; उसे देखते ही दिल मे न जाने क्यो एक हलचल-सी मच जाती थी। अनवर के लिए यह ट्रेन उन तमाम अनोखी जगहो का प्रतीक थी जिनकी वह सैर करना चाहता था, वह उन तमाम रोमाचकारी कामो का प्रतीक थी जो वह करना चाहता था । वह लम्बी-सी हरी गाडी हापती-कापती धीरे-धीरे प्लेट-फार्म के किनारे आकर रुक गई । प्लेटफार्म पर एक अच्छी-खासी भीड थी । अनवर और उस्मान भी उस भीड मे खडे मुसाफिरो को ताक रहे थे । उनकी नज़रे किसी अच्छी सूरत की तलाश मे थी । इतने मे अनवर ने एक ऐसा सुदर चेहरा देखा जैसा उसने इससे पहले कभी नही देखा था । उसका दिल धक से रह गया । वह खिडकी से बाहर सिर निकाले झाक रही थी । सफेद कपडे पहने हुए कोई पद्रह या सोलह साल की लडकी रही होगी, जिसके खूबसूरत लम्बोतरे चेहरे के चारो ओर घुघराले बालो का एक घेरा था । अनवर सिर्फ इतना समझ पाया कि उसकी बडी-बडी मासूम काली आखे किसी आदमी को या किसी चीज़ को ढूढ रही थी, लेकिन इसके फौरन ही बाद वह डिब्बा आगे निकल गया था और इधर-उधर भागते हुए सैकडो मुसाफिरो के शोर-गुल और धीगामुश्ती मे वह मुखड़ा उसकी नज़रो से ओझल हो गया था । अचानक उनकी मुठभेड राजनीति विभाग के प्रोफेसर सलीम से हो गई—लम्बा-चौडा डीलडौल, लाल चेहरा, कपडों के मामले मे नख से शिख तक दुरुस्त । ऐसा लगता था कि वे किसीको ढूढ रहे थे ।

उस तमाम गड़बड और भागदौड मे उन्होने किसीकी मदद चाहते हुए

बहुत घबराहट मे पूछा, "लडको, तुमने मेरी बेटी को तो नही देखा है ?"

देखना तो दूर रहा अनवर और उस्मान को यह भी नही मालूम था कि प्रोफेसर सलीम के कोई बेटी भी है। लेकिन अनवर को सहसा उन बडी-बडी मासूम काली आखो की याद आई जिन्हे उसने कुछ ही देर पहले किसीको खोजते देखा था। उसने तुक्का मारा, "जी हा, देखा है। आगेवाले डिब्बे मे है।" और जब लडकी के बाप घबराए हुए उस डिब्बे की तरफ बढे तो अनवर भी भीड को चीरता हुआ उनके साथ हो लिया। खुशकिस्मती से उसका तुक्का ठीक निशाने पर बैठा था क्योकि उसने देखा कि वह लडकी अपने अब्बा के गले मे बाहे डालकर उनसे लिपट गई। कुली ने सामान उठा लिया और वे सब स्टेशन से बाहर निकलने के लिए फाटक की तरफ चले। चलते-चलते वह लडकी बहुत हस-हसकर कानपुर से यहा तक के लम्बे सफर के बारे मे अपने अब्बा को बता रही थी। अनवर को बीच मे टाग अडाने की कोई जरूरत तो नही थी पर वह लपककर प्रोफेसर साहब के पास पहुचा और चारो ओर के शोर-गुल से ज्यादा ऊची आवाज मे बोला, "मेरे लायक कोई और खिदमत ? तागा ले आऊ ?" प्रोफेसर साहब ने उत्तर दिया, "नही, नही, ठीक है अनवर। तुम तकलीफ न करो। मै अपनी मोटर मे आया हू।" और इतना कहकर वे भीड को चीरते हुए अपनी बेटी के साथ आगे बढ गए। देखते-देखते वे आख से ओझल हो गए। उस लडकी ने तो शायद अनवर की तरफ आख उठाकर देखा भी नही।

"चलो यार, एक प्याली चाय पिएगे," उस्मान ने कहा। गार्ड ने सीटी दे दी थी और गाडी चलनेवाली थी। मुसाफिरो की भीड छट गई थी—कुछ गाडी के डिब्बो मे ठुस गए थे और कुछ स्टेशन से बाहर निकल रहे थे। बस काली शेरवानिया पहने हुए कुछ लडके प्लेटफार्म का चक्कर लगा रहे थे और जनाने डिब्बे के सामने पहुचकर उनके कदम अपने-आप रुक जाते थे। रेफ्रेशमेट-रूम की तरफ बढते हुए उस्मान कह रहा था, "बबई मे मैं जितने भी बडे-बड़े काग्रेसियो से मिला उन सभीने यही कहा कि लडाई तो होगी—ऐसी लडाई जिसमे जीत और हार का फैसला हो जाएगा। और उन्होने यह भी कहा कि तुम्हारे और मेरे जैसे लोगो को तैयार रहना चाहिए।···" लेकिन यह पहला मौका था कि अनवर अपने दोस्त की राजनीतिक बातो मे कोई दिलचस्पी नही ले रहा था। वह उसकी बाते सुन तक नही रहा था।

उस रात अनवर सो न सका। इसलिए जब असगर खर्राटे लेने लगा और 'राज' साहब शेरो-शायरी मे सिर खपाने के लिए पीछेवाले कमरे मे चले गए तो वह चुपके से कमरे के बाहर निकल आया। वह किसी ऐसी खुली जगह मे जाना चाहता था जहा कोई न हो। उसे ऐसा पहले कभी महसूस नहीं हुआ था जैसाकि अब हो रहा था।

बाहर सन्नाटा छाया हुआ था। सिर्फ एक-दो कमरो मे बत्तिया जल रही थी। चौथाई चाद की मद्धिम रोशनी मे मस्जिद के सफेद गुम्बद और मीनारें तारो-भरे आकाश को चूम रही थी। और अनवर को ऐसा लगा कि उसने पहले कभी इन सब चीजो के पूरे सौदर्य को नही सराहा था—चाद, सितारे, वह सुडौल मीनारे, शानदार गुम्बद और अधेरे मे घटाघर की धुधली-धुधली शक्ल।

रात मे न जाने कितने फूलो की सुगध बसी हुई थी—गुलाब की भीनी-भीनी सुगध, चमेली के फूलो की मस्त महक, और शब-दुल्हन की नशीली तेज खुशबू! वह घास पर लेट गया। घास अभी हाल ही मे काटी गई थी और उसमे से एक अजीब सोधी-सोधी खुशबू निकल रही थी। ओस से भीगी हुई ज़मीन से भी सोधेपन की खुशबू आ रही थी।

चारो ओर शान्ति थी, शान्ति और खामोशी और एक अजीब खुशी जिसे बयान करना मुश्किल था। लेकिन न जाने क्यो उसके दिल मे दर्द भी था, न जाने क्यो उसे ऐसा लग रहा था कि वह अकेला है। सारी दुनिया उसे शान्तिमय लग रही थी फिर भी उसके मन मे एक अजीब बेचैनी थी। उसे ऐसा लग रहा था कि वह अपने दिल मे जो गहरी तमन्ना छिपाए हुए था वह किसी दिन ज़रूर पूरी होगी।

अनवर इसी तरह घास पर लेटा रहा—एक घटे, दो घटे, न जाने कितनी देर। वह जाग रहा था फिर भी उसका दिमाग सो रहा था। ऊपर घटाघर की घडी ने जब कुछ बजाए तो वह यह भी न गिन सका कि कितने बजे है। वह सोच नही सकता था, वह सिर्फ महसूस कर सकता था। वह रात का हुस्न, उसकी खामोशी और उसका दर्द पी जाना चाहता था, उसी तरह जैसे प्यासी धरती वर्षा के पहले छीटे का सारा पानी सोख लेती है।

वह घास मे मुह देकर लेट गया। वह अपने चिकने गालो पर धरती की

कोमलता को अनुभव कर रहा था, घास की नोके उसे गुदगुदा रही थी। सहसा उसका जी चाहा कि वह कोई बहुत बडा बहादुरी का काम कर डाले। उसने अपनी मुट्ठी मे कुछ घास पकडकर उसे जड से उखाड लिया। घास उखडने से जो कर्कश स्वर पैदा हुआ, जैसे कोई शरीर से शरीर का कोई अग नोच ले, उससे अनवर को न जाने क्यो बहुत सतोष मिला। उसने अपने नाखून नर्म गीली मिट्टी मे धसा दिए। सहसा उसका जी चाहा कि वह मिट्टी को खोद दे, उसकी शक्ल बिगाड दे, अपना सारा बदला उससे चुका ले। उसने पास ही एक झाडी से गुलाब का एक फूल तोडा और एक-एक करके उसकी सारी पखडिया नोचकर जमीन पर बिखेर दी।

फूल तोडते हुए उसकी उगली मे काटा लग गया और जब उसने उगली को मुह मे डालकर चूसा तो खून—उसका अपना खून—उसे कडवा लगा, कडवा लेकिन अच्छा।

जब वह अपने कमरे मे वापस लौटा तो बिलकुल थक चुका था फिर भी उसे एक अजीब-सा सतोष था, लेकिन कोई सोते मे भी उसका पीछा कर रहा था। यह वही 'दूसरी औरत' थी जिसे उसने बचपन मे देखा था और वह अब भी चिल्लाकर कह रही थी, 'मैं औरत हू, औरत की बेटी हू। तुम मुझसे बचकर कहा जाओगे।' लेकिन जब वह पास आई तो अनवर ने देखा कि उसका चेहरा लम्बोतरा था और उसके चेहरे के चारो ओर घुघराले काले बालो का घेरा था और उसके बडी-बडी मासूम काली आखे थी।

दूसरे दिन सुबह जब अनवर ने बाल कोंढने के लिए आईना देखा तो उसे अपने गालो पर और ठोडी पर उगे हुए बाल यकायक बहुत बडे मालूम हुए। बाल थे तो बहुत काफी समय से पर उनकी ओर उसने अब तक कोई ध्यान नही दिया था। उसके चिकने-सुथरे चेहरे पर वे कितने मुलायम और रेशमी मालूम होते थे। वह जानता था कि एक बार जहा उसने दाढी बनाना शुरू कर दी तो फिर उसकी खाल भी असगर और 'राजा' की तरह सख्त और खुरदुरी हो जाएगी, क्योकि वे दोनो रोज दाढी बनाते थे।

परतु आज उसे अपनी दाढी के बालो से न जाने क्यो उलझन हो रही

थी; वह उनकी वजह से न जाने क्यों शर्मिन्दा था। उनकी वजह से वह बिलकुल लौंडा लगता था और वह चाहता था कि वह मर्द लगे। और इसलिए एक खाली घटे मे वह अपने कमरे मे वापस आया और कमरा अदर से बद करके असगर का दाढी बनाने का सामान निकाल लाया और गाल पर साबुन रगडने लगा। पहली बार जब उसने अपनी दाढी पर रेजर चलाया और साबुन के झाग के साथ काई की तरह कुछ बाल उतर आए तो उसे बहुत रोमाच हुआ। जब अपने नौसिखिएपन की वजह से उसकी ठोडी एक जगह से कट गई तब भी उसे कोई चिंता नही हुई। ठोडी पर खून की एक पतली-सी लकीर छलक आई लेकिन उसे ज़रा भी फिक्र नही हुई क्योंकि उसने बडी होशियारी से पुराने दाढी बनानेवालो की तरह उसपर फिटकरी मल ली। फिटकरी लगाते ही कटे हुए घाव मे एक हल्की-सी चुभन हुई जिसमे अनवर को बहुत मजा आया और खून बहना एकदम बन्द हो गया। लेकिन घाव का निशान बाकी रह गया। यह उसकी जवानी के पहले घाव का निशान था!

उस दिन से अनवर अपने कपडो की ओर भी ज्यादा ध्यान देने लगा, वह अपने चेहरे को गौर से देखने के लिए, जो पीला जरूर था लेकिन देखने मे इतना बुरा नही था, आईने के सामने कुछ देर खडा रहता। अब उस्मान के साथ टहलने जाना भी पहले से कम हो गया और अक्सर वह कोई न कोई बहाना बनाकर अकेले सैर को निकल जाता था। और जब वह उस्मान के साथ जाता भी था तो मौका पाते ही बातचीत का रुख राजनीति की ओर से निजी बातो की ओर मोड देने की कोशिश करता।

"उस्मान, अच्छा एक बात बताओ," उसने एक दिन अचानक पूछा, "मुहब्बत के बारे मे तुम्हारा क्या खयाल है?"

बम्बई के स्वतन्त्र वातावरण मे पले हुए उस्मान ने उत्तर दिया, "मैं मुहब्बत को बिलकुल बकवास समझता हू। मै तो सियासी काम करूगा। मैं किसी बेवकूफ लडकी के गले से बधना नही चाहता।"

"लेकिन यह क्या ज़रूरी है कि लडकी बेवकूफ ही हो?" उर्दू के पुराने शायरो की गज़लो से मुहब्बत का सबक सीखनेवाले अनवर ने फौरन विरोध किया। "वह तुम्हारे काम मे तुम्हे 'इस्पिरेशन' भी दे सकती है।"

"लडकिया सभी बेवकूफ होती है," उस्मान ने अपना आखिरी फैसला देते

हुए कहा और फिर यकायक चुप हो गया, हालाकि चुप हो जाना उस्मान के लिए एक अजीब बात थी—शायद वह अपनी इस राय के बारे मे सबूत ढू ढने के लिए अपने तजुर्बे की गहराइयो मे गोते लगा रहा था।

दूसरे दिन अनवर उस्मान के आने से पहले ही हास्टेल से खिसक गया। क्रिकेट के खिलाडी सफेद पतलूने पहने हुए मस्जिद के पीछेवाले मैदान मे क्रिकेट खेल रहे थे। स्टाफ क्लब मे मोटी-मोटी तोदोवाले दुबले-पतले गजे प्रोफेसर टेनिस खेल रहे थे। अनवर ने उनके बीच प्रोफेसर सलीम को भी देखा जो अपने ज़माने मे कैम्ब्रिज मे टेनिस के एक माने हुए खिलाडी रह चुके थे। अधेड उम्र मे शरीर कुछ भारी हो जाने के बावजूद वे अब भी काफी जोर से बल्ला चला लेते थे। फिर वह सिविल सर्विस क्लब के सामनेवाली सडक से होता हुआ सीधा स्टेशन की तरफ चल दिया। लेकिन लाल डिग्गी के पास पहुचकर वह मैरिस रोड की तरफ मुड गया। उसने सोचा, 'मील-भर का चक्कर तो पड जाएगा लेकिन इतनी दूर ज्यादा चल लेना मेरे लिए फायदेमन्द होगा।' गर्ल्स कालेज की ऊंची-ऊची दीवारे, जिनमे कही एक खिडकी भी नही थी, सतरियो की तरह उसका रास्ता रोके खडी थी। उसके मन मे यह विचार क्यो उठा कि प्रोफेसर सलीम की बेटी सलमा दिन मे यही पढने आती होगी ? और कुछ ही देर बाद एक बगले के सामने से गुज़रते समय, जिसके फाटक पर पीतल की ए तख्ती लगी थी, अपने-आप ही उसकी चाल धीमी और दिल की धडकन तेज क्यो हो गई थी ? जाहिर है मखमली लान की हरी-हरी घास और मेहदी की बाड के उस पार फूलो की खूबसूरत क्यारियो को देखने के लिए ही उसकी नज़रे उधर उठ गई थी। अगर लगे हाथो उसे सफेद गरारा, आसमानी कुरता और उसी रंग का दुपट्टा पहने कोई इकहरे बदन की लडकी बरामदे मे आरामकुर्सी पर बैठी किताब पढती दिखाई दे गई थी तो इसमे उसकी कोई बदतमीज़ी या बेहूदगी तो नही थी। और अगर स्टेशन तक जाने के बजाय अनवर कुछ देर बाद वापस लौट गया था तो इसकी वजह सिर्फ यही थी कि स्टेशन पहुचते-पहुचते उसे बहुत देर हो जाती और वापसी मे शायद उसे जुकाम हो जाता।

उस हफ्ते अनवर ने मैरिस रोड के कई फेरे लगाए। वह बहुत ही सुहावनी और शान्त सडक थी, शायद ही कभी कोई मोटर या इक्का-तागा उधर से धूल उडाता हुआ गुज़रता था। लेकिन ऐसा लगता था कि अनवर की ही तरह और

भी बहुत-से लडके ऐसा ही स्वस्थ दृष्टिकोण लेकर वहा 'टहलने' आते थे और लगे हाथो अगर उन्हे यहा-वहा जवान शानो पर लापरवाही से पडा हुआ धनक के रग का कोई दुपट्टा, साडी मे लिपटा हुआ कोई सुडौल जिस्म, कोई काली-काली आखे या काली-काली घटाओ जैसे बालो की चोटी गुथती हुई दिखाई दे जाती तो उन्हे इसमे एतराज ही क्या हो सकता था। यह भी अलीगढ का एक बहुत लोकप्रिय मनोरजन था जिसका बहुतो को शौक था और इसीलिए ज़ाहिर है कि उन्होने अनवर को भी अपना ही जैसा समझ लिया।

"हैलो अनवर, कोई पछी दिखाई दिया ?" एक दिन शाम को प्रोफेसर सलीम के बगले के सामने टहलते समय एक दूसरे लडके ने उसके पास आकर पूछा।

"पछी ? कैसा पछी ?" अनवर इस सवाल पर सचमुच चकरा गया।

" 'पछी' नही जानते क्या होता है—पछी यानी 'फिशिया'—यही मैरिस रोड की जलपरिया..."

अनवर उसका मतलब समझ गया लेकिन उसे यह मजाक पसद नही आया और यह बात उसने उस दूसरे लडके से साफ-साफ कह भी दी।

"यार, अब इतने पाकबाज़ न बनो," उस लडके ने उत्तर दिया "हम सब एक ही नाव मे है ? क्या तुम भी यहा अपनी नज़रे सेकने नही आते ? लेकिन अगर मुझसे पूछो तो प्रोफेसर साहब की बेटी सलमा की एक झलक के आगे बाकी सब लडकिया मिलकर भी हलकी पडती है। है न पटाखा ?..." और यह कहकर उसने अपने मोटे-मोटे होठो से बहुत ही बेहूदा ढग से चुम्बन की आवाज़ पैदा की।

अनवर का चेहरा तमतमा उठा। उसका जी चाहा कि वह उस लफगे की नाक पर एक घूसा जड दे जो इतनी बेहूदा बाते कर रहा था। लेकिन अपने पैदाइशी दब्बूपन के कारण वह ऐसा न कर सका। वह अचानक मुडा और दाए-बाए देखे बिना सीधा हास्टेल की तरफ चल दिया। उसकी इस हरकत पर उस दूसरे मजनू को बहुत हैरत हुई और वह वही पत्थर की तरह गडकर रह गया।

इस छोटी-सी घटना का अनवर के दिल पर बहुत गहरा असर पडा, उसके दिल पर गहरी चोट लगी। क्या लोग लडकियो के बारे मे इसी तरह की बाते करते हैं ? जो चीज़ उसके लिए सौदर्य का रस लेने का साधन थी—क्या सुन्दर चीज़े

इसलिए नही होती कि उन्हे देखकर उनकी प्रशसा की जाए?—वही एक क्षण मे वासनापूर्ण अश्लीलता मे बदल गई थी। उसने, अनवरअली ने, अकबरअली के बेटे ने जो एक शरीफ घर का बेटा था, ऐसी गैर-शरीफाना हरकत की थी। उसकी नीयत बद न भी रही हो तो इससे क्या होता है। सबकी नज़रो मे तो वह भी उन्ही लफगो मे से था जो बुरी नजर से लडकियो को ताकते है—हा, बिलकुल उन्ही आवारा लोगो और शराबियो की तरह जो रात के वक्त चावडी बाजार से उन 'दूसरी औरतो' को परखते हुए और उनके बारे मे गदी-गदी बाते बकते हुए गुज़रते हैं। आत्मग्लानि के इस क्षण मे अनवर अपने इस 'पाप' की तुलना बुरी से बुरी चीजो से करने लगा। वह मन ही मन बार-बार कहता रहा, 'अब मैं कभी मैरिस रोड पर टहलने नही आऊगा, कभी नही।' वह नही जानता था कि जान-बूझकर अपने-आपको इस सुख से वचित रखने का उसने जो निर्णय किया था उसमे इस बात की स्वीकृति भी छिपी हुई थी अब तक वह मैरिस रोड पर सिर्फ मेहदी की साफ-सुथरी कटी हुई झाडियो और रग-बिरगे फूलो की क्यारियो को ही देखने नही जाता था, बल्कि उनसे परे भी कोई चीज़ थी जिसे देखने वह जाता था।

नवम्बर मे अलीगढ का मौसम बहुत अच्छा रहता है—थोडी-थो ी ठड पडने लगती है लेकिन बहुत सर्दी नही पडती। पढाई पूरे ज़ोरो पर जारी रहती है लेकिन इम्तहान काफी दूर होते है। यह ज़माना उन कामो के लिए सबसे ज्यादा मुनासिब होता है जिन्हे आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के नमूने पर बना.ई गई यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियो का विशेषाधिकार समझा जाता है। सारे मत्र और टूर्नामेंट इसी जमाने में होते है, वाद-विवाद होते है, बाहर से बडे ब लोग आकर भाषण देते है, नाटक खेले जाते है और पिकनिके होती है। और इस विदेशी ढर्रे से जरा हटकर उसे कुछ हद तक हिंदुस्तानी रग देने के लिए एक मुशायरा भी होता है जिसमे दूर-दूर से बडे-बडे शायर बुलवाए जाते है और लडका म भी शायरी का दम भरनेवालो को अपनी काव्य-प्रतिभा या उसके अभाव का परिचय देने का अवसर मिलता है।

मुशायरे का दिन आया और शेरो-शायरी का शौक रखने वी व ह म

अनवर ने मुशायरा शुरू होने से घटा-भर पहले आगे जाकर एक सीट घेर ली। मुकामी नौसिखिए शायरो की शायरी से वह काफी बोर हो चुका था; उनके बाद जो पुराने शायर आए उनकी फफूदी लगी शायरी से तो वह और भी बोर हुआ। लेकिन इसके बाद दो बाते ऐसी हुई जिनकी वजह से उसकी दिलचस्पी बढ गई। एक तो यह कि प्रोफेसर सलीम अपनी बेटी सलमा के साथ वहा तशरीफ लाए और उन्हे ठीक अनवर के सामने डायस पर बैठने की जगह दी गई। और दूसरी बात यह हुई कि 'राज' ने अपनी नज्म पढी।

अनवर को बेसाख्ता गालिब का यह मिसरा याद आया—'यह जन्नते-निगाह वह फिरदौस-गोश है।' शुरू-शुरू मे तो उसे सलमा की तरफ देखने मे कुछ सकोच हो रहा था। मैरिस रोडवाली उस घटना के बाद से सलमा का खयाल आते ही वह न जाने क्यो झेप जाता था। 'अगर उसने मुझे अपने घर के सामने लफगो की तरह टहलते देख लिया होगा तो क्या होगा?' लेकिन जैसे ही 'राज़' ने खडे होकर अपनी नज्म का पहला मिसरा पढा, उसके ये विचार दूर हो गए। वहा पर बैठे हुए सब लोगो की निगाहे, सलमा की निगाहे भी 'राज' पर जम गई। अब अनवर बिना किसी झिझक के सलमा को देख रहा था और उसके कान अपने साथी की कविता का रस पी रहे थे।

अनवर 'राज' को हमेशा से यूनिवर्सिटी का सबसे बदसूरत लडका समझता था। लेकिन जब उसने अपनी नज्म 'महबूब से शायर का खिताब' पढी तो उसमे एक अजीब तबदीली आ गई। अनवर के सामने अब बिलकुल ही दूसरा 'राज' था। उसका व्यक्तित्व बहुत निखर उठा था। वह इस समय बहुत बडा सूरमा लग रहा था। उसकी आखो मे एक नई ज्योति चमक रही थी। वह अपने सूखे हुए पतले-पतले हाथो को कविता के भाव के अनुसार हिला रहा था। उसके स्वर के उतार-चढाव से हर दिल मे एक लहर-सी पैदा हो रही थी—कभी उसका स्वर इतना धीमा हो जाता कि ऐसा लगता मानो वह किसीसे अलग कोई बात कह रहा हो और कभी उसका स्वर भरपूर उल्लास के साथ गूंज उठता। यह मनुष्य की अंतरात्मा थी जो एक निर्मल ज्योति के रूप मे प्रज्वलित हो उठी थी। यह शरीर की कुरूपता पर मनुष्य की प्रतिभा की विजय का चमत्कार था। उसकी नज्म के हर बद पर तालिया बज रही थी। पहले तो शायर ने अपने गौरव का गीत गाया:

मैं कि इक जनता का शायर, ज़िंदगी है मेरा साज़,
चाद-तारो को सुनाता हू, मै इस धरती के राज़।

और फिर उसने अपनी प्रेमिका का गौरव-गान किया था :

तू सरापा नकहते - गुल, शोख़िए - बादे - बहार,
सर्व-कामत मे निहा तेरे, हिमाला का विकार।

अनवर ने हर तरह की कविता पढी थी और उसका आनन्द लिया था, लेकिन यह और ही चीज़ थी, कोई ऐसी चीज़ थी जिममे कल्पना की बेहद उडान थी फिर भी वह इस धरती से सम्बन्ध रखती थी, उसमे दैवी शक्तियों जैसा ज़ोर था फिर भी वह नाज़ुक थी, यह ऐसी कविता थी जिससे रक्त का प्रवाह तेज हो जाता था और उसकी प्रतिध्वनि हर हृदय मे सुनाई देती थी। यह कविता बेजान नही थी, उसमे जान थी, उसमे निराशा नही बल्कि आशा थी, वह शरबत की तरह न तो मीठी थी और न ही उसे सुनकर नीद आने लगती थी, बल्कि उसमे तो सघर्ष की ललकार थी।

अनवर ने 'राज़' की नज़्म सुनी और देखी भी। उसने उस नज़्म को सलमा के चेहरे मे देखा। शायर के हर लफ्ज़, हर फिकरे, और हर जज़्बे के मुताबिक उसके चेहरे का रंग बदल रहा था। ऐसा लगता था कि एक बाजे का सगीत दूसरे बाजे मे भी अपने ही सगीत की लय पैदा कर रहा हो। उसका चेहरा कितना प्रतिभाशाली, कितना सवेदनशील था, उसपर कोमल से कोमल चीज का कितनी जल्दी असर होता था। जब उस चेहरे पर मुस्कराहट खेलने लगती थी तब तो वह सुन्दर लगता ही था पर जब वह शात होता था तब भी वह कुछ कम सुन्दर नही लगता था। अनवर को ऐसा लगा कि उन बडी-बडी काली मासूम आखो मे उदासी थी। और वह सोचने लगा कि शायद वह अकेली थी और किसी साथी की तलाश मे थी। उसके हृदय मे कोमल भावनाओ का एक तूफान उमड आया और वह सलमा के लिए हमदर्दी से बेचैन हो उठा। वह उसके लिए कुछ करना चाहता था, वह उसके लिए कुछ भी कर सकता था। बस उसके कहने भर की देर थी…

'राज़' अपनी नज़्म के आखिरी शेर पढ रहा था :

तेरी ख़ातिर चाद-तारो को भी ला सकता हू मैं,
आसमा को तेरे कदमो पर झुका सकता हू मै।

राज़ की नज़्म खत्म होते ही सारा हाल तालियों से गूज उठा। अनवर ने देखा कि एक क्षण के लिए सलमा अपने विचारो मे ऐसी डूबी रही कि उसे इस बात का पता भी नही चला कि नज़्म कब खत्म हो गई। शायर की नज़्म शायद अभी तक उसके कानो मे गूज रही थी। यह महज उसका खयाल था या सचमुच सलमा ने उदास होकर एक दबी हुई आह भरी थी और आह भरते ही उसकी आखो मे एक ख्वाब-सा छा गया था। लेकिन दूसरे ही क्षण वह भी औरो की तरह ज़ोर से तालिया बजा रही थी और उसका चेहरा खुशी से खिल उठा था। अनवर के हृदय मे ईर्ष्या काटे की तरह चुभने लगी। काश यह नज़्म 'राज़' ने नही बल्कि उसने पढी होती।

'राज़' ने मुशायरा लूट लिया था। लेकिन रात को जब अनवर अपने कमरे मे वापस लौटा तो उसने देखा असगर गहरी नीद सो रहा है—वह मुशायरो, डिबेटो और लैक्चरो मे अपना वक्त खराब करने का कायल नही था। 'राज़' अपनी चारपाई पर वैसे ही कपडे पहने लेटा छत को ताक रहा था और सिगरेट के धुए के छल्ले बना रहा था। अनवर 'राज' को बताना चाहता था कि उसे उसकी नज़्म बेहद पसन्द आई थी और उसे इस बात का बहुत अफसोस था कि उसने अब से पहले उसकी हकीकत को नही पहचाना था। वह उसके सामने अपनी यह दिली उम्मीद जाहिर करना चाहता था कि आगे चलकर दोनो मे गहरी दोस्ती बनी रहेगी। लेकिन उसे इस तरह की बाते कहने मे सकोच हो रहा था। इस तरह की भावुकता का प्रदर्शन करने से उसे बेहद डर लगता था। इसलिए उसने बुदबुदाकर सिर्फ इतना कहा, "बहुत ही उम्दा नज़्म थी, 'राज़'। हर शख्स तारीफ कर रहा था।" लेकिन इसके जवाब मे 'राज़' ने जो कहा उसे सुनकर अनवर चक्कर मे पड गया। अपनी सिगरेट से दूसरी सिगरेट जलाते हुए शायर ने कहा, "सच! लेकिन लोगो की तारीफ से मुझे क्या गरज।"

उस रात अनवर को बडी देर तक नीद नही आई। वह यह समझने की कोशिश करता रहा कि 'राज़' ने जो कहा था उसका क्या मतलब था। अगर लोगो की तारीफ से उसे कोई गरज़ नही है तो फिर किसकी तारीफ से उसे गरज़ है?

आक्सफोर्ड मे एक यूनियन सोसाइटी थी इसलिए अलीगढ मे भी एक थी।

मुस्लिम यूनिवर्सिटी यूनियन बहुत ज़बर्दस्त सस्था थी, जिसका हर साल इलेक्शन होता था ; साल-भर मे यूनियन की तरफ से दस-बारह डिबेटे और लैक्चर होते थे ; यूनियन की एक गदी-सी लाइब्रेरी और एक रीडिग रूम भी था और इसके अलावा वह सिर्फ अपनी शानदार परम्पराओ पर पलती थी। लेकिन यूनियन मे एक बात बहुत अच्छी थी। उनका इतजाम चलाने—या बिगाडने—का सारा काम लडके खुद करते थे और उसकी हदो के अदर उन्हे बोलने की पूरी आज़ादी थी। हिन्दुस्तान के मुसलमानो मे कुछ बेहतरीन वक्ता और बडे-बडे राजनीतिक नेताओ को पहली ट्रेनिंग इसी छोटी-सी पार्लियामेट मे मिली थी। यूनियन हाल मे चारो तरफ़ लगी हुई तख्तियो पर काले पडते हुए सुनहरे अक्षरो मे उनके नाम आज भी अकित हैं।

अलीगढ आने के बाद पिछले दो बरसो मे अनवर ने अक्सर इन नामों को बडी ईर्ष्या से देखा था, लेकिन उसके दिल मे यह इच्छा कभी नही हुई थी कि वह भी उनमे से एक हो। लेकिन अब वह इस बात को अच्छी तरह जानता था कि अगर कभी उसे शोहरत मिली तो इसी हाल मे एक वक्ता के रूप मे मिलेगी। डिबेटे आम तौर पर राजनीतिक सवालो पर होती थी। शुरू-शुरू मे अपने अब्बा की बैठक मे बहुत काफी वक्त गुज़ारकर और इधर हाल ही मे हर बात की जानकारी रखनेवाले उस्मान के साथ रहकर उसने बहुत कुछ सीख लिया था और अब वह राजनीति के किसी भी सवाल पर बाते कर सकता था। लेकिन क्या वह मच पर खडे होकर बोल सकेगा ? यूनियन इस बात के लिए बदनाम थी कि वहा नये और नौसिखिया बोलनेवालो को चुटकियो मे उडा दिया जाता था। कुछ लडके तो यूनियन की डिबेटो मे सिर्फ बिल्ली की बोली बोलने और वक्ता का मज़ाक उडाने मे अपना कमाल दिखाने के लिए ही आते थे। लोगो को इस बात मे कमाल हासिल था कि बडे मौके से कहकहा लगाकर या गलत मौके पर तालिया बजाकर वे बोलनेवाले को बौखला देते थे। इन सुननेवालो का खयाल आते ही बडे-बडे सूरमाओ का दिन काप जाता था। अनवर इन लोगों के ज़बर्दस्त हमलो का मुकाबला किस तरह कर पाएगा ?

"अब मिस्टर अनवरअली इस तजवीज़ के खिलाफ तकरीर फरमाएगे।"

यूनियन के प्रेसीडेट की आवाज़ कही बहुत दूर से, किसी दूसरी दुनिया से आती हुई मालूम दी। अनवर को ऐसा लगा कि जैसे वह ख्वाब मे किसीकी

आवाज सुन रहा हो। "उठो, अब तुम्हारे बोलने की बारी है," किसीने उसे ठेलकर कहा और वह उठ खडा हुआ। उसके गाल और कान की लवें घबराहट के मारे सुर्ख हुई जा रही थी, उसके पैर काप रहे थे और ज़बान सूख गई थी। इस आलम मे वह प्रेसीडेट के दाहिनी तरफ मच के उस भाग की ओर चला जहा से खडे होकर उसे भाषण देना था। वह बार-बार अपने मन को समझा रहा था कि डरने की कोई बात नही है। उसने सारी दलीले खूब अच्छी तरह तैयार कर रखी थी और उस्मान की दी हुई किताबो की मदद से उसने उनके समर्थन मे बेशुमार राजनीतिक तथ्य भी जमा कर लिए थे, वह कोई एक दर्जन बार अपना भाषण पढ चुका था, उसे बिलकुल रट लिया था और अनेक बार वह इसका भी अभ्यास कर चुका था कि वह किस प्रकार भाषण देगा। फिर उसे बोलने मे डर किस बात का ?

"मिस्टर प्रेसीडेट सर," उसने पार्लियामेण्ट मे भाषण देने के खास अन्दाज मे कहना शुरू किया, 'आज हमारे सामने बहस का मौजू यह है कि हिन्दुओ और मुसलमानो का सियासी मुस्तकबिल बिलकुल मुख्तलिफ है और इसलिए उनकी सियासी जमाते भी मुख्तलिफ होनी चाहिए। मैं इस तजवीज़ की शदीद मुखालफत करता हू, क्योकि···"

और इतना कहकर उसने अपने सामने बैठे हुए लोगो को देखा—कोई एक हज़ार सफेद पाजामे, उतनी ही काली शेरवानिया और लाल तुर्की टोपिया, एक हज़ार दुश्मन, एक हजार बेरहम जगली हूश जो अपने तानो के तीर किसी भी वक्त उसपर चलाने के लिए निशाना साधे बैठे थे। अनवर ने उन्हे देखा तो उसे ऐसा लगा कि वे अलग-अलग लोग नही है बल्कि एक बिफरा हुआ समन्दर है जो किसी भी वक्त उसे अपनी तूफानी लहरो की लपेट मे ले लेगा। उसकी जबान सूख गई, उसका गला घुटने लगा और कनपटियो मे धमक होने लगी।···

"मिस्टर प्रेसीडेट सर!···" वह बार-बार यही कहता रहा लेकिन इसके आगे कुछ भी न कह सका। पूरा भाषण उसकी याद से उतर गया था। उसे उसका एक भी फिकरा, एक भी लफ्ज़ नही याद आ रहा था। हाल मे एक बेरहम कहकहा गूज उठा और थोडी ही देर मे ऐसा महसूस हुआ कि हज़ार राक्षस एकसाथ मिलकर कहकहा लगा रहे हैं। जब उसे कोई रास्ता न सूझा तो बिलकुल लाचार होकर उसने मदद के लिए प्रेसीडेट की तरफ देखा। और

उसी वक्त उसने महसूस किया कि दो बडी-बडी काली मासूम आंखे उसे देख रही हैं। उन आखो मे मुस्कराहथी पर मजाक उडानेवाली मुस्कराहट नही। उस मुस्कराहट मे हमदर्दी थी, वह मुस्कराहट उसे उत्साह दिला रही थी। ऐसा लग रहा था कि वे मुस्कराती हुई आखे उनसे कह रही है, 'बोलो, हिम्मत करो! डरते क्यो हो? इतने बडे होकर बच्चो की तरह भेडिये से डरते हो?' उन आखो मे इतनी दोस्ती थी, इतना भरोसा था, इसानी भाईचारे की इतनी सादगी थी कि अनवर भी बरबस मुस्करा दिया। वह भेडिये का मुकाबला करने के लिए मुडा। अब उसके सामने भेडिया न था। उसके सामने एक हज़ार लड़के बैठे हुए थे जिनमे से एक दर्जन भी मुश्किल ने ऐसे न रहे होगे जो उठकर इतने लोगो के सामने बोलते की हिम्मत रखते हो। इन लोगो ने उसकी हसी उडाने की हिम्मत की! अच्छी बात है। वह उन्हे दिखा देगा! यह सच है कि उसने जो कुछ बोलने के लिए याद किया था उसे वह भूल चुका है पर उसकी ज़ुबान तो उससे नही छिन गई है।

जब कहकहा लगानेवाले पिशाच दम लेने के लिए एक क्षण को रुके तो अनवर ने फिर बोलना शुरू किया, "मिस्टर प्रेसीडेंट सर, मै आप लोगो को एक राज की बात बताता हू।" वह एक क्षण के लिए रुका और सुननेवाले भी इस सोच मे पड गए कि आखिर वह ऐसी क्या बात बतानेवाला है। अनवर ने कहना शुरू किया, "बात यह है कि मैंने अपनी तकरीर लिख ली थी और उसे तोते की तरह रट लिया था। लेकिन जब मैं यहा बोलने के लिए खडा हुआ तो मैने देखा कि मुझे उसका एक लफ्ज भी याद नही रह गया है।"

लोग हस पडे—लेकिन इस बार उनकी हसी मे वह पहलेवाला जहर नही था। उन्हे वक्ता की लाचारी देखकर सचमुच मजा आ रहा था, बल्कि वे उसकी हिम्मत की दाद भी दे रहे थे कि उसने सबके सामने इस बात को मान लिया था।

"तकरीर रटना मेरी गलती थी। अब मै यह गलती कभी नही करूगा। मैं अपनी तकरीर के अलफाज़ अलबत्ता भूल गया हू लेकिन मै यह तो नही भूला हूं कि मैं क्या कहना चाहता था और वह सब मै सीधे-सादे अलफाज़ मे आपके सामने पेश कर दूगा। मैं उन भारी-भरकम अलफाज़ का इस्तेमाल नही कर सकूगा जो मैंने आप लोगो पर रोब डालने के लिए रटे थे। मै आप लोगो को

यकीन दिलाता हू कि आप लोग बहुत-सी बकवास से बच गए।" सुननेवालो मे एक बार फिर हसी की लहर दौड गई और अनवर की इस बात मे उन्हे बहुत मजा आया।

"लडका है बडा जिगरे का—और सूझ-बूझवाला भी है," सुननेवालो ने अपने मन मे कहा।

इसके बाद तो सुननेवाले अनवर की मुट्ठी मे थे और वह उन्हे अपने इशारो पर नचा सकता था। लेकिन उसने उनके सामने कोई राजनीतिक तर्क नही पेश किए, राजनीति और दर्शनशास्त्र के बडे-बडे पडितो के रोबीले उद्धरण नही प्रस्तुत किए, कोई लम्बे-चौडे आकडे उनके सामने नही रखे। उसने उनके सामने लैक्चर झाडने की कोशिश नही की। वह तो उनसे ज़िन्दगी की सीधी-सादी हकीकतो के बारे मे बाते कर रहा था, वह उनके सामने अपने तजुर्बे की बाते कह रहा था। वह इस बात को भूल गया कि वह डिबेट मे हिस्सा ले रहा है; उसने लच्छेदार जबान नही इस्तेमाल की, विरोधियो के तर्कों को काटने की कोशिश नही की; उसने तो बस यह किया कि हकीकत को जिस शक्ल मे उसने देखा था वैसा ही उनके सामने पेश कर दिया। उसने उन्हे काका रामेश्वरदयाल के साथ अपने अब्बा की दोस्ती के बारे मे और गोपाल और रतन के साथ खुद अपनी दोस्ती के बारे मे बताया। उसने उन्हे दिल्ली के साम्प्रदायिक दगे के बारे मे बताया—हालाकि वह उन्हे यह नही बता सका कि उस रात उसे और गोपाल को कहा शरण मिली थी। उसने उन्हे महात्मा गाधी के साथ अपनी मुलाकात के बारे मे बताया और यह भी बताया कि उस छोटे-से महान आदमी ने साम्प्रदायिक दगे को रोकने के लिए किस तरह अपनी जान की बाजी लगा दी थी। आखिर मे उसने उन्हे बताया कि उसने जलियावाला बाग मे खुद अपनी आखो से क्या देखा था और सुननेवालो के सामने उस भयानक घटना की एक जीती-जागती तस्वीर खीच दी—मस्त बेफिक्रे लोगो की भीड मे घूमते हुए दो लडके, देशभक्ति के नारे और भाषण, 'वो आ गए, वो आ गए' की आवाज़ें, अपनी पिस्तौल दिखाता हुआ वह ललमुहा जरनैल, आग उगलती हुई बदूकें, दर्द से कराहता हुआ नदू और सीना तानकर जरनैल की तरफ बढता हुआ अजीतसिह, जो गोलियो की आवाज से भी ऊची आवाज मे चिल्लाकर गोली चलाना बन्द करने को कह रहा था, और जिसके दिल में उस तमगे को चीरती हुई एक गोली लगी

थी, जो उसे एक अंग्रेज अफसर की जान बचाने के लिए इनाम में दिया गया था। इसके बाद अनवर ने बहुत ही धीमे स्वर मे कहा, "और फिर, मिस्टर प्रेसीडेंट, पूरे बाग पर मौत का सन्नाटा छा गया। सिर्फ घायल और मरते हुए लोगो की कराहे सुनाई दे रही थी। मुझे वे आवाज़े आज तक सुनाई देती है। हम सब लोगो को उस दर्दनाक वाकये के नौ बरस बाद आज वे कराहें सुनाई दे सकती है।" इसके बाद उसकी आवाज़ यकायक ऊंची हो गई। "जिन लोगों ने जलियावाला बाग मे अपना खून बहाया था उनका खून बेकार नहीं जाएगा। उन्होने अपनी जान इसलिए दी कि एक दिन हम आजाद इसानों की तरह ज़िन्दगी बसर कर सके। उस दिन हिंदुओ और मुसलमानो और सिखों का खून एकसाथ बहा था और जो लोग यह कहते है कि हमारा मुस्तकबिल अलग है उन्हे पहले मुस्तकबिल की एक धारा मे से सबको अलग-अलग करना होगा।"

जब वह अपना भाषण खत्म करके बैठा तो सबने ज़ोर से तालियां बजाई। अनवर को अपने भाषण के उत्साह के कारण चक्कर आ रहा था और उसने मानो धुंधलके के एक परदे के पीछे देखा कि आसुओ से डबडबाई हुई दो आखें बडी तारीफ के अदाज मे उसे देख रही है। वह जानता था कि उसका भाषण बहुत कामयाब रहा और यह कि उस क्षण से दुनिया मे उसकी भी पूछ होगी, दुनिया मे उसकी भी एक हस्ती होगी और यह कि अब उसे किसी भी भीड के सामने खडे होकर अपने जैसे इसानो से सीधे-सादे शब्दो मे बात करने मे कभी कोई झिझक नही होगी।

कई दिन तक अनवर के दोस्त और उसके क्लास के लडके इस शानदार तकरीर पर उसे बधाइया देते रहे। कुछ लोग दिल ही दिल मे उससे जलने भी लगे थे और इन्ही लोगो ने अनवर को बदनाम करने के लिए झूठी-सच्ची बाते उड़ाकर उसकी ख्याति को नष्ट कर देने का बीडा उठा लिया। अनवर ने महसूस किया कि उसके बारे मे हर तरफ कुछ कानाफूसी चल रही है। लोग उससे आकर बडी मासूमियत से पूछते थे कि अपने भाषण के लिए प्रेरणा क्या उसे मैरिस रोड के चक्कर लगाते वक्त मिली थी। दूसरे लोग इस बात का ज़िक्र करते कि सलमा सलीम ने उसके भाषण के बाद बहुत ज़ोर से तालिया बजाई थी और

अनवर को बधाई देते समय अनवर के प्रशंसकों में ऐसी खूबसूरत लड़की भी थी। अनवर को इन बातों पर गुस्सा जरूर आता था पर वह अपना गुस्सा पी जाता था। लेकिन एक दिन जब वह पोलिटिकल फिलासफी के लैक्चर के लिए क्लास-रूम मे घुसा तो उसने देखा कि ब्लैकबोर्ड पर एक कार्टून बना हुआ है जो यकीनन उसके और सलमा के बारे मे था। कार्टून मे दिखाया गया था कि सलमा कह रही है, 'मेरे रोमियो, तुमने कितना अच्छा भाषण दिया,' और जवाब मे यह लिखा था, 'यह सब तुम्हारी ही प्रेरणा से हुआ, मेरी जूलियट।' अनवर ने एक नज़र कार्टून को देखा और जब वह पीछे मुडा तो सारी क्लास उसपर हस रही थी। वह क्रोध से पागल हो उठा। वह चाहता था कि किसी-को मार बैठे, किसीकी जान ले ले।

"किसने बनाया है यह कार्टून ?" उसने गरजकर कहा। "अगर हिम्मत है उसमे तो सामने आए।"

"काटेगा !" किसीने पीछे से कुत्ते की बोली की नकल करते हुए कहा और अनवर उसकी तरफ बढा ही था कि इतने मे प्रोफेसर सलीम आ गए और वह लपककर अपनी सीट पर जा बैठा।

हर शख्स यह सोच रहा था कि अब कोई विस्फोट होनेवाला है पर कुछ भी न हुआ। प्रोफेसर सलीम ब्लैकबोर्ड को इस्तेमाल करने से पहले किसी लडके से उसे साफ करवा लेते थे। आज भी उन्होने ऐसा ही किया। प्रोफेसर सलीम बहुत अच्छा पढाते थे और बोलते बहुत ही उम्दा थे। इसीलिए लडके उनका लैक्चर बडे ध्यान से सुनते थे। उस दिन वे यह पढा रहे थे कि फ्रास मे क्राति के वक्त किन राजनीतिक सिद्धातो का प्रचलन था। पूरे लैक्चर के दौरान मे किसी तरह की कोई गडबडी नही हुई, लेकिन अनवर लैक्चर मे ध्यान न लगा सका। उसके दिमाग पर अब भी उसी गदे कार्टून का विचार छाया हुआ था।

घटा बजा और पीरियड खत्म हो गया। प्रोफेसर सलीम ने खट से किताब बन्द कर दी। दरवाज़े की तरफ जाते हुए उन्होने पीछे मुडकर अनवर को बुलाया और कहा, "अनवर, तुम ज़रा मेरे कमरे मे आकर मुझसे मिल लो।"

तो इस 'स्कैंडल' की खबर प्रोफेसर साहब के कानो तक पहुच चुकी है। अनवर बरामदे मे उनके पीछे-पीछे चल दिया। वह जानता था कि क्लास मे लड़के क्या कह रहे होगे। वे खुश होकर यह सोच रहे होगे कि अब उसकी ऐसी

खबर ली जाएगी कि उम्र-भर याद रखेगा। लेकिन वह इस मामले मे कर ही क्या सकता था। इसलिए वह सेमिनार के कमरे मे कुछ उसी तरह घुसा जैसे कुरबानी का बकरा हलाल होने के लिए आता है।

"बैठो अनवर।" वह कुर्सी के किनारे पर बैठ गया।

"उस दिन तुमने बहुत अच्छी तकरीर की। तुम आगे चलकर बहुत अच्छे 'ओरेटर' बन सकते हो।"

"थैंक यू, प्रोफेसर।" उसने कहा, लेकिन मन ही मन वह कह रहा था, 'इन सब बातो से क्या फायदा। यह तो वैसी ही बात है जैसे बकरे को हलाल करने से पहले उसे खिला-पिलाकर मोटा किया जाता है। क्यो नही आप छुरी निकालकर इस किस्से को खत्म ही कर देते ? यह दुविधा तो मुझे योही मार डालेगी।'

"तुम दिल्ली के अकबरअली साहब के बेटे हो न ?"

"जी हा।"

"बहुत मशहूर खानदान है।"

और अनवर सोच रहा था कि यह सब तो भूमिका है, इसके बाद उसे इतने बडे खानदान के बेटे की ज़िम्मेदारियो के बारे मे लैक्चर दिया जाएगा। लेकिन प्रोफेसर साहब का दूसरा सवाल सुनकर वह सन्न रह गया।

"अच्छा अनवर, तुमने मेरी बेटी सलमा को तो देखा है न ?"

"नो सर·· मेरा मतलब है यस सर···मतलब यह है कि मैंने उसे स्टेशन पर देखा था, सर···"

"वह उस दिन डिबेट मे भी थी," सलीम साहब ने उसे याद दिलाया।

"जी हा, जी हा, यस सर।" और यह सोचकर कि अब इसके बाद प्रोफेसर साहब क्या कहनेवाले है उनका दिल बैठने लगा। लेकिन प्रोफेसर साहब ने तो बिलकुल ही दूसरी बात कही, "कल उसकी सालगिरह है और उसकी ख्वाहिश है कि कल तीसरे पहर चार बजे तुम हमारे यहा चाय पियो।" अनवर को अपने कानो पर यकीन नही हुआ। "क्या तुम्हारे लिए आना मुमकिन होगा ?"

यह भी कोई सवाल था। क्या स्वर्ग मे जाना उसके लिए मुमकिन होगा ? क्या इन्द्रधनुष पर नाचना उसके लिए मुमकिन होगा ? क्या उसके लिए यह मुमकिन होगा कि वह एक ही वक्त मे रूसो, शेक्सपियर और गालिब

बन जाए ?

"या कही और जाना है तुम्हे ?"

अनवर का स्तम्भित मौन भग हुआ और उससे अपनी उत्सुकता को छिपाए बिना कहा, "जी नही, कही नही जाना है मुझे। मुझे बेहद खुशी होगी आकर। मेरी तरफ से अपनी बेटी का शुक्रिया अदा कीजिएगा। मैं वहा चार बजे पहुच जाऊगा।"

"लेकिन मेरा घर भी मालूम है तुम्हे ?"

"जी हा," अनवर ने सच-सच कह दिया, "मैने उधर से गुजरते हुए आपके नाम की तख्ती लगी हुई देखी है।"



दर्दे-लादवा

प्रोफेसर मुहम्मद सलीम बी० ए० आनर्स (आक्सन) ने तीन साल तक इगलैड मे रहकर पश्चिमी सभ्यता से जो कुछ भी अपनाया था उससे उन्हे बेहद प्यार था और इसीलिए उन्हे अपनी इस विलायती डिग्री से भी बहुत प्यार था। हालाकि वे अधेड उम्र के विधुर थे पर उन्हे अब भी अपना ट्रिनिटीवाला टेनिस ब्लेजर पहनना बहुत पसद था, जिसकी ऊपरवाली जेब पर कालेज का निशान कढा हुआ था। लागातार धुलते रहने की वजह से कोट का कपडा बिलकुल घिस गया था और जेब पर कढे हुए निशान का सुनहरा काम काला पडने लगा था। और हालाकि कोट कई बार ढीला किया जा चुका था लेकिन अब वह प्रोफेसर साहब की लगातार बढती हुई तोद पर किसी तरह आता ही नही था। हालाकि प्रोफेसर साहब के पास और भी बहुत-से कोट थे लेकिन फिर भी यह उनका सबसे प्रिय वस्त्र था और रोज़ शाम को स्टाफ क्लब मे टेनिस खेलने जाते वक्त वे पाबदी से यही कोट पहनते थे। क्योकि एक तो यह कोट उनकी जवानी के दिनो की यादगार था और दूसरे वह उस पाश्चात्य सभ्यता का प्रतीक था जिसे वे अपने आक्सफोर्ड के दिनो से पूजने लगे थे।

अलीगढ मे प्रोफेसर सलीम अपनी पक्की साहबियत के लिए बदनाम थे। दूसरे प्रोफेसरो की तरह वे न सिर्फ पश्चिमी ढग के कपडे पहनते थे बल्कि उन्होने सोलहो आने पश्चिमी रहन-सहन अपना लिया था। ईद-बकरीद जैसे त्योहारो पर भी वे शेरवानी पहनना पसद नही करते थे। वे मस्जिद मे कभी नमाज़ पढने नही जाते थे और उन्होने कभी रोज़ा नही रखा था। वे अपने आपको 'रैशनलिस्ट' कहते थे और खुले-आम मुसलमानो मे प्रचलित परदे और बहुविवाह की प्रथाओ की निंदा करते थे। उनके बारे मे यह भी सुना जाता था कि जब कभी वे अग्रेज़ अफ़सरो की या अंग्रेजी ढंग से रहनेवाले अपने दूसरे दोस्तो की दावत करते थे तो उन्हे एकाध पेग शराब पी लेने मे भी कोई एतराज़

नही होता था।

जो लोग प्रोफेसर सलीम के शुरू-शुरू के दिनो मे अलीगढ मे रह चुके थे उनका कहना था कि प्रोफेसर साहब को अपनी जिन्दगी मे एक बात का बेहद अफसोस था—वे किसी भी तरह अपनी कट्टर मजहबी बीवी को परदा छोडने और पश्चिमी ढग का रहन-सहन अपनाने पर राजी नही कर सकते थे। कई बरस तक उन्हे इस बात का बहुत दुख रहा और अक्सर ऐसा होता था कि अपने साथियो से औरतो से परदा कराने के बारे मे बहस करते वक्त जब कोई उनकी बीवी की मिसाल उनके सामने रख देता था तो उनसे कोई जवाब देते न बन पडता था। जाहिर है इसमे उनका कोई कसूर नही था। बहुत कम उम्र मे जब वे कालेज मे पढते थे तभी उनकी शादी हो गई थी और तीन साल विलायत मे रहने की वजह से उनके और उनकी बीवी के विचारो के बीच एक बहुत बडी दूरी पैदा हो गई थी जिसे वे लाख कोशिश करने पर भी नही मिटा सके थे। लेकिन छ. बरस पहले जब इनफ्लुएंजा की बीमारी फैली थी तब उसमे उनकी बीवी अपनी इकलौती बेटी सलमा को छोडकर अल्लाह को प्यारी हो गई थी। सलमा उस दुखी विवाहित जीवन का एकमात्र सुखद परिणाम थी। सलीम साहब उन लोगो मे से नही थे जो अपनी बेचारी जाहिल बीवी के मर जाने के बाद उससे नफरत करते—जब तक वह जिन्दा रही तब भी उन्हे उस-पर तरस ही आता था। लेकिन उसके मरते ही उन्होने मन ही मन यह दृढ सकल्प किया था कि वे अपनी बेटी पर उसकी मा की जरा-सी भी छाप न पडने देगे। उन्होने फैसला किया था कि उनकी देखरेख मे सलमा एक नई स्वतन्त्र नारी बनेगी।

सलमा का बचपन अकेले मे गुजरा था और वह काफी दुखी भी रहती थी। उसके स्मृतिपट की पृष्ठभूमि पर उसके मा-बाप के हरदम के झगडो का चित्र अकित था, क्योकि दोनो ही अपनी बेटी को अपने साचे मे ढालने की कोशिश करते रहते थे। अगर मा चाहती कि बेटी कुरान शरीफ पढे तो बाप की कोशिश यह रहती थी कि वह उनके दोस्तो की महफिल मे 'ट्विक्ल ट्विक्ल लिट्ल स्टार' सुनाए, और इस प्रकार अपनी होनहार और बेहद तेज बेटी के कमाल दिखाकर वे अपनी बीवी की अनुपस्थिति की कमी पूरी करने की कोशिश करते थे। बाप चाहते थे कि उनकी बेटी अंग्रेज बच्चो की तरह सीधी-

सादी फ्राके पहना करे और मा उसे चमकदार ज़री और रेशम के कपडो से लाद देती और ऊपर से भद्दे और भारी-भारी ज़ेवर पहना देती जिन्हे प्रोफ़ेसर साहब बर्दाश्त भी न कर सकते थे। उन दोनो के बीच सलमा अपने-आपको बिलकुल लाचार और बेबस महसूस करती थी। एक ऐसे घर मे पलने की वजह से जहा हर वक्त लडाई-झगडा रहता था, जहा किसी भी चीज़ के बारे मे राय एक नही थी, सलमा बचपन से ही बहुत पक्की-पक्की बाते करने लगी थी और उसने ऐसी बहुत-सी बाते सीख ली थी जो उसकी उम्र के बच्चे के लिए न तो स्वाभाविक थी न हितकर ही। इकलौती बेटी होने की वजह से उसे अपनी उम्र के लडके-लडकियो के साथ रहने का मौका नही मिला था और इसलिए अपने इस अकेलेपन से बचने के लिए उसने अपने-आपमे ही घुट-घुटकर रहना सीख लिया था। दूसरो की दोस्ती नसीब न होने के कारण उसने अपनी कल्पनाओ और सुखद दिवास्वप्नो मे ही मग्न रहना सीख लिया था। उसके अब्बा उसे पढने के लिए जो किताबे लाकर देते थे उनमे उसने खूबसूरत सिड्रेलाओ और जाबाज़ शाहज़ादो के कितने ही किस्से पढे थे और इन्हे पढ पढकर वह अपने मन मे न जाने कितनी रोमाचकारी घटनाओ की कल्पना करती रहती थी जिनमे, जाहिर है, सबकी मुख्य पात्र वह स्वय होती थी।

मा के मर जाने पर सलमा बिलकुल अपने अब्बा के हाथो में आ गई। उन्होने फौरन उसे नैनीताल के एक कानवेंट मे भरती करा दिया जहा अग्रेज़, एग्लो-इडियन और अग्रेज़ी ढग से रहनेवाले अमीर हिन्दुस्तानी घरो की लडकियो के साथ उसने भी अपनी मिशनरी टीचरो से 'अग्रेज़ो की तरह अग्रेज़ी बोलना' सीख लिया। लेकिन सात सौ लडकियो के बीच रहकर भी सलमा अकेली थी। वह उनमे घुल-मिल न सकी। शुरू-शुरू मे तो उनके भोडे और भद्दे आचरण से, उनके ज़ोरदार कहकहो से, उनके बोलने के एग्लो-इडियन तरीके से और चोरो की तरह सेक्स की समस्याओ मे उनकी दिलचस्पी से उसे कुछ घृणा-सी होती थी। मा की वजह से उसके आचरण की जडे बहुत मज़बूती से उसी भारतीयता मे जमी हुई थी जिसे उसके अब्बा उसे कानवेंट मे भेजकर नष्ट कर देना चाहते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि छः साल तक नैनीताल मे रहने की

वजह से वह लगभग बिलकुल अंग्रेजों की तरह अंग्रेज़ी तो बोलने लगी और अंग्रेजी साहित्य मे उसे रुचि पैदा हो गई पर वह एंग्लो-इडियन ढग का रहन-सहन कभी न अपना सकी। जिन्दगी की तरफ—और मुहब्बत की तरफ—उनका जो भोडा और नीरस रवैया था वह सलमा के मूलत रोमाटिक स्वभाव के बिलकुल प्रतिकूल था और उसे उन एंग्लो-इडियन लडको के बीच, जिन्हे वार्षिक सामाजिक समारोहो और ऐसे ही दूसरे उत्सवो के मौको पर लडकियो से मिलने दिया जाता था, अपनी कल्पनाओ का शाहज़ादा कही दिखाई न देता था।

सलमा ने बहुत कम उम्र मे सीनियर कैम्ब्रिज पास कर लिया। उस समय वह सोलह साल की थी। इसके बाद वह अलीगढ के गर्ल्स कालेज मे भरती हो गई क्योकि उसके अब्बा चाहते थे कि वह उनके पास रहकर घर की देखभाल करे और अपने सुखी भविष्य के लिए—'सफल' विवाह के लिए—तैयारी करे। प्रोफेसर साहब बहुत दूरदर्शी आदमी थे और बेटी के भविष्य के मामले मे वे किसी तरह का जुआ नही खेलना चाहते थे। वे उसके लिए उचित वर ढूढने का काम न तो इस रोमाटिक नौजवान लडकी की हर क्षण बदलनेवाली पसन्द पर छोड सकते थे और न ही पुराने ढग से वे उसके लिए वर ढुढवाने को तैयार थे। वे खुद कोई मुनासिब आदमी ढूढना चाहते थे। उनकी योजना यह थी कि वे किसी अच्छे नौजवान को ढूढकर उसे पढ़ने-लिखने मे मदद देकर कोई ऐसी अच्छी नौकरी दिला देगे जो सलमा जैसी खूबसूरत और होशियार लडकी के शौहर के योग्य हो। उनकी नजर मे अनवर बहुत अच्छा 'कच्चा माल' था—उसमें ताज़गी थी, बोलचाल मे बहुत तमीज़दार था, समझदार था और पढाई मे अच्छा था। वह नये खयालात का आदमी था इसलिए सलीम साहब को यकीन था कि वह अपनी बीवी को परदे मे नही रखेगा। थोडी-सी मदद से वह आई० सी० एस० का इम्तहान आसानी से पास कर सकता था। और कुछ दिन बाद सलमा एक कलेक्टर की बीवी बन सकती थी—एक लडकी को इससे ज्यादा और क्या चाहिए।

लेकिन प्रोफेसर साहब काफी चालाक थे, इसलिए वे अपनी बेटी को अपनी योजना का पता नही लगने देना चाहते थे। वे नही चाहते थे कि उसकी सुखद कल्पनाए भंग हो। वे चाहते थे कि वह यही समझे कि वह अपना वर स्वय

पसद कर रही है। 'जबर्दस्ती की शादी' का विचार प्रोफेसर साहब के लिए असह्य था क्योकि उन्हे 'रैशनलिस्ट' होने पर बडा गर्व था, लेकिन अगर सावधानी से काम लिया जाए तो मुहब्बत की शादी भी 'तै कराई' जा सकती है। प्रोफेसर साहब इतने बेवकूफ भी नही थे कि शुरू से ही अनवर का दिमाग खराब कर देते। इसलिए सलमा की सालगिरह की दावत मे कुछ चुने हुए लडको को और भी निमन्त्रण दिया गया था, जिनमे 'राज' भी था। इसलिए नही कि प्रोफेसर साहब यह समझते थे कि उस चिकने-चुपडे शायर को कभी भी सलमा के साथ शादी करने के ख्वाब देखने की इजाज़त दी जा सकती थी बल्कि इसलिए कि शायरो को हमेशा से रुपये-पैसेवाली फैशनेबल औरतो का मनोरंजन करने के लिए इस्तेमाल किया जाता रहा था। वह दो-चार नज़्मे पढकर सुनाएगा तो महफिल मे रग आ जाएगा।

अनवर दावत मे गया तो, लेकिन तमाम वक्त वह बहुत दु खी रहा। उसे यकीन था कि प्रोफेसर साहब और सलमा दोनो ही पर उसका 'इम्प्रेशन' अच्छा नहीं पड रहा है, हालाकि वह जान लडाकर इस बात की कोशिश मे था कि वह इस सुनहरी मौके का फायदा उठाकर सलमा से दोस्ती पैदा कर ले। उस्मान को भी बुलाया गया था। वह बडी बेतकल्लुफी से बाते कर रहा था। अनवर को यह देखकर बडा आघात पहुचा कि उस्मान बीच-बीच में सलमा पर फिकरे भी कसता जाता था। सलमा अपने सफेद लिबास मे किसी देवी की तरह खूबसूरत और गभीर लग रही थी। 'राज़' एक कोने मे बैठा हुआ था और चूकि प्रोफेसर साहब ने खुद अपनी तरफ से लडको को सिगरेट पीने की इजाज़त दे दी थी इसलिए वह बडे इतमीनान से सिगरेट के कश ले रहा था और धुए के छल्ले बनाकर छत की तरफ फेंक रहा था। दूसरे लडके बडी बेहयाई से सलमा की चापलूसी कर रहे थे, उसके हर लफ्ज को बडे ध्यान से सुन रहे थे और अगर वह कोई ज़रा-सी भी हंसी की बात कह देती थी तो वे ठहाका मारकर हस देते थे। प्रोफेसर साहब अपना अजीब शक्ल का पाइप, जो वे पिछली बार स्विट्ज़रलैंड से लाए थे, मुह मे लगाए हुए बडी उदारता से मुस्करा-कर यह सब कुछ देख रहे थे। उनका खयाल था कि जब कोई लड़की पहली बार

अपने आधे दर्जन चाहनेवालो से मिले तो उसके सभ्य और सुसंस्कृत बाप को यही मुद्रा धारण करनी चाहिए।

अनवर को कुछ अटपटा-सा लग रहा था। उसकी समझ मे नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। वह सलमा को देख रहा था—उसका जी चाहता था कि वह इसी तरह उसे देखता रहे—लेकिन कुछ देर बाद उसने सोचा कि इस तरह उसे घूरना बहुत बेवकूफी है और इसलिए वह दीवार पर लगी हुई एक तस्वीर को देखने लगा। उसने भी बातचीत मे हिस्सा लेने की कोशिश की लेकिन अपनी घबराहट की वजह से वह इतने जोर से बोला कि सबने भवें चढाकर उसे देखा और वह शरमाकर चुप हो गया। सलमा उसपर बहुत मेहरबान थी और बीच-बीच मे उससे पूछ लेती थी, "मिस्टर अनवरअली, आप कुछ खा नही रहे है," और यह कहकर वह समोसो या केक की प्लेट उसकी तरफ बढा देती थी। अनवर इस डर से इकार नही कर पाता था कि कही इसे उसकी बदतमीज़ी न समझ लिया जाए और इसलिए वह हर चीज़ को 'थैंक यू सो मच' कहकर स्वीकार कर लेता था। इसका नतीजा यह हुआ कि उसकी प्लेट ऊपर तक भर गई थी और वह अपनी घबराहट के कारण कुछ खा भी नही पा रहा था। तिसपर सबसे बडा गजब तो उसने यह किया कि उसने एक तश्तरी तोड दी। हुआ यह कि सलमा ने उसे चाय बनाकर दी और उसकी बड़ी-बडी मासूम काली आखो को देखने मे वह कुछ ऐसा खोया कि उसने प्याली तो पकड ली और तश्तरी नीचे गिर गई। सलमा और प्रोफेसर सलीम दोनो ही ने उससे कहा कि कोई बात नही है लेकिन वह इतना शर्मिन्दा हुआ कि उसका जी चाह रहा था कि किसी बहाने से वहा से उठकर चला जाए। लेकिन इतने मे किसी लडके ने यह सुझाव रखा कि 'राज़' अपनी कुछ नज़्मे सुनाए और अनवर के वहा से उठकर चले जाने की नौबत नही आई। जब सलमा ने भी बहुत जोश के साथ इस सुझाव का समर्थन किया तो 'राज़' के सामने भी नज़्मे सुनाने के अलावा कोई चारा नही रह गया।

'राज़' ने शुरू-शुरू मे जो गजले सुनाईं उनमे तो अनवर को कोई खास मजा नही आया। आखिर गालिब, ज़ौक और मोमिन जैसे पुराने उस्ताद इससे कही अच्छी गजलें कह गए थे और वह उन सबको पढ चुका था। गज़ल में सवाल इस चीज़ का नही होता कि क्या बात कही गई है बल्कि किस ढग से

और कितने खूबसूरत लफ्जो मे कही गई है और यह ज़ाहिर था कि बरसों मेहनत करने के बाद ही राज़ की गज़लो मे वह उस्तादोवाला रचाव आ सकता था। लेकिन इतने मे किसीने 'महबूबा से खिताब' की फरमाइश की। पहले तो 'राज' को कुछ झिझक हुई। "वह नज्म तो आप सब लोग मुशायरे मे सुन चुके है।" "मुशायरे की बात अलग थी, राज़ साहब," सलमा ने कहा, "छोटी-सी महफिल मे सुनने मे कुछ और ही लुत्फ आएगा।" और उस्मान जो हमेशा कोई न कोई फिकरा चुस्त करने की ताक मे रहता था, बोला कि इस किस्म की नज्मे तो सिर्फ एक आदमी को सुनाने के लिए होती है। सलमा शरमा गई। उसके गोरे-गोरे गालो पर लाली दौड गई। 'राज' ने उस्मान को घूरकर देखा लेकिन प्रोफेसर साहब समेत सब लोग इस मज़ाक पर खिलखिलाकर हस दिए।

'राज़' ने नज्म पढी लेकिन इस बार कुछ धीमी आवाज़ मे और हालाकि शब्द वही थे लेकिन अनवर को उसमे एक नया ही लुत्फ आया। क्या इसकी वजह यह थी कि आवाज़ धीमी होने की वजह से उसमे यह अदाज पैदा हो गया था जैसे कोई बहुत राज़दारी की बात कह रहा हो। अब उस नज्म को सुनकर ऐसा नही लगता था कि शायर दुनिया को चुनौती दे रहा है बल्कि ज़ाती तौर पर किसीसे फरियाद कर रहा है, अब उसमे लफ्जो का ज़ोर नही था बल्कि सच्ची भावनाए उभरकर सामने आ गई थी। या इसकी वजह यह थी कि सलमा की मौजूदगी की वजह से—जो इतना करीब होते हुए भी इतनी दूर थी—उन लफ्जो मे अनवर के लिए एक नये माने पैदा हो गए थे। उसने कही पढा था कि शायरी काच के तिकोने टुकडे की तरह होती है और एक ही नज्म मे अलग-अलग वक्तो पर हम अपने 'मूड' और माहौल के मुताबिक नये हुस्न की झलक देख सकते है और उसमे नये अर्थ पैदा कर सकते है। अब उसकी समझ मे आ गया कि यह बात कितनी सच है। क्योकि कुछ ही दिन पहले जिन शब्दो को सुनकर उसका हृदय आदोलित हो उठा था उन्हीका असर इस वक्त उसपर बिलकुल उलटा पड रहा था—उसे अकेलेपन का एहसास हो रहा था, उसके दिल मे एक अजीब-सी मीठी-मीठी बेचैनी थी, वह किसी ऐसी चीज़ के लिए तडप रहा था जो उसकी समझ के बाहर थी। जितनी देर 'राज' अपनी नज़्म पढता रहा उतनी देर अनवर ने सलमा की तरफ नही देखा कि कही वह इसे

उसकी गुस्ताखी न समझ बैठे; वह तमाम वक्त शायर की तरफ ही देखता रहा। 'राज' भी नज़रे फेरे हुए लगातार छत के एक कोने की तरफ देख रहा था। लेकिन जब नज़्म खत्म होने को आई तो उसकी नज़रे भी भटकने लगी और जिस वक्त उसने यह मिसरा पढा, 'तेरी खातिर चाद-तारो को भी ला सकता हू मैं·· ' तो अनवर ने देखा कि उसने जल्दी से एक नज़र सलमा की तरफ देखा जो दोनो हथेलियो पर ठोडी टिकाए बडे ध्यान से नज्म सुन रही थी।

'राज़' की नज्म खत्म होने के बाद कोई एक मिनट तक कमरे मे सन्नाटा रहा। कोई भी नही बोला। ऐसा लगता था कि नग्मा अभी तक फजा मे गूज रहा है। इतने मे प्रोफेसर सलीम ने अपनी घडी की तरफ देखा और किसी लडके ने कहा कि अब चलना चाहिए। अचानक कमरा तरह-तरह की आवाज़ो से गूज उठा। कोई कह रहा था, "प्रोफेसर साहब आपका बहुत-बहुत शुक्रिया!" और प्रोफेसर साहब सबसे बारी-बारी से कह रहे थे, "आपके आने का शुक्रिया!" और उस्मान अपने खास अदाज मे कह रहा था, "मैं तो चाहता हू कि मिस सलीम साल मे कई बार अपनी सालगिरह मनाया करे और हमे एसी पार्टियो मे आने का मौका मिला करे।" जिसके जवाब मे सलमा ने फौरन कहा, "तब तो मैं बहुत जल्दी बूढी हो जाऊगी।" लेकिन अनवर को इस मौके पर कहने के लिए एक भी फिकरा नही सूझा और उसने रस्मी तौर पर शुक्रिया अदा करके ही सब्र कर लिया।

अनवर सबसे बाद मे वहां से चला और जब उसने प्रोफेसर सलीम से हाथ मिलाया तो उन्होने अनवर से कहा, "फिर आना अनवर।" और उसके बाद काफी ज़ोर देकर यह भी कहा, "जब जी चाहे आ जाया करो। मुझे यकीन है कि तुम्हारे आने से सलमा भी खुश होगी। बात यह है कि यहा उसका कोई भी तो दोस्त नही है।" इसपर सलमा ने भी कहा, "जरूर, ज़रूर, जिस दिन भी शाम को आपको कोई खास काम न हो आप यहा आ जाया कीजिए।" इसके जवाब मे अनवर बार बार सिर्फ बाप-बेटी का शुक्रिया ही अदा करता रहा। अनवर को यकीन नही था कि जवान लडकियो से हाथ मिलाना चाहिए या नहीं इसलिए उसने हाथ उठाकर आदाब अर्ज़ किया और कमरे से बाहर चला आया।

अनवर ने इस खुले निमत्रण का फायदा उठाया और दो दिन बाद फिर वहा जा पहुचा। प्रोफेसर साहब हमेशा की तरह बडे मेहरबान थे और उन्होने जिस तपाक से अपने इस नवयुवक विद्यार्थी का स्वागत किया उसे देखकर अनवर सचमुच पुलकित हो उठा। थोडी देर बाद सलमा कमरे मे आई और उसके साथ ही सेंट की भीनी-भीनी खुशबू का एक झोका भी आया। उसके रवैये से भी यह स्पष्ट था कि वह अनवर का स्वागत कर रही है। चाय मगाई गई लेकिन प्रोफेसर साहब को क्लब मे एक पार्टी मे जाना था इसलिए वे मोटर लेकर चले गए और इन दोनो को वहा अकेला छोड गए।

अनवर की ज़िदगी मे यह पहला मौका था कि वह किसी जवान लडकी के साथ अकेला था। उसने सोचा यह तो बहुत ही अनहोनी बात है। उसका ख़याल था कि जब कोई लडकी—वह नये ढग की लडकी ही क्यो न हो—किसी अनजान मर्द से मिलती है तो उसका बाप या मा या कोई चचा-मामू या कम से कम कोई भरोसेवाला नौकर हमेशा आसपास मडराता रहता है। लेकिन यहा तो वह सलमा के साथ एक ही सोफे पर बैठा चाय पी रहा था और बावर्ची-खाने मे जो नौकर खाना पका रहे थे उनके अलावा घर मे कोई भी नही था। बहुत ही खुशगवार सूरत थी लेकिन साथ ही अनवर को कुछ परेशानी भी हो रही थी। वह कुछ शरमा भी रहा था और कुछ उसे उलझन भी हो रही थी। वह सलमा के सवालो का जवाब 'हा' या 'ना' मे देता और बीच-बीच मे बडी देर तक चुप बैठा रहता। अनवर ने देखा कि बात करने के मामले मे सलमा बहुत तेज़ थी। फर्राटेदार अग्रेज़ी बोलते-बोलते वह एकदम साफ हिन्दुस्तानी बोलने लगती थी। वह दो सस्कृतियो के प्रभाव मे पली थी और पूरब और पश्चिम की सस्कृतियो के मिले-जुले प्रभाव ने उसके व्यक्तित्व को निखार दिया था। उसमे अग्रेज़ी स्कूल की पढी हुई लडकीवाली बेबाकी भी थी जिसकी वजह से वह बहुत-सी चीज़ो के बारे मे खुलकर बाते कर सकती थी, लेकिन साथ ही चूकि वह अपनी मा की भी बेटी थी इसलिए उसकी आखो मे एक कुदरती शर्म थी जिसकी वजह से उसका बेझिझक बात करने का ढग कुछ और ही खूबसूरत हो गया था।

अनवर ने पहली बार सलमा को इतने करीब से इतनी अच्छी तरह देखा

था। कसे हुए रेशमी कुरते पर वह पीले रग का एक कसा हुआ ऊनी स्वेटर पहने थी जिसकी वजह से उसके यौवनमय शरीर की विद्रोही गोलाइया और उभर आई थी। उसका रग गोरा था और अनवर को यह देखकर खुशी हुई कि उसके चेहरे पर जो गुलाबीपन था वह पाउडर और सुर्खी की वजह से नही था बल्कि यह उसकी अच्छी सेहत की निशानी था। उसने अपने काले-काले घुघराले बालो की दो मोटी-मोटी चोटिया गूध रखी थी जो उसके चेहरे के दोनो तरफ उसके सीने पर पडी हुई थी और उसका सिर जरा-सा भी हिलने पर साप की तरह लहरा जाती थी। उसने बडी बेपरवाही से हलके आसमानी रग का जार्जट का दुपट्टा अपने कधो पर डाल रखा था। और अनवर, जो अभी शाम की ठडी हवा के तीर की तरह चुभते हुए थपेडे खाकर आया था, इस बात पर आश्चर्य कर रहा था कि आखिर वह इतनी सर्दी मे ऊनी शाल क्यो नही ओढती।

"मिस्टर अनवर, यूनियन मे तो आप इतना अच्छा बोलते है लेकिन यहा तो आप मुह भी नही खोलते," सलमा ने अचानक कहा और अनवर यह देखकर शरमा गया कि उसकी खिसियायी हुई खामोशी को इस तरह चुनौती दी जा रही है।

"अरे हां, माफ कीजिएगा," उसने माफी मागते हुए हकलाकर कहा, "मै तो आपकी बाते सुनने मे बिलकुल खो गया था। और फिर…" सच बात कहने से पहले वह एक क्षण के लिए रुका, "मुझे आपसे थोडा-सा डर भी लग रहा था।"

"मुझसे और डर ?" सलमा ने सोचा कि अनवर मज़ाक कर रहा है।

"देखिए, बात यह है कि मैं आप जैसी लडकी से इससे पहले कभी नही मिला।"

इस भोलेपन से की गई तारीफ पर सलमा बहुत खुश हुई। अपनी तारीफ सुनकर कौन खुश नही होता, फिर सलमा ही क्यो न खुश होती। उसे यह लडका अच्छा लगने लगा था, जिसका रग पीला था, जो इतना सीधा-सादा और भोला था, लेकिन यूनियन मे उसके भाषण से यह साबित हो गया था कि वह बेवकूफ नही था। सलमा ने पूछा कि वह तकरीर सचमुच भूल गया था या अपनी दलीलो मे ज्यादा असर पैदा करने के लिए उसने जान-बूझकर ऐसा

किया था ? और जब अनवर ने यह स्वीकार किया कि वह सचमुच मुश्किल मे फस गया था तो सलमा ने उसे बताया कि एक बार अपने स्कूल के स्थापना-दिवस के समारोह मे वह भी ऐसी ही मुश्किल मे फस गई थी। उसे 'मर्चेंट आफ वेनिस' के अदालतवाले सीन मे पोर्शिया का भाषण सुनाना था, जिसे उसने अच्छी तरह रट लिया था। लेकिन उसने वह रटा हुआ भाषण सुनाना शुरू ही किया था—'द क्वालिटी आफ मर्सी इज नाट स्ट्रेंड। इट ड्रापेथ फ्राम हैवेन अपान द प्लेस बिनीथ : इट इज ट्वाइस ब्लैसेड' कि इतने मे उसे एक वेटर दिखाई दिया जो स्ट्राबेरी आइसक्रीम की प्लेटे मेहमानो को दे रहा था। सलमा यह सोचकर कि उसके लिए आइसक्रीम नही बचेगी इतनी चिंतित हुई कि वह पोर्शिया का भाषण बिलकुल भूल गई। उसकी आखे अभी तक आइसक्रीम के छोटे-छोटे गुलाबी पहाडो पर जमी हुई थी और वह टूटे हुए रिकार्ड की तरह बार-बार यही दुहरा रही थी, 'इट ब्लैसेथ हिम दैट गिव्ज, ऐंड हिम दैट टेक्स।' उसने यह घटना इतने दिलचस्प तरीके से बयान की कि अनवर को बेसाख्ता हमी आ गई। सलमा भी हंस पडी। उसके चेहरे पर लाली दौड गई और वह पहले से भी ज्यादा खूबसूरत लगने लगी। जवानी की उमगो से भरपूर इस हसी से अनवर की झिझक बिलकुल दूर हो गई और अब उसे अपने करीब बैठी हुई इस खूबसूरत लडकी से बिलकुल डर नही लग रहा था। अब वे दोनो दोस्त हो गए थे—जैसे वह और गोपाल या वह और रतन दोस्त थे या शायद उससे भी ज्यादा गहरे दोस्त !

और वे इसी तरह हसते रहे, बाते करते रहे और एक-दूसरे को किस्से सुनाते रहे, यहा तक कि कमरे मे अधेरा हो गया और उस धुधलके मे सिर्फ सलमा की दो आखे चमकती रही। किसी नौकर ने आकर बत्ती जला दी और उन्हे यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि इतनी देर हो गई थी। प्रोफेसर सलीम ने क्लब से आकर उन दोनो को दोस्तो की तरह बाते करते देखा तो बहुत खुश हुए। अनवर उठा और जाने की इजाजत मागने लगा लेकिन वह सलमा का मेहमान था और सलमा उसकी एक भी बात सुनने को तैयार न थी। वह बोली, "नामुमकिन है, तुम्हे हम लोगों के साथ खाना खाकर जाना होगा।"

अनवर अब रोज शाम को प्रोफेसर सलीम के घर पहुच जाता और जब भी वह शाम की चाय पीने वहा जाता तो हमेशा रात का खाना खाकर ही

लौटता। उन्हे बातचीत करने के लिए रोज कोई न कोई बहाना मिल ही जाता। सलमा को शायरी का खास शौक था और अनवर इकबाल या 'जोश' की, या किसी नये शायर की कोई किताब ले आता और उसे अपनी पसन्द की कोई नज्म पढकर सुनाता और जब सलमा भी उसे पसन्द करती तो उसे उसमे एक नया ही मजा आता। कभी-कभी वह 'राज' की बिना छपी हुई नज्मे और गजले भी लाता, जो 'राज' उसे पढने के लिए देता था। सलमा अक्सर कहा करती थी कि 'राज' की तरह के नौजवान शायरो की शायरी मे एक बलबला और जोश होता है जो पुराने उस्तादो की शायरी की बारीकियो मे नही मिलता। हफ्ते मे एक बार वे सिनेमा देखने जाते और सिनेमा के परदे पर दूसरो की खुशी देखकर खुश होते और अगर तस्वीर अच्छी न भी होती, टीन की छतवाले उस घुटे हुए हाल मे शायद ही कभी अच्छी तस्वीर आती थी, तब भी सलमा के पास रहने की वजह से अनवर को खुशी होती।

अनवर इस तरह खुशी के गुलाबी धुधलके मे अपने दिन बिता रहा था; उसे इस बात का होश भी नही था कि सलमा के साथ उसकी दोस्ती को लेकर लोग कैसी-कैसी बाते करते है और उन्हे बदनाम करने की कितनी कोशिशे करते है। उसने सलमा के प्रति अपनी भावनाओ का विश्लेषण करने की कभी कोशिश नही की थी और अगर कोई उससे कहता कि उसे सलमा से इश्क होता जा रहा है तो वह इस बात को एक कुत्सापूर्ण लाछन कहकर टाल देता। इसी तरह हर नौजवान अपने-आपको फसाने के लिए खुद जाल बुनता है और जब वह उस जाल मे फस जाता है तो हैरत जाहिर करता है।

•

यूनिवर्सिटी मे देखते-देखते हर तरफ 'अनवर-सलमा रोमास' का चर्चा होने लगा। अनवर के कमरे मे रहनेवाले उसके साथियो पर इस रोमास की प्रतिक्रिया बिलकुल ही अलग-अलग हुई। असगर ने उसे प्रोफेसर सलीम के घर पाबदी से जाने के बारे मे एकाध बार छेडा जरूर लेकिन इससे ज्यादा कुछ न किया। 'राज़' अपनी अलग ही एक दुनिया मे खोया रहता था। वह न कभी किसीके भेद जानने की कोशिश करता था न किसीको अपने भेद बताता था। लेकिन हर चीज़ का मजाक उड़ानेवाला उस्मान ज्यादा सफाई से बात कहता था। जब

भी उसे मौका मिलता वह अनवर को एक लडकी की वजह से अपनी पढाई और अपने दोस्तो की तरफ से लापरवाही बरतने के लिए लताडता। वह बडी गभीरता से कहता, "माई डियर अनवर, मेरी बात मानो, कोई भी लडकी इस लायक नही होती।" अगर किसी और ने यह बात कही होती तो अनवर उसे मुहतोड जवाब देता और बडी सख्ती से उससे कह देता कि उसे उसके मामलात मे दखल देने का कोई हक नही है। लेकिन बम्बईवाला यह लडका इन मामलात के बारे मे अपनी राय इतने दावे के साथ देता था और इतने यकीन के साथ अपना फैसला देता था कि उसके आगे अनवर से कोई जवाब देते न बन पडता था। इसके अलावा वह जानता था कि उस्मान एक सच्चा दोस्त है और अगर वह कोई बात सख्ती से कहता भी था तो दिल दुखाने के लिए नही कहता था।

लेकिन पूरी यूनिवर्सिटी मे सैकडो लोग जो बाते कर रहे थे और उसे और सलमा को बदनाम कर रहे थे उनके बारे मे अनवर का रवैया यही नही हो सकता था। जब वह लडको के किसी गिरोह के पास से गुजरता और उसे आता देखकर वे यकायक चुप हो जाते तो वह फौरन समझ जाता कि उसीके बारे मे बाते हो रही थी। एक दिन उसने अपने कानो से सुना कि वे लोग उसके बारे मे किस तरह की बाते करते है। उस दिन शाम को वह प्रोफेसर सलीम के घर नही गया था। वह खेतो की तरफ टहलने चला गया था और वहा से सूरज डूबे लौटा था और फिर चाय पीने स्विमिंग बाथ रेस्तोरा मे चला गया था। वह जाकर चुपचाप एक कोने मे छोटी-सी मेज पर बैठ गया। उसने देखा कि बीचवाली बडी-सी मेज के चारो ओर बैठे हुए कोई आधे दर्जन लडके बाते करने मे इतने मस्त थे कि उन्हे उसके आने का पता भी नही चला। उसने चाय का आर्डर दिया ही था कि इतने मे उसने उन लडको की बातचीत के दौरान मे बार-बार अपना नाम सुना। पहले तो उसने सोचा कि चुपचाप वहा से उठकर चला जाए। उसे किसीके बारे मे झूठी-सच्ची बाते उडाने से सख्त नफरत थी और वह जानता था कि उसके बारे मे—और सलमा के बारे मे—जिस तरह की बाते की जाएगी उन्हें वह बर्दाश्त नही कर सकेगा। वह इस चीज को कतई बर्दाश्त ही नही कर सकता था कि उसकी वजह से किसी बेकसूर लडकी के नाम पर कीचड उछाला जाए। अनवर वहा से चुपके से खिसक जाने की बात सोच ही रहा था कि इतने मे वेटर चाय ले आया और अनवर को उनकी बाते

सुनते रहने पर मजबूर होना पडा। उसने अपने ओवरकोट का कालर खडा कर लिया ताकि कोई उसे पहचान न सके। इतने मे अनवर को किसीको यह कहते सुनकर बडा ताज्जुब हुआ कि "देखो, तुम लोग अनवर और सलमा सलीम के बारे मे जो कुछ कह रहे हो वह सरासर बकवास है।" इन शब्दो को कहनेवाला कोने मे अपनी मेज पर से उठा और बीचवाली मेज के पास पहुच गया। "और मैं तुम लोगो को यहां इस किस्म की बाते नही करने दूगा। समझ गए ?" वह बहुत लम्बा-चौडा छ-फुटा आदमी था। वह एक ढीला-ढाला झूल जैसा ओवर-कोट पहने था और उसपर एक काली फेल्ट की हैट लगाए था। रेस्तोरा की धुधली रोशनी मे उसकी सूरत बहुत भयानक लग रही थी। उसकी आवाज मे रोब था और चुनौती भी, जिसकी वजह से कोई उसकी बात टालने की हिम्मत न कर सकता था। अनवर और सलमा के बारे मे बेहूदा बाते करनेवाले लडके चुप हो गए। सिर्फ एक लडके ने दबी ज़बान मे घिघियाकर कहा, "हम तो मज़ाक कर रहे थे।" अपना बिल देकर वे कुछ ही मिनट बाद उठकर वहा से चले गए।

अनवर ने काला ओवरकोट पहने हुए उस आदमी को पहचान लिया। वह एम० ए० मे पढता था। उसका नाम सुभान था। वह उस छोटे-से दल से सबध रखता था जिसका नाम लडको ने 'रूसी' रख छोडा था, क्योकि ये लोग हमेशा बडे जोश के साथ यही बाते किया करते थे कि सोवियत यूनियन मे कैसी कमाल की तरक्की हो रही है। यह एक अजीब दल था जिसमे आसानी से किसीको घुसने नही दिया जाता था, इस दल के लोग ऊची-ऊची बाते करते थे और आम तौर पर बाहर के लोगो से बहुत कम मिलते-जुलते थे। उनकी अलग-थलग रहने की इस प्रवृत्ति पर झुझलाकर दूसरे लडको ने न सिर्फ उन सबको मिलाकर पूरे दल का एक नाम रख दिया था, बल्कि अलग-अलग भी सबके नाम बिगाडकर रूसी ढग के नाम कर दिए थे। सुभान को लोग 'सुभानोव्सकी' कहते थे, मूसा का नाम था 'मूसाकोव' और जहीर को बदलकर 'जहीरोफ' कर दिया गया था। अनवर इन लोगो से पहले कभी नही मिला था लेकिन इस समय वह कृतज्ञता-वश सुभानोव्स्की की मेज़ पर गया, इस बात का शुक्रिया अदा करने के लिए कि उसने बडी हिम्मत का परिचय देकर उसे इन स्कैडल फैलानेवालो के हमले से बचाया था।

"अस्सलामलैकुम ! मेरा नाम अनवर है !"

"मै जानता हू । बैठो !" न 'वालेकुमअस्सलाम !' न 'तशरीफ रखिए !' उसने सीधे-सीधे कहा, "मेरा नाम सुभान है—लोग मुझे 'सुभानोव्स्की' कहते है !"

"आपने उन लोगो से जो कुछ कहा वह मैंने सुना ! मैं आपका शुक्रिया•••"

"ठीक है ।" सुभान ने उसे अपना वाक्य पूरा करने का भी मौका नही दिया । "मुझे स्कैंडलबाजी से सख्त चिढ है । यह मिडिल क्लास की 'डिकेडेंट मोरैलिटी' (पतनोन्मुख नैतिकता) की निशानी है ।"

"आपने बहुत अच्छा किया•• मेरा मतलब है•••यह बहुत ही शर्म की बात है कि दो आदमियो के पाक और बेदाग ताल्लुकात के बारे मे इस तरह की गलत बाते कही जाए । "

"मर्द और औरत के बीच 'पाक और बेदाग' ताल्लुकात जैसी कोई चीज़ होती ही नही । उनके ताल्लुकात बिलकुल वैसे होते है जैसे बकरे और बकरा के । सारा सवाल यह होता है कि एक खास उम्र मे पहुचकर आदमी के कुछ खास ग्लैड्स काम करना शुरू कर देते है और उसमे 'सैक्स इम्पल्स' पैदा होते है और इन 'सैक्स इम्पल्सो' के मुताबिक 'हार्मोन' बनने लगते है । मुझे तो एतराज इस बात पर है कि कोई किसी दूसरे की 'लिबिडो' पर बहस क्यो करे ।"

बकरे ! बकरिया ! सैक्स इम्पल्स ? अनवर दग रह गया । अब से पहले किसीने भी उससे इस तरह बाते नही की थी । ये बाते इस तरह खुले-आम रेस्तोरा मे बैठकर करने की थोडे ही होती है । उसके दिल को धक्का भी लगा और वह हैरान भी हुआ । और सब तो ठीक था, लेकिन यह 'लिबिडो' क्या बला होती है ?

"लिबिडो ?" उसने आश्चर्य से यह शब्द दुहराया ।

"जिसे मुहब्बत कहते है, लेकिन तुम्हारे जैसे रोमाटिक लोगो ने इस लफ्ज़ को इतना रगडा है कि इसका कोई मतलब ही नही रह गया है । तुम लोग जिस्म की एक कुदरती भूख को बिला वजह रूहानियत का रग देने की कोशिश करते हो ।"

"आपको कैसे मालूम कि मै रोमाटिक आदमी हू ?" ज्यादातार रोमाटिक लोगो की तरह अनवर भी अपने यथार्थवादी होने पर गर्व करता था ।

"मैंने तुम्हारी तकरीर सुनी थी। तुमने उसमे दुनिया-भर की रोमाटिक बकवास की थी—'मुस्तकबिल के बारे' और हिन्दुओ और मुसलमानो का खून एकसाथ बहना, वगैरह, वगैरह। तुम लोग तो समझते हो कि ज़िन्दगी शायरी है—और साम्राजियो की तोपे सगीत की लय पर चलती है।"

इसके बाद पद्रह मिनट तक अनवर को जिन्दगी के बारे मे—और मुहब्बत के बारे मे—मार्क्स और फ्रायड के सिद्धान्तो के आधार पर एक ऐसा धुआधार लैक्चर सुनना पडा कि उसका सिर चकरा गया। फिर भी उसे यह अक्खड किस्म का देव का देव आदमी बहुत अच्छा लगा, क्योकि उसमे अपनी बात खुलकर कहने की हिम्मत थी। उसने अनवर के विचारो और उसकी आस्थाओ के कमज़ोर पहलुओ पर भी जो हमले किए उनका असर भी अनवर पर अच्छा ही पडा। वे दोस्तो की तरह एक-दूसरे से बिदा हुए और चलते हुए सुभान ने बडी बेतकल्लुफी से उसकी पीठ पर एक जोर की धप लगाते हुए कहा, "तुम्हारा दिमाग कुछ उलझा हुआ ज़रूर है, जैसाकि सभी मिडिल क्लास इन्टेलेक्चुअलो का होता है, लेकिन अगर थोडा-बहुत पढ लोगे तो तुम्हारी यह तबकाती घुटन दूर हो जाएगी। अब भी अच्छे-खासे मार्क्सिस्ट बन सकते हो।"

अनवर अपने नये दोस्त से विदा होकर सीधा हास्टेल की तरफ चल दिया। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके दिमाग मे अभी कोई बवडर उठ चुका हो। सुभानोवस्की ने जो विचार व्यक्त किए थे वे सचमुच क्रातिकारी थे। कोई भी मान्यता ऐसी नही थी जिसपर उसने हमला न किया हो—धर्म, राष्ट्रवादिता, नैतिकता और प्रेम। लेनिन के मत के आधार पर उसने कहा था कि धर्म एक तरह की अफीम होती है, जिसकी सहायता से शासकवर्ग जनता को गाफिल कर देते है। राष्ट्रवाद सत्ता अपने हाथो मे ले लेने के लिए पूजीपतियो का एक हथियार है। नैतिकता कोरी बकवास है और प्रेम—प्रेम वैसी ही मामूली चीज है जैसे कोई एक गिलास पानी पी ले। उसने बहुत मोटे-मोटे डरावने शब्द इस्तेमाल किए थे, जैसे 'डायलेक्टिक्स', 'बूर्जुआजी,' 'प्रोलेतारियत,' 'ओडीपस कम्प्लेक्स,' 'फिक्सेशस,' 'इनहिबिशस,' वगैरह। इन शब्दो से ज्यादा डरावना उसका रवैया था—डरावना भी और आकर्षक भी। सुभान ने अपने रवैये को

'आबजेक्टिविटी' (यथार्थनिष्ठता) कहा था और अनवर पर 'सब्जेक्टिव' (आत्मनिष्ठ) होने का आरोप लगाया था। अनवर की समझ मे यह तो आता था कि राजनीतिक और आर्थिक मामलात मे आदमी को यथार्थनिष्ठ होना चाहिए लेकिन वहा भी आदमी की ज़ात का दखल होता है। लेकिन क्या रसानुभूति और भावनाओ की प्रतिक्रिया के मामले मे कोई यथार्थनिष्ठ हो सकता है ? मिसाल के तौर पर प्रेम के मामले मे क्या कोई यथार्थनिष्ठ हो सकता है ? क्या गुलाब की सुन्दरता का विश्लेषण करने के लिए उसे किसी प्रयोगशाला मे जाचना आवश्यक है, या बुलबुल के गीत मे विद्युत्-स्पदन का पता लगाने के लिए किसी प्रयोग की ज़रूरत है ?

इन्ही विचारो मे उलझा हुआ जब अनवर अपने कमरे मे पहुचा तो उसने देखा कि खाना मेज़ पर लगा हुआ है। असगर क्रिकेट कप्तान की पार्टी मे गया हुआ था लेकिन 'राज' हमेशा की तरह अदर के कमरे मे लेटा लगातार सिगरेटे फूक रहा था। अनवर खाना खाने बैठा तो उसे एक दर्द-भरा राग सुनाई दिया। 'राज़' लेटा हुआ गुनगुना रहा था—लेकिन यह उसकी अपनी गजल नहीं थी। अनवर ने पहचान लिया कि वह गालिब की एक बहुत मशहूर गजल थी और उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि राज़ बार-बार एक ही शेर दुहरा रहा था :

इश्क से तबीअत ने जीस्त का मज़ा पाया
दर्द की दवा पायी, दर्दे-लादवा पाया।

यह प्रेम की एक नई ही परिभाषा थी जो सुभान की 'पानी के गिलास' वाली थ्योरी से कितनी भिन्न थी। गालिब की राय मे—और इश्क के बारे मे गालिब से बढकर कौन जानता था—इश्क एक 'दर्दे लादवा' है, फिर भी उसमे आदमी को ज़िदगी का सच्चा मज़ा मिलता है। पहेली के अदर पहेली लगती थी पर इसी पहेली मे कहीं सत्य छिपा हुआ था।

'राज' को यह पता नही चला था कि दूसरे कमरे मे अनवर बैठा हुआ है इसलिए वह बडे ही दर्द-भरे लहजे मे बार-बार इसी शेर को दुहराता रहा। न जाने क्यो अनवर को ऐसा लगा कि उसने सलमा के सामने अपनी नज्म 'महबूबा से खिताब' भी इसी अदाज़ मे पढी थी। और बार-बार इस शेर को सुनने के बाद अनवर को धीरे-धीरे इस बात का आभास हुआ कि 'राज़' भी सलमा से इश्क करता है। 'राज' भी ? क्या मतलब इसका ? इस प्रकार के

विचार मन मे लाने पर वह अपने-आपपर झुझलाने लगा। जिस लडकी को वह अभी कुछ ही हफ्तो से जानता है, वह उसे कितनी ही अच्छी क्यो न लगती हो पर वह यह कैसे कह सकता है कि वह उससे इश्क करता है। वह उन भावुक मूर्खो मे से नही है जो किसी लडकी को देखते ही उसपर आशिक हो जाए। वह और सलमा तो बस दोस्त है। क्या वह खुद सैकडो बार दूसरो से यह नही कह चुका था कि वह सलमा से इश्क नही करता। लेकिन उसकी बात पर यकीन कौन करता था।

क्या वह खुद अपनी बात पर यकीन करता था ?

आत्मत्याग की भावना के वश अनवर ने यह फैसला किया कि वह सलमा से कहेगा कि 'राज' उससे मुहब्बत करता है, वह 'राज' की तरफ से वकालत करेगा और उनकी शादी करा देगा। अपनी कल्पना मे वह अपने-आपको एक दृढसकल्प शात त्यागमूर्ति के रूप मे देखने लगा जिसने एक दोस्त की खातिर अपने प्रेम को भी बलि चढा दिया। सलमा और 'राज' खुश रहे। उनकी खुशी उसके दिल मे रोशनी पैदा करने के लिए काफी होगी। एक खूबसूरत लडकी और एक प्रतिभाशाली कवि की जोडी बहुत ही अच्छी रहेगी। इसलिए उसके जैसे टटपूजिया आदमी को उनके रास्ते से अलग हट जाना चाहिए।

लेकिन उसे इस त्याग का परिचय देने की जरूरत ही नही थी। बडे दिन की छुट्टिया करीब आ गई थी और अकबरअली ने अपने बेटे को लिखा था कि वह इस बार अपनी छुट्टिया सलामपुर मे बिताए क्योकि वह कई बरस से अपने ताया-अब्बा और भाई-बहिनो से नही मिला था। अनवर तो अलीगढ मे ही रहना चाहता था पर वह अपने अब्बा की बात नही टाल सकता था। उसने जब सलमा को यह बात बताई तो उसने कहा, "लेकिन तुम तो हमारे साथ आगरा चल रहे हो न ?"

"आगरा ?"

"हा, और क्या। अब्बा ने तुमसे कुछ नही कहा ? अब्बा भी बिलकुल खब्तुलहवास प्रोफेसर हैं, हैं न ? तीन दिन बाद पूरे चाद की रात होगी और हम ताजमहल को उसके भरपूर हुस्न मे देख सकेगे।"

अनवर ने ताजमहल नही देखा था। चांदनी रात मे और वह भी सलमा के साथ ताजमहल देखना—सचमुच जन्नत का लुत्फ आएगा। लेकिन वह 'राज' को कैसे भूल सकता था।

"क्या हम सब लोग चलेगे ?" खुद चलने का वादा करने के बाद अनवर ने सलमा से पूछा।

"हा, सब लोग चलेगे—यानी मैं और अब्बा और तुम।"

"लेकिन क्या 'राज' हमारे साथ नही चलेगा ?"

"मैंने उससे तो कहा नही है," सलमा की आवाज़ मे एक खीझ थी।

अनवर ने आग्रह किया, "लेकिन उसे भी साथ ले चलना चाहिए। ताज के खूबसूरत बाग मे उसकी नज्म सुनने मे बेहद मज़ा आएगा।"

और अनवर के इतना कहते ही मानो बाध टूट गया। सलमा के मुह से शब्दो की एक प्रबल धारा फूट निकली। 'राज़' ने उसे बहुत-से प्रेम-पत्र लिखे थे और उनके साथ अपनी नज्मे भी भेजी थी जो सब उसीके बारे मे मालूम होती थी। उसने सलमा को एक अजीब मुसीबत मे फसा दिया था। उसके लिए इन खतो को अपने अब्बा से छिपाना नामुमकिन हो गया था और जब उन्हे इस बात का पता लगा तो वे बहुत नाराज़ हुए। उसने रुआसे स्वर मे कहा, "कितनी बुरी बात है।" और फिर कुछ शात होकर बोली "उसका सारा रवैया बहुत शर्मनाक रहा है। मुझे तो किसीसे कहते हुए भी शर्म आती है। लेकिन तुमसे मैं यह सब इसलिए कह रही हू कि तुम मेरे दोस्त हो और मै तुमपर भरोसा कर सकती हू।"

उस क्षण अनवर 'राज' की पैरवी करने का अपना इरादा बिलकुल भूल गया। रूप और प्रतिभा की जोडी मिलाने का विचार उसने छोड दिया। वह तो बस इतना जानता था कि सलमा ने उसे अपना दोस्त कहा था जिसपर वह भरोसा कर सकती थी।

उसे बल्कि खुशी ही हुई कि 'राज' उनके साथ आगरा नही जा रहा था।

प्रोफेसर साहब की कार आगरा रोड पर एक के बाद एक मील के पत्थर पार करती हुई भागी चली जा रही थी। प्रोफेसर साहब मोटर चलाने मे बहुत

होशियार थे और हालाकि ड्राइवर उनके साथ रहता था फिर भी वे गाडी हमेशा खुद ही चलाते थे। अमरीका से यह माडल अभी नया ही आया था और उसके स्प्रिग बहुत अच्छे थे लेकिन उस पुरानी सडक मे बेशुमार गढे थे और थोडी-थोडी देर बाद कार आलुओ की बोरी की तरह उछल पडती थी। पीछे की सीट पर बैठे हुए अनवर और सलमा हर असुविधा मे एक नया रोमाच अनुभव करते और जब गाडी किसी बडे गढे मे फसकर जोर से उछलती और उनके सिर ऊपर लोहे की छत से जा टकराते तो दोनो खिलखिलाकर हस पडते। लेकिन कभी-कभी जब प्रोफेसर साहब अपना कमाल दिखाने के लिए पूरी रफ्तार पर गाडी मोडते या किसी बैलगाडी से बचने के लिए तेजी से मोटर काटते तो पिछली सीट पर बैठे हुए अनवर और सलमा एक-दूसरे से टकरा जाते। जब भी ऐसा होता सलमा शरमाकर हस पडती और अनवर के शरीर मे एक फुरैरी-सी दौड जाती। उसे धीरे-धीरे पता चलता जा रहा था कि खूबसूरत लडकी के साथ रहने मे जो सुख मिलता है वह सिर्फ आत्मा का ही सुख नही होता।

क्या मार्क्स और फ्रायड के सिद्धातो को माननेवाला सुभानोव्स्की ठीक कहता था ?

रास्ते मे कार पचर हो गई। आगरा रोड पर यह कोई नई बात नही है। प्रोफेसर साहब ने सुझाव रखा कि जितनी देर मे ड्राइवर गाडी का पहिया बदलता है उतनी देर मे वे लोग पास के गाव मे चलकर देखे शायद खाने के लिए टमाटर या कुछ दूसरी सब्जिया मिल जाए। हसते और आपस मे मजाक करते वे जुते हुए खेतो को पार करके दूर पर दिखाई देती हुई झोपडियो के झुरमुट की तरफ बढे।

बचपन मे जब अनवर अपने ताया-अब्बा के यहा जाता था तो उसने गुड-गाव के पास कुछ गाव देखे थ। उसने अलीगढ के आस-पास भी कच्ची झोपडिया देखी थी और उनकी दरिद्रता देखकर उसका हृदय रो उठा था। लेकिन इस वक्त उन्होने जो गाव देखा उस की हालत तो बयान ही नही की जा सकती थी। अगर गली मे दो-चार काले, दुबले-पतले और लगभग बिलकुल नगे लडके न खेल रहे होते तो ऐसा लगता कि वह गाव नही किसी वीरान गाव के खंडहर हैं।

ऐसा लगता था कि कगाली और उदासी ने हमेशा के लिए गाव मे अपना घर कर लिया है। एक भी झोपड़ी एसी नहीं थी जो टूटी-फूटी न हो, एक भी

मर्द या औरत ऐसी नही थी जो चीथडे न पहने हो, एक भी बच्चा ऐसा नही था जो तन्दुरुस्त हो। उन्होने कई जगह पूछा पर उन्हे कही अपने मतलब की मञ्जिया नही मिली। प्रोफेसर साहब सोचने लगे कि ये लोग क्या अकाल या किसी बीमारी का शिकार रह चुके है और उनकी सामाजिक उत्सुकता जागरित हो उठी। उन्होने एक किसान से पूछा, जिसकी पसलिया उनकी तनी हुई काली खाल मे से झाक रही थी। उसने जवाब दिया कि फसल तो हमेशा जैसी ही हुई थी और बरसात मे हमेशा की तरह हैज़े से और सर्दियो मे निमोनिया से कुछ लोगो के मर जाने के अलावा गाव मे कोई बीमारी भी नही फैली थी। गाव मे उन्होने जो भयानक गरीबी, तबाही और मौत जैसी उदासी देखी वह वहा की स्थायी दशा थी, बिलकुल उसी तरह जैसे उनके सिर पर सुरमई रग का आकाश था या उनके पैरो के तले गहरे रग की सूखी मिट्टी। जब वे वापस लौटे तो देखा कि उनकी मोटर को भूखे बच्चो के एक झुड ने घेर रखा था जो भीख माग रहे थे।

अनवर की सारी खुशी खत्म हो गई और जब वे नहर के किनारे दोपहर का खाना खाने के लिए रुके तो अनवर को उन शामी कबाबो और पराठो और भुनी हुई मुर्गियो मे कोई स्वाद नही आया जो सलमा अपने साथ बेत की एक टोकरी मे लाई थी। जब मोटर सफर की आखिरी मजिल तै कर रही थी उस वक्त सलमा ने अपने साथी के चेहरे पर एक अजीब उदासी देखी, लेकिन वह समझदार थी इसलिए उसने बेकार के सवाल पूछकर उसे परेशान करना मुनासिब नही समझा। उसे बातूनी लडको से सख्त चिढ थी जो तमाम वक्त अपना रोब जमाने मे इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हे अपने स्वाभाविक व्यवहार का परिचय देने का समय ही नही मिलता था। और उसे उदास मुद्रा मे भी अपने पास बैठा हुआ यह लडका बहुत अच्छा लग रहा था। वह जानती थी कि वह अपनी एक मुस्कराहट से उसकी सारी उदासी दूर कर सकती है।

मेहराबदार बडे-से फाटक मे से ताजमहल को पहली बार देखते ही अनवर तो खुशी के मारे हक्का-बक्का रह गया। उसके लिए यह यकीन करना मुश्किल था कि कोई चीज इतनी खूबसूरत और हसीन भी हो सकती है। अनवर की

आत्मा उससे बाते कर रही थी। एक आवाज ने कहा, 'यह तो महज पत्थर है। सलमा को देखो—जीता-जागता ताजमहल है।' एक दूसरी आवाज़ ने कहा, 'दो मुर्दा लोगो के लिए इतनी बडी और शानदार इमारत, जबकि लाखो-करोडो किसान उन झोपडियो मे रहते है जो तुम अभी आगरा रोड पर देख आए हो।'

रात को वे चादनी मे ताजमहल देखने फिर आए। अब अनवर की उदासी और निराशा दूर हो चुकी थी और उसकी आत्मा ने इस दृश्य की जादू-भरी सुन्दरता के आगे हथियार डाल दिए। उसकी आखो के सामने अमर प्रम का स्मारक ताजमहल चाद की किरनो मे नहाया खडा था। ऐसा लगता था कि शून्य की धूमिल पृष्ठभूमि पर किसीने कोमल दूधिया रेखाओ मे उसकी आकृति अंकित कर दी है। यह सच है कि एक बादशाह ने अपनी बेगम की स्मृति को अमर करने के लिए ही इसका निर्माण कराया था परतु जिस भावना से प्रेरित होकर उसने इसका निर्माण कराया था वह भावना सार्वत्रिक थी, वह राजनीति और अर्थशास्त्र की सीमाओ से परे थी, वह समय की सीमाओ से भी परे थी, और अमर थी। कई शताब्दियो तक हर देश और जाति के प्रेमी, गरीब और अमीर, रईसो की बेटिया और किसान बालाए यहा आकर मानव-कला के इस चमत्कार को देखेगी और सराहेगी। उन्हे यह स्मारक हमेशा ऐसा लगेगा जैसे उनके सुखद स्वप्नो को पत्थर मे साकार कर दिया गया हो, उनकी भावनाओ को निर्मल और स्वच्छ सगमरमर की एक मूर्ति के रूप मे ढाल दिया गया हो, उनकी आहो और उनके आसुओ को एक जगमगाते हुए निष्कलक हीरे का रूप दे दिया गया हो। यहा से वापस लौटने पर उनके दिल पर से एक बोझ उतर चुका होगा और उनकी आस्था पहले से अधिक दृढ होगी, क्योकि वे प्रेम की अविराम धारा का रस पी चुके होगे और स्वय अपने आसू उस धारा मे मिला चुके होगे।

अपनी चेतना के किसी सुदूर स्थान से उसे प्रोफेसर सलीम की आवाज़ आती सुनाई दी, "अनवर, तुम बी० ए० पास करने के बाद क्या करोगे?"

"अभी कुछ तै नही किया है, प्रोफेसर साहब," अनवर ने एक झटके के साथ अपनी कल्पनाओ के तार को भग करते हुए उत्तर दिया, "अब्बा तो चाहते हैं कि मै तिजारत करू। लेकिन मुझे इतनी ज्यादा दिलचस्पी नही है उसमे।"

"तुमने सिविल सर्विस के कम्पेटीशन मे बैठने के बारे मे कभी गौर किया है ?"

अनवर ने सरकारी अफसर बनने की बात कभी सोची भी नही थी। सच तो यह है कि उसने कभी सजीदगी से इस सवाल पर गौर ही नहीं किया था कि वह आगे चलकर क्या करना चाहता है। उसे मोटे-मोटे तौर पर यह खयाल जरूर था कि वह सरकारी अफसरशाही की मशीन मे आसानी से फिट नही हो सकेगा, फिर भी उसने प्रोफेसर साहब के इस सवाल के जवाब मे साफ 'नही' कह देना भी मुनासिब नही समझा क्योकि उन्होंने यह सवाल एक हितैषी और शुभचिंतक की तरह पूछा था। वह कोई गोलमोल जवाब देने ही जा रहा था कि इतने मे उसे सलमा की आवाज़ सुनाई दी, "लेकिन अब्बा, बैठना तो चाहिए ही। और इनके कामयाब हो जाने मे तो कोई शक ही नही है।"

"हा, मेरा भी यही खयाल था। तो अगर तुम चाहो तो मैं उसके कायदे-कानून मगवा दू और जो सब्जेक्ट तुम लो उनमे मैं स्पेशल कोचिग का इतज़ाम करवा दू। अगर दो साल बाद भी बैठने का इरादा हो तब भी तैयारी अभी सें शुरू कर देनी चाहिए।"

अनवर इसके अलावा कर ही क्या सकता था कि प्रोफेसर साहब का शुक्रिया अदा करता और उनसे यह वादा कर लेता कि वह इस मसले पर सजीदगी से गौर करेगा, हालाकि उसे बिलकुल यकीन नही था कि वह इतने सख्त कम्पेटीशन मे कामयाब हो सकेगा।

"नानसेस," प्रोफेसर साहब ने उसकी पीठ थपकते हुए कहा, "अगर दूसरे लोग कामयाब हो सकते है तो तुम भी कामयाब हो सकते हो—बल्कि दूसरो से ज्यादा आसानी से कामयाब हो सकते हो।"

और फिर मोटर मे से कम्बल निकालने के बहाने सलीम साहब अनवर और सलमा को वहा अकेला छोडकर वहा से खिसक गए। दोनो सगमरमर की बैंच पर बैठे चौकोर तालाब के हरे-हरे पानी की गहराई मे एक दूसरे ताजमहल की झिलमिलाती हुई आकृति देख रहे थे। दोनो तरफ सनोवर के पेड़ों के स्याह साये सर्दी की रात मे खामोश खडे काप रहे थे। वे दोनो अकेले थे फिर भी अनवर की सलमा को देखने की हिम्मत नही हो रही थी। वह सिटपिटाया हुआ बैठा था। उसकी ज़बान पर जैसे किसीने ताला लगा दिया था और वह

सोच रहा था कि किसी तरह प्रोफेसर साहब लौट आए। इतने मे बादल का एक टुकडा चाद पर से गुजरा और ताज ने मोती की तरह चमकती हुई धुधले रंग की चादर ओढ ली जिसमे उसका रूप और निखर आया। इस धुधली रोशनी मे अनवर ने हिम्मत करके अपना सिर उठाया और सलमा की आखो मे आखें डालकर देखा। सलमा की आखे तो जैसे उसका इतजार ही कर रही थी। बस एक नज़र! लेकिन उस एक ही नज़र ने क्या कुछ नही कह दिया। उस एक क्षण मे अनवर की सारी शकाए, सारे डर, सारी गलतफहमिया दूर हो गई। चादनी मे ताज का सौंदर्य अब उसके लिए कोई बाहरी चीज़ नही रह गया था। यही सुन्दरता उसके मन मे भी अपनी चादनी बिखेर रही थी। उसने जो बहुत बडी खोज इस क्षण की थी उसके लिए यही उचित पृष्ठभूमि थी। उसे पता चल गया कि वह सलमा से मुहब्बत करता है। वह यह भी जान गया कि वह भी उससे प्यार करती है। और उसे यह भी मालूम हो गया कि मुहब्बत क्या होती है, दर्द की दवा भी और दर्दे-बेदवा भी।

"सलमा!" उसने दबी ज़बान मे कहा।

"अनवर!" उसने भी उसी तरह दबी ज़बान मे जवाब दिया।

जब प्रोफेसर साहब कम्बल लेकर लौटे उस वक्त तक उन दोनो ने इसके अलावा एक शब्द भी न कहा था, फिर भी सारी दुनिया बदल गई थी।

•

उनकी मोटर अलीगढ की तरफ सरपट भागी जा रही थी। मोटर की बत्ती की रोशनी दो समानातर पट्टियो मे दूर तक जाकर आगे अधकार में खो जाती थी। अनवर को दूसरे दिन घर जाना था और प्रोफेसर साहब को अकेडेमिक कौंसिल की मीटिंग में जाना था। इसलिए उन लोगो ने सख्त सर्दी की परवाह न करते हुए उसी रात लौट जाने का फैसला किया था।

सर्द हवा तीर की तरह चुभ रही थी और उन्हे ओवरकोट और मफलर कसकर लपेट लेने पडे। प्रोफेसर साहब फेल्ट हैट अपनी आखो पर झुकाए, ओवरकोट का कालर खड़ा किए और हाथो मे फर के अस्तरवाले दस्ताने पहने मोटर चला रहे थे। उनके मुह में लगी हुई सिगरेट से मोटर के अन्दर धीमा-धीमा प्रकाश हो रहा था।

पीछे की सीट पर सलमा और अनवर घुटनों पर कम्बल डाले एक-दूसरे से सटे बैठे थे। अनवर के हाथो ने सलमा के कोमल ठडे हाथो को खोज लिया और कोमलता की लहरो की एक सुखद धारा उन दोनो हाथो के बीच प्रवाहित होने लगी। थोडी देर बाद अनवर के गालो को सलमा की रेशमी लटो ने छू लिया और एक भीनी-भीनी मादक सुगध उसके नथुनो मे बस गई। सलमा ने ऊधकर उसके कधे का सहारा ले लिया था।

बाहर अधेरा और सर्दी थी। पेड की फुनगियो के बीच हहराती हुई ठडी हवा बह रही थी। बाहर दूर तक जुते हुए खेत फैले थे; बाहर किसानो के गाव थे जिनमे वे गरीबी और कगाली और गदगी के बीच अपनी ज़िदगी बसर करते थे, बिलकुल वैसे ही गाव जैसा अनवर ने उसी दिन देखा था। बाहर क्रूरता थी और दमन था और करोडो मूक प्राणी स्वतन्त्र होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बाहर जगली जानवरो का खतरा था और तूफान चुनौती दे रहा था। अन्दर का वातावरण गर्म और आरामदेह था—बद मोटर मे एक गद्देदार सीट और कधो से सटा हुआ कोई कोमल सुवासमय शरीर और धीरे-धीरे सुला देनेवाली एक मादक सुगंध।....



सोने का सांप

अनवर के अब्बा ने इतना ज़ोर दिया कि अनवर को मजबूर होकर अपने ताया-अब्बा के यहा सलामपुर मे जाकर रहना पडा। अमजदअली के यहा जाकर रहने का मतलब था कि जैसे किसी राजा के यहा मेहमान गए हो। रहने को आलीशान मकान और हर वक्त खिदमत करने के लिए नौकरो की एक पूरी फौज।···सचमुच शाही ठाट-बाट था। लेकिन अनवर का दिल इन सब बातो को पसद नही करता था। वह पूरी तरह इससे नफरत भी नही करता था।

लेकिन इस बार वहा रहकर उसने बहुत मजे लूटे। वह रऊफ के साथ शिकार खेलने गया और उसे बेहद मजा आया।

और फिर बिलकीस का भी तो आकर्षण था। अब वह शरारत की छोटी-सी पोटली नही रह गई थी, जिसके गालो पर सेब जैसी लाली हुआ करती थी, और न वह कसकर गुधी हुई चोटी रह गई थी जो बचपन मे खेतो मे भागते समय ऊपर-नीचे फुदका करती थी। अनवर ने देखा कि अब वह एक बेहद खूबसूरत नौजवान लडकी हो गई है और यह महसूस करके वह न जाने क्यो उसके सामने कुछ सिटपिटाया-सा रहता था। अनवर मन ही मन हमेशा अपने-आपको धिक्कारता रहता था कि वह अपनी इस नौजवान चचेरी बहन की जवानी को देखकर आखिर खिसिया क्यो जाता था। हर बार उसकी आखे उसके सुडौल चेहरे पर या उसकी ठोड़ी के गढे पर जाकर टिक जाती थी···और वह न जाने क्यो उसके होनेवाले शौहर से मन ही मन जलने लगता था।

उस दिन अनवर जब अमजदअली की कोठी पर लौटा तो वह थककर बिलकुल चूर हो चुका था। पहुंचते ही उसे पता चला कि उसके दो खत आए हुए हैं। उसने पहले वह जाना-पहचाना नीला लिफाफा लेकर बडी मुहब्बत से खोला। सलमा का बेहद प्यारा लम्बा-सा खत था। उसने लिखा था कि उसके दिन कितने नीरस गुज़र रहे हैं और जाड़े की भयानक लम्बी शामे काटना उसके

लिए कितना मुश्किल हो गया है। उसने लिखा था कि उसे अनवर की बेहद याद आती थी और उसने पूछा था कि वह अलीगढ कब तक लौटकर आएगा। "मुझे पहले कभी यह खयाल भी नही आया था कि तुम्हारा साथ मेरे लिए इतना जरूरी हो गया है। तुम्हारे बिना ज़िदगी बहुत सूनी है, अनवर।" और यह पढकर उसका दिल सलमा के लिए तडप उठा और प्यार, कोमलता और कृतज्ञता के आसू उसकी आखो मे छलक आए।

उसने सलमा का खत फिर लिफ़ाफे मे रखकर अपने पलग पर गद्दे के नीचे रख दिया कि सोने से पहले वह उसे एक बार फिर फ़ुरसत से पढेगा। फिर उसने दूसरा लिफाफा उठाया। वह खत अलीगढ से होता हुआ यहा पहुचा था और उसपर पता टाइप किया हुआ था इसलिए वह अदाज़ा नही लगा सका कि वह किसका खत हो सकता था। खत खोला तो उसे यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि उसपर किसीका नाम भी नही लिखा था। लेकिन खत पढना शुरू करते ही उसे कोई शक नही रह गया कि वह खत किसने लिखा था। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि आखिर रतन ने उसे इतने गोलमोल तरीके से खत क्यो लिखा था।

लिखनेवाले ने इस बात का ध्यान रखते हुए कि कागज़ पर अनवर का नाम भी न लिखा जाए, खत इस तरह शुरू किया था—"मेरे प्यारे दोस्त, तुम्हारे लिए मुझे पहचानना मुश्किल नही होगा।—मैं सुनहरे गुम्बदवाले शहर का तुम्हारा दोस्त हू।" ज़ाहिर था कि यह अमृतसर का जिक्र था। "मै तुम्हारा वही साथी हू जिसके साथ बचपन मे एक दिन शाम को तुम उस बाग मे गए थे जहा खून के रंग के लाल गुलाब खिले थे।" यह तो जलियावाला बाग का ही जिक्र हो सकता था। लेकिन इसके बाद का मज़मून और गोलमोल होता गया।—"जैसाकि तुमने अखबारो में पढा होगा हमने इस बाग को फिर से सजाना शुरू किया है। खून के रग के ये गुलाब एक-एक करके उखाडकर फेक दिए जाएगे और एक दिन वह आएगा जब इसमे सिर्फ शाति के सफेद गुलाब खिलेगे। यह आसान काम नही है, ज़मीन पथरीली और काटेदार झाडियो से भरी हुई है। लेकिन हमने पहला फावडा मार दिया है और हमारे रास्ते मे कितनी ही कठिनाइया क्यो न हो पर हमे इसी तरह ज़मीन तैयार करते रहना पडेगा। इस सिलसिले मे मुझे किसी भी दिन तुम्हारी ज़रूरत पड़ सकती है और मै उम्मीद

करता हूं कि तुम मेरी मदद करने से इन्कार नही करोगे। तुम कई बार मुझे दावत दे चुके हो कि मैं आकर तुम्हारे साथ ठहरू। मैं तुम्हारी उम्मीद से बहुत पहले ही तुम्हारी इस दावत का फायदा उठानेवाला हू, लेकिन पहले मैं यह मालूम कर लेना चाहता हू कि क्या अब भी तुम मुझे अपने यहा बुलाकर ठहराने को तैयार हो। इसलिए मुझे इस पते पर जवाब ज़रूर भेज देना: हरसुखराय, मारफत पोस्ट मास्टर, जनरल पोस्ट आफिस, लाहौर। खत पर अपना नाम न लिखना। सिर्फ यह लिख देना तुम्हे बहुत याद करनेवाला दोस्त।"

लाख कोशिश करने पर भी अनवर इस रहस्यमय पत्र का पूरा मतलब नही समझ सका। इतना तो साफ था कि रतन यह जानना चाहता था कि क्या वह आकर उसके साथ ठहर सकता है। लेकिन फिर यह जासूसी उपन्यास जैसा रहस्य क्यो पैदा किया था उसने ? क्या वह किसी मुसीबत मे फस गया है ? लेकिन कैसी मुसीबत ? क्या पुलिस से कुछ गडबड है ? यकायक उसके दिमाग मे एक चिंगारी-सी जल उठी। वह भागकर अपने ताया-अब्बा के कमरे मे गया और वहा से अखबारो का एक बडल उठा लाया। अखबार वहा रोज़ डाक से आते थे पर घर मे उन्हे कोई भी नही पढता था। अनवर जब से यहा आया था तब से उसने भी कोई अखबार नही देखा था। उसने जल्दी-जल्दी खबरो की सुर्खिया पढी। अचानक एक अखबार पर नज़र पडते ही उसका माथा ठनक गया। पहले ही सफे पर अखबार के आरपार मोटे-मोटे अक्षरो मे कई सुर्खिया लगी थी :

लाहौर में आतंकवादियो ने अंग्रेज इंस्पेक्टर का खून कर दिया

दिन-दहाड़े पुलिस थाने के सामने गोली चलाई

सी० आई० डी० विद्यार्थी क्रांतिकारियों की तलाश में

सारे पंजाब में तलाशियां और गिरफ्तारियां

इस खबर का सम्बन्ध रतन के साथ इस वजह से नही था कि उसने अपने खत में ऐसी कोई बात लिखी थी, बल्कि अनवर के दिमाग पर बचपन की एक घटना हमेशा के लिए अंकित हो गई थी और इस समय वही तस्वीर उभरकर उसके सामने आ गई थी। जलियावाला की भयानक घटनाओ का चित्र और उसके ऊपर अंकित रतन का बचपन का चेहरा जिसपर अपने पिता की निर्मम हत्या पर न कोई विषाद का चिह्न था न दुःख का, बल्कि उसकी नज़रें खोई-

खोई थी, उसकी आखो मे प्रतिशोध की शान्त ज्वाला धधक रही थी।

तो रतन, उसका बचपन का दोस्त, जिसके मुलायम बालो की लटें उसकी पीली पगडी के बाहर निकली रहती थी, वह आज आतंकवादी हो गया है, वह आज बम और रिवाल्वर के रास्ते पर चल रहा है। अनवर के लिए उस मस्त शरारती लडके की कल्पना एक हत्यारे के रूप मे करना कठिन था, फिर भी जलियावाला बाग की उस दिनवाली घटना के बाद से अनवर को उम्मीद थी, उसे डर था, कि इसी तरह की कोई बात होनेवाली है। अब जबकि उसे इस बात का पता चल गया था, वह यह नही कह सकता था कि उसे इस बात का अफसोस था या खुशी। अनवर का सवेदनशील और बुनियादी तौर पर अहिंसात्मक स्वभाव राजनीतिक हत्याओ के बिलकुल खिलाफ था। सांडर्स का खून करके—साडर्स उस नौजवान अंग्रेज का नाम था जो लाहौर मे मारा गया था—रतन के बाप की मौत का बदला कैसे लिया जा सकता था? लेकिन इस तरह के हिंसात्मक कामो से उसे नैतिक आधार पर जितनी घृणा थी उससे कही ज्यादा उसे अपने दोस्त को बचाने की चिंता थी। अगर रतन इन आतंकवादी कामो मे बहुत आगे बढकर हिस्सा लेने लगा है तो समझना चाहिए कि वह किसी भी दिन अपने प्राणो से हाथ धो सकता है। अनवर ने अपनी कल्पना मे देखा कि उसके हाथो मे हथकडिया पडी हैं, वह जेलखाने मे सीखचो के पीछे खडा है, वह फासी के तख्ते पर चढ रहा है, वह फासी के फदे मे झूल रहा है। अनवर भय से काप उठा। वह जानता था कि वह रतन के विचारो से कितना ही असहमत क्यो न हो पर अगर किसी दिन वह उसके यहां शरण लेने आया तो वह उसे रखने से इन्कार नही कर सकेगा।

उस रात अनवर दुबारा फुरसत से पढने के लिए तकिये के नीचे से सलमा का खत निकालना भी भूल गया। इसके बजाय उसने रतन का गुप्त पत्र दुबारा पढा और तथाकथित 'मिस्टर हरसुखराय' को पत्र लिखकर यह विश्वास दिलाया कि वे किसी भी समय आ सकते है और यह भी लिख दिया कि वह बड़ी बेचैनी से उनका इतजार करेगा।

सलामपुर की राजधानी मे और पूरी रियासत मे नये साल के मेले की तैयारिया बड़ी धूमधाम से हो रही थी। हर साल जाडे मे इस मेले की बहार रहती थी। यही एक ऐसा मौसम था जो नवाब साहब अपनी रियासत मे बिताते थे, वरना गर्मियां या तो पेरिस की रगीन जगहो मे या फिर मसूरी के पहाडो पर बीतती थी। इस साल मेले के साथ ही छोटे नवाब साहब के बालिग होने का भी जश्न मनाया जा रहा था और इसलिए हर चीज का इतजाम हमेशा से ज्यादा बडे पैमाने पर किया गया था।

पिछले पद्रह दिन से रियासत का पूरा अमला, ऊपर से लेकर नीचे तक, इस मेले का इतज़ाम करने मे जुटा हुआ था। सारे वजीर, जिनमे अनवर के ताया-अब्बा अमजदअली भी थे, तम्बू और खेमे लगवाने मे व्यस्त थे, जिनमे बहुत बडा कार्निवाल लगनेवाला था। जाहिर है छोटे नवाब साहब के लिए, जो अपने बालिग होने पर फूले नही समा रहे थे, यह बेहद खुशी का मौका था और चूकि उन्हे अलीगढ से आया हुआ यह पढाकू लडका बहुत पसद आ गया था इसलिए वे हर जगह उसे अपने साथ ले जाते थे—दरबार मे; फौजी परेड मे जहा कुछ सौ सिपाहियो ने, जिनकी ढीली-ढाली वर्दिया किसी नीलाम से खरीदी गई मालूम होती थी, बहुत ही भोडे तरीके से उन्हे सलामी दी थी; सिनेमा और सरकस मे जो नवाब साहब और उनके मेहमानो का दिल बहलाने के लिए खास तौर पर कलकत्ता से मगवाए गए थे। अनवर को शुरू-शुरू मे तो कुछ मज़ा आया लेकिन वह हर चीज़ को बडे ताज्जुब से देखता था, क्योकि यह फिजूलखर्ची और तडक-भड़क उसके लिए एक नया अनुभव था। पर कुछ ही दिन बाद वह छोटे-मोटे अग्रेज अफसरो, नवाब साहब के मुसाहिबो, छोटे नवाब साहब के खुशामदियो और उनकी हर वक्त की चापलूसी की बातो से उकता गया।

"अनवर, मैं तुम्हे निशाना लगाना सिखाऊगा," नौजवान नवाबज़ादा कहता और साथ ही बिना किसी झिझक या शर्म के यह भी कहता कि "जानते हो इस पूरी रियासत में मुझसे अच्छा निशाना कोई नही लगा सकता।"

"छोटे सरकार, इसमे क्या शक है," कोई मुसाहिब उनकी हा में हा मिलाकर कहता।

इतने मे दूसरा बोल उठता, 'एक दिन मैंने खुद छोटे सरकार को एक मील

से ज्यादा के फासले से एक फाख्ता पर निशाना मारते देखा था।"

और यह सुनकर तीसरा मुसाहिब, जो सबसे ज्यादा जीटिया था, सिर हिला-हिलाकर कहता, "मुझे भी अच्छी तरह याद है, क्या निशाना था। हाथ चूम लेने को जी चाहता था।" और यह कहकर वह अपनी उगलियो के सिरे होठो पर रखकर ज़ोर की एक चटकारी लेता और यह बताता कि वह निशाना कितना अच्छा था। "सुभान-अल्लाह! क्या निशाना था! बिजली की रफ्तार से फाख्ता इस तरह जा रही थी"—उसने हाथ से लहरिया बनाकर बताया—"और गोली भी उसका पीछा करती हुई बिलकुल उसी तरह गई।" और फिर उसने हाथ से बताया कि गोली किस तरह गई थी।

या फिर लडकियो की बाते होती—वैसी हसी-मजाक की बाते नही जैसी-कि यूनिवर्सिटी के लडके करते है, बल्कि उस किस्म की गदी और बेहूदा बाते जैसी कि ऐयाश और आवारा लोग करते है। छोटे सरकार की उम्र को देखते हुए उन्हे 'सैक्स' की हर किस्म की जिंदगी का—उसके आम पहलू का भी और गैरमामूली पहलू का भी—बहुत काफी तजुर्बा मालूम होता था और अनवर जैसे अनाडी आदमी के सामने अपने ज्यादा गैरमामूली तजुर्बो की तस्वीर खीचने मे उन्हे बेहद मजा आता था। महल मे बेशुमार खूबसूरत और जवान नौकरानिया थी और छोटे सरकार की एक तफरीह यह भी थी कि वे किसी छोकरी को बुलाकर अपने साथ लिफ्ट मे ले जाते थे और लिफ्ट बीच मे रोककर मज़ा लूटकर कुछ ही मिनट बाद लौट आते थे। उनके गालो पर लाली होती थी और चिया जैसी आखो मे कामुकता की चमक। आकर वे अपने मुसाहिबो को सारा किस्सा सुनाते थे और सब सुननेवाले वाह-वाह करते थे। यह वाली ज़रा शर्मीली थी। वह काफी खाई-खेली थी। किसी तीसरी को अपने जिस्म की कीमत मे मोतियो का हार चाहिए था। चौथी किसी दिन छोटे सरकार के हरम मे ले लिए जाने के ख्वाब देख रही थी। और इसी तरह के न जाने कितने चर्चे होते थे—यहा तक कि अनवर, जो बहुत ही शराफत के माहौल मे पला था, यह महसूस करने लगता कि उसका दम घुट जाएगा।

अनवर को भी इस रगीन दुनिया का लुत्फ उठाने का मौका देने की कोशिश की गई। एक बार तो यहा तक किया गया कि उसे एक चटपटी छोकरी के साथ किसी तरकीब से लिफ्ट मे बद भी कर दिया गया। उस छोकरी को भी इस

हसमुख लड़के के साथ कुछ करने मे कोई एतराज नही था। वह तो खैरियत हुई कि ऐन वक्त पर बेगम साहिबा आ गई तो अनवर की जान छूटी। बाद मे एक दिन जब उसके इस नवाब दोस्त ने उससे चलकर उन पचास के करीब तवायफो का—उन 'दूसरी औरतो' का—मुआयना करने को कहा, जो इस मेले के मौके पर मेहमानो का दिल बहलाने के लिए सारे मुल्क से बुलवाई गई थी, तो अनवर के होश उड़ गए।

लूसी ला टूश एक कैबरे नर्तकी थी जिसने फ्रासीसियो जैसा नाम रख छोडा था और वह बोलती भी कुछ फ्रासीसियो की तरह थी। लेकिन यह बात हर आदमी को मालूम थी कि वह कभी बम्बई से आगे नही गई थी। नवाब साहब ने उसे मसूरी के किसी नाइट क्लब मे देखा था और देखते ही उसपर लट्टू हो गए। वे उसपर बहुत पैसा लुटाते थे, उसे बहुत कीमती तोहफे देते थे—जेवर और कपडे, इत्र और फूल हर चीज, यहा तक कि उन्होने अपनी एक बहुत उम्दा मोटर भी उसे दे दी थी, वह हल्के आसमानी रग की एक डैमलर रोडस्टर मोटर थी और यह रग लूसी को बेहद पसद था। अनवर ने उसे बस एक बार मेले में देखा था। वह एक जौहरी की दूकान पर खडी मोती के कुछ ज़ेवर पसद कर रही थी जिनका पैसा जाहिर है नवाब साहब को देना था। पाउडर और सुर्खी से पुता हुआ चेहरा, सफाचट भवे और होठो पर लिपस्टिक की लाल लकीर—ये सब चीज़े दोपहर की बेरहम रोशनी मे बिलकुल फीकी और चिपचिपी लग रही थी। अनवर उसे देखकर यह ताज्जुब करता रहा कि आखिर उनमे ऐसी क्या बात थी कि बूढे नवाब साहब जैसा औरतो का पुराना शौकीन आदमी भी उसके फदे मे आ गया था?

लेकिन उस रात जब अनवर ने उसे दरबार हाल मे कुछ चुने हुए मेहमानो के सामने नाचते देखा तो वह समझ गया कि लूसी क्योकर लोगो को अपने फदे मे फास लेती है। जब वह अच्छी तरह सज-बनकर, कपडे पहनकर, रूप को निखार देनेवाली रोशनी मे आती थी उस वक्त वह किसी भी दूसरी औरत से ज्यादा दिलकश मालूम होती थी। उसमे यह खूबी थी कि उसके सामने जितने भी मर्द मौजूद होते थे सब अपने को ज्यादा मर्द समझने लगते थे। यही वजह

थी कि मर्द उसपर लट्टू हो जाते थे और औरतें उससे नफरत करती थीं।

कसा हुआ चमकदार लिबास पहनकर और सिर पर साप के फन जैसी टोपी लगाकर उसने सुनहरे साप का नाच किया—यह उसका सबसे मशहूर नाच था। उसका लम्बा नाजुक शरीर संपेरे की बीन की मस्त कर देनेवाली धुन पर नाचते वक्त बिलकुल साप की तरह लहरा उठता था। उसका लोचदार शरीर, उभरा हुआ सीना, पतली कमर, और भरे हुए गोल कूल्हे बिलकुल पानी की लहरो की तरह हिलने लगते थे—जैसे उसके बदन मे हड्डिया हो ही नही, जैसे वह सचमुच एक नागिन हो, ज़हरीली नागिन जो किसीको डसकर उसे हमेशा के वास्ते सुला देने के लिए फन फैलाए बैठी हो।

लेकिन लूसी नागिन का रूप इसलिए नही भरती थी कि उसे यह पसन्द था, बल्कि इसलिए कि वह इसके जरिये कुछ और हासिल करना चाहती थी। उसे कला से कोई लगाव नही था, वह तो नाचकर सिर्फ दूसरो का दिल अपने वश मे करना चाहती थी। नाच मे वह बिलकुल वैसी ही नागिन थी जिसने हज़रत आदम को सेब खाने का लालच दिया था।

बीन की धुन पर वह लहरा-लहराकर, इठला-इठलाकर मस्त होकर नाच रही थी, हाव-भाव दिखा रही थी। देखनेवालो पर जादू-सा छा गया था। वह नर्तकी नही थी, वह नागिन नही थी, वह तो एक छलावा थी, एक मोहिनी शक्ति थी। अनवर भी महसूस कर रहा था कि उसपर भी उसका जादू असर करता जा रहा है और वह बीन की धुन मे बिलकुल मस्त हो गया था कि इतने मे किसीने ज़ोर से उसके कुहनी मारी और उसका ध्यान भंग हो गया। यह छोटे सरकार की हरकत थी।

"ऐ," उसने अपने बाप की तरफ इशारा करते हुए अनवर के कान मे कहा, "जरा बडे मिया को देखो। ऐसा लगता है कि दौरा पडनेवाला है। लेकिन यह बात नही है। वे तो बस सोने के अपने प्राइवेट कमरे मे इस तमाशे के दूसरे हिस्से के लिए गरमा रहे है।"

बूढे नवाब साहब गगाजमनी काम की एक बहुत बडी कुर्सी पर बैठे झूम रहे थे और नाच की धुन के साथ ताल देने की कोशिश कर रहे थे। उनकी छोटी-छोटी आखो मे कामवासना की आग धधक रही थी और ऐसा लगता था कि उनकी आखे अभी बाहर निकल पडेंगी। लूसी जानती थी कि उसके

जादू का कितना असर पड रहा है, इसलिए वह बार-बार नवाब साहब के और करीब जाकर नाच रही थी। और उनकी तरफ देखकर जादू-भरी मुस्कराहटे बिखेर रही थी।

अचानक नवाब साहब उठ खडे हुए और इससे पहले कि कोई उनका अदब करने के लिए खडा हो पाता, वे कमरे से बाहर चले गए। नाच एकदम रुक गया, हालाकि कोने मे बैठे हुए बीनवाले की समझ मे कुछ न आया कि माजरा क्या है इसलिए वह बीन बजाता रहा। उस बडे-से हाल मे गूजती हुई उसकी बीन की आवाज बहुत भयानक लग रही थी, क्योकि अचानक वहा बिलकुल खामोशी छा चुकी थी। नवाब साहब के खास मुसाहिब ने घबराकर जल्दी से लूसी के पास जाकर उसके कान मे कुछ कहा और उसे लेकर बाहर चला गया।

अनवर डर रहा था कि कोई गडबड हो गई है और यह कि अब नवाब साहब का गुस्सा किसी न किसी पर उतरेगा। लेकिन छोटे सरकार ने उसे यकीन दिलाया, "कोई बात नही है। इसका मतलब सिर्फ यह है कि अब बडे मिया ज्यादा देर अपने ऊपर काबू नही रख सकते।..."

"तुम्हारा मतलब है..."

"हा, हा, बिलकुल यही!" छोटे सरकार ने आख मारकर हामी भरी। "दरअसल मामला इससे भी नाजुक है। बात यह है कि बडे मिया अब खुद तो कुछ कर नही पाते—बस दूसरो को देखकर ही मजा लेते हैं।"

उस दिन रात को जश्न के आखिर मे जो दावत होनेवाली थी वह आठ बजे के बजाय दस बजे शुरू हुई। अनवर सोचने लगा कि उसने इतना बहुत-सा खाना अपनी उम्र मे पहले कभी नही देखा था। यह गिनने से कुछ हासिल नही था कि कितनी तरह के खाने और पकवान वहा मौजूद थे क्योकि खाने-पीने के शौकीनो के लिए तो जन्नत का सामान था। अग्रेजी ढग का खाना भी था—रेजीडेट साहब और दूसरे अग्रेज अफसरो के लिए—और हिंदुस्तानी खाना भी था। आसपास के कुछ रजवाडो के लिए, जो गोश्त नही खाते थे, शाकाहारी भोजन भी था। कोई आधे दर्जन किस्म का सूप था, कोई एक दर्जन किस्म का

मुर्ग बनाया गया था, कम से कम छः किस्म के पुलाव थे और पुडिग और मिठाइयो की तो कोई गिनती ही नही थी। नवाब साहब हर चीज़ चखते थे और एक-दो कौर खाने के बाद अपनी प्लेट मे बचा हुआ खाना मेज़ पर बैठे हुए किसी दूसरे आदमी के आगे बढा देते थे और जिसकी तरफ भी वे अपनी जूठी प्लेट बढाते वह इसे अपने लिए बड़ी इज़्ज़त की बात समझता। लेकिन इस पेटू ऐयाश की प्लेट मे से जूठन खाने के ख्याल से ही अनवर को मतली हो रही थी। जहा तक शराब का सवाल था, अनवर को यह भी नही मालूम था कि शराबे इतने किस्म की होती है। व्हिस्की और ब्राडी और शैम्पेन और जिन के अलावा, जिनके नाम उसने सुन रखे थे, वहा हर रग की और भी बेशुमार शराबे थी—पोर्ट और शेरी और वर्मूथ और वोदका और बर्गडी और विल रूज और विन ब्लाक, फ्रासीसी शराबे, स्पेनी शराबे और पुर्तगाली शराबे और कई दूसरी शराबे जिनके नाम भी लेना आसान नही था। और फिर काकटेल तैयार करने के चादी के बरतनो मे इन शराबो को तरह-तरह से मिलाकर काकटेल तैयार की जा रही थी और लगातार जाम भर-भरकर लोगो को दिए जा रहे थे।

चूकि दावत बहुत बाकायदा हो रही थी इसलिए लूसी एक नया डिनर गाउन पहनकर आई थी जिसका गला इतना गहरा कटा हुआ था कि उसका गोरा-गोरा सीना आधे से ज़्यादा दिखाई देता था। मौका ऐसा नही था कि वह नवाब साहब की बगल मे बैठती हालाकि नवाब साहब तो यही चाहते थे। उसे छोटे सरकार और अनवर के बीच मे बिठाया गया और जैसे ही उसे मालूम हुआ कि उसकी बगल मे बैठा हुआ नौसिखिया लडका शराब नही पी रहा है तो उसने उसे सोमरस का आनद लेना सिखाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली।

"कम आन, लूसी," छोटे सरकार ने बडी खुशामद से कहा, "अनवर को भी पिलाओ न। सारा मज़ा इसकी वजह से किरकिरा हो रहा है।"

"दोचू वरी, प्रीस," उसने अपने नकली फ्रासीसी लहजे मे कहा, "पियेगा क्यों नही, लेकिन सिर्फ अपनी प्यारी लूसी के हाथ से पियेगा। वोचू, माई स्वीत लीतिल ब्वाय?"

अनवर को यह अच्छा नही लगा कि उसे इस तरह सबके सामने 'स्वीत लीतिल ब्वाय' कहा जाए। शर्म के मारे उसका मुंह लाल हो गया और उसने हकलाते हुए कहा, "न···न···नो, थैंक यू। मैं···मैं···आप जानती हैं···मैं पीता नही।"

"कम, कम, स्त्रीती, तुम्हे मेरे हाथ से तो पीना ही पडेगा," और यह कहकर उसने अनवर की जाघ पर अपना हाथ रखकर जो धीरे से दबाया तो अनवर के जिस्म मे एक गुदगुदी-सी दौड गई।

अनवर ने देखा कि उस लम्बी-सी मेज पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक बैठे हुए सारे लोग उसीको देख रहे है और वह बुरी तरह खिसिया गया। लूसी ने किसीसे 'नही' सुनना तो सीखा ही नही था और इसीलिए उसने काकटेल का गिलास उठाकर उसके होठो से लगा दिया और उसे फुसला-फुसलाकर, उसकी खुशामद करके और उसे धौंस देकर शराब पिलाने लगी। अनवर या तो शराब पी लेता या फिर बदतमीज़ी पर उतर आता और गिलास लेकर तोड देता, जिसका मतलब था कि एक हगामा खडा हो जाता और वह इस चीज़ को बर्दाश्त नही कर सकता था। इसलिए अनवर ने लूसी के हाथ से गिलास ले लिया और एक घूट मे सारा गिलास खाली कर दिया। इसपर वहा मौजूद सारे मेहमानो को बहुत मजा आया और कुछ लोगो ने तो उसकी तारीफ करने के लिए तालिया भी बजाई।

अनवर को ऐसा लगा जैसे दुहरी धारवाला तेज उस्तरा उसके गले के नीचे धीरे-धीरे उतर गया हो। उसे ऐसा लग रहा था कि या तो उसका दम घुट जाएगा या फिर वह खून की कै कर देगा। पर इन दोनो मे से कोई भी बात नही हुई। उसका हलक बहुत जल्दी ही अच्छा हो गया और जब यह दुहरी धारवाला उस्तरा पेट मे उतर गया तो उसके बदन के अन्दर एक आग जैसी लग गई। वह सोच रहा था कि अभी थोडी देर मे उसकी सास के साथ अगर लपटे नही तो धुआ तो ज़रूर निकलेगा, लेकिन ऐो भी न हुआ। यही तो दिलचस्प बात थी। दिलचस्प ! बेहद दिलचस्प !!

अनवर हस रहा था, लेकिन किसीकी समझ में नही आ रहा था कि वह क्यो या किस बात पर हंस रहा है। वह खुद भी नही जानता था। वह सिर्फ इतना जानता था कि हर चीज़ बहुत दिलचस्प थी—उसके सिर के ऊपर फानूस बहुत खतरनाक तरीके से लटक रहा था और ऐसा लगता था कि रोशनियो से जगमगाता हुआ कोई पेड़ उलटा लटका है। सोडे के साइफन की शक्ल भी अजीब

लग रही थी जिसमे से सोडा इस तरह निकलता था जैसे घोडा दबाने पर पिस्तौल मे से गोली निकलती है, काकटेल बनाने के बरतनो की शक्ल भी कुछ अजीब थी और सफेद वर्दिया पहने हुए खानसामा भी अजीब लग रहे थे जो एक खास धुन के साथ, सगीत पैदा करते हुए, मस्त होकर काकटेल बना रहे थे, जैसे यह भी कोई अजीब रस्म हो।

दिलचस्प ! बेहद दिलचस्प !! अनवर के चेहरे पर बेवकूफो जैसी हसी खेलने लगी। वह खीसे निकाले सबको देख रहा था और उसकी इस मुद्रा ने हर आदमी और चीज़ को अपनी लपेट मे ले लिया था। हर आदमी कितना हास्यास्पद लग रहा था। नवाब साहब की चमकती हुई गजी चाद के दोनों तरफ दो सींग निकले हुए थे और रेज़ीडेंट का लाल-लाल चेहरा बिलकुल बदर का पिछवाडा लगता था। लूसी भी जिसकी गुलाबी और सफेद छातिया खुले गलेवाले गाउन से लुका-छिपी खेल रही थी—लेकिन वे उस गाउन के अन्दर छिपी बस इतनी ही थी कि अधा चोर भी पकड ले। अनवर अपने इस मज़ाक पर खुद ज़ोर का ठहाका मारकर हस पडा। लेकिन ज़ाहिर है वह किसी-के सामने इसे दुहरा नही सकता था।

वह तो दूसरो को यह भी नही बताएगा कि वह कैसी-कैसी दिलचस्प चीज़े देख रहा था। नवाब साहब का सीगदार चेहरा बकरी का सिर बन गया था और रेज़ीडेंट साहब एक पेड की फुनगी पर बैठे बुलडाग की तरह भूक रहे थे, हालाकि उनकी सूरत अब भी बिलकुल बदर जैसी लग रही थी। मोटे राजा साहब की पगडी मे एक मनहूस-सूरत ज़िदा गिद्ध अटका हुआ था पर उन्हें इसकी खबर नही थी। और ज़ाहिर है, अनवर उन्हे क्यो बताने लगा।

"छोटे नवाब, यह अपने दोस्त की तरफ बढा दो। अब लूसी ने उसे शराब क्या पिला दी है कि वह किसी दूसरे की तरफ देखता ही नही।" जब नवाब साहब की भुने मुर्ग की जूठी प्लेट अनवर की तरफ बढाई गई तो सब लोग कहकहा लगाकर हस पडे। लेकिन अनवर खाना ही कब खाना चाहता था। "लो, जल्दी से खा लो," छोटे नवाब ने उसके कान मे चुपके से कहा, "नही तो बडे मिया नाराज़ हो जाएगे।" अनवर को बडे मिया के नाराज़ हो जाने की कोई परवाह नही थी लेकिन उस वक्त वह बहुत उदार हो उठा था, उसका दिल बडा हो गया था इसलिए उसने एक बोटी उठाकर अपने मु ह मे रख ली।

अनवर को बिलकुल याद नही था कि वह कब और कैसे डाइनिंग हाल से उठकर चला आया। उसे यह भी पता नही चला कि वह कब लडखडाता हुआ महल के उस बरामदे मे जा पहुचा जहा बहुत कम रोशनी हो रही थी। और उसे यह भी पता न चला कि लूसी ने उसे वहा कैसे ढूढ निकाला। लेकिन उसे सिर्फ यह महसूस हुआ कि दो पतली-पतली लेकिन ताकतवर बाहो ने उसे बडी कामुकता से अपने शिकजे मे जकड लिया था और एक चेहरा उसके चेहरे पर झुका हुआ था। उस चेहरे के चारो ओर नकली तौर पर सुनहरे किए गए बालो का बडा-सा गुच्छा था। उसकी गर्म-गर्म सास मे शैम्पेन और वासना की बू बसी हुई थी, उसने अपने लाल-लाल गीले होठ उसके होठो पर रख दिए। लिपस्टिक का स्वाद, भूखे, वासनामय और तजुर्बेकार होठो का स्वाद। और फिर एक पतली-सी साप जैसी जीभ उसके मुह पर फिरने लगी। बस इसीकी वजह से सब कुछ हुआ। अनवर को मतली होने लगी। उसने अपने-आपको लूसी के चंगुल से छुडा लिया और भागकर सीधा लान पर पहुचा। वहा वह अपना दुखता हुआ सिर दोनो हाथो से पकडकर बैठ गया और कै करने लगा।

कै करते हुए उसे ऐसा महसूस हुआ कि कोई उसका पेट ऐंठकर निचोडे दे रहा है, लेकिन हर उलटी के बाद उसकी तबियत कुछ हलकी और बेहतर हो जाती थी। उसके दिमाग के धुधलेपन मे न जाने कहा से यह अनोखा विचार आया कि कै के साथ वह न सिर्फ खाना और शराब, नवाब साहब की जूठी प्लेट का वह मुर्गा और कडवी काकटेल और लूसी की लिपस्टिक का वह बासी मीठा स्वाद बाहर उगल रहा है बल्कि सलामपुर आने के बाद से उसने जो कुछ देखा और सुना था वह सब कुछ बाहर निकाले दे रहा है। वह एक पूरी व्यवस्था को, एक पूरी जीवन-पद्धति को, एक पूरे युग को, जो सड चुका था और ज़हरीला हो चुका था, बाहर निकाले दे रहा है।

मुहब्बत का जाल

अलीगढ वापस पहुचकर अनवर बहुत खुश हुआ। दोस्तो के साथ बरामदों के चक्कर या फूलो की क्यारियो के बीच धूप मे नहाए हुए लान पर टहलना और दुनिया-भर की बातो का चर्चा करना। कुछ ऐसा लगता था कि सभीपर राजनीति का भूत सवार था और हर तरफ साइमन कमीशन का चर्चा हो रहा था, जो इस बात का पता लगाने के लिए देश का दौरा कर रहा था कि हिन्दुस्तानी किस हद तक अपना शासन खुद चलाने के लायक हैं और साथ ही देश मे फैली हुई आतकवाद की लहर की भी जाच कर रहा था। बीच-बीच मे इस तरह की बातो का भी चर्चा रहता था कि एक नया एग्लो-इडियन स्टेशन मास्टर आया है जिसके दो बहुत कातिल जवान लौडिया है जिनके दर्शन करने के लिए स्टेशन जाना ज़रूरी है या यह कि अपना अहमक ज्वाइट मजिस्ट्रेट छुट्टियो मे घर गया था और वहा से बडी पटाखा बीवी लाया है इसलिए यूनियन की अगली डिबेट मे उसे बुलाना जरूरी हो गया है। लेकिन इतने मे कोई अखबार हाथ मे लिए भागा-भागा आता और हापते हुए कहता, 'एक और बम फटा, इस बार मनमाड के पास' और लौडियो का चर्चा छोडकर नौजवान इन्कलाबी अहिंसा, आतकवाद और मज़दूरो की हडतालो की बाते करने लगते। ··

अनवर को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि उसका दोस्त 'राज' भी, जिसे यो दुनिया की किसी बात मे दिलचस्पी नही थी, इस बीमारी का शिकार हो गया था। वह छुट्टियो मे लखनऊ गया था और उसने अपनी आखो से देखा था कि रायल कमीशन के खिलाफ शातिपूर्वक प्रदर्शन करते हुए और 'साइमन, वापस जाओ' का नारा लगाते हुए काग्रेसी वालटियरो पर किस बेरहमी से घोडे दौडा दिए थे। उसने बताया कि पुलिस के अग्रेज अफसरो ने वालटियरो पर घोडे दौडा दिए थे और जो लोग घोडो की टापो के नीचे आने से बच गए थे और अपनी जगह पर डटे रहे थे उनकी खोपडिया लाठियो से खोल दी गई थी। इस घटना

का वर्णन करते समय शायर का चेहरा गुस्से से सफेद पड जाता था और उसका गला रुध जाता था और वह मुश्किल से ही बोल पाता था। "ये—ये—ये हरामी—इन्होने जवाहरलाल तक को नही छोडा। मैने अपनी आख से एक पुलिस अफसर को उनपर घोडा दौड़ाते हुए देखा। और कुछ ऐसा भी नही था कि वे भीड मे थे कि वह उन्हे पहचान न पाया हो। वे सडक के बीच मे अकेले खडे थे और चारो तरफ पुलिसवाले वालटियरो पर लाठिया बरसा रहे थे। वे चाहते तो एक तरफ को हट जाते और अपने-आपको बचा लेते पर उन्होने ऐसा नही किया। वे शेर की तरह बहादुरी के साथ वही डटे रहे, एक घुडसवार पुलिसवाला अपनी लाठी घुमाता हुआ उनकी तरफ बढा और बडी बेरहमी से दो लाठिया उनकी पीठ पर जड दी पर वे टस से मस न हुए। यह है अपना जवाहर ! मैं सच कहता हू कि अगर एक वालटियर ने आगे बढकर तीसरा वार, जो जवाहरलाल के सिर को निशाना बनाकर किया गया था, अपने ऊपर न रोक लिया होता तो उन ज़ालिमो ने उन्हे मार ही डाला होता।"

हमारा जवाहर ! अलीगढ की तरह ही सारे देश के नौजवान जवाहरलाल को बडे प्यार से अपना जवाहर कहते थे। वे उनके अपने थे, और वे सब भी उनके थे। अनवर को याद था कि उसने उन्हे डाक्टर असारी के बगले पर देखा था। उस वक्त वे अपने बाप के साथ थे। मोतीलाल के चेहरे पर तेज था और उनके सफेद बाल चादी की तरह चमकते थे। उनके रोबदार व्यक्तित्व के सामने उस समय अनवर को इस खूबसूरत और शात नवयुवक का व्यक्तित्व भी कुछ माद लगा था। फिर भी अनवर को एक क्षण के लिए ऐसा लगा था कि इस खूबसूरत चेहरे और खिलाडियो जैसे दुबले-पतले फुर्तीले शरीर मे बहुत ताकत छिपी हुई है। अनवर को अफसोस हो रहा था कि उस वक्त उसने उनसे जान-पहचान क्यो न पैदा कर ली क्योकि उसके बाद ही वे बूढो और नौजवानो के हृदय-सम्राट हो गए थे। सारे देश मे लाखो नौजवान उन्हे 'हमारा जवाहर' कहने लगे थे। 'राज़' की बाते सुनते समय अनवर को इस बात पर आश्चर्य होता था कि इतने बहुत-से नेताओ मे जवाहरलाल की तरफ ही नवयुवक क्यो आकर्षित होते थे। क्या इसका कारण यह था कि वे सब नेताओ मे सबसे कम उम्र के थे ? या इसका कारण यह था कि खादी के कपडे पहनकर भी वे इतने खूबसूरत और स्मार्ट लगते थे ? अनवर ने उन्हे कभी भाषण देते नही सुना था पर जिन लोगों

ने सुना था वे उन्हे बहुत अच्छा वक्ता नही समझते थे। असल मे नौजवान पीढी के लोग उनके बोलने के ढग की वजह से नही बल्कि जो बाते वे कहते थे उनकी वजह से उन्हे अपना समझते थे। पुराने नेता बहुत सोच-सोचकर और रुक-रुककर अपनी बात कहते थे और उन्होने बरसो की कोशिश के बाद यह तरीका अपनाया था। लेकिन इनके मुकाबले मे जवाहरलाल मे नौजवानो जैसी बेचैनी थी, बल्कि उनमे अवेपन की हद तक एक आदर्शवाद था। उनके हाल ही के एक भाषण के एक टुकडे का अनवर पर बहुत गहरा असर पडा था। उसने उस टुकडे को अखबार से नकल करके रट लिया था। बगाल छात्र-सघ के अधिवेशन मे अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए जवाहरलाल ने कहा था—"नौजवानो का आदोलन एक बहुत बडा इन्कलाब पैदा करेगा और हर चीज को बदल देगा, हर चीज़ को सुधार देगा। यह बगावत का जोश है, हर उस चीज़ के खिलाफ बगावत जो बुरी है। यह ऐसी लहर है जो इतज़ार नही करती, किसीका इतजार नही करती।"

'राज़' कह रहा था, "अपना जवाहर ही एक ऐसा नेता है जिसकी बात पूरी तरह हमारी समझ मे आती है और जिसके पीछे हम चल सकते हैं।" 'राज़' मे सचमुच कमाल का परिवर्तन हुआ था। पहले वह जाडो मे भी मलमल के बेलदार कुरते पहना करता था लेकिन अब उसने मोटे से मोटा खद्दर पहनना शुरू कर दिया था। कई महीने से उसने एक भी गजल नही लिखी थी। अब वह सिर्फ क्रातिकारी और राजनीतिक नज्मे लिखता था। अनवर ने देखा कि 'राज़' अब अपने बाए हाथ से कोई चीज़ नही उठा सकता था, उस हाथ से वह चायदान भी नही उठा सकता था। लाठी-चार्ज मे उसकी कलाई की हड्डी टूट गई थी। और हालाकि 'राज़' कभी इस बात को मानता नही था लेकिन अनवर को शक था कि लाठी का वह तीसरा वार उसीने रोका था।

सचमुच यूनिवर्सिटी वापस आकर दोस्तो के साथ गरमागरम राजनीतिक बहसे करने मे अनवर को बहुत मजा आता था, उन दोस्तो के साथ जिनकी रगो के खून मे भी वही बेचैनी की धडकन थी। लेकिन इससे भी ज्यादा खुशी की बात तो उसके लिए यह थी कि वह एक बार फिर सलमा के पास आ गया था

'जिसके बिना ज़िंदगी की हर चीज बेकार थी।' अनवर ने उर्दू और अंग्रेज़ी की कविताए बहुत पढी थी, लेकिन जैसाकि एक बार 'राज़' से बहस करते हुए उसने बडी हिकारत से कहा था कि उसे इन 'आशिकमिजाज लोगो की बकवास' से सख्त नफरत है। लेकिन सलमा ने कविता का सारा रहस्य उसे समझा दिया था। वह साकार कविता थी। लेकिन जल्द ही अनवर यह भी महसूस करने लगा कि उनकी बढती हुई घनिष्ठता मे समय का अभाव बहुत विघ्न डालता है।

सिनेमाघर के जाने-पहचाने अधकार मे सलमा के पास बैठने मे कितना आनंद था। सर्दी का मौसम आधा बीत चुका था। सलमा ने अपने शरीर पर एक ऊनी शाल कसकर लपेट रखा था। बत्तिया बुझ गईं और पर्दे पर विज्ञापन दिखाए जाने लगे। अनवर का हाथ चुपके से सलमा के छोटे-से कोमल हाथ तक पहुच गया और उस सर्दी मे एक-दूसरे के शरीर मे सुखद गर्मी की एक लहर-सी दौड़ने लगी जिसने उन दोनो के दिलो को वासना के सूत्र मे बाध दिया।

विज्ञापनो के बाद न्यूजरील दिखाई गई जिसमे सलमा को बहुत ही थोडी दिलचस्पी थी। अनवर सोच रहा था कि शायद उसमे राष्ट्रीय महत्त्व की भी कुछ घटनाए दिखाई जाए। और न्यूज़रील मे इस तरह की एक घटना थी भी : कलकत्ता मे काग्रेस का चौतीसवा अधिवेशन। यह दो महीने पहले की घटना थी, लेकिन सचमुच यह एक ऐतिहासिक घटना थी। अनवर के लिए और सिनेमा-घर मे बैठे हुए हजारो दर्शको के लिए वह किसी भी प्रकार पुरानी गैरदिलचस्प घटना नही थी। लोग परदे पर चलती हुई तस्वीरो के नीचे छपे हुए शब्दो को बुदबुदाकर पढ रहे थे। जब परदे पर जनता के प्रिय नेताओ की सूरत दिखाई देती तो सारा हाल तालियो से गूज उठता—ये थे पडित मोतीलाल और ये महात्मा गाधी, सुभाष बोस जैसे ओजस्वी और जोशीले इटेलेक्चुअल नेता के शरीर पर काग्रेस के वालटियरो के कमाडर-इन-चीफ की वर्दी कुछ बेतुकी लग रही थी; उसके बाद अनवर को डाक्टर असारी की जानी-पहचानी सूरत दिखाई दी, और अत मे जवाहरलाल नेहरू आए।…अपने हीरो की सूरत देखते ही दर्शक पागलो की तरह तालिया बजाने लगे और जय-जयकार करने लगे। अनवर भी पूरे जोश के साथ तालिया बजाने लगा।

अपना बाया हाथ सलमा के कोमल गुदगुदे हाथ मे से निकालते ही अनवर को ऐसा लगा कि सलमा पर एक अजीब प्रतिक्रिया हुई जिसका कारण उसकी समझ मे नही आया। सहसा उसे ऐसा लगा कि सलमा उससे दूर हो गई है और हालाकि वह उसके पास से तिल-भर भी नही हटी थी फिर भी अनवर को ऐसा लगा कि अभी एक क्षण पहले वे भावनाओ के जिस बधन मे बधे हुए थे वह टूट गया। बगल मे बैठी हुई सलमा मीलो दूर मालूम होने लगी।

न्यूजरील मे दिखाए गए ऐतिहासिक दृश्यो का सारा उत्साह ठडा पड गया और जब न्यूजरील खत्म हुई और परदे पर असली फिल्म के अभिनेताओ और निर्देशक आदि के नाम आने लगे तो उसने सतोष की सास ली। उस फिल्म मे सुलोचना और बिलिमोरिया काम कर रहे थे। सलमा इस फिल्मी जोडी की दीवानी थी और अनवर समझता था कि सलमा की उस विचित्र प्रतिक्रिया का जो भी कारण रहा हो पर अब सब कुछ ठीक हो जाएगा।

लेकिन परदे पर पहली बार सुलोचना का पूरा चेहरा दिखाई देते ही सलमा ने उसकी तरफ मुडकर कहा, "आओ चले।" इससे पहले कि अनवर कुछ कह पाता सलमा उठकर चल दी। वह लोगो के पैरो मे उलझती उनकी झुझलाई हुई बातो की परवाह किए बिना बाहर चली जा रही थी।

"मै समझता था कि तुम सुलोचना की फिल्म देखने के लिए बहुत बेकरार थी, है न ?" अनवर ने तागे पर चढते हुए पूछा। वह अभी तक बौखलाया हुआ था।

"हा, थी तो, लेकिन अब जी नही चाहता," सलमा ने कहा, "और फिर यह भी बात है कि पापा आज बाहर खाना खा रहे हैं। चलो, घर चलकर खाना खाएगे फिर मुझे तुमसे कुछ बाते करनी हैं।..."

बैठक के आतिशदान मे आग जल रही थी। अनवर और सलमा ने सोफा उसकी सुखद आंच के सामने खीच लिया और बत्ती जलाए बिना ही वहा बैठ गए। खाना खाते हुए तमाम वक्त सलमा का रवैया दोस्ती का तो रहा था पर वह कुछ दूर-दूर-सी रही थी और इस वक्त भी, जबकि वह उसकी बगल मे बैठी हुई थी और उसके चेहरे पर नाचती हुई लपटो की ज्योति की दमक थी, अनवर को उसके रवैये मे एक निश्चित रूखापन दिखाई दिया।

"तुम्हे सिनेमा में क्या हो गया था ?" अनवर ने निस्तब्धता भग करते

हुए कहा। "मै तो बिलकुल डर ही गया था।"

अनवर के सवाल के जवाब मे सलमा ने खुद एक सवाल पूछा, "तुमने अपना हाथ मेरे हाथ से क्यो खीच लिया था ?" और अपनी काली-काली निर्मल आखो से उसे इस तरह देखा मानो उसपर आरोप लगा रही हो। उसके स्वर से ऐसा लगता था कि उसके अभिमान को ठेस पहुची है।

"जाहिर है, न्यूजरील मे जवाहरलाल को देखकर तालिया बजाने के लिए। तुम क्या समझी ?"

"तो तुम्हारे लिए जवाहरलाल की अहमियत मुझसे ज्यादा है।" सलमा ने बडी गभीरता से कहा। उसे इस बात का आभास भी न था कि वह कितनी हास्यास्पद और बेतुकी तुलना कर रही है।

अनवर कहकहा लगाकर हस पडा। "तो तुम्हे जवाहरलाल से जलन हो रही है।"

सलमा का रूठा हुआ मूड कुछ ठीक हुआ और उसने हसी करते हुआ कहा, "क्यो नही।" और फिर उसने अनवर का हाथ अपने हाथो मे लेते हुए कहा, "मुझे हर उस आदमी से और हर उस चीज से जलन होती है जो तुम्हें एक पल के लिए भी मुझसे दूर हटाती है।"

एक क्षरण के लिए तो अनवर उसकी आखो मे आधिपत्य की वह भावना देखकर सहम गया। वह उसकी इस ईर्ष्या को निराधार साबित करने के लिए जितनी भी दलीले देना चाहता था वे सब उसकी जुल्फो की भीनी-भीनी महक को अनुभव करते ही गायब हो गईं।

सलमा का सिर अनवर की बाह पर टिका हुआ था और आग की हलकी-हलकी रोशनी मे वह पहले से भी ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा आकर्षक लग रही थी। अनवर ने उसकी आखो मे आखे डालकर देखा और उनमें अपने प्रति प्यार का सागर उमडता देखकर वह बिलकुल उसके वश मे हो गया। सलमा के होठ, जिनपर लिपस्टिक की एक बहुत ही हलकी-सी तह थी, आधे खुले हुए थे और जब अनवर ने उसके सगमरमर जैसे चिकने माथे पर से उसके रेशमी काले बालो की लट पीछे हटाई तो सलमा की गर्म सास का एक झोका उसके गाल को गुदगुदा गया। सलमा के होठो को चूमने का उसने कोई इरादा नही किया था। लेकिन न जाने कैसे उसके होठ सलमा के होठो से चिपक गए।

उसने पहले कभी किसीके होठ नही चूमे थे। उसने कभी किसी लडकी के होठ नही चूमे थे। शराब के नशे मे लूसी ने जो कुछ उसके साथ किया था वह तो बहुत ही घिनावना अनुभव था जिसे उसने कै के साथ उगल दिया था। उसे सिर्फ एक धुधला-धुधला अदाज़ा था कि 'होठ से होठ लगाने' का क्या मतलब होता है। अब उसे मालूम हो गया था लेकिन फिर भी वह अपनी खुशी को बयान नही कर सकता था। सलमा ने भी मस्त होकर उसे भरपूर योग दिया और उसकी इस प्रतिक्रिया से प्रोत्साहित होकर अनवर ने कई बार उसके होठो को चूमा और उसे ऐसा लगा कि उसके जीवन के सबसे कोमल और सबसे प्रिय अनुभव इस एक क्षण मे सिमट आए है—जितने सूर्यास्त उसने अपने जीवन मे देखे थे उन सबकी लाली, जितने फूल उसने सूघे थे उन सबकी सुगध, गीली मिट्टी का मादक सोधापन, ग्रीष्मऋतु मे प्रात काल बहती हुई ठडी हवा के झोको का कोमल स्पर्श, कही दूर बजती हुई बासुरी की जादू-भरी धुन, नर्तकी के पैरो मे बधे हुए घुघरुओ की रुनझुन और मजीरो की आवाज़।·· उसी एक क्षण मे उसकी सारी साहसपूर्ण कल्पनाए भी सिमट आई थी, उडनेवाले घोडे और मन को रिझानेवाली हूरे, सितारो-जडे आसमान तक पहुचते हुए हाथ और कामदानी के आसमानी रूमाल की तरह उसे सहज ही धरती पर उतार लाते हुए हाथ। उस एक क्षण मे यह सब तो था ही, इसके अलावा भी बहुत कुछ था। क्योकि परम सुख की इस घडी मे एक वेदना भी मिली हुई थी और एक कामना की पूर्ति ने दूसरी कामना को जन्म दिया था जो रह-रहकर काटे की तरह चुभती थी और जो पहली कामना से अधिक प्रबल और अधिक डरावनी थी।

आतिशदान मे आग बुझ चली थी। सलमा ने अपने-आपको अनवर के आलिगन से छुडाया तो वह कुछ सिहर उठी और बडे प्यार से अनवर के बालो को सहलाते हुए बोली, "अब तुम जाओ, नही तो हम लोग अपने होश-हवास खो बैठेंगे। और पापा भी अब आते ही होगे।"

इस एक क्षण मे वह कितनी समझदार हो गई थी, कितनी बडी हो गई थी। सलमा की बात का आशय समझकर अनवर शरमा गया। यह विचार आते ही कि वह अपनी काम-भावना के आवेश मे सलमा को नुकसान पहुचा सकता था, उसे एक क्षण के लिए ऐसा लगा कि किसीने उसके सीने मे छुरा उतार दिया है। सलमा ने जब उसे रास्ता दिखाने के लिए बरामदे की बत्ती

जलाई तो अनवर को ऐसा लग रहा था कि सारी दुनिया उसीको देख रही है और सलमा से बिदा होते समय वह सोच रहा था कि अगर वह अपनी भावनाओ के आवेश मे और आगे बढ गया होता तो वह उम्र-भर अपने-आपको माफ नही कर सकता था।

"तुम्हे देखकर तो ऐसा लगता है जैसे तुम्हे पछतावा हो रहा है," सलमा ने उसे छेडते हुए कहा। पछतावा ? वह सलमा को बताना चाहता था कि उसने उसे कितना अपार सुख दिया है, वह बताना चाहता था कि वह सलमा का कितना एहसानमद है। लेकिन उसकी समझ मे नही आ रहा था कि इस बात को कैसे कहे। इसलिए वह सलमा की तरफ देखता रहा, उसे मालूम था कि वह बेवकूफो की तरह उसे ताक रहा है फिर भी वह अपलक उसे निहारता रहा। लेकिन सलमा समझ गई और मुस्करा दी और अनवर भी मुस्करा दिया।

जिस वक्त वह अहाते से बाहर निकल रहा था उसे सलमा की आवाज सुनाई दी, "भूलना नही, कल इतवार है। जरा जल्दी आ जाना।"

जिस वक्त अनवर हास्टेल वापस लौटा उस वक्त उसके होठो पर चुबन का स्वाद बाकी था। आधी रात का वक्त था और अनवर ने सोचा था कि 'राज़' और असगर सो गए होगे। चूकि अनवर 'राज' के दिल की हालत जानता था इसलिए जब भी वह सलमा के घर से वापस लौटता था उसे ऐसा लगता था कि उसने 'राज' के प्रति कोई अपराध किया है और अब तो वह लगभग रोज़ ही सलमा के यहा जाने लगा था। जहा तक असगर का सवाल था उसे भावुकता छू तक नही गई थी और वह हर बात का मजाक उडाता था। इसीलिए वह अनवर को भी छेड़ता रहता था और उससे पूछता रहता था कि उसका 'रोमास' किस मजिल मे है। लेकिन वह कुछ इस तरह घुमा-फिराकर पूछता था कि उसमे एक अश्लीलता का पुट आ जाता था। जब उसने देखा कि उसके कमरे मे बत्ती अभी तक जल रही है तो वह इस बात के लिए तैयार हो गया कि अब कम से कम आधे घटे तक उसे असगर के बेहूदा सवालो और 'राज़' की बेतुकी खामोशी का सामना करना पडेगा।

लेकिन जब उसने दरवाज़ा खटखटाया तो एक बिलकुल ही अजनबी आदमी

ने दरवाज़ा खोला। वह एक दुबला-पतला लडका था, जिसके चेहरे का रग बिलकुल पीला था ; वह एक ढीला-ढाला ओवरकोट पहने था और उसके बाल उलझे हुए थे। एक कोने मे बिस्तरबद और एक छोटा-सा सूटकेस रखा था, जिससे पता चलता था कि वह अभी शाम को ही वहा पहुचा था और रात को उनके कमरे मे ठहरने का इरादा रखता था। 'असगर या 'राज' का कोई दोस्त होगा,' अनवर ने सोचा लेकिन यह अजनबी उसे देखकर इस तरह मुस्करा क्यों रहा था ? शायद असगर ने अपनी आदत के मुताबिक इसे भी अनवर के 'रोमास' के बारे मे बता दिया होगा और इसीलिए उसके चेहरे पर ऐसा भाव था मानो वह अनवर का मजाक उडा रहा हो। सूरत कुछ देखी हुई लग रही थी फिर भी अनवर उसे पहचान नही पा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसने यह सूरत कभी ख्वाब मे देखी हो।

"हैलो अनवर !" आवाज़ भी पहचानी हुई थी, "पहचाना नही ?"

"कौन, रतन ?" वह चिल्लाकर अपने दोस्त के गले से लिपट गया। "लेकिन तुम्हारे बाल…?" रतन ने अपने होठो पर उगली रखकर उसे चुप कर दिया और खर्राटे लेते हुए असगर और पीछे के कमरे मे लेटे हुए 'राज़' की तरफ इशारा किया।

"बाद मे सब कुछ बताऊगा," रतन ने बैटते हुए कहा. "पहले यह बताओ क्या मैं कुछ दिन तक यहा तुम्हारे मेहमान की तरह रह सकता हू ? मुझे तुम्हारा खत मिला था और तुमने जो यकीन दिलाया था उसीके भरोसे मैं चला आया। लेकिन शायद तुमने अपना खयाल बदल दिया हो।"

"कैसी बात करते हो ?" अनवर ने झिडककर कहा, "इसमे पूछने की क्या बात है ? तुम बिलकुल ठहर सकते हो और ठहरोगे। मैं तुम्हारे लिए चारपाई का इतज़ाम करता हू।"

"और हा, देखो मैं तुम्हारे दोस्तो को अपना नाम-पता बता चुका हू। यह रहा मेरा कार्ड," और यह कहकर रतन ने एक लम्बोतरा कार्ड अनवर के आगे बढा दिया जिसपर छपा हुआ था "रामलाल चोपडा, इश्योरेस एजेट।"

तो अब रतन इस नाम से इधर-उधर घूम रहा था।

"समझ गए न ?"

अनवर ने कार्ड वापस करते हुए सिर हिला दिया। उसने देखा कि दाढी

मुडवा देने के बाद रतन पहले से ज्यादा दुबला और पीला लगने लगा था लेकिन अब उसके बात करने के ढंग मे एक नया आत्मविश्वास था और वह बहुत नपे-तुले शब्दो मे अपनी बात कहता था। लडकपन का जोशीलापन अब बिलकुल भी बाकी नही रह गया था। यह एक मर्द की आवाज़ थी जो यह जानता था कि वह क्या चाहता है और जो कुछ वह चाहता है उसे कैसे पा सकता है, यह एक ऐसे मर्द की आवाज थी जिसके मन मे कोई शका नही थी केवल आस्था थी।

अपने दोस्त को इस नये रूप मे देखकर अनवर उसकी तरफ आकर्षित भी हुआ और साथ ही उसे उससे कुछ डर भी लगा।

अगले दिन इतवार था इसलिए अनवर दोपहर का खाना खाने के बाद अपने दोस्त को लेकर मराठो के किले की तरफ टहलने चला गया। यह किला यूनिवर्सिटी से दो मील उत्तर की तरफ था। इस सुनसान जगह मे शायद ही कभी कोई आता था इसलिए वे बडी देर तक बिना किसी विघ्न-बाधा के दिल खोलकर बाते कर सकते थे।

रेल का फाटक पार करने के बाद जब अनवर को पक्का यकीन हो गया कि कोई उनकी बात नही सुन सकता तो उसने वह सवाल पूछा जो कल रात से उसे परेशान कर रहा था। उसने कहा, "रतन, मै इस बात की माफी चाहता हूं कि कल रात मै तुम्हे देखते ही पहचान नही सका। बात यह है कि मैने कभी ख्वाब मे भी नही सोचा था कि तुम्हारी दाढी-मूछ इस तरह बिलकुल सफाचट होगी। यह तो बताओ कि तुमने आखिर अपनी दाढी और केश कटवा कैसे दिए। तुम्हारे मज़हब मे तो यह मना है ना?"

रतन कुछ देर तक चुपचाप चलता रहा, फिर बोला, "एक बहुत बडे आदमी से जब यही सवाल किया गया था तो उसने इसका जवाब यह दिया था कि जब कोई कौम की खातिर सिर कटाने पर तैयार हो तो वह बाल कटाने से क्या डरेगा। दाढी-मूछे सफाचट करवा देने से और केश कटवा देने से हमारा भेस बड़ी आसानी से बदल जाता है और हम पुलिस के पंजे से बचे रहते हैं।"

अनवर अभी तक उस दिलेर आदमी की बात सोच रहा था जिसका हवाला

अभी रतन ने दिया था। उसने पूछा, "किसने कही थी यह बात? बहुत ही कमाल का आदमी रहा होगा कोई।"

"वह है ही कमाल का आदमी—हमारा नेता भगतसिंह।" और यह नाम लेते वक्त रतन की आवाज मे श्रद्धा भी थी और प्यार भी।

भगतसिंह! अनवर ने अपने साथ के कुछ पजाबी लडको से उसका नाम सुना था। उसने नौजवान भारत सभा के नाम से नौजवानो का एक क्रातिकारी सगठन बनाया था और कहा जाता था कि पंजाब मे आतकवादी आदोलन का सर्वेसर्वा वही था। काफी अरसे से वह कई सूबो की पुलिस को तिकनिया का नाच नचा रहा था और अभी तक पुलिस के पजे मे नही आया था।

"साडर्स को भगतसिंह ने ही गोली मारी थी न?" अनवर ने पूछा। आम तौर पर लोगो का यही खयाल था और उसने इसी खयाल को दुहरा दिया था।

"यह बताने की मुझे इजाजत नही है," रतन ने दृढता के साथ उत्तर दिया और फिर अनवर पर अपनी इस बात की प्रतिक्रिया देखकर उसने कहा, "तुम्हे भी नही, हालाकि मैं तुम्हारे ऊपर भी उतना ही एतबार करता हू जितना खुद अपने ऊपर। मै पार्टी का डिसिप्लिन नही तोड सकता। इसके अलावा यह बात भी है कि इन्कलाबी काम मै इस बात का महत्त्व नही होता कि कोई काम किसने किया है। जिस उगली से पिस्तौल का घोडा दबाया गया था वह किसीकी भी उगली हो सकती थी, लेकिन साडर्स को किसी एक आदमी ने नही मारा। वह एक पूरी कौम के गुस्से का शिकार हुआ और इस तरह कौम ने साडर्स मे उसके उस वार का बदला ले लिया जिसने लाला लाजपतराय की जान ली थी।"

रतन की वह रहस्य-भरी चिट्ठी मिलने के बाद से एक सवाल अनवर को लगातार परेशान कर रहा था और अब उसे वह सवाल पूछना ही पडा। "रतन, मैं तुमसे यह नही कहता कि तुम मुझे अपनी पार्टी का कोई भेद बताओ, लेकिन एक बात मैं तुमसे जरूर जानना चाहता हू। उस बात की मेरे लिए बहुत अहमियत है। क्या तुमने…खुद अपने हाथो से…अभी तक किसीका…?"

"…खून किया है?" रतन ने ये भयानक शब्द कहकर बात पूरी कर दी जिन्हे कहने मे अनवर को इतनी कठिनाई हो रही थी। "सच पूछो तो मैंने नही किया है। अभी तक मुझसे यह करने को कहा ही नही गया है। लेकिन यह

कोई खास बात नही है। बस अभी तक कोई मौका नही निकला। जब वक्त आएगा तो मै पीछे नही हटूगा।"

रतन ने जिस ढग से यह बात कही उसमे एक नई कठोरता थी जिसे देखकर अनवर बहुत चिन्तित हुआ। उसकी यह कठोरता उसकी पुरानी कटुता से भिन्न थी, और अनवर जानता था कि रतन ने जिन परिस्थितियो मे अंग्रेजो के हाथो अपने पिता की हत्या होते देखी थी उन्हीके कारण उसकी भावनाओ मे कटुता आ गई थी। फिर भी उसे यह जानकर सतोष हुआ कि उसका दोस्त अभी तक हत्यारा नही बना है। "अच्छा अनवर, अब तुम मुझे एक बात बताओ। मान लो अगर मैने किसी अग्रेज़ की या किसी पुलिस अफसर की हत्या की होती तो क्या तुम मुझसे नफरत करने लगते—क्या तुम मुझे पुलिस के हवाले कर देते ?"

"हर्गिज़ नही। मुझे यकीन है कि मैं ऐसा कभी न करता," अनवर ने उसे यकीन दिलाते हुए कहा। "मै तुम्हारे दहशतपसन्दी के उसूलो के खिलाफ ज़रूर हूं लेकिन मै तुम्हारे मकसद की इज़्ज़त करता हू।"

और इस तरह वे दोनो हिसा और अहिंसा के नैतिक पहलू पर बहस करने लगे। उन्हीकी तरह हजारो दूसरे नौजवान सारे देश मे इसी सवाल पर बहस कर रहे थे। अनवर ने शुरू मे ही बिना किसी सोच-विचार के गाधीजी के सिद्धान्त को अपना लिया था क्योकि वह उसे अच्छा लगा था। बाद मे गाधीजी के लेख और पुस्तके और उनके भाषणो का अध्ययन करने से उसका विश्वास और पक्का हो गया था। वह जोर देकर रतन को यह समझा रहा था कि स्वतन्त्रता जैसे अच्छे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन भी अच्छे ही इस्तेमाल किए जाने चाहिए। रतन लक्ष्य और साधनो मे इस तरह अन्तर करने का ही मजाक उडा रहा था और यह बहस कर रहा था कि ज़ुल्म का तख्ता उलटने के लिए कोई भी साधन उचित है। "साम्राज्यवाद की हिंसा का जवाब हिंसा से ही दिया जा सकता है," उसने जोर देकर कहा और साथ ही यह भी कहा कि गाधीजी की अहिंसा बुज़दिलो के लिए एक आड है। गाधीजी के बारे मे रतन के मुह से ऐसी धृष्टता की बात सुनकर अनवर को बहुत धक्का पहुचा और उसने अहिंसा के सिद्धान्त को उचित साबित करने की कोशिश करते हुए रतन को यह बताया कि सभ्य जीवन का आधार प्रेम है, घृणा नही और यह कि जो स्वतन्त्रता अहिंसा के ज़रिये प्राप्त की जाएगी वह अराजकता और रक्तपात

द्वारा प्राप्त की गई स्वतन्त्रता से ज्यादा स्थायी होगी। "अगर हम सचमुच गाधीजी के कहे पर चले तो एक दिन हमारे दुश्मन भी हमारी बात को मानने लगेगे और यह समझेगे कि हमारी मागे सही है।"

रतन उसका जवाब देने ही जा रहा था कि सहसा उसे अपने सिद्धान्त के पक्ष मे एक व्यावहारिक तर्क पेश करने का मौका मिल गया और उसका खयाल था कि इस व्यावहारिक तर्क के आगे बाकी सारे तर्क बेकार हो जाएगे।

अब पुराने किले की दीवारे और चारो ओर की खाई दिखाई देने लगी थी। अनवर ने चक्करदार सडक छोडकर घास की झाडियो के बीच से होते हुए छोटे रास्ते से जाने का फैसला किया। वे बहस मे खोए हुए ऊची-ऊची घास के बीच से होकर जा रहे थे कि इतने मे अनवर को ऐसा लगा कि उसका दाहिना पैर किसी नर्म और चिकनी चीज़ पर पडा। वह अभी ठीक से सभल भी न पाया था कि घास मे सरसराहट हुई और दूसरे ही क्षण अनवर ने देखा कि एक ज़हरीला काला साप अपनी कुडली तोडकर आगे बढ रहा है। यूनिवर्सिटी के आसपास के इलाके मे बेहद साप थे और अनवर जानता था कि वे कितने ज़हरीले थे। अनवर को जैसे काठ मार गया और वह पत्थर की मूरत की तरह वही खडा का खडा रह गया जैसे किसीने उसपर जादू कर दिया हो। डर के मारे अनवर की आवाज़ बन्द हो गई थी इसलिए वह रतन को, जो उससे कुछ ही कदम आगे गया होगा, पुकार भी नही सकता था। साप ने हमला करने के लिए अपना चितकबरा फन ऊपर उठाया और अनवर टकटकी बाधे उसे देखता रहा। उसके ज़हरीले दातो के बीच से एक पतली-सी दुहरी जबान बिजली की तरह लपकी और अगले ही क्षण उस काले साप ने अनवर को डस लिया होता। लेकिन इतने मे गोली चलने की आवाज़ आई और साप मृत्यु की पीडा से विह्वल होकर जमीन पर लोटने लगा। अनवर ने सतोष की सास लेकर नज़र ऊपर उठाकर देखा लेकिन उसका दिल अभी तक दहला हुआ था। रतन हाथ मे पिस्तौल लिए खडा हस रहा था और पिस्तौल मे से अभी तक धुआ निकल रहा था।

"देखा तुमने, इन ज़हरीले काले सांपों का दिल मुहब्बत और अहिंसा से

नही बदला जा सकता।" अपने दोस्त की शारीरिक और नैतिक बेचैनी पर रतन को कुछ खुशी हो रही थी। उसने कहा, "इन जहरीले सापो को गोली से ही उडाना होगा और यही बात साम्राज्यवादी सापो के बारे मे भी सच है।"

लेकिन अनवर उस काले साप को भूल चुका था और वह यह भी भूल चुका था कि वह अभी मौत के मुह से बाल-बाल बचा है। वह तो रतन के हाथ की उस पिस्तौल को टकटकी बाधे देख रहा था। वह जानता था कि उसका दोस्त आतकवादी है फिर भी उसे सचमुच पिस्तौल चलाते देखकर अनवर को एक आघात-सा पहुचा था। तो उसने ठीक ही कहा था कि जब किसीको मारने का वक्त आएगा तो वह पीछे नही हटेगा।

"अच्छा आओ," रतन ने पिस्तौल अपने ओवरकोट की अन्दरवाली किसी चोर-जेब मे रखते हुए कहा, "तुम्हारे लिए अच्छा ही हुआ कि मैं अहिसा को नही मानता। लेकिन मुझे बस इसी बात का डर है कि कही किसीने गोली चलने की आवाज सुन न ली हो।"

खाई को पार करते हुए अनवर ने उसे यकीन दिलाया, "तुम फिक्र न करो। इस सुनसान किले मे कोई नही आता।"

अनवर ने कही पढा था कि दुनिया मे औरत का मूड एक ऐसी चीज है जिसके बारे मे पहले से कुछ नही कहा जा सकता। शेक्सपियर ने कहा था, 'इसान की ज़िन्दगी मे ज्वार की लहरो की तरह उतार-चढाव आता रहता है।' इसी बात को बदलकर किसी दिलजले ने इस तरह कर दिया था कि 'औरत के साथ इसान की ज़िन्दगी मे ज्वार की लहरो की तरह उतार-चढाव आता रहता है!" क्योंकि एक क्षण तो औरत मर्द की पूजा करके उसे लहर के शिखर पर पहुचा देती है और दूसरे ही क्षण जब लहर नीचे उतरती है तो उसे घास-फूस की तरह किनारे पर ला पटकती है। अनवर ने अभी तक ज्वार की लहरो को उतरते नही देखा था लेकिन वह जिस अकेली औरत को जानता था, सलमा को, उसके हर क्षण बदलते हुए मूड से वह भली भाति अदाज़ा लगा सकता था कि ज्वार की लहरो में चढाव-उतार किस तरह आता होगा।

अभी सनीचर की रात को ही तो उसने चुम्बन से, बल्कि लगातार कई

चुम्बनो से, प्रेम के इस बधन को पक्का किया था—प्यार-भरे भरपूर चुम्बनो से। लेकिन सोमवार को ही जब वह फिर शाम के वक्त उन्ही सुखद क्षरगो के अनुभव को दुहराने के लिए सलमा के घर पहुचा, जो उसके जीवन की सबसे सुखद स्मृतियो के क्षरग बन चुके थे, तो उसने देखा कि सलमा न सिर्फ रुखाई से पेश ग्रा रही है बल्कि गुस्सा भी है।

वह तो बडे तपाक से सलमा से मिला लेकिन जब सलमा ने बहुत ही रस्मी ढग से बिना कोई उत्साह दिखाए सिर्फ 'हैलो' कहा तो ग्रनवर भी खिसियाकर चुप हो गया, क्योंकि वह सलमा के मूड को ग्रच्छी तरह पहचानता था। वह जानता था कि सलमा इसी वजह से रूठी हुई है कि वह इतवार को वादा करके नही ग्राया था। लेकिन फिर भी पहले उसे इसकी वजह तो पूछनी चाहिए थी ग्रौर ग्रगर वह कोई ठीक जवाब न दे पाता तभी वह सजा के तौर पर उससे नाराज़ हो जाती। सलमा की इस हठधर्मी से ग्रनवर को बहुत दु ख हुग्रा ग्रौर वह उदास हो गया। वह ड्राइग रूम के एक कोने मे विचारो मे डूबा हुग्रा चुपचाप बैठा रहा ग्रौर सलगा यह जताती रही कि वह ग्रपनी बुनाई मे बहुत व्यस्त है।

ग्राखिरकार सलमा ने यह महसूस किया कि वह शायद ज़रूरत से ज्यादा रुखाई दिखा रही है, इसलिए बुनाई ग्रलग रखकर उसने बहुत व्यग से कहा, "कल शायद तुम्हे दोस्तो के साथ बहस करने से फुरसत ही नही मिली।"

गतिरोध टूट गया था ग्रौर ग्रब वह सलमा से माफी माग सकता था। ग्रगर सलमा ने उसे मौका दिया होता तो वह पहले ही माफी माग लेता क्योकि वह तो ग्राया ही इसीलिए था। "सलमा, मुझे बहुत ग्रफसोस है, लेकिन दिल्ली से एक बहुत पुराने दोस्त ग्रचानक ग्रा गए थे, बस उन्हीके चक्कर मे फसा रहा।"

"उन्हे भी यहा ले ग्राते।" सलमा को लडको से मिलने मे कभी कोई सकोच नही होता था क्योकि उनमे उसके प्रशसक भी हो सकते थे। इसके ग्रलावा वह यह भी चाहती थी कि ग्रनवर उसे ग्रपने दोस्तो से मिलाए। "तुम जानते हो कि तुम्हारा कोई भी दोस्त खुशी से यहा ग्रा सकता है।"

"यह तो मालूम है मुझे, लेकिन वह बहुत ही रूखी किस्म का ग्रादमी है ग्रौर मैने सोचा कि शायद तुम्हे उससे मिलने मे कोई दिलचस्पी न हो।"

"क्या नाम है उसका ?"

"रामलाल।"

"रामलाल ? मुझे पता नही था कि तुम्हारे हिंदू दोस्त भी है ।"

सलमा का यह बात कहने का ढग अनवर को अच्छा नही लगा। उसने यह बात कहकर बहुत सकीर्णता का परिचय दिया था जिसपर अनवर को बहुत झुझलाहट हुई। उसने कुछ चिढकर कहा, "खैर, चलो अब तो मालूम हो गया ।"

"अरे नही, मेरी भी याद कितनी खराब है । तुम्हारा एक सिख दोस्त भी था जिसका जिक्र तुमने डिबेट मे किया था । क्या नाम था उसका ?"

"रतन ।"

इतने मे प्रोफेसर सलीम वहा आ गए और अनवर उनका अदब करने के लिए खडा हो गया ।

"हैलो अनवर, मैं तुम्हीसे मिलना चाहता था । सलमा, जरा चाय भिजवा दो ।" और अनवर को अभी तक खडा देखकर उन्होने कहा, "बैठ जाओ, बैठ जाओ ।"

प्रोफेसर साहब के लाख कोशिश करने के बावजूद अनवर कुछ परेशान ही रहा । उसे न जाने क्यो यह डर था कि प्रोफेसर साहब अब रामलाल की बात छेडेगे और हुआ भी यही ।

उन्होने बिना किसी लाग-लपेट के अनवर से सीधा सवाल किया, "यह रामलाल कौन है ?"

सवाल इस तरह अचानक पूछा गया था कि एक क्षण के लिए तो अनवर कोई जवाब न दे सका । फिर उसने कहा, "मेरा दोस्त है । मै उसे बचपन से जानता हू ।"

"यह तो सही है, लेकिन तुम उसकी सियासत के बारे मे क्या जानते हो ? आजकल ज़माना बहुत खतरनाक है । जितना भी बचकर रहा जाए कम है । यूनिवर्सिटीवालो का खयाल है कि वह किसी किस्म का इन्कलाबी है । तुम्हे इस किस्म के लोगो से दूर ही रहना चाहिए । तुम्हारा सिविल सर्विस मे जाने का चास खत्म हो जाएगा ।"

लेकिन अनवर को सिविल सर्विस की फिक्र नही थी । इस वक्त तो वह यह सोच रहा था कि अपने दोस्त की तरफ आदमी का क्या फर्ज़ होना चाहिए । "मुझे अफसोस है, लेकिन मैं अपने दोस्त को इस तरह निकाल नही सकता ।"

उसने सोच-सोचकर धीरे-धीरे यह बात कही और उसे खुद ताज्जुब हुआ कि उसमे इतनी हिम्मत आई कहा से।

प्रोफेसर साहब हमेशा की तरह बडी होशियारी के साथ बहुत नरमी से बाते कर रहे थे। "तुम खुद ही सोचकर फैसला कर लो। अगर मैं तुम्हारी जगह होता तो दोस्ती और मेहमाननवाज़ी की इन झूठी बातो की वजह से अपनी ज़िन्दगी बरबाद न करता।" और यह कह वे कपडे बदलने चले गए।

सलमा चुपके से कमरे मे आकर ये बाते सुन रही थी। सलमा को वहा देखकर अनवर उसकी तरफ इस उम्मीद से मुडा कि शायद वह उसकी बात को समझेगी और सहारा देगी। लेकिन सलमा अपनी नजरे फेरकर अपनी बुनाई मे व्यस्त हो गई। तो वह भी उसकी तरफ नही थी।

कुछ बेचैन होकर अनवर उठ खडा हुआ। सलमा ने बुनाई पर से नज़रें उठाकर उसकी तरफ देखा और मुस्कराकर बोली, "अनवर, जानते हो मैं क्या बुन रही हू ? तुम्हारे लिए स्वेटर।"

"शुक्रिया !" तो सलमा मुझे फसाने के लिए कटिया मे यह चारा लगा रही है। "मैं चला।"

"खाना खाकर नही जाओगे ?"

"नही।"

"अनवर !"

"क्या है ?"

"ज़िद न करो। पापा ने तुम्हारी अपनी भलाई के लिए ही उस आदमी का साथ छोड देने को कहा है।"

"मैं जानता हू। लेकिन मैं जिद नही कर रहा हू। मै जो कुछ कर रहा हू, ठीक ही कर रहा हू।"

अचानक सलमा अपनी बुनाई फेककर सोफे पर से उठ खडी हुई और चिल्लाकर बोली, "ज़िद तो कर ही रहे हो—तुम बिलकुल खच्चर की तरह अडियल हो।"

"मै जा रहा हू," अनवर ने दरवाज़े की तरफ बढते हुए इतना ही कहा।

"तो वह तुम्हारा रामलाल तुम्हारे लिए सब कुछ है और मैं कुछ नही हूं। अगर ऐसी बात है तो उसीके पास जाओ और अब यहा कभी न आना—कभी

नही।" इतना कहकर वह सोफे पर गिर पडी और सिसक-सिसककर रोने लगी।

अनवर फाटक से बाहर निकल चुका था। उसके दिमाग मे एक तूफान मचा हुआ था—वह किसका साथ दे ?

लेकिन उसके लिए इस बात का फैसला करने की नौबत ही नही आई क्योकि हास्टेल वापस पहुचने पर 'राज़' ने उसे बताया कि उसका दोस्त रामलाल अचानक बिना कुछ कहे-सुने चला गया है। मेज पर प्रो-वाइस-चासलर का एक नोटिस पडा हुआ था जिसमे लडको को ताकीद की गई थी कि वे बिना इजाजत लिए किसीको अपने कमरे मे न रखे और यह कि अगर कोई मेहमान आ जाए तो उसकी सूचना फौरन प्राक्टर को दी जाए।

"क्या उसने इसे देखा था ?" अनवर ने पूछा।

'राज़' ने सिर हिला दिया। तो रतन इसीलिए चला गया।

अनवर को अपने दोस्त के इस तरह चले जाने का बहुत अफसोस था—किसी-को भी नही मालूम था कि वह कहा गया है और किस तरह वह अपने-आपको पुलिस के चंगुल से बचाएगा। फिर भी उसे लगा कि उसके सिर से एक बोझ उतर गया है। अब सलमा से उसका सम्बन्ध टूटने की नौबत नही आएगी।

और इसलिए वह बेहयाई करके फिर मैरिस रोड की तरफ चल दिया। वह जाकर अपनी ढिठाई के लिए सलमा से माफी मागेगा। अभी आधे घटे पहले वह सलमा से टक्कर लेने चला था लेकिन उस वक्त भी वह जानता था कि वह सलमा की बात टाल नही सकेगा—क्योकि वह उससे प्यार करता था। उसने अपनी भावनाओ का यह जाल खुद बुना था। और वह जानता था कि उससे भाग निकलने का कोई रास्ता नही है। और वह निकलना चाहता भी नही था।



इन्कलाब ज़िंदाबाद

फरवरी खत्म होते ही अचानक बारिश शुरू हो गई और मार्च के शुरू मे ऐसी ठंडी बर्फीली हवाएं चलने लगी कि तीर की तरह चुभती हुई हड्डियो तक जा लगती थी। अलीगढ के चारो तरफ के लगभग रेगिस्तानी इलाको से धूल के बवडर उडकर सडको पर इस तरह मडराते थे जैसे प्रेत नाच रहे हो। अनवर जैसे एम० ए० के विद्यार्थी के लिए दिन-भर मे दो-तीन लैक्चरो में हाज़िरी दे आने से ज़्यादा और कोई काम नही था। कभी-कभी कोई डिबेट हो जाती थी लेकिन उनमे भी कोई नई बात नही थी और ज़्यादातर बोलनेवाले पार्लियामेट की बहसो के पिटे हुए चुटकुले बार-बार दुहराते रहते थे। नुमाइश की चहलपहल भी खत्म हो चुकी थी और टूर्नामेंट और खेल-कूद की प्रतियोगिताए शुरू होने मे अभी काफी दिन बाकी थे। ऐसा लगता था कि इन बर्फीली हवाओ से बचने के लिए यूनिवर्सिटी ने भी शिथिलता का कम्बल ओढ लिया था।

लेकिन देश मे राजनीतिक गर्मी दिन-ब-दिन बढती चली जा रही थी और अखबारो से अनवर को पता चलता था कि ये घिरती हुई घटाए किसी भी दिन टूटकर बरस पडेगी। देश के कोने-कोने से आतकवादियो की सरगर्मियों की खबरें आ रही थी और अनवर अक्सर सोचा करता था कि उसके दोस्त रतन उर्फ रामलाल का इनमे कितना हाथ होगा। बम्बई मे एक बार फिर साम्प्रदायिक दगा हो गया था। किसीने योही अफवाह फैला दी थी कि पठान लोग बच्चे चुराकर ले जा रहे हैं और जब तक यह पता चला कि यह खबर झूठी थी उस वक्त तक काफी लोग मारे जा चुके थे और सैकडो लोग ज़ख्मी हो चुके थे। दूसरे शहरो मे जहा कही भी साइमन कमीशन जाच करने के सिलसिले मे दौरे पर गया था, वहा हडतालो, काले झडो, ज़बर्दस्त प्रदर्शनो और 'साइमन, वापस जाओ!' के नारो से उसका स्वागत किया गया था। महात्मा गाधी ने विदेशी

कपडे के बायकाट का आन्दोलन शुरू कर दिया था जिसकी वजह से लकाशायर और मानचेस्टर के कपडा-उद्योग के केन्द्रो को बहुत धक्का पहुच रहा था। ४ मार्च को गाधीजी विलायती कपडे की होली जलाने के जुर्म मे कलकत्ता मे गिरफ्तार कर लिए गए और उसके कुछ ही दिन बाद पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कौसिल मे सरकार को करारी शिकस्त दी और कौसिल मे सरकार के खिलाफ 'इस्तीफा दो ! इस्तीफा दो !' के नारे लगाए गए। कौसिल के मेम्बरो ने सरकार के बजट मे से एक रुपये की कटौती कर दी थी और सरकार ने भी इसके विरोध मे गाधीजी पर इतनी ही रकम का—एक रुपये का—जुर्माना कर दिया था।

इन तमाम हंगामो के बीच अनवर ने इस बात को कोई महत्त्व नही दिया कि बहुत बडी हद तक प्रोफेसर सलीम के असर की वजह से उसे यूनिवर्सिटी की हिस्ट्री सोसायटी का सेक्रेटरी बना दिया गया। लेकिन आगे चलकर उसे पता चला कि यह परिस्थितियो के उस क्रम की पहली कड़ी थी जिसने उसकी सारी ज़िन्दगी का रुख बदल दिया और उसमे एक नया ही रग पैदा कर दिया।

प्रोफेसर सलीम ने अनवर को उसके इस नये पद के लिए बधाई देते हुए उसे याद दिलाया कि अगले महीने से वे सिविल सर्विस की परीक्षा के लिए लडको को तैयार करने के वास्ते एक क्लास लेना शुरू करेंगे और उन्होने अनवर से कहा कि वह भी उस क्लास मे शामिल हो जाए। अनवर ने इस इम्तहान मे बैठने का अभी तक कोई पक्का इराद नही किया था, लेकिन न बैठने का भी कोई फैसला नही किया था इसलिए उसने सोचा कि प्रोफेसर साहब को निराश करने या सलमा से बहस करने से क्या फायदा क्योकि सलमा तो उस दिन के इंतज़ार मे थी जब उसका अनवर सिविल सर्विस मे आ जाएगा।

अनवर की उम्र इस वक्त उन्नीस बरस से कुछ ज्यादा हो चुकी थी, वह ग्रेजुएट था और मुहब्बत भी करता था लेकिन अभी तक उसने फैसला नही किया था कि आगे चलकर ज़िन्दगी में वह क्या करेगा। उसे मोटे तौर पर इतिहास के बारे मे रिसर्च करने मे दिलचस्पी थी इसलिए उसने एम०ए० मे इतिहास ले लिया था। उसके अब्बा चाहते थे कि वह वकील बने। अन्य सभी समस्याओ की तरह ही इस

समस्या पर भी अपनी बिरादरी की भलाई के दृष्टिकोण से विचार करते हुए उन्होने एक बार कहा था, "मुसलमानो मे काबिल वकीलो की बहुत सख्त जरूरत है।" और इसलिए अनवर ने लॉ भी ले रखा था हालाकि वह शाम के वक्त होनेवाले लॉ-क्लास मे कभी-कभी ही जाता था। प्रोफेसर सलीम, जो उससे होनेवाले ससुर की तरह रोब से बात करते थे, चाहते थे कि वह सिविल सर्विस के इम्तहान मे बैठे और वह इसके लिए भी तैयार हो गया था।

उसके मन की गहराई मे यह प्रश्न उसे हर वक्त परेशान करता रहता था कि वह आगे चलकर क्या करेगा। लेकिन उसे यह नही मालूम था कि उसके बहुत-से देशवासियो की तरह ही उसकी जिन्दगी के ढर्रे का फैसला भी किसी एक आदमी की इच्छा के अनुसार नही होगा बल्कि उसकी जिन्दगी का रास्ता तो उन घटनाओ के अनुसार तय होगा जो अभी तक समय की कोख मे पनप रही थी और उन शक्तियो द्वारा निर्धारित होगा जो इतिहास की तरह ही विशाल थी।

२१ मार्च का दिन था। गर्मी कुछ कम थी और हालाकि हवा मे रात के वक्त अब भी कुछ खुनकी रहती थी फिर भी मैरिस रोड से दो मील पैदल चलकर आने की वजह से अनवर के शरीर मे कुछ गर्मी आ गई थी। सलमा उस शाम बहुत खुश थी। वे दोनो बैडमिंटन खेले थे। अनवर सलमा से हार गया था और अपनी इस हार पर बेहद खुश था। सलमा ने उसे अपने बचपन की तस्वीरों की एल्बम दिखाई थी और अनवर ने 'जोश' की एक नई नज्म पढकर उसे सुनाई थी और प्रोफेसर साहब ने उन दोनो को अपनी आक्सफोर्ड के जमाने की ज़िंदगी के दिलचस्प किस्से सुनाए थे। दोनो ही बेहद खुश थे और जब प्रोफेसर साहब अपना पाइप लेने के लिए उठकर चले गए थे तो सलमा ने अनवर को एक प्यार भी दिया था।

जिस वक्त अनवर हास्टेल पहुचकर अपने कमरे मे घुसा उस वक्त विक्टोरिया गेट के घटाघर की घडी ने ग्यारह बजाए। उसने सोचा था कि वह घटे-भर तक अपने गर्म बिस्तरे मे लेटकर कोई किताब पढेगा और फिर चैन से सोकर सुनहरे ख्वाब देखेगा। लेकिन कमरे मे घुसते ही उसने देखा कि सुभान

कपडे पहने बैठा उसका इंतज़ार कर रहा है। ऐसा लगता था कि वह कही जाने के लिए तैयार होकर आया है।

"हैलो सुभानोव्स्की ! क्या इन्कलाब की घडी आ पहुची है ?" उसने अपने 'रूसी' दोस्त का अभिवादन करते हुए मज़ाक मे कहा। सुभान भी इस मज़ाक का कभी बुरा नही मानता था।

"हा, इस बार तो आ ही पहुची है," सुभान ने जवाब दिया, "तुमने अखबार नही पढा आज का ?"

"हा, हा, पढा क्यो नही। सुबह उठकर पहला काम यही किया था। लगता है सारे कामरेड एक ही साथ गिरफ्तार कर लिए गए है। तुम अब हम लोगो से क्या चाहते हो ? क्या हम लोग इस ज़ुल्म के खिलाफ अपनी आवाज़ उठाने के लिए कोई मीटिंग करे।"

"वह तो बाद में देखा जाएगा," सुभान ने कहा। "अभी तो तुम मेरे साथ दिल्ली चलो। उन सब लोगो को मेरठ ले जाया जा रहा है और अगर हमारा दाव लग गया तो हम उनके साथ गाज़ियाबाद तक चले जाएगे। लैक्चर के वक्त तक लौट आएगे।"

"तो तीरथ करने जा रहे हो। अच्छी बात है तवारिश्च, मैं चलता हू। लेकिन यह बताओ कि तुम्हारे पास टिकट खरीदने के लिए काफी 'मास्को गोल्ड' है या हमे बिना टिकट ही सफर करना पडेगा ?"

और इस तरह हंसी-मज़ाक करते हुए वे दोनो चल पडे। अनवर इसलिए राज़ी हो गया था कि उसने सोचा कि चलो मज़ा रहेगा लेकिन वह यह भी जानता था कि सुभान ने उसे अपने साथ ले जाने के लिए क्यो चुना था। वह उन इने-गिने लोगो मे से था जिन्हे राजनीति मे दिलचस्पी तो थी लेकिन वह किसी पार्टी के साथ बधा हुआ नही था, इसलिए राजनीति के मैदान के सारे शिकारी अनवर को अपनी कटिया मे फसाने की कोशिश मे रहते थे। ऐसा लगता था कि काग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीगी और यहा तक कि सरकार के टोडी भी, जो अपने-आपको 'लिबरल' कहते थे, उसकी आत्मा को अपने वश मे करने के लिए लड रहे थे। उनमे सुभान सबसे ज्यादा होशियार था और अनवर को वह अच्छा भी सबसे ज्यादा लगता था। वह समझदार था, खुद अपनी बात कहने के साथ दूसरे की बात सुनने को भी तैयार रहता था। अगर वह यह

समझता है कि 'लाल' नेताओ की एक झलक-भर देख लेने से अनवर जैसा 'गुमराह आदर्शवादी' कम्युनिज्म के रास्ते पर लग जाएगा तो उसे इसीमे खुश रहने दो। जहा तक अनवर का सवाल था वह इन नेताओ को देखने के लिए इतना उत्सुक था कि अस्सी मील का सफर करने मे भी उसे कोई एतराज नही था।

वह अखबारो मे पढ चुका था कि इन नेताओ मे एक लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य थे, एक डाक्टर थे, कई विद्यार्थी थे, कई ऐसे बुद्धिजीवी थे जिनका किसी पार्टी से सबध नही था और कलकत्ता और बम्बई की ट्रेड यूनियनो के मुख्य पदाधिकारी थे। उनमे दो अग्रेज और कई मुसलमान भी थे। कम्युनिस्ट आदोलन एक अतर्राष्ट्रीय आदोलन था और इस दृष्टि से जो लोग पकड़े गए थे वे इस आदोलन का पूरी तरह प्रतिनिधित्व करते थे।

अनवर को 'नेताओ' से एक पैदायशी चिढ थी। उसे हमेशा ऐसा लगता था कि कुछ नेताओ को छोडकर बाकी सारे हर वक्त अपनी नेतागीरी का रोब डालने के लिए एक खास किस्म के कपडे पहनते थे, खास किस्म की बाते करते थे और कुछ खास बधे हुए शब्द जरूर बोलते थे और जनता के सामने बनावटी विनम्रता दिखाते थे। उसे यह बात बहुत ही अजीब लगती थी कि अच्छा खाने और अच्छा पहननेवाले 'नेता' 'भूखी जनता' की बाते करे। उसे कुछ डर था कि जिन कैदियो से मिलने वह जा रहा था वे भी आरामकुर्सी पर बैठकर सियासत बघारनेवाले इसी तरह के इन्कलाबी होगे, फ्रास, रूस और आयरलैंड के उन इन्कलाबियो जैसे नही होगे जिनके बारे मे उसने किताबो मे इतना पढ़ रखा था।

जिस वक्त उनकी गाडी दिल्ली के स्टेशन पर पहुची, उस वक्त जमुना पर से सुबह का कुहरा छट रहा था। अभी तक काफी अधेरा था और तीसरे दर्जे के खचाखच भरे हुए डिब्बे मे खुली खिडकी के पास बैठे रहने की वजह से प्लेट-फार्म पर उतरते ही उन्हे एक प्याली चाय की फिक्र हुई। घटो उबली हुई और कडवी लेकिन खौलती हुई गरम चाय पीकर उनकी जान मे जान आई और वे मेरठवाली गाडी की तलाश करने लगे। लेकिन बम्बई से आए हुए कैदियो के लिए जो खास डिब्बा अलग कर दिया गया था उसमे घुसना आसान काम नहीं था ; उसके सामने हथियारबद पुलिसवालों का भारी पहरा था जो डिब्बे के दोनों

तरफ टहल-टहलकर पहरा दे रहे थे।

सुभान किसी तरह घुस-पिलकर डिब्बे तक पहुच ही गया और अनवर ने पहली बार इन बदनाम कम्युनिस्टो की झलक देखी। उनके बारे मे सबसे पहली बात तो उसने यह देखी कि वे देखने मे बिलकुल 'नेता' नही लगते थे। वे तरह-तरह के कपडे पहने थे—कोई सूट पहने था तो कोई धोती पर सिर्फ कमीज पहने था, कोई बंद गले का स्वेटर पहने था तो कोई ओवरकोट; कोई शाल ओढे था और किसीके सिर पर टोपी थी। लेकिन उनमे से कोई भी सफेद खद्दर की 'नेताओवाली वर्दी' नही पहने था। इतने लबे सफर के बाद उनके बाल बिखरे हुए, दाढी बढी हुई और कपडे गदे थे। लेकिन सबके सब बहुत मस्त थे। सुभान ने सबसे पहले जिससे भेट की वह एक बहुत ही दुबला-पतला लबा-सा पारसी था जिसकी तोते की चोच जैसी नाक पर बिना कमानीवाली ऐनक टिकी हुई थी और सफेद बालो की लबी-लबी लटे पीछे झूल रही थीं। उसने छूटते ही साम्राज्यवाद के इजन के साथ 'रैड बोगी' जुड जाने के बारे मे कोई मज़ाक किया। अनवर को पता चला कि ये झाबवाला साहब थे जो दरअसल कम्युनिस्ट नही थे लेकिन हिंदुस्तान मे मज़दूरो की जितनी ट्रेड यूनियने इन्होने बनाई थी उतनी किसी और ने नही बनाई थी। इस सारे झुड मे दो अग्रेज बहुत चमक रहे थे—एक तो चार्ली चैप्लिन जैसी मूछोवाला दुबला-पतला स्प्रैट और दूसरा भारी-भरकम शरीरवाला ब्रैडले, जो सुरमई रग का डबल-ब्रेस्ट सूट पहने हुए उन सबमे एकमात्र भला आदमी लग रहा था। सुभान ने अनवर को कुछ और लोगो के नाम बताए जिन्हे वह पहचानता था—मोटे शीशे का चश्मा लगाए हुए घने-घने काले बालोवाले इटेलेक्चुअलो जैसे दीखनेवाले डा० अधिकारी जिन्होने जर्मनी से पी-एच० डी० की डिग्री ली थी, ताड जैसे लंबे निम्बकर, बिखरे हुए बालोवाले जोगलेकर और कालेज के विद्यार्थी लगनेवाले मिरजकर। ये चारो मराठे थे और आपस मे बाते भी मराठी मे कर रहे थे—अनवर यह बोली अपनी जिंदगी मे पहली बार सुन रहा था। उस डिब्बे के लोगो को देखने से ऐसा लगता था कि किसी कालेज की टीम कही मैच खेलने जा रही हो। अनवर को यह देखकर बहुत सतोष हुआ कि कम से कम ये कम्युनिस्ट नेता बूढे तो नही थे।

आखिरकार सुभान ने किसी तरह आगे बढकर अलीगढ यूनिवर्सिटी के मार्क्सिस्ट स्टडी सर्किल के सेक्रेटरी के रूप मे अपना परिचय दिया और सब लोग

उससे मिलकर बहुत खुश हुए और कुछ ने तो मुट्ठी तानकर उसे इन्कलाबी सलाम भी किया। किसीने कहा, "तो यह बीमारी अलीगढ मे भी फैल गई है" और जब अनवर ने अपनी आटोग्राफ-बुक निकालकर उनसे स्टडी सर्किल के लिए उसपर कोई सदेश लिख देने को कहा तो सबने एक आवाज़ से कहा, "डॉक लिखेगे,"—उनका मतलब अधिकारी से था।

"तुम यूनिवर्सिटी मे क्या पढते हो ?" अधिकारी ने अपना कलम खोलते हुए पूछा।

"क्लास मे फिलासफी," सुभान ने जवाब दिया, "और बाहर मार्क्सिज्म।"

"मार्क्सिज्म से बढकर कोई दूसरी फिलासफी नही है," अधिकारी ने आटो-ग्राफ-बुक वापस करते हुए कहा, जिसपर सुदर अक्षरो मे लिखा हुआ था, 'अब तक दार्शनिको ने ससार की तरह-तरह से व्याख्या करने की कोशिश की है। हमारा काम है उसे बदलना—कार्ल मार्क्स।'

सुभान उनका शुक्रिया अदा ही कर रहा था कि इतने मे गार्ड ने सीटी बजा दी और इजन ने इसके जवाब मे दुहरी सीटी बजाई। अब जाकर सुभान को अनवर का खयाल आया। "कामरेड, यह है हमारे दोस्त अनवरअली—अभी मार्क्सिस्ट हैं तो नही लेकिन जल्द ही रास्ते पर आ जाएगे।"

"बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर, कामरेड," और एक बार फिर सबने उन लोगो से हाथ मिलाए। अनवर को इन मार्क्सिस्टो के जोश और उनकी लगन का अदाजा हुआ। उनमे से ज्यादातर उसीकी उम्र के थे और देखने मे सभी मध्यमवर्ग के बुद्धिजीवी मालूम होते थे जो मजदूर वर्ग के बीच क्राति का सदेश लेकर जा रहे थे। उसे इस बात पर ताज्जुब हो रहा था कि इन लोगो ने एक ऐसे काम का बीडा क्यो उठाया है जिसे आम लोगो का बहुत समर्थन नहीं प्राप्त है। और दूसरा सवाल उसके मन मे यह उठा कि वह कौन-सी चीज है जो इनका मनोबल बनाए रखती है ?

गाडी चल पडी थी। 'रैड बोगी' (लाल डिब्बे) मे से जोरदार नारो की आवाज़ सुनाई दी, 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद !' और 'इन्कलाब जिंदाबाद !' और अनवर ने देखा कि स्प्रैट और ब्रैडले ये नारे लगाने मे सबसे आगे थे। दो अग्रेज़ हिंदुस्तानियो के साथ मिलकर 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद !' का नारा लगा रहे थे—यह सचमुच एक अनोखी बात थी और अनवर ने मन ही मन फैसला

किया कि वह मार्क्स की किताबे बडे ध्यान से पढेगा, जिन्होने इस चमत्कार को मुमकिन बनाया था।

पहले उन्होने यह योजना बनाई थी कि वे कम्युनिस्ट नेताओ के साथ गाज़ियाबाद तक जाएगे और फिर वहा से अलीगढ की गाडी पकड लेंगे। लेकिन जब उनकी यह योजना कामयाब नही हुई तो वे पजाब-कलकत्ता मेल की जानी-पहचानी हरी गाडी को ढूढने लगे। प्लेटफार्म पर खद्दरपोश लोगो की एक भीड जमा थी। कुछ लोगो के हाथ मे कांग्रेस के तिरगे झडे थे। ज़ाहिर था कि कोई कांग्रेसी नेता उधर से जा रहा था और वहा के कांग्रेसी उसे बिदा करने आए थे। जब वे उस डिब्बे के पास से गुजरे तो उन्होने देखा सफेद कपडे पहने हुए एक आदमी मुस्कराकर जनसमुदाय के अभिवादन का जवाब दे रहा था। देखते ही उन दोनो ने पहचान लिया—यह तो जवाहरलाल नेहरू थे। अनवर के दिल मे हमेशा से एक ही नेता से मिलने की तमन्ना थी और वह थे जवाहरलाल नेहरू और इस वक्त वह उनके इतने पास खड़ा था। यह एक ऐसा मौका था जिसे वह हाथ से नही जाने दे सकता था। लेकिन क्या जवाहरलाल नेहरू उसके जैसे मामूली विद्यार्थी से मिलना गवारा करेगे? उसने सुन रखा था कि उनका मिज़ाज बेहद तेज़ है, और जब उन्हे किसी बात से विरोध होता था तो वे बडे से बडे नेता को भी, यहा तक कि अपने बाप को भी, नहीं बख्शते थे। अगर अनवर उनके पास जाकर उनसे कहे कि वह उनसे कुछ मिनट बात करना चाहता है तो कही वे इसे गुस्ताखी तो नहीं समझेंगे? शायद वे उसे डिब्बे से बाहर निकाल दें। और अगर यह हुआ तब तो सुभान और यूनिवर्सिटी के सारे लडके उसकी हँसी उडाएगे।

"आओ, गाड़ी चल रही है," सुभान ने कधा पकडकर उसे झिझोडा। अनवर जैसे सपना देखते-देखते जाग पडा। दोनो तीसरे दर्जे के सबसे पासवाले डिब्बे मे घुस गए।

गाजियाबाद के स्टेशन पर फिर बहुत बडी भीड 'पडित जवाहरलाल नेहरू की जय!' के नारे लगा रही थी और अनवर ने इतनी बड़ी भीड देखकर इस महान नेता से जाकर मिलने का इरादा छोड दिया।

इसके बाद गाड़ी खुर्जा जक्शन पर रुकी। वहां बहुत ही थोड़े लोग थे और अनवर ने सोचा कि यह आखिरी मौका है। इसके बाद गाडी अलीगढ पर ही रुकेगी और अगर वह अब नही गया तो फिर यह मौका कभी उसके हाथ नही लगेगा।

"आओ सुभान," उसने सुभान को बाहर घसीटते हुए कहा, "चलो, चलकर पडित जवाहरलाल से मिलते है।"

प्लेटफार्म पर नारे लगाते हुए स्थानीय वालटियरो के बीच से रास्ता बनाते हुए अनवर और सुभान डिब्बे मे घुस गए। चूकि पडितजी अभी तक वालटियरों से बाते कर रहे थे इसलिए जब तक गाडी चल नही दी तब तक उनका ध्यान ही इन दोनो की तरफ नही गया।

खिड़की से सिर हटाकर उन्होने पास की सीट पर पडी हुई किताबो में से एक उठा ली और दो घबराए हुए नौजवानो को आखे फाडकर अपनी तरफ घूरते देखकर उन्होने अग्रेजी मे कहा, "हैलो!" और फिर अपने साथी की तरफ मुडकर बोले, "महमूद, ये कौन लोग है?"

"मेरा खयाल है स्टूडेंट है, आपसे मिलना चाहते हैं। और इनकी काली शेरवानियो से तो पता चलता है कि अलीगढ के लडके होगे—मैं भी वही पढता था।" अनवर और सुभान को पता चला कि ये डाक्टर सैयद महमूद थे जो कैम्ब्रिज के ज़माने से पडितजी के पुराने दोस्त थे और अब उनके साथ आल-इडिया काग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी थे।

पडितजी ने बडे अनमनेपन से किताब नीचे रख दी और उनके खूबसूरत चेहरे पर झुझलाहट की एक हल्की-सी रेखा दौड गई और फिर वे इन बिन-बुलाए मेहमानो की तरफ मुडकर बोले, "तुम लोग बैठ क्यो नही जाते?" वे दोनो चुपचाप सीट के किनारे पर टिककर बैठ गए।

अनवर जिस आदमी की पूजा करता आया था वह उसके सामने बैठा था। पडितजी तस्वीरो मे जितने खूबसूरत लगते थे, सचमुच वे उतने ही खूबसूरत थे, लेकिन अनवर ने जैसा सोचा था उसके मुकाबले मे उनका कद काफी छोटा था। उनकी सफेद गांधी टोपी काफी तिरछी लगी हुई थी और खद्दर की ऊनी शेरवानी के तीसरे बटन मे गुलाब का एक ताज़ा लाल फूल लगा हुआ था। एक रईस बाप के इस बेटे के बारे मे अनगिनत किस्से मशहूर थे, जैसे यह कि वे

प्रिंस आफ वेल्स के साथ पढ़ते थे और यह कि उनके कपडे अक्सर पेरिस से धुलकर आते थे। लेकिन यह बात सभी लोग जानते थे कि उन्होने कौम की खातिर अपनी चल्ती हुई वकालत और ऐश-आराम की जिदगी छोड दी थी। कई बरस से वे काग्रेस के जनरल सेक्रेटरी थे लेकिन उनका सम्बन्ध कई ऐसे सगठनो से भी था जो ज्यादा क्रातिकारी थे, जैसे इडिपेडेस आफ इडिया लीग और यूथ लीग। कई लोगो का यह विश्वास था कि वे ही काग्रेस के पुराने दकियानूसी नेताओ को पूर्ण स्वराज्य के आदर्श की ओर ढकेल रहे थे। कुछ लोगो का तो यह भी खयाल था कि जल्द ही वे काग्रेस के प्रेसीडेंट बन जाएगे।

पडितजी के खूबसूरत माथे पर अधीरता की वजह से बल पड गए। "बोलिए, कुछ तो बोलिए। जाहिर है आप लोग इतनी दूर सिर्फ मुझे घूरने तो नही आए है।"

अनवर के दिमाग मे सैकडो ऐसे सवाल मचल रहे थे जिनके बारे मे वह पूछना चाहता था—पूर्ण स्वराज्य के बारे मे, सोशलिज्म के बारे मे, कम्युनिस्टो की गिरफ्तारी के बारे मे, हिंसा और अहिसा के बारे मे—लेकिन इस तरह अचानक उससे कुछ बोलने को कहा गया था कि वह सिर्फ यही पूछ सका कि "पंडितजी, क्या यह सच है कि आप प्रिंस आफ वेल्स के साथ पढते थे ?"

"सब बकवास है !" उन्होने ये शब्द इतने जोर से और इतने झुझलाकर कहे थे कि अनवर को तो ऐसा लगा कि अब उन लोगो को चलती गाडी से नीचे फेक दिया जाएगा। "यह सब बकवास है। मेरी तो समझ मे नही आता कि आखिर ये सब बेवकूफी के किस्से फैलाता कौन है ? जैसे किसी हिदुस्तानी के लिए बादशाह के बेटे के साथ पढना कोई बहुत बडी इज्जत की बात है। सच तो यह है कि न सिर्फ हम कभी साथ पढते नही थे बल्कि मुझे तो कभी मिलने या बात करने का भी इत्तफाक नही हुआ है। मेरा खयाल है कि अब आपका दूसरा सवाल यह होगा कि मेरे कपडे पेरिस से धुलकर आते है।"

इस किस्से के बारे मे पूछने की अनवर की हिम्मत नही हुई थी लेकिन चूंकि अब पडितजी ने खुद ही इस बात का जिक्र किया था तो अनवर ने बहुत खिसियाते हुए कहा, "लोग कहते तो यही है।"

"लोग ! आखिर ये लोग कौन हैं जिन्हे कोई नहीं जानता लेकिन जो हर

बात जानते है ?" पंडितजी जब ताने से बात करते थे तो उसमे भी बहुत तेजी होती थी। "जी हा, पेरिस मे कपडे धुलवाने की भी एक ही कही। इससे ज़्यादा बेतुकी और बेवकूफी की बात तो मैं सोच भी नही सकता और अगर कोई आदमी इतना बडा बेवकूफ हो कि वह ऐसी शेखी की हरकत करे तो मेरी राय मे तो उसे दुनिया के सबसे बडे बेवकूफ का इनाम मिलना चाहिए। लेकिन मैं आप लोगो को क्यो डाट रहा हू ?" और अनवर ने एक बहुत ही अजीब बात देखी। पलक मारते मे उनके चेहरे पर से झुझलाहट के निशान गायब हो गए और उसकी जगह एक दोस्ताना मुस्कराहट खेलने लगी। "अच्छा, हम लोग एक-दूसरे को जान ले। मेरा नाम तो शायद आप लोगो को मालूम ही होगा," इस बात पर अनवर और सुभान दोनो हस पडे, "और ये डाक्टर महमूद है।"

अनवर ने अपना और सुभान का परिचय दिया और दोनो से हाथ मिलाए। इसके बाद दोनो ने सोचा कि अब सीट पर आराम से बैठ जाने मे कोई हर्ज नही है। एक सिगरेट सुलगाकर पडितजी ने उन दोनो से पूछा कि वे सिगरेट तो नही पिएगे। और जब दोनो ने शुक्रिया के साथ मना कर दिया तो उन्होंने कहा, "तो फिर नारगी या सेब खा लो" और फिर एक टोकरी मे से, जो उनका कोई भक्त उनके लिए दे गया था, दो-दो सतरे और सेब निकालकर उन्होने हवा मे उछाले। सुभान ने तो अपना सेब पकड लिया लेकिन अनवर वाला नीचे गिर पडा।

"फीलिंडग मे कच्चे हो," कैम्ब्रिज मे पढे हुए पडितजी ने हसकर कहा, "मालूम होता है कभी क्रिकेट नही खेले।" और इसके बाद उनके बीच सकोच की जो दीवारे खडी थी वे ढह गई और ऐसा लगने लगा कि एक 'नेता' और दो विद्यार्थी नही बल्कि तीन ऐसे नौजवान आपस मे बाते कर रहे है जिन्हे एक जैसी बातो मे दिलचस्पी है। जवाहरलाल बहुत दोस्ताना रवैये से बातचीत कर रहे थे लेकिन उनके इस रवैये मे भी एक थोडा-सा सकोच या कुदरती झिझक थी। वे ज्यादातर किताबो के बारे मे, लेखको के बारे मे, कालेज की आम जिंदगी के बारे मे और राजनीति की तरफ लडको के रवैये के बारे मे बाते कर रहे थे।

"अच्छा, यह बताओ, तुम नौजवानो का आजकल की सियासी हालत के

बारे मे क्या खयाल है ?" उन्होने पूछा। अनवर की समझ मे नही आया कि वह सब लडको का रवैया मोटी-मोटी तरह कैसे बयान करे इसलिए उसने कहा, "मैं खुद तो गाधीजी के उसूलो को बहुत अच्छा समझता हू। मेरे ये दोस्त सुभान मार्क्सिस्ट है और मेरा एक और दोस्त है जो हथियारो के बल पर इन्कलाब लाना चाहता है, वह अंग्रेज अफसरो को जान से मार डालना चाहता है।" लेकिन उसने रतन का नाम नही बताया।

ऐसा लगा कि यह सुनकर जवाहरलाल कुछ सोचने लगे और थोडी देर तक वे बिलकुल चुपचाप बैठे रहे। और फिर उन्होने एक ऐसी बात कही जिसका अनवर उस वक्त कोई मतलब नही समझ सका और उस वक्त जो बातचीत हो रही थी उससे उसका कोई सबध भी नही मालूम होता था। ऐसा लगता था कि वे कोई बात सोच रहे थे जो उनके मुह से निकल गई थी। उन्होने कहा, "तूफान आनेवाला है।" और यह कहकर वे खिडकी के बाहर देखने लगे, उनकी नजरो के साथ-साथ अनवर की नज़रे भी बाहर आसमान की तरफ उठ गईं और वह देखने लगा कि क्या आसमान पर सचमुच तूफान आने के आसार दिखाई दे रहे है। जवाहरलाल दूसरे ही किस्म के तूफान की तरफ इशारा कर रहे थे क्योकि इसके बाद ही उन्होने कहा, "तुम नौजवानो को चाहिए कि आज़ादी की लडाई के लिए तैयार रहो। क्योकि जल्द ही वह वक्त आनेवाला है जब बहादुरी की इन बातो को बहादुरी के कामो से सच करके दिखाना होगा।"

सुभान ने अपनी आटोग्राफ-बुक निकालकर उनके सामने बढा दी और उसके पन्ने पलटते वक्त उन्होने अधिकारी के दस्तखत देखे। सुभान ने उन्हे बताया कि वे अभी कुछ ही घटे पहले कम्युनिस्ट कैदियो से मिलकर आए है। पंडितजी ने इस बात मे बडी दिलचस्पी दिखाई और सुभान ने मानो अपने मार्क्सिस्ट साथियो की तरफ से सवाल किया, "पडितजी, ट्रेड यूनियनो के जो ये लीडर गिरफ्तार किए गए है, उनके सिलसिले मे आप क्या करने जा रहे है?"

"मैं कह नही सकता," पडितजी ने स्पष्ट शब्दो मे स्वीकार किया, "हमें अभी तक इस सवाल पर गौर करने का वक्त नही मिला है। मैं तो समझता हू कि हमें उनकी पैरवी करने के लिए एक कमेटी बनानी चाहिए और उन्हें पूरी मदद देनी चाहिए।"

इस बात पर अनवर को बहुत ताज्जुब हुआ क्योकि उसने सुन रखा था कि कम्युनिस्ट काग्रेस के कट्टर दुश्मन थे और उसे 'प्रतिक्रियावादी' सगठन समझते थे और जवाहरलाल पर भी हमला करने से नही चूकते थे। इसलिए उसने बेझिझक पूछा, "ये लोग आपके खिलाफ, गाधीजी के खिलाफ और काग्रेस के खिलाफ जो प्रचार करते है क्या उसके बावजूद आप उनका साथ देंगे ?"

पडितजी के खूबसूरत होठो पर एक हलकी-सी मुस्कराहट दौड गई। "मैं जानता हूं, मैं जानता हू। कुछ कम्युनिस्टो के साथ तो आदमी अपना सब्र कायम ही नही रख सकता, उन्होने दूसरो को नाराज़ करने का एक खास तरीका अपना लिया है। लेकिन यह मत भूलो कि ये लोग बहुत आज़माए हुए लोग हैं और उन्हे बहुत बडी-बडा मुश्किलो का सामना करना पडा है। हमारा इनके साथ कितना ही मतभेद हो लेकिन हमे उनकी हिम्मत की और उनकी कुरबानी की तो तारीफ करनी ही पडेगी।"

उन्होने जल्दी से कुछ लिखकर आटोग्राफ-बुक सुभान को वापस कर दी। और फिर अनवर की तरफ मुडकर पूछा, "तुम यूनिवर्सिटी मे क्या पढ रहे हो ?"

"हिस्ट्री मे एम० ए० कर रहा हूं।"

"वही पुराने ढग की किताबे पढाई जाती होगी, मेरे खयाल मे—तारीखें, बादशाहो और लडाइयो का हाल, आम लोगो का कोई ज़िक्र नही। बहुत अच्छा और बहुत ज़रूरी सबजेक्ट है लेकिन मेरी राय मे हमारी यूनिवर्सिटियों मे बहुत बुरे ढग से पढाया जाता है।" अनवर ने कही पढ रखा था कि जवाहरलाल ने कैम्ब्रिज मे बायोलॉजी पढी थी और उसे इस बात पर बडा ताज्जुब हुआ कि वे हिस्ट्री मे इतनी दिलचस्पी दिखा रहे थे। इसलिए उसने कहा कि वह हिन्दुस्तान के इतिहास के किसी एक काल के बारे मे बुनियादी रिसर्च करना चाहता है।

"खयाल तो अच्छा है। लेकिन सिर्फ किताबो मे ही उलझकर न रह जाना। ज़रा बाहर निकलकर इतिहास की और अपनी पुरानी तहज़ीब की शानदार यादगारो को भी देखना जो कन्याकुमारी से लेकर तक्षशिला तक जगह-जगह दिखाई देती हैं—लेकिन इन सब चीज़ों से बढकर जनता को देखना क्योकि इनमे तुम्हे जीते-जागते इतिहास की झलक मिलेगी।" महान नेता ने अत मे

उसे यह सलाह दी।

उनकी बाते सुनते हुए अनवर को खयाल आया कि वह हिस्ट्री सोसायटी का सेक्रेटरी भी था, क्योकि अब उसकी समझ मे आ गया था कि उसे सेक्रेटरी की हैसियत से क्या करना चाहिए—वह अपनी सोसायटी के सारे सदस्यो को ऐतिहासिक महत्त्व की जगहे दिखाने ले जाएगा—सारनाथ और बनारस और इलाहाबाद और अयोध्या और आगरा और दिल्ली।…

लेकिन गाडी अब अलीगढ पहुच चुकी थी और उन्हे जी न चाहते हुए भी बिदा होना पड़ा। प्लेटफार्म पर लोगो की भीड जमा थी जिनमे से ज्यादातर विद्यार्थी थे—किसी तरह लोगो को भनक मिल गई थी कि पडितजी उस गाडी से उधर से गुज़रेगे। लोग नारे लगा रहे थे 'पडित जवाहरलाल नेहरू की जय।' अनवर और सुभान को भीड के बीच से निकलने मे काफी कठिनाई हुई लेकिन जब उन्होने मुड़कर देखा तो पडितजी उन्हे देखकर हाथ हिला रहे थे।

एक फटीचर इक्के पर बैठकर हास्टेल वापस जाते हुए अनवर ने सुभान से जवाहरलाल के आटोग्राफ दिखाने को कहा। उन्होने अपने दस्तखत के ऊपर सिर्फ ये शब्द लिखे थे : जान हथेली पर लेकर चलो।

इक्के की खड-खड अनवर के दिमाग मे लगातार यही शब्द प्रतिध्वनित कर रही थी—जान हथेली पर लेकर चलो! जान हथेली पर लेकर चलो! जान हथेली पर लेकर चलो! उसके दिमाग मे अभी यह बात बिलकुल साफ नही थी, लेकिन न जाने क्यो उसे ऐसा लग रहा था कि इन शब्दो ने उसके सामने ज़िदगी का वह रास्ता खोल दिया था जिसे वह बहुत दिनो से खोज रहा था।

इसके बाद कुछ दिन तक अनवर ने जो भी काम किया वह अपने सामने एक निश्चित लक्ष्य रखकर। उसने पडित जवाहरलाल नेहरू के साथ अपनी मुलाकात के बारे मे एक लेख लिखा, उसे फाड डाला, फिर लिखा, कई बार ठीक किया, फिर उसे साफ-साफ नकल किया और उसे काफी भारी-भरकम शीर्षक देकर—'हमारे भविष्य की आशा . नेहरू'—दिल्ली मे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के पते पर भेज दिया। लेकिन किसीको कानोकान इसकी खबर नही

लगने दी क्योकि वह यह नही चाहता था कि अगर वह लेख न छपे तो लोग उसका मजाक उडाए ।

इसी बीच मे उसने हिस्ट्री सोसाइटी का पिछला हिसाब-किताब देखा तो मालूम हुआ कि यूनिवर्सिटी के खजाची के पास सोसाइटी के छ सौ सत्तावन रुपये साढे नौ आने पडे हुए है, क्योकि पिछले साल के सेक्रेटरी ने कोई काम ही नही किया था इसलिए कोई खर्च भी नही हुआ था। फिर वह हिस्ट्री डिपार्टमेट के चेयरमैन को इस दौरे की इजाजत दे देने के लिए राजी करने के काम मे जुट गया। प्रोफेसर हबीब बहुत ही शरीफ आदमी थे इसलिए उन्हे राजी करने मे तो कोई कठिनाई नही हुई पर उसे प्रो-वाइस-चासलर से भी अपनी योजना को मजूर कराना था। यह आसान काम नही था क्योकि यह अग्रेज सज्जन क्लासरूम और खेल के मैदान के बाहर विद्यार्थियो की हर हरकत को सदेह की दृष्टि से देखते थे और उन्हे ऐसी हर हरकत मे राजद्रोह की सभावना दिखाई देती थी। उन्होने यूनिवर्सिटी सोशल सर्विस लीग की मिसाल भी पेश की और बताया कि इस सस्था ने आसपास के गावो के लोगो को छोटी-मोटी डाक्टरी सहायता पहुचाने के उद्देश्य से लडको की कुछ टोलिया साइकलो पर वहा भेजी थी—कुनीन की गोलिया बाटने के लिए, घावो पर टिक्चर आयोडीन लगाने के लिए और दुखती हुई आखे बोरिक से धोने के लिए—लेकिन यह निरापद योजना भी किस तरह कम्युनिस्टो की भयानक साजिश बन गई थी। एक लडके ने यूनियन मे खडे होकर बताया कि समाज-सेवा के नाम पर लगाए गए इन चक्करो के दौरान मे उसने गावो की क्या हालत देखी थी और फिर जमीदारो को और सरकार को गालिया देते हुए एक जोशीला भाषण दिया था। लेकिन उन्होने कहा कि अनवर अगर यकीन दिलाए कि यह योजना इतिहास के बारे मे लडको का ज्ञान बढाने के लिए ही बनाई गई है तो वे…

अनवर ने प्रो-वाइस-चासलर साहब के भी दस्तखत करा दिए और जो बीस लडके इस सफर के लिए चुने गए थे उन्होने अनवर के पास खर्च-भर के पैसे भी जमा कर दिए। एक लारी किराये पर ले ली गई और २६ मार्च को मुहअधेरे ही यह टोली रवाना हो गई।

यह सफर सचमुच बहुत ही दिलचस्प रहा। मथुरा और वृदावन के देहातो और आगरा और फतेहपुर सीकरी की आलीशान इमारतो का अपना-अपना निराला

ही आकर्षण था। कुछ लडको ने अपनी कापियो मे इन इमारतो की बनावट और पत्थर पर खुदी हुई अरबी की लिखाई की तस्वीरे बना ली, लेकिन कुछ लडको को सिर्फ सैर करने मे दिलचस्पी थी।

दिल्ली मे अनवर ठहरा अपने घर पर ही था लेकिन वह ज्यादातर वक्त दिल्ली घूमने और अपने साथियो को ऐतिहासिक महत्त्व की जगहे दिखाने मे खर्च करता था।

कुतुब मीनार जाते वक्त लारी बर्न बैस्टियन ब्रिज के पास मुडी और अनवर ने वहा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का साइनबोर्ड लगा हुआ देखा। उसने ड्राइवर से फौरन लारी रुकवाई और अपने साथियो से एक मिनट मे वापस आने को कहकर चला गया। वह एडीटर के दफ्तर मे गया और वहा 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के एडीटर मि० पोथन जोसफ ने उसका स्वागत किया। उन्होने अनवर को बताया कि उसका लेख जल्द ही छपेगा। उन्होने अनवर से यह भी पूछा कि उसका दिल्ली किस सिलसिले मे आना हुआ, और जब अनवर ने उन्हे बताया कि वह अपने कुछ साथियो को लेकर ऐतिहासिक स्थानो का चक्कर लगा रहा है तो उन्होने उससे अपने इस सफर के बारे मे कुछ लाइने लिख देने को कहा और चलते-चलते यह भी कहा कि यह खबर अगले दिन के अखबार मे छपेगी।

जिन दिनो अनवर दिल्ली मे था उसी जमाने मे एक और महत्त्वपूर्ण घटना हुई। वह एक दिन सुबह सो रहा था कि उसके अब्बा ने आकर उसे जगाया और कहा कि उसका दोस्त रामलाल उससे मिलने आया है।

वह अभी तक नीद के नशे मे था। बुडबुडाकर बोला, "रामलाल ? मैं किसी रामलाल को नही जानता।" लेकिन यह नाम दुहराते ही जैसे किसीने उसकी स्मृति के तार छेड दिए। वह उछलकर खडा हो गया और बोला, "कहा है वह ?"

रतन बैठक मे इंतज़ार कर रहा था और मिलते ही उसने पहली बात यह कही कि "मुझे बहुत खुशी है कि तुम्हारे अब्बा ने मुझे पहचाना नही।"

"रतन, मुझे तुम्हारी तरफ से बडी फिक्र थी। तुम जिस तरह अलीगढ से चले आए उसका मुझे बहुत अफसोस है। लेकिन तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ कि

मैं यहा हू ?"

रतन ने सुबह का लिपटा हुआ 'हिन्दुस्तान टाइम्स' उसे खोलकर दिखाया। "यह देखो, इसमे हिस्ट्री सोसाइटी और उसके सेक्रेटरी—ग्रेट मि० अनवरअली की खबर छपी है।"

"तो अच्छा ही हुआ कि उसमे मैने अपना नाम लिख दिया था। कही पुलिस तो तुम्हारा पीछा नही कर रही है।"

"नही, तुम फिक्र न करो, यहा दिल्ली मे मुझे कोई नही जानता।"

अनवर के अब्बा ने उन दोनो के लिए नाश्ता भिजवा दिया और दोनो दोस्तो ने पेट भरकर खाया। फिर अनवर कपडे पहनकर तैयार हो गया और दोनो साथ बाहर निकले। गलियो और बाजारो मे चहलपहल शुरू होने लगी थी और अखबार बेचनेवाले लडके खास-खास खबरे चिल्ला-चिल्लाकर अखबार बेच रहे थे।

जब वे दरियागज के चौराहे के पास पहुचे तो रतन ने कहा, "अनवर, याद है तुमने एक बार कहा था कि तुम हमारी मदद करने के लिए कुछ भी कर सकते हो…"

"हा, बशर्ते उसमे किसीको मारने का सवाल न हो। मैंने यह बात उस वक्त भी साफ कर दी थी।"

"नही," रतन ने बहुत धीरे-धीरे सोच-सोचकर कहा, "कोई मारा नही जाएगा।"

"तुम मुझसे क्या काम लेना चाहते हो ?"

"मैं तुम्हे अपने एक दोस्त से मिलाना चाहता हूं। वे वहा उस मोटर मे हम लोगो का इतजार कर रहे हैं।"

•

रतन का दोस्त उन दोनो से उम्र मे बहुत बडा नही था। उसका चेहरा बहुत हसमुख था और उसपर बडी कोमलता थी, पर ऐंठी हुई नुकीली मूछो की वजह से उसपर एक कठोरता आ गई थी। वह फौजी ढग की खाकी कमीज और गहरे रंग की पतलून पहने था और सिर पर फेल्ट हैट लगाए था जिसकी कगार सामने को कुछ झुकी हुई थी जिसका साया उसकी आखो पर पड रहा था।

अनवर ने उससे हाथ मिलाया और उसे ऐसा लगा कि उस हाथ की पकड मे ताकत भी थी और दोस्ती भी। लेकिन उन दोनो का एक-दूसरे से परिचय नही कराया गया। अनवर ने यह समझ लिया कि वह उसके बारे मे जानता ही होगा, और चूकि उसे मालूम था कि इस तरह के इन्कलाबी कितनी सावधानी बरतते थे, इसलिए उसने उसका परिचय पूछा भी नही। तीनो मोटर की अगली सीट पर घुस-पिलकर बैठ गए और मूछोवाले उस नौजवान ने स्टार्टर दबाया। गियर बदलते ही वह बडी-सी काली मोटर हवा से बाते करने लगी। वे तेजी से नई दिल्ली की तरफ बढ रहे थे।

अनवर उन दोनो इन्कलाबियो के बीच मे कुछ घबराया और डरा हुआ बैठा था। उसे यकीन था कि पुलिस इन दोनो की तलाश मे होगी। अनवर ने कनखियो से मोटर चलानेवाले को देखा। मोटर चलानेवाले के हाथ बहुत चिकने और साफ थे, उसकी उगलिया लम्बी और नाजुक थी, जैसी कलाकारो की होती है। लेकिन जिस मजबूती के साथ वह स्टियरिंग का पहिया पकडे हुए था उससे उन हाथो की ताकत का भी पता चलता था। उसमे परस्पर-विरोधी गुणो का यह अनोखा मिश्रण और कई बातो मे भी व्यक्त होता था—उसकी तिरछी लगी हुई हैट उसके स्वभाव की बाकी सादगी के साथ मेल नही खाती थी और हालाकि उसकी कमीज और उसकी मूछो पर फौजीपन की छाप थी पर वह बहुत ही धीमी आवाज मे गालिब की एक गजल गुनगुना रहा था। जो शेर वह गुनगुना रहा था वे भी बहुत अर्थपूर्ण थे :

आज वा तेगो-कफन बाधे हुए जाता हू मै,
उज्र मेरे कत्ल करने मे वह अब लाएगे क्या ?

इस गुमनाम इन्कलाबी को अपने प्रिय शायर गालिब के शेर गुनगुनाते देखकर अनवर उसकी ओर बरबस आकर्षित हुआ। मोटर तेजी से भागी चली जा रही थी और अनवर मन ही मन सोच रहा था कि क्या वह यह गजल सिर्फ इसलिए गुनगुना रहा है कि उस वक्त इत्तफाक से वही गज़ल उसके दिमाग मे आ गई थी ? या इसलिए कि उस गजल मे इन्कलाबी की जान की बाज़ी लगा देने और अपने-आपको कुरबान कर देने की भावना व्यक्त होती थी ?

मोटर अचानक बाईं तरफ घूमकर पुराने किले की ओर बढी और अनवर के विचारो की शृखला भंग हो गई।

"किधर जा रहे है हम लोग ?" उसने घबराकर पूछा।

"फिक्र न करो," रतन ने उसे तसल्ली देते हुए कहा, "तुम नई दिल्ली मे जहा भी चाहोगे वहा हम तुम्हे उतार देगे, लेकिन पहले हमे कुछ बातें करनी है।"

खडहरो के पास पहुचकर मोटर रुक गई। मोटर चलानेवाले ने दरवाजा खोला और उन दोनो को आराम से बैठकर बाते करने के लिए जगह देकर बाहर निकल गया।

"कल तुम सब लोग असेम्बली जा रहे हो ?" रतन के इस सवाल मे अनवर को कोई तुक नही दिखाई दी।

"हा, जा तो रहे है, लेकिन तुम्हारा मतलब क्या है ? ."

"वह मै अभी तुम्हे बता दूगा, लेकिन पहले तुम यह बताओ कि तुम्हें अपने साथियो के लिए इक्कीस पास कहा से मिलेगे ?"

"हमारे प्रोफेसर साहब ने और अब्बा ने असेम्बली के कई मेम्बरो के नाम खत दिए है। हर मेम्बर दो पास दे सकता है। इस तरह हमें काफी पास मिल जाएगे।"

"अच्छी बात है। अगर तुम्हे इक्कीस पास मिल सकते हैं तो तेईस भी मिल सकते हैं।" रतन ने यह बात कुछ इस तरह कही जैसे हुक्म दे रहा हो।

आखिरकार अनवर को इस बात का भयावह अर्थ समझ मे आया और उसने ऊचे स्वर मे कहा, "नही, नही। यह मुझसे नही होगा। तुम लोग कोई ऐसी-वैसी हरकत कर बैठोगे। हम सब पकडे जाएगे।·· नही, नही।···"

"चिल्लाओ नही," रतन ने सख्ती से कहा, "मैं तुमसे वादा कर चुका हूं कि किसीको जान से नही मारा जाएगा।"

अनवर ने अपने दोस्त को देखा। क्या यह वही मस्त शरारती लडका था जिससे वह अमृतसर मे मिला था और जिसे उसने अपना दोस्त बनाया था ? उसके चेहरे पर एक अजीब जानी-पहचानी कठोरता थी, उसके होठों पर एक हलकी-सी कटुता थी और आखो मे क्रूरता की चमक। उसने यह मुद्रा पहले कहा देखी थी ? अचानक उसे जलियावाला बाग की याद आई, गोली चलने के बाद वहा मौत का सा सन्नाटा छा गया था और एक लड़का, जिसकी लटे उसकी पीली पगडी से बाहर निकली हुई थीं, अपने मृत पिता के चेहरे की ओर देख रहा

था। यह भयानक क्षण, जिसका अनुभव उन दोनो ही को एकसाथ हुआ था, उन दोनो के बीच सबध स्थापित करनेवाली कडी था और अनवर जानता था कि रतन उससे जो कुछ करने को कह रहा था उससे वह इकार नही कर सकता।

"कामरेड, मेरी बात तो सुनो " मूछोवाले उस लम्बे आदमी ने अनवर से कहा और जिस मित्रता के भाव से उसने अनवर को 'कामरेड' कहा था उसने अनवर की व्यथित आत्मा के लिए मरहम का काम किया, "हम किसी दूसरे को खतरे मे नही डालना चाहते लेकिन यह काम जरूरी है। जो लोग बहरे है हमे उनके कान खोलने है। और यह कल ही होना है। सिर्फ तुम ही हमारी मदद कर सकते हो।"

वह हिंदुस्तानी हलके-से पजाबी लहजे के साथ बोलता था और उसके शब्दो मे जोर भी था और विवश कर देनेवाली विनम्रता भी। परन्तु जिस चीज़ ने अनवर की सारी आपत्तियो को खत्म कर दिया वह था उसकी आखो का भाव। उसकी आखो मे दृढ सकल्प की चमक थी। एक अजीब आकर्षण था उन आखो मे और उनकी गहराई मे बेहद उदासी की एक झलक थी। वह एक ऐसा आदमी था जो बहुत दु ख झेल चुका था और मौत की आखो मे आखे डालकर देख चुका था।

अनवर ने अपनी आखे उसकी तरफ से फेर ली और बोला, "पास तो मिल जाएगे, लेकिन अपना वादा याद रखिएगा। कोई जान से न मारा जाए।"

गैलरी मे से देखने पर अर्धवृत्ताकार असेम्बली चैम्बर एक गहरा कुआ लगता था और वहा इतनी ऊचाई से 'माननीय सदस्यो' की आवाजे ऐसी सुनाई देती थी जैसे बहुत-से मेढक बोल रहे हो और उनके गले बैठे हुए हो। अनवर के दिमाग मे फौरन यह बात आई कि वह असेम्बली के बारे मे अपने अनुभवो पर एक लेख लिखेगा जिसका शीर्षक होगा 'कुए के मेढक।' विरोधी पक्ष के सदस्य, जिनमे से बहुत-से सफेद गांधी टोपिया लगाए थे, उठते थे, झुककर अध्यक्ष के प्रति सम्मान प्रकट करते थे, अपनी बात कहते थे, लेकिन सरकारी पक्ष के सदस्य पत्थर की मूरत की तरह चुपचाप बैठे रहते थे और विरोधी पक्ष की बहुत मेहनत

के साथ जुटाई गई दलीलो की तरफ कोई ध्यान ही नही देते थे। अब तक अनवर अखबारो मे जो कुछ पढता आया था उसके अनुभव से वह जानता था कि अगले दिन राष्ट्रवादी अखबार इस खबर को इस शीर्षक से छापेगे 'औद्योगिक झगडो के बिल की कडी आलोचना,' लेकिन यहा वह अपनी आखो से जो कुछ देख रहा था उसमे न क्रोध था न कडी आलोचना, सिर्फ शब्दो का एक क्रम था जो समाप्त ही नही होता था और उन्ही शब्दो को बार-बार सुनते-सुनते नीद आती थी, सब कोरे शब्द और कुछ नही।...इस सारी नीरस कार्रवाई मे अगर कही थोडी-सी जान दिखाई दी तो वह थी विरोधी पक्ष के नेता पडित मोतीलाल नेहरू के जोशीले भाषण मे। खादी की रेशमी शेरवानी पहने और गाधी टोपी लगाए वे बहुत रोबदार लग रहे थे। इसके बाद फिर जैसे हर चीज़ गहरी नीद मे सो गई और अनवर को यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सरकारी पक्ष का एक सदस्य, एक मोटा-सा लाल मुहवाला अग्रेज, बाकायदा खर्राटे ले रहा था और उसके पास बैठा हुआ एक दूसरा अग्रेज़ 'क्रासवर्ड पजिल' हल कर रहा था। और उनके पीछे एक गिरोहबद जत्थे की शक्ल मे असेम्बली के नामज़द किए हुए सदस्य बैठे थे। यही वे आज्ञाकारी महानुभाव थे जो एक के बाद दूसरे बिल पर सरकार की तरफ से मशीन की तरह हाथ उठा देते थे। वे बडी बेचैनी से अपनी कुर्सी पर पहलू बदल रहे थे और इस बात का इतज़ार कर रहे थे कि कब वोट लेने का वक्त आए और वे उठकर समर्थको के कक्ष मे चले जाए और इस प्रकार मज़दूर वर्ग के आन्दोलन को कुचलने के लिए देश पर थोपे गए कानून को जनसाधारण के समर्थन की झूठी प्रतिष्ठा प्रदान करे। और इस धोखेबाज़ी को, लोकतत्र के नाम पर होनेवाले इस अत्याचार को, रोकने के लिए विरोधी-पक्ष की ओर से जनता के प्रतिनिधि सिर्फ बाते ही बाते करते थे, जिन बातो को कोई सुनता भी नही था।

इस कुए मे झाककर देखते समय अनवर के दिमाग मे कई बार यह शरारत-भरा विचार आया कि कोई निकम्मेपन और निरर्थकता के इस कुए मे एक पत्थर फेक दे और इसके ठहरे हुए गदे पानी मे हलचल पैदा कर दे। काश...

वह सोच रहा था कि आखिर रतन के दोनो दोस्त क्या करनेवाले हैं?—एक जिसकी मूछ ऊपर को ऐठी हुई थी और दूसरा जो देखने मे बगाली लगता था? अब तक तो वे अपने वादे पर कायम थे।

असेम्बली-भवन के अन्दर घुसते ही उन्होने कार्ड अनवर को वापस कर दिए थे और अनवर ने योजना के अनुसार उन्हे फाड़कर फ्लश मे बहा दिया था। अनवर ने उनके साथ गुलाबी रग के कुछ पर्चे देखे थे और शायद वे उन्हे नीचे फेकने के लिए मौके की ताक मे थे। सुर्ख इन्कलाबी पर्चों की बारिश से ये लोग सचमुच जाग उठेंगे। उनकी सारी शिथिलता दूर हो जाएगी। अनवर ने नज़र दौड़ाकर देखा तो उसे वे दोनो नौजवान, जिनके नाम वह अभी तक नही जानता था, पब्लिक गैलरी के दूसरे सिरे पर दिखाई दिए। वे सरकारी सदस्यो के ठीक ऊपर पहली कतार मे बैठे थे।

"देखो, वाइसराय के बॉक्स मे कौन है ?" 'राज़' ने अनवर के कान मे कहा, "मेरे खयाल मे तो अपने वही दोस्त सर जान साइमन हैं।"

अनवर ने उनके सिर के छितरे अधपके बालो और उनके डबल-ब्रेस्ट सूट से पहचाना कि यही रायल कमीशन के चेयरमैन सर जान साइमन थे, जो पिछले साल सारे देश मे साम्राज्यवादी दमन का प्रतीक बन गए थे। न जाने क्यो अनवर की नज़र अनायास ही रतन के दोस्तो की तरफ उठ गई और उसने देखा कि ऐंठी हुई मूछोवाला नौजवान वाइसराय के बॉक्स की तरफ टकटकी बाधे देख रहा है, मानो दोनो गैलरियो के बीच के फासले का अदाज़ा लगा रहा हो, जो पूरे चैम्बर की चौड़ाई के बराबर था।

अनवर का दिल दहल गया। बार-बार वह अपने मन को समझा रहा था, 'लेकिन उन्होने वादा किया है। उन्होने वादा किया है।' उसने जल्दी से नीचे बैठे हुए लोगो पर नज़र डाला। जो आदमी बैठा 'क्रासवर्ड पज़िल' हल कर रहा था उसने शायद उसे हल कर लिया था और अब वह बैठा 'इलस्ट्रेटेड वीकली' के पन्ने उलट रहा था। लाल मुहवाला वह मोटा आदमी अभी तक खर्राटे भर रहा था। सरकारी सदस्यो मे से कोई भाषण दे रहा था। फिर जब उसकी नज़र लौटकर गैलरी पर पड़ी तो उसने देखा कि वह मूछोवाला नौजवान उठ खड़ा हुआ जैसे बाहर जा रहा हो और दूसरे ही क्षण उसने कुछ नीचे फेंक दिया था...

बम ! एक भयानक विस्फोट के साथ सरकारी सदस्यों के सामने फर्श पर बम फट गया और उसके फौरन ही बाद लाल पर्चों की वर्षा शुरू हो गई। सदस्यों में, खास तौर पर अफसरो और अंग्रेज़ों मे खलबली मच गई। कुछ भागकर

बाहर पाखानो मे जा छिपे, कुछ रेंगकर मेज़ो के नीचे छिप गए। हर आदमी दरवाज़े की तरफ भागने की कोशिश कर रहा था और देखते-देखते सारा चैम्बर बदबूदार धुए से भर गया। अनवर ने देखा कि सिर्फ दो आदमी ऐसे थे जो इस घबराहट का शिकार नही हुए—एक थे विट्ठलभाई पटेल, लम्बी दाढीवाले स्पीकर और दूसरे पडित मोतीलाल नेहरू जो अपनी पार्टीके सदस्यो को समझा रहे थे : "अरे भाई, भागते क्यो हो, ये तो कोई हमारे ही आदमी होगे।"

इस भगदड के शोर-गुल, औरतो की चीख-पुकार और पुलिस की सीटियो की तेज आवाज को दबाकर एक ललकार चैम्बर मे बार-बार गूज रही थी : इन्कलाब जिन्दाबाद ! इन्कलाब जिन्दाबाद !

यह उसी मूछोवाले नौजवान की आवाज थी। अनवर ने उसे देखा और उसका वह चित्र अनवर के हृदय पर हमेशा के लिए अकित हो गया। वह एक कुर्सी पर निडर खडा था—एक पूरे साम्राज्य के खिलाफ एक अकेला आदमी—और वह नारा लगा रहा था जो शीघ्र ही एक पूरे राष्ट्र के लिए सघर्ष की ललकार बन जानेवाला था।

पुलिस उसे हाथ लगाते हुए डर रही थी इसलिए उसने बडी बेपरवाही से अपना रिवाल्वर उनके सामने फेक दिया और अपने-आपको और अपने साथी को पुलिस के हवाले कर दिया। अनवर जब दूसरे विद्यार्थियो के साथ बाहर जा रहा था तो उसने पुलिस के एक दरोगा को उस लम्बे कदवाले नौजवान से उसका नाम पूछते सुना, जिसकी मूछो मे अब भी विद्रोह का बाकपन था। उसने बडे गर्व से उत्तर दिया, "भगतसिंह।" जब वह पास से होकर गुज़रा तो अनवर को बहुत डर लगा। अगर उसके चेहरे से जरा भी इशारा मिला कि वह अनवर को पहचानता है तो अनवर गिरफ्तार कर लिया जाएगा। लेकिन भगतसिंह पास से होकर गुज़र गया और उसके चेहरे का भाव ज़रा भी नहीं बदला, फिर भी उसकी आखो मे मुस्कराहट की एक चमक थी मानो वह अनवर से कह रहा हो, "कामरेड, हम अपने वादे पर कायम रहे न ?"

वे उसे गिरफ्तार करके ले गए पर बाहर बरामदे से उसकी पाटदार आवाज़ पूरे चैम्बर की दीवारो को हिलाती हुई गूजती रही : इन्कलाब ज़िन्दाबाद !!

और उस क्षण अनवर ने महसूस किया कि ठहरा हुआ गदला पानी तली

तक हिल गया है। बहरों के कान खुल गए हैं। इन्कलाब आ गया है। अब हिन्दुस्तान वह पहलेवाला हिन्दुस्तान नहीं रह जाएगा—उस एक बम का धमाका हर हिन्दुस्तानी की ज़िन्दगी को बदल देगा।



तूफान

खुली साज़िश

"...इसलिए यह कांग्रेस पिछले वर्ष के कलकत्ता अधिवेशन द्वारा स्वीकार किए गए प्रस्ताव के अनुसार यह घोषणा करती है कि कांग्रेस के संविधान की धारा एक में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ 'पूर्ण स्वराज्य' होगा...।"

जिस समय यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया उस समय अध्यक्ष के स्थान के पीछे लगी हुई घड़ी बारह बजा रही थी। बड़े-से पंडाल में एक लाख दर्शक खचाखच भरे हुए थे, पंडाल इतना बड़ा होते हुए भी उनके लिए छोटा था लेकिन उन्हें इस बात की तसल्ली थी कि लाहौर में दिसम्बर की रात की उस कड़ाके की सर्दी में एक-दूसरे से सटकर बैठने की वजह से उनके शरीर में कुछ गर्मी आ रही थी। अनवर भी उनके बीच बैठा हुआ तालियां बजा रहा था और नारे लगा रहा था। तालियां बजाते-बजाते उसकी हथेलियां सूज गई थीं और गला बैठ गया था। उसके गालों पर खुशी के आंसू बह रहे थे। यही वह क्षण था जिसकी वह और देश के सभी नौजवान कई वर्षों से प्रतीक्षा करते आए थे, जिस क्षण के लिए इतने लोगों ने मुसीबतें झेली थीं और अपनी जान जोखिम में डाली थी, मार खाई थी, यातनाएं सही थीं और अपनी जान तक दे दी थी।

जनसमुदाय खुशी के मारे पागल हो उठा था और लोग 'महात्मा गांधी की जय!' और 'पंडित जवाहरलाल नेहरू की जय!' के नारे लगा रहे थे। इन नारों की गूंज में घड़ी की आवाज़ बिलकुल डूबकर रह गई थी। सभी नौजवानों के गलों से 'इन्कलाब ज़िंदाबाद' का वीरतापूर्ण नारा गूंज उठा जिसे अनवर ने असेम्बली चैम्बर में बम फटने के बाद भगतसिंह को लगाते सुना था। भीड़ इस नारे को मंत्र की तरह बार-बार दुहरा रही थी और इस गूंजती हुई आवाज में अपनी आवाज़ सुनकर अनवर का दिल बल्लियों उछलने लगा। यह आज़ादी का नया मंत्र था और अनवर उस नौजवान के बारे में सोचने लगा जिसे कालेपानी की सज़ा हुई थी और जो इस वक्त लाहौर में सांडर्स का खून करने के इससे भी गंभीर

अपराध की सज़ा सुनाए जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। इस शोर-गुल, जयजयकार और नारेबाजी के कोलाहल मे उसे बरबस भगतसिह और उसके नौजवान बंगाली साथी बटुकेश्वर दत्त की याद आ रही थी। न केवल सरकार के पिट्ठू अखबारों और नरम दलवालो ने बल्कि राष्ट्रवादी अखबारो और महात्मा गाधी जैसे काग्रेस के नेताओ ने भी उनका साथ देने से इंकार कर दिया था और 'असेम्बली बम काड' के लिए उनकी निंदा की थी। फिर भी उस दिन इन दोनो ने जो विद्रोह का नारा लगाया था वह आज सारे देश मे करोडो लोगो की ज़बान पर था। अपने चारो ओर अनवर को धुर दक्षिण से आए हुए काले रग के तमिलवासी, दुबले-पतले फुर्तीले बंगाली, मोटे गुजराती और गठे हुए शरीर-वाले मराठे बैठे दिखाई दे रहे थे और वे सभी एक स्वर से फारसी के दो शब्द चिल्ला रहे थे : 'इन्कलाब ज़िंदाबाद !' क्राति अमर हो !

देखते-देखते चारो ओर यह खबर फैल गई कि इस ऐतिहासिक प्रस्ताव के स्वीकार किए जाने के अवसर पर काग्रेस के नये अध्यक्ष पडित जवाहरलाल नेहरू आज़ादी का झडा फहराएगे। इस खबर के फैलते ही सब लोग बाहर निकलने के दरवाज़ो की तरफ भाग पडे।

नदी के मटीले पानी मे काग्रेस के कैम्प की रोशनियो का प्रतिबिम्ब झिल-मिला रहा था, पच्छिम की तरफ से ठडी हवा चल रही थी जो तीर की तरह चुभती हुई उनकी हड्डियो को भी बेधे दे रही थी। पर उनके दिलो में आज़ादी की नई ज्योति जल उठी थी और एक बार फिर आधी रात का निस्तब्ध वायु-मडल उनके नारो से गूज उठा, हालाकि सर्दी के मारे उनके दांत बज रहे थे। बिजली की तेज़ रोशनियो का मुह पडित जवाहरलाल नेहरू की तरफ मोड दिया गया। झंडे के नीचे काली शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने खडे हुए पडितजी अपने कद से ज़्यादा लम्बे लग रहे थे। अनवर को ऐसा लगा कि वे एक व्यक्ति भी हैं और एक प्रतीक भी। इस उमडती हुई भीड को चीरकर वह आगे बढने की कोशिश कर रहा था। उसे शुरू के कुछ शब्द सुनाई नही दिए क्योकि जवाहरलाल धुआंधार भाषण करनेवालों में से नही थे। लेकिन जब भीड़ बिलकुल खामोश हो गई तो उनकी साहस-भरी आवाज़ बिलकुल साफ सुनाई देने लगी और अनवर को ऐसा लगा कि वे ये शब्द उसीसे कह रहे हैं :

"अब हमने अपने मुल्क को विदेशी हुकूमत से आज़ाद करने की खुली

साजिश की है और, साथियो, आपको, हमारे देश के सब भाइयो और बहिनो को, इस खुली साजिश मे शामिल होने का न्योता दिया जाता है। लेकिन इसके बदले मे आपको तकलीफे उठानी पडेगी, जेल जाना पडेगा और हो सकता है आपको अपनी जान की भी कुरबानी देनी पडे। लेकिन आपको यह तसल्ली रहेगी कि आप हिंदुस्तान की खातिर जो कुछ कर सकते थे वह आपने किया और आपने इसानो को उनकी मौजूदा गुलामी से छुडाने मे कुछ थोडी-बहुत मदद की।…"

झडा ऊपर चढकर फहराने लगा—लाल, सफेद और हरे रग का तिरगा झंडा जिसपर एक चरखा बना हुआ था। एक क्षण के लिए पूरी भीड़ पर सन्नाटा छा गया, लोग इस ऐतिहासिक क्षण के महत्त्व से और उस विद्रोह-भरी चुनौती के गभीर परिणामो को सोचकर कुछ सहम-से गए थे। इतने मे एक ओर से तालियो की आवाज़ लहर की तरह उठी और देखते-देखते तालिया तूफान की तरह गूज उठी और नारो मे एक नया नारा जुड गया : झडा ऊचा रहे हमारा!

३१ दिसम्बर १९२९!…१२ बजे रात! यह अविस्मरणीय क्षण था। एक वर्ष समाप्त हो रहा था और एक नया वर्ष आरभ हो रहा था। पर केवल इतनी ही बात नही थी। एक युग समाप्त हो रहा था और एक नया युग आरभ हो रहा था। अनवर अपने कैम्प मे वापस आया तो उसे ऐसा लगा रहा था कि वह अब भी भावनाओ की लहर पर सवार है और उसे ऐसा लगा कि उसने इतिहास की धारा को मुडते देखा है और उसे मोडने मे हिस्सा लिया है।

उस छप्पर मे छः लोग ठहरे हुए थे, सबके सब नौजवान। अनवर के अलावा अलीगढ से तीन और आदमी आए थे—उस्मान फज़लभाई, 'राज़' और एक बहुत छोटा स्कूली लडका यूनिस जो उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रात का रहनेवाला था और लाल कुर्तीवालो के नेता खान अब्दुलगफ्फारखा का कोई बहुत नज़दीक का रिश्तेदार था। बाकी दो मे एक था राय, जो किसी बंगाली अखबार का रिपोर्टर था और दूसरा था सुदरम जो दक्षिण भारत मे बेजवाडा नामक नगर का विद्यार्थी कार्यकर्ता और युवक सघ का सदस्य था।

एक-एक करके वे वापस लौटे और कपडे उतारकर सर्दी मे ठिठुरते हुए अपनी-अपनी रज़ाइयो और कम्बलो में घुस गए। परंतु उस पठान लडके को

छोडकर, जो दिन-भर लाल कुर्तीवाले वालटियरो के साथ परेड करते-करते थककर चूर हो गया था और आते ही सो गया था, उनमे से किसीको भी नीद नही आ रही थी। राय एक सिगरेट से दूसरी सिगरेट सुलगाकर लगातार धुआ उडा रहा था और सुदरम हर बार उसे याद दिलाता था कि वह सिगरेट का टुर्रा देखभालकर फेका करे नही तो आग लग जाएगी। 'राज' कोई नज़्म गुनगुना रहा था, ऐसा लगता था कि उस दिन की प्रेरणाप्रद घटनाओ से प्रभावित होकर वह कोई नज्म कह रहा था। उस्मान नज्म पूरी होने से पहले ही सुन लेना चाहता था, लेकिन 'राज' राय और सुदरम के सामने सुनाना नही चाहता था क्योकि उनकी उर्दू की जानकारी न होने के बराबर थी। लेकिन टीप का मिसरा बार-बार गुनगुनाते हुए एक बार अनजाने ही उसने उसे जोर से पढ दिया। कविता का शीर्षक था 'आधी रात का सितारा' और उसमे शायर ने उन ऐतिहासिक घटनाओ को जो उसने देखी थी तथा अपने हृदय पर उनके प्रभाव को प्रतीकात्मक ढग से बयान किया था।

अनवर तो हमेशा से 'राज' की शायरी का दीवाना था। वह हर शेर पर वाह-वाह करने लगा। उसकी तारीफ सुनकर राय और सुदरम ने अग्रेजी मे उसका अनुवाद करने की माग की, लेकिन अग्रेजी मे बगाली पत्रकार को उसमे कोई मजा नही आया और उसने ऐसे विचार व्यक्त किए जिन्हे सुनकर अनवर दग-रह गया क्योकि उनमे उसे देशभक्ति के अभाव का आभास हुआ। राय ने कहा कि गाधी ने (वह उन्हे 'गाधीजी' तक नही कहता था) वामपक्षी विरोधियो को नीचा दिखाने के लिए और काग्रेस पर फिर पहले की तरह अपना पूरा प्रभुत्व कायम करने के लिए तिकडम से पडित जवाहरलाल नेहरू को काग्रेस का अध्यक्ष चुनवा दिया था। अनवर यह नही बर्दाश्त कर सकता था कि उसके प्रिय नेता की इस तरह आलोचना की जाए, इसलिए उसने ज़बर्दस्त विरोध करते हुए कहा, "हर आदमी जानता है कि जवाहरलाल का चुनाव ज़्यादा तरक्कीपसंद नौजवान लोगो की जीत है। तुमने अभी प्रेसीडेट की हैसियत से उनकी तकरीर सुनी है। अगर तुम अब भी उन्हे 'रिएक्शनरी' समझते हो तो यह तुम्हारी हठधर्मी है और कुछ नही।"

"और तुम बिलकुल अनाडी किस्म के जज्बाती आदमी हो जो आदमी को हीरो बनाकर उसे पूजते हो," राय ने जवाब दिया, "और तुमने अभी तक

आदमी की बातो और उसके कामो मे फर्क करना नही सीखा है।"

इसपर उस्मान और सुन्दरम दोनो को गुस्सा आ गया। वे दोनो भी अनवर की तरह ही नेहरू के पक्के भक्त थे, इसलिए वे इसकी तरफ से बोलने लगे। उस्मान ने कहा कि जो नेहरू के नेतृत्व को स्वीकार नही करता वह गद्दार है, और सुदरम ने, जिसकी स्मरण-शक्ति बहुत अच्छी थी, पडितजी द्वारा काग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से दिए गए भाषण के कुछ हिस्से मुहज़बानी दुहराना शुरू किया—वह हिस्सा जिसमे उन्होने पूरी आजादी और अग्रेजो से नाता तोड़ लेने पर ज़ोर दिया था, खुले-आम यह स्वीकार किया था कि वे सोशलिस्ट हैं और हिन्दुस्तान मे सोशलिज्म कायम करने के लिए काम करेगे। उन्होने देसी रज-वाडो पर हमले किए थे, गाधीजी के 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त से खुला मतभेद प्रकट किया था और राष्ट्रीय काग्रेस तथा मज़दूरो की ट्रेड यूनियन काग्रेस के बीच घनिष्ठतर सहयोग की भविष्यवाणी की थी। उस साल वे इन दोनो ही सगठनो के अध्यक्ष थे।

"सब बाते ही बाते है, कोरी बाते," अविश्वासी राय ने दूसरी सिगरेट जलाते हुए कहा और एक बार फिर नेहरू के तीनो भक्तो ने एकसाथ उसपर जवाबी हमला शुरू कर दिया।

"अच्छी बात है," अनवर ने अपने दोनो समर्थको की बात काटकर ऊची आवाज़ मे कहा, "हम थोडी देर के लिए माने लेते है कि गाधीजी रिएक्शॅनरी (प्रतिक्रियावादी) हैं और जवाहरलाल कमज़ोर आदमी है और उनमे बिलकुल दम नही है। लेकिन क्या तुम किसी दूसरे नेता का नाम बता सकते हो जिससे हम आज़ादी की लडाई की रहनुमाई करने की उम्मीद कर सकते है ?"

उसने सोचा था कि इस बात से वह राय का मुह बन्द कर देगा, पर राय को इस सवाल का जवाब ढूढने मे एक क्षण भी नही लगा। उसने बडे विश्वास के साथ उत्तर दिया, "सुभाष बोस।"

उस्मान के तो यह सुनते ही जैसे आग लग गई। उसने जलकर कहा, "तुम बगाली लोग तो हमेशा किसी बगाली को ही पसद करते हो। इसलिए तुम्हारी तरक्की की सारी बाते खुली प्राविंशलिज़्म (प्रान्तीयता) के अलावा और कुछ नही हैं।"

इसपर बहस मे फिर गरमी पैदा हो गई और सब एकसाथ बोलने लगे।

राय, जिसकी ज़बान कैंची की तरह चलती थी, इस तिहरे हमले से अपनी रक्षा करता रहा। एक बार तो ऐसा लगा कि वह दुबला-पतला बगाली, जो किसीसे कम गुस्सेवाला और जोशीला नही था, नेहरू के उन तीनो भक्तो से हाथापाई कर बैठेगा, पर इतने मे यूनुस की आख खुल गई और वह पूछने लगा कि क्या गडबड है, इसलिए हाथापाई की नौबत नही आई। इसके अलावा बगलवाली झोपडी से किसीने बीच की दीवार को जोर से थपथपाकर गूजती हुई आवाज़ मे कहा, "अरे, राम-राम, क्या गोलमाल मचा रखा है ? नीद हराम कर रखी है। हमे सुबह उठकर नदी पर नहाने जाना है और पूजा-पाठ करना है।"

उन लोगो ने बाते बन्द कर दी और जल्दी-जल्दी अपने-अपने कम्बलो मे दुबक गए, लेकिन राय ने सोने से पहले अपनी सिगरेट बुझाते हुए भी उनपर फिकरा कस ही दिया, "ये है तुम्हारे पडौसी, घास खानेवाले पवित्र गाधीवादी।"

नेहरू के खिलाफ राय की बातो से अनवर की आस्था मे कोई कमी नही आई लेकिन मन ही मन उसने फैसला किया कि अगले दिन वह उस बगाली पत्रकार से कहेगा कि वह उसे सुभाष बोस से मिला दे। इस तरह एक दिन मे उसे तीन आदमियो से मुलाकात करनी पडेगी क्योकि यूनुस से कहकर उसने लम्बे डील-डौलवाले पठान नेता अब्दुलगफ्फारखा से मिलने का इतजाम किया था और सुन्दरम ने वादा किया था कि वह उसे उन नेता से मिला देगा जिन्होंने काग्रेस के साथ ही होनेवाले शराबबन्दी सम्मेलन की अध्यक्षता की थी; उनका नाम कुछ बहुत ही टेढा-सा था लेकिन कहा जाता था कि वे दक्षिण भारत के सबसे काइयां नेता थे।

बाकी लोग तो जल्द ही सो गए लेकिन अनवर लेटा-लेटा उन तमाम बातो के बारे मे सोचता रहा जो उसने देखी और सुनी थी। राय के ऐसे सनकी चाहे जो कहे पर अनवर को इस बात मे कोई भी सन्देह नही था कि लडाई का बिगुल बज चुका था और जल्द ही सारा राष्ट्र गाधी और नेहरू के नेतृत्व मे आज़ादी की आखिरी लडाई छेडनेवाला था। वह सोचने लगा, इस लडाई मे वह क्या करेगा ? क्या वह अलग खडे रहकर सिर्फ तमाशा देखेगा ? वह जानता था कि यह उससे न होगा। वह यह भी जानता था कि सघर्ष मे कूदने का मतलब यह होगा कि उसे जेल जाना पडेगा, शायद यूनिवर्सिटी से उसे निकाल भी दिया जाए, शायद अपने अब्बा से भी उसे नाता तोडना पडे क्योकि अब

वे कांग्रेस के पक्के विरोधी हो गए थे। फिर भी ये सब खतरे तो उसे मोल लेने ही होंगे। अगर वह अपने तईं और अपने विश्वासो के तईं सच्चा रहना चाहता था तो उसे उसके लिए कीमत तो चुकानी ही होगी। रास्ता साफ था। उसने देखा कि हजारो लोग जेल-यात्रा कर रहे हैं, हजारो लोग अहिंसा की लडाई लडने के लिए आगे बढ रहे है, कोई जवाबी हमला किए बिना और भागे बिना (जवाहरलाल की तरह) लाठिया खा रहे है, यहा तक कि हसते-हसते फासी के तख्ते पर भी चढ रहे है। और उसने देखा कि वह जेल मे बन्द है। वह अपनी खोपडी पर लाठियो की बौछार महसूस करने लगा और कम्बल का सिरा उसे अपने गले मे फासी के फन्दे की तरह मालूम होने लगा।

और फिर, जैसाकि नीद आने से पहले के क्षणो मे हमेशा होता था, सलमा की जादू-भरी मनोमोहक तस्वीर उसकी आखो के आगे घूम गई—मुलायम घुघराले बालो मे घिरा हुआ वह लम्बोतरा चेहरा, बडी-बडी मासूम आखे और लाल-लाल होठ, जिनसे सलमा ने उसे मुहब्बत के अटूट बन्धनो मे बाध लिया था। आज उसके सामने सलमा का जो चित्र आया उसमे उसके चेहरे के चारो ओर एक प्रश्नसूचक चिह्न का घेरा था, जैसे पूरे चाद पर ग्रहण लग गया हो। अभी उसने अपने दिमाग मे देश की सेवा की जो योजना तैयार की थी उसमे वह किस तरह खप सकेगी? उसके अब्बा सरकार के वफादार थे और हालाकि वह जताती ऐसा थी कि उसे राजनीति मे कोई दिलचस्पी नही है लेकिन वह अनवर के सियासी दोस्तो और उसकी राजनीतिक दिलचस्पियो से बहुत जलती थी। वह उसके लाहौर जाने पर खुश नही थी और इसलिए उसे यह बहाना बनाना पड़ता था कि वह वहा अपनी राजनीतिक दिलचस्पी की वजह से नही बल्कि सैर करने जा रहा है। वह जानता था कि सलमा इसके लिए कभी भी राजी नही होगी कि वह किसी भी खतरनाक राजनीतिक काम मे हाथ डाले। लेकिन क्या यह एक औरत के लिए कुदरती बात नही थी? जब मर्द लडाई पर चले जाते है तब भी तो उनकी औरते रोती है, लेकिन क्या इस वजह से सिपाही फौज मे भरती होना बन्द कर देते हैं? वह उससे मुहब्बत करती थी इसलिए वह उसे जाने तो नही देना चाहेगी लेकिन वह उसे बताएगा कि उसके लिए जाना क्यो जरूरी है, यह सिर्फ उसके फर्ज का ही नही बल्कि उसकी इज्जत का भी सवाल है, और वह समझ जाएगी। वह रो-रोकर उसे

बिदा करेगी और जब संघर्ष खत्म होगा और आजादी मिल जाएगी तब वह लौटकर आएगा और वह मुस्कराकर उसका स्वागत करेगी। फिर उनकी शादी हो जाएगी और उनके दिन चैन से……

नींद से उसकी आखे बन्द होने लगी थी और वह इस सुखद कल्पना को सीने से लगाकर करवट बदलकर सो गया।

अनवर ने देखा कि कुछ बातो मे सुभाष बोस का व्यक्तित्व जवाहरलाल नेहरू जैसा ही आकर्षक था, लेकिन कुछ बातो मे वे उनसे बिलकुल अलग थे। दोनो ही बहुत खूबसूरत थे लेकिन नेहरू के चेहरे पर काफी नरमी थी और नाक-नक्शा काफी उभरा हुआ था, और इस जोशीले बगाली नेता का चेहरा कुछ भरा हुआ और गोल था। अनवर ने उन्हे काग्रेस मे भाषण करते हुए सुना था। उन्होने काग्रेस के सामने यह प्रस्ताव रखा था कि आज़ादी के प्रस्ताव को व्यवहार मे पूरा करने के लिए और साम्राज्यवाद को चुनौती देने के लिए मज़दूरो, किसानो और नौजवानो के सगठनो के आधार पर अग्रेजो की सरकार की टक्कर पर एक दूसरी सरकार बनाई जाए। पुराने नेताओ के विरोध के कारण यह प्रस्ताव स्वीकार नही किया गया था परतु श्रोताओ मे जो नौजवान थे वे सुभाष बोस की साहसपूर्ण योजना और उनके जोशीले भाषण से बहुत प्रभावित हुए थे। दोनो के भाषण सुनने के बाद अनवर इस सोच मे पडा रहा था कि बोस और नेहरू मे क्या अंतर है ? वह इस नतीजे पर पहुचा कि हालाकि दोनो समाजवादी थे लेकिन बोस आज़ादी और सामाजिक न्याय की तरफ अपने जोशीले रवैये की वजह से हृदय की भावनाओ को छू लेते थे, लेकिन नेहरू की बात दिमाग को छूती थी और उन्नीसवी शताब्दी के राजनीतिक दार्शनिको की तरह वे ज्ञान के प्रसार द्वारा दुनिया को बदलना चाहते थे।

मंच पर से भाषण देते समय बोस बहुत जोशीले आदमी मालूम हुए थे लेकिन जब अनवर ने उन्हे उनकी झोपडी मे करीब से देखा तो वे बिलकुल ही दूसरी किस्म के आदमी निकले—बहुत शिष्ट, बहुत नरमी से बोलनेवाले और कुछ आरामतलब भी; उन्हे बीच-बीच मे नेहरू की तरह गुस्सा भी नही आता था। राय ने, जो बंगाली नेता को काफी अच्छी तरह जानता था, अनवर

का परिचय कराते हुए कहा, "ये अलीगढ के एक बहुत कट्टर नौजवान नेशनलिस्ट है—लेकिन घोर नेहरूवादी है।" यह सुनकर बोस, मुस्करा दिए। पत्रकार राय ने पहले ही से अपने अखबार के लिए उनका इण्टरव्यू लेने की योजना बना रखी थी, लेकिन उसने अपने सवाल इस तरह तैयार किए थे कि अनवर के विचारो मे एक नई रोशनी पैदा हो और शायद वह अपने पुराने विचारो के प्रति कुछ निराश हो।

"बोस बाबू," उसने बगाली का प्रचलित सम्बोधन इस्तेमाल करते हुए पूछा, "लाहौर काग्रेस के बारे मे आपका क्या खयाल है?"

बोस बाबू ने रुक-रुककर धीरे-धीरे बहुत सधे हुए अदाज मे सोच-सोचकर जवाब दिया, "जाहिर है मुझे इस बात की तो खुशी है कि काग्रेस ने पूरी आजादी को अपना लक्ष्य मान लिया है, लेकिन मुझे इस बात का बडा अफसोस है कि मैंने सरकार की टक्कर पर अपनी अलग सरकार बनाने का जो अमली सुझाव रखा था उसे स्वीकार नही किया गया और इसका नतीजा यह हुआ है कि मजिल तक पहुचने के लिए कोई रास्ता नही बताया गया है और न आनेवाले साल के लिए काम का कोई प्रोग्राम ही बनाया गया है।" फिर कुछ देर रुककर, जिसके दौरान मे उन्होने अपने मोटे-से चश्मे के पीछे से अनवर को एक नजर देखा, उन्होने ज्यादा जोर देकर और कुछ झुझलाकर कहा, "इससे ज्यादा हास्यजनक भी कोई बात हो सकती है, यह तो मैं सोच भी नही सकता, लेकिन राजनीति मे कभी-कभी ऐसा होता है कि आदमी को न सिर्फ वास्तविकता का आभास नही रह जाता बल्कि वह अपनी सामान्य बुद्धि भी खो देता है।"

राय ने फौरन दूसरा सवाल पूछा, "क्या यह सच है कि आपको वर्किंग कमेटी मे नही लिया गया है?"

इस सवाल को सुनकर वे बहुत खुश हुए और जोश मे आकर बगाली बोलने लगे लेकिन फिर यह सोचकर कि उनकी बात अनवर की समझ मे नही आएगी, उन्होने फिर अग्रेजी मे बोलना शुरू कर दिया, "यह कोई छिपी हुई बात नही है, क्योंकि कल रात वर्किंग कमेटी के मेम्बरो के नामो का ऐलान कर दिया गया है और सिर्फ मुझीको नही बल्कि गरम दल के लगभग सभी लोगो को जानबूझकर कमेटी मे शामिल नही किया गया है।"

अनवर ने हिम्मत करके बीच मे दखल देते हुए कहा, "लेकिन यह तो

अजीब बात है क्योकि प्रेसीडेट खुद गरम दल के है और सोशलिस्ट भी है। आखिर उन्होने अपनी पसद के लोगो को कमेटी मे क्यो नही लिया ?"

"क्योकि," सुभाष बोस ने जवाब दिया, "लोगो को चुनने का काम महात्माजी करते हैं और वे नही चाहते कि कमेटी मे कोई ऐसा आदमी हो जो उनके खिलाफ आवाज उठाए। जवाहरलाल तो प्रेसीडेट बस नाम-भर के है।" फिर उन्होने पत्रकार राय को, जो उनकी बाते लिखता जा रहा था, चेतावनी देते हुए कहा, "लेकिन यह सब कुछ अभी अखबार मे छापने के लिए नही है।"

अनवर यूनुस के साथ जाकर खान अब्दुलगफ्फारखा से मिला। उसने उनसे ज्यादा लम्बा आदमी अब तक नही देखा था। दूसरे लोग उनके आगे बिलकुल बौने लगते थे। उनकी लम्बी-सी झुकी हुई नाक और चट्टान जैसा खुरदरा सख्त चेहरा, जिसपर दाढी उगी हुई थी, उत्तर-पश्चिमी सीमात के उन कठोर पर्वत-प्रदेशों की याद दिलाता था जिनपर कोई काबू नही पा सका था। अपने लम्बे-चौडे डीलडौल के बावजूद उनमे बच्चो जैसी मासूमियत और संतो जैसी नरमी थी। वे इतनी विनम्रता से बाते करते थे कि सुननेवाला शर्मिन्दा हो जाता था।

अनवर का हमेशा से यह खयाल था कि पठान बहुत खौफनाक लडाकू लोग होते है। लेकिन इस समय उसके सामने एक ऐसा पठान था जो भोली चिडिया की तरह नरमी से बोलता था और यह विश्वास रखता था कि गांधीजी की अहिसा के रास्ते पर ही चलकर पठानो को मुक्ति मिल सकती है। उनके चारो ओर कोई दर्जन-भर दूसरे पठान खड़े थे जो खद्दर की शलवारे और गहरे लाल रंग के कुर्ते पहने थे (इसी वजह से उनका नाम 'लाल कुरतीवाले' पड गया था)। खान साहब ने अनवर को अपने प्रान्त की अजीब हालत के बारे मे बताया—जहा अग्रेज बारी-बारी से 'सोने और बंदूको' की मदद लेकर हुकूमत करते थे। जहा भी मुमकिन होता था वे कबीलो को रिश्वत देकर काम निकालते थे और जब जरूरत होती थी तो उनपर बम बरसाते थे, और इस तरह वे फौजी महत्त्व के इस इलाके को अपने काबू मे रखते थे। अनवर आंखे फाडे हुए आश्चर्य से उनकी बाते सुनता रहा। उन्होने अनवर को उन ब्रिटिश पोलिटिकल

एजेंटो के बारे मे बताया जो लाखो की रकम पानी की तरह खर्च करते थे और बहुत बडे इलाके मे वे जिसे चाहते मरवा सकते थे। उसने यह भी सुना कि अब्दुलगफ्फारखा अपने इसी सूबे मे शिक्षा का प्रसार करने और सामाजिक सुधार करने की कोशिश कर रहे थे। अनवर को यह सुनकर भी ताज्जुब हुआ कि सरकार गफ्फारखा की इन कोशिशो को नाकाम करने की कोशिश कर रही थी क्योकि सरकार चाहती थी कि लोग जाहिल और पिछडे हुए रहे। लेकिन आजादी के दीवाने कबीलेवाले किसी भी कीमत पर अपनी आज़ादी बेचने को तैयार नही थे और वे बहुत ही भोडी किस्म की देसी बदूको की मदद से ब्रिटिश साम्राज्य की 'आगे बढ़ने की नीति' के खिलाफ जान की बाजी लगाकर लड रहे थे।

"और फिर भी खान साहब," अनवर ने हिम्मत करके पूछा, "आप समझते हैं कि इन निडर कबीलेवालो को हथियार फेककर अहिंसा का रास्ता अपनाना चाहिए ?"

"हा, मैं तो यही समझता हू," उस लम्बे-चौडे पठान ने जवाब दिया। "अहिंसा का रास्ता सही रास्ता है—वही खुदा का बताया हुआ रास्ता है। इस मुहिम मे हम गाधीजी के साथ हैं और इशा-अल्लाह, हम यह दिखा देगे कि पठान आज़ादी के लिए जान देना भी जानता है।"

अनवर जब तीसरे नेता से मुलाकात करने के लिए बिदा हुआ तो वह सोच रहा था कि यह पठान भी कैसा अजीब आदमी है, लेकिन इस पठान मे एक अजीब आकर्षण था। सुन्दरम ने दक्षिणी भारत के जिस नेता से उसका परिचय कराया उनका नाम था राजगोपालाचार्य—अनवर के लिए यह नाम इतना टेढा था कि उसका सही उच्चारण करने के लिए उसे यह नाम लिख लेना पडा। अब्दुलगफ्फारखा के मुकाबले मे वे एक काले बौने जैसे लग रहे थे और अपनी गंजी चाद और गहरे रग के चश्मे की वजह से उनकी शक्ल-सूरत कुछ खास आकर्षक नही थी। अनवर उनकी प्रखर बुद्धि और उनकी हाज़िरजवाबी से बहुत प्रभावित हुआ और उसने देखा कि वे नरम दल की हर नीति को सबसे अच्छी तरह पेश कर सकते थे। लेकिन एक ऐसे आदमी से बाते करने मे बडी उलझन होती है जिसकी आंखे गहरे रग के चश्मे के पीछे छिपी रहे। ऐसा आदमी खुद तो सब कुछ देखता रहता है पर उसे कोई नही देख सकता। जब

बातचीत का रुख राजनीति से हटकर धर्म की ओर मुड गया और वह दुबला-पतला छोटा-सा मद्रासी आदमी गीता के श्लोक सुनाने लगा तो अनवर की समझ मे नही आया कि वह क्या करे।

सुभाष बोस, खान अब्दुलगफ्फारखा, राजगोपालाचार्य—एक जोशीला बगाली, एक शान्त और गम्भीर पठान, एक चालाक और सुसस्कृत मद्रासी। अनवर एक ही दिन मे इन तीनो से मिला था और उसकी समझ मे नही आ रहा था कि काग्रेस की राजनीति के ढाचे मे इन तीनो को एकसाथ कैसे बिठाया जाए। अब तक तो वह यही समझता आया था कि काग्रेस की राजनीति का फैसला गाधीजी की महात्माओ जैसी मानवोपकारिता और जवाहरलाल के समाजवादी आदर्शवाद की बुनियाद पर होता है! जो आदोलन जल्द ही छिडने-वाला था क्या उसमे इन पचमेल विभूतियो और परस्पर-विरोधी शक्तियो को एकसाथ शामिल किया जा सकता था? यदि इसमे कामयाबी मिल गई तो यह गांधीजी की नीति की सबसे बडी विजय होगी। उस रात यही सोचते-सोचते अनवर को नीद आ गई।

अनवर 'राज' और यूनुस के साथ अलीगढ वापस जाने की तैयारी कर रहा था लेकिन अभी वह बिस्तर बाँध ही रहा था कि इतने मे रतन—बल्कि कहना चाहिए रामलाल, क्योंकि अब उसका यही नाम था—वहा आ पहुचा। तो वह अभी तक पुलिस के चगुल से बचा हुआ था। अनवर उसे देखकर बहुत खुश हुआ और दोनो दोस्तो ने लपककर एक-दूसरे को गले लगा लिया।

"अरे भाई, कहा जा रहे हो?" रतन ने उसके सामान की तरफ इशारा करते हुए कहा। "अभी तो तुमने कांग्रेस देखी है, लाहौर तो घूमे ही नही। तुम्हे ढूढते-ढढते मुझे चार दिन हो गए। क्या तुम समझते हो कि मैं तुम्हे इस तरह चला जाने दूगा? कम से कम कुछ दिन तो तुम्हे मेरे साथ रहना ही पडेगा। मुझे यकीन है, तुम्हारे दोस्तो को कोई एतराज नही होगा।"

और यह कहकर वह अनवर को अपने साथ घसीट ले गया और उसका सूटकेस और बिस्तर तागे मे डालकर उसने तागेवाले से कृष्णनगर चलने को कहा। फिर अनवर से बोला, "मैंने किराये पर एक घर ले रखा है जिसमे मैं

अपने कुछ दोस्तो के साथ रहता हू।" अनवर को अच्छी तरह इस बात का अदाजा था कि वह किस तरह के दोस्तो के साथ रहता होगा और जब वह रतन के घर पहुचा और उसने अदर के कमरो मे तरह-तरह की बोतले, शीशियां, काच की नलिया और तेज़ाब की सुराहिया, पुराने लोहे के टुकडे और बमो के कुछ फौलाद के खोल भरे हुए देखे तो उसके मन मे तरह-तरह की आशकाए उठने लगी और वह समझ गया कि ये सब चीज़े सिर्फ बम बनाने के ही काम आ सकती हैं।

"मुझे यहा लाकर क्या तुमने बहुत बडा खतरा नही मोल लिया है ?" अनवर ने इतमीनान से बैठते हुए कहा। "क्या तुम्हारी पार्टी के लोग इस बात पर एतराज नही करेंगे कि तुमने ऐसी खुफिया जगह एक अजनबी आदमी को दिखा दी ?"

"अनवर, तुमने दिल्ली मे हम लोगो के लिए जो कुछ किया उसके बाद तुम अब पार्टी के लिए अजनबी नही रह गए।"

इस बात पर अनवर को याद आया कि उस घटना को दस महीने हो गए थे लेकिन अनवर को अभी अपने दोस्त से एक हिसाब चुकता करना था। उसने शिकायत करते हुए कहा, "उस बार तुम अपने वादे पर कायम नही रहे। तुम्हे याद है मैंने क्या कहा था—बशर्ते कि किसीको मारने का सवाल न हो।"

रतन यह सुनकर हस पडा और बोला, "तुम्हे भी याद है हमने क्या कहा था, 'कोई जान से नही मारा जाएगा'।" भगतसिंह, बटुकेश्वर दत्त और दूसरे साथियो की याद आते ही, जिनपर वहा से कुछ ही मील की दूरी पर लाहौर सेंट्रल जेल मे कत्ल और बगावत के सगीन जुर्मों मे मुकदमा चलाया जा रहा था, रतन का चेहरा कुछ उदास हो गया। उसे शायद इस बात का भी अंदाज़ा हो गया होगा कि अनवर ने उसकी भावनाओ को ताड लिया है क्योकि किसीका नाम लिए बिना उसने कहना शुरू किया, "तुम्हे यह तो मालूम ही हुआ होगा कि उनके साथ कैसा सलूक हो रहा है—भूख-हडताल के बारे मे और इकसठ दिन की भूख-हडताल के बाद यतीन दास की मौत के बारे मे तो तुमने सुना होगा। अनवर, ज़रा सोचो, दो महीने तक उसने अनाज का एक दाना भी नही खाया। तुमने उसे देखा नही था। वह यो भी इतना दुबला-पतला और इतने कोमल स्वभाव का था कि हम लोग उससे कहा करते थे कि 'यतीन, तुम तो बिलकुल

लडकियो जैसे हो', और हमारी इस बात पर वह शरमाकर हंस देता था। और जब उसकी अर्थी उठी उस वक्त वह सूखकर बिलकुल काटा हो चुका था और उसका वज़न बच्चे के वज़न से ज्यादा नही था।"

अनवर ने देखा कि रतन की आखो मे आसू छलक आए थे और इधर कुछ दिनो से उसने सख्ती का जो एक बाहरी गिलाफ ओढ रखा था वह अचानक हट गया। अब उससे वही पुराना रतन बाते कर रहा था जिससे वह लडकपन मे मिला था और जिसका स्वभाव इतना कोमल था। "अखबारो मे इसका पूरा हाल नही छापा जाता कि पुलिस हमारे साथियो के साथ क्या सलूक कर रही है। उन्हे बुरी तरह पीटा गया है और हफ्तो अधेरी कालकोठरियो मे बन्द करके रखा गया है, उन्हे सख्त तकलीफे दी गई है और नगा करके बर्फ की सिलो पर लिटाया गया है। हम अब उन्हे ज्यादा दिन तक ये तकलीफे नही सहने दे सकते। जल्द ही हमे..."

सहसा वह बात कहते-कहते रुक गया। उसने महसूस किया कि वह जितनी बाते बताना चाहता था उससे ज्यादा उसने बता दी है। इतनी बाते तो उसे पूरे भरोसेवाले दोस्त को भी नही बतानी चाहिए।

"तुम्हारा मतलब है कि तुम उन लोगो को छुडाने की कोशिश करोगे?" अनवर से पूछे बिना न रहा गया। इस साहसपूर्ण योजना की कल्पना करके ही उसके रोगटे खडे हो गए।

रतन ने सिर हिलाकर दूसरे कमरे की तरफ इशारा किया जहा अनवर पहले ही 'बम का कारखाना' देख चुका था। "हमारे कुछ साथी इसीकी तैयारिया कर रहे है। असली दल यह नही है, मैं तो एक छोटी-सी टोली के साथ काम कर रहा हू। लेकिन मैं तुमको इस काम मे नही लगाना चाहता। मैं तो तुमसे एक दूसरी ही चीज़ के बारे मे बाते करना चाहता हू जो कही ज्यादा ज़रूरी है, लेकिन जिसमे तुम्हारे लिए खतरा बहुत कम है।"

अनवर यह जानने के लिए उत्सुक था कि वह क्या चीज थी जिसके बारे मे रतन उससे बाते करना चाहता था पर रतन को बताने की कोई जल्दी नही थी। "फिर बाते करेगे, लेकिन यहां नही। अब दूसरे लडके वापस आते होगे और मैं यह बात उनके कानो मे भी नही पडने देना चाहता।" फिर उसने एक ऐसी बात कही कि अनवर चक्कर मे पड गया। उसने कहा, "तुम कपडे बदल-

कर अपना सबसे अच्छा सूट पहन लो। शायद हम खाना खाने के लिए एक बहुत ही फैशनेबल होटल मे चलेगे।"

वह सगीत सबसे पहले अफ्रीका के जगलो से आया था, जहा के आदिम वनवासी भूत-प्रेत भगानेवाले डाक्टर के आदेशो के अनुसार ढोल पीटकर, भोपू बजाकर और अपने तने हुए काले पेट बजाकर अजीब-अजीब आवाज़ो मे चिल्लाते थे। जब गुलामो की तिजारत करनेवालो ने इन बेचारे हब्शियो को चुराकर सात समुन्दर पार नई दुनिया मे जाकर बसनेवाले लोगो के हाथ बेचा तो ये अपने साथ अपना सगीत भी ले गए। न्यूयार्क, शिकागो और सैन फ्रैंसिस्को के उकताए हुए बेहद शौकीन लोगो को यह सगीत भा गया और दक्षिणी अमरीका की कामोत्तेजक भीगी-भीगी हवा मे इस सगीत को एक नये साचे मे ढाला गया और वह पहले से भी ज्यादा उद्दाम हो गया। सर्वशक्तिमान डालर की भूमि से आनेवाली दूसरी चीज़ो के साथ हालीवुड की फिल्मे, फोर्ड की मोटर गाडिया, लिपस्टिक, च्यूइग गम और जाज़ सगीत भी भारत पहुचा। यह सगीत लाहौर मे बडी तेजी से पनपने लगा क्योकि नौदौलते ज़मीदारो के बेटो को इसमे स्वय अपने देश के समृद्ध और जानदार लोकसगीत की एक अजीव विकृत-सी प्रतिध्वनि सुनाई देती थी।

रतन अनवर को माल रोड पर एक नाइट क्लब मे ले गया और वहा उसे लाहौर की जिन्दगी के एक ऐसे पहलू से परिचित कराया जो काग्रेस कैम्प के सोलहो आने राजनीतिक वातावरण से बिलकुल भिन्न था। यह बिलकुल ही दूसरी दुनिया थी—कपडे की दूकानें, जिनमे सैकडो किस्म का रग-बिरगा विलायती कपडा ठसाठस भरा हुआ था; जगमग करती हुई जौहरियो की दूकाने; रेस्तरा; शराबखाने और नाइट क्लब। अलाका के डिनर सूट, कलफदार कमीज़े, जार्जेट और चीनी क्रेप की साडिया, ज़री की कमीज़े और शलवारे, हीरे के बुदे और मोती के हार, पाउडर और सुर्खी से रगे हुए चेहरे, रसीले होठ और दावत देती हुई आखे, बेझिझक कहकहे, गिलासो की खनक, शराब की झिलमिलाहट, गाल से गाल मिलाकर नाचते हुए जोडे, और कागो के जगली सगीत की धुन पर थिरकते हुए लचकदार शरीर और इन सब चीज़ो पर छाया

हुआ सिगरेट का धुआ और व्हिस्की की भभक...।

रतन ने उसे बताया कि उसने यह नियम-सा बना लिया था कि वह सारी खुफिया बाते किसी नाइट क्लब मे ही करता था—जहा भीड मे रहकर भी आदमी अकेला रहता था और उस हुल्लड के बीच खुलकर बातचीत कर सकता था। अनवर को शुरू-शुरू मे तो इसमे बहुत खतरा मालूम हुआ लेकिन नाचघर की मद्धिम रोशनी मे कुछ मिनट तक कोनेवाली मेज़ पर बैठने के बाद उसे यकीन हो गया कि रतन ने यह जगह पसंद करने मे कितनी समझदारी का सबूत दिया था। शराब के देवता का यह मंदिर आखिरी जगह थी जहा पुलिस किसी क्रांतिकारी की तलाश मे आ सकती थी।

थोडी ही देर मे वह वहां के वातावरण से परिचित हो गया इसलिए अब उसका ध्यान अपने चारो ओर की चीजो की तरफ से हट गया था और उसने अपने दोस्त की बात ध्यान से सुनना शुरू किया।

रतन ने उसे बताया कि जेल के अदर और बाहर दोनों ही जगह के क्रांतिकारियो को अब भी यकीन नही था कि कांग्रेस कोई इन्कलाबी कदम उठाएगी। फिर भी वे यह महसूस करते थे कि आजादीवाला प्रस्ताव आगे की दिशा मे एक कदम है और बहुत थोडी ही सही लेकिन इस बात की सभावना है जरूर कि जितने दिन तक जवाहरलाल कांग्रेस के प्रेसीडेंट हैं तब तक कांग्रेस शायद कुछ वामपक्ष की ओर झुके।

अनवर को यह सुनकर बहुत दिलचस्पी पैदा हुई क्योकि उसने महसूस किया कि आतकवादी भी अब धीरे-धीरे उसीके ढग से सोचने लगे है लेकिन फिर भी उसने पूछा, "तो इसमे मै क्या कर सकता हूं ?"

"यही तो मैं बताने जा रहा हू," रतन ने जवाब दिया और बताया कि क्रांतिकारी यह महसूस करते है कि उन्हे अब अपना काम राजनीतिक क्षेत्र में करना होगा और बम वगैरह फेकने तक ही सीमित नही रहना होगा। इसके लिए किसी ऐसे आदमी की ज़रूरत है जो दूसरे दलो तक हमारी बात पहुचा सके और उनकी बात हमे बता सके, क्योंकि इन दलो का तरीका हमारे अब तक के तरीके से अलग भले ही हो पर इन्कलाब के लिए उनके दिल मे हमसे कम लगन नही है।

"तुम्हारा मतलब," अनवर ने उसकी बात का मतलब समझने की कोशिश

करते हुए कहा, "कम्युनिस्टो से है।"

"हा, कम्युनिस्टो मे भी, औरो से भी। शायद अलीगढ मे मैने तुम्हे बताया था कि हमारी पार्टी की पालिसी मे सोशलिज्म की तरफ एक नया झुकाव आया है। हमारे साथियो की भूख-हडताल के जमाने मे मेरठ के कैदियो ने भी हमारी हमदर्दी मे भूख-हडताल करके हमारे साथ अपने भाईचारे का सबूत दिया था। इसका मतलब यह है कि साथ मिलकर काम करने की बुनियाद मौजूद है। लेकिन मैं चाहता हू कि हमारी तरफ से मेरठ एक सदेश पहुचा दिया जाए जिसमे हमारे ठोस सुझाव हो।"

आखिरकार अनवर की समझ मे आने लगा कि इसमे वह क्या कर सकता है।

"तो तुम मुझसे यह चाहते हो कि···?"

"हा, तुम्ही एक ऐसे आदमी हो जो इस काम को कर सकते हो। हममे से कोई भी मेरठ की अदालत मे जाने की हिम्मत नही कर सकता क्योकि वहा आधे दर्जन सूबो के सी० आई० डी० वाले मौजूद होगे।"

उनके निजी सबध इतने गहरे थे कि विचारो मे बेहद मतभेद होने के बावजूद रतन कभी भी अनवर से यह पूछता नही था कि वह उसका कोई काम करेगा कि नही। वह बस सीधे उससे वह काम करने को कह देता था।

अनवर कुछ घबरा रहा था लेकिन उसने उसे ढाढस बधाते हुए कहा, "मैने सब नक्शा तैयार कर लिया है। तुम्हारे लिए कोई भी खतरा नही है। कल जब हमारे साथियों का मुकद्मा पेश हो तो तुम एक प्रेस-रिपोर्टर बनकर अदालत मे जाना—मैंने तुम्हारे लिए प्रेस का पास बनवा लिया है। वहा उनमे से कोई एक चुपके से तुम्हारे हाथ मे एक चिट्ठी सरका देगा। तुम्हे बस मेरठ जाकर वहा उनमे से किसीको वह चिट्ठी दे देनी है। बस इतना ही काम है। तुम्हे और कुछ नही करना है। बहुत ही सीधी-सी बात है।"

अनवर को यह बात इतनी सीधी नही मालूम हुई, क्योकि उसे पहले इस प्रकार के गुप्त काम का कोई अनुभव नही था। लेकिन काग्रेस के आदोलन को कुछ वामपक्ष की ओर ले जाने के लिए कम्युनिस्टो और आतकवादियो के बीच मेल हो जाने का विचार उसे जच गया। इसलिए उसने स्वीकृति मे अपना सिर हिला दिया। इसके बाद दोनो दोस्तो ने नाच की तरफ ध्यान दिया, जहा कई

जोडे एक जोरदार 'फडकती हुई' धुन पर नाच रहे थे और एक लडकी बहुत कसा हुआ काला फ्राक पहने, जो एक तरफ से इस तरह खुला हुआ था कि उसकी नंगी टाग दिखाई देती थी, झूम-झूमकर दीवानो की तरह गा रही थी :

चिकी चिकी बूम चिक !

आई लव यू सो मच, सो मच, सो मच !

दूसरे दिन बहुत सुबह ही अनवर ने एक तागा पकडा और कृष्णनगर से सीधा स्टेशन गया। वहा उसने अपना सूटकेस और बिस्तर क्लोक-रूम मे डाला और लगभग एक घटे तक वेटिंग रूम मे वक्त काटने के बाद सेट्रल जेल के लिए दूसरा तागा लिया—रतन ने उसे अच्छी तरह समझा दिया था कि तागा करते वक्त अच्छी तरह देख ले कि वह पहलेवाला तागा न हो। जेल का लोहे का भारी फाटक बद था पर प्रेस-कार्ड दिखाने पर उसे फौरन छोटी खिडकी खोलकर चला जाने दिया गया और फौरन ही बाद खिडकी मे फिर ताला ठोक दिया गया। ऐसा लगता था जैसे वह खुद कैदी हो।

अदालत का कमरा वकीलो, कचहरी के कर्मचारियो, अखबारो के रिपोर्टरो और अभियुक्तो के रिश्तेदारो से खचाखच भरा हुआ था। अनवर जाकर रिपोर्टरो की मेज पर बैठ गया। अनवर ने पीछे मुडकर देखा और इस बात पर उसे बहुत सतोष हुआ कि वह कटहरा जिसमें अभियुक्त लाकर बिठाए जाने-वाले थे, ठीक उसके पीछे था।

इतने मे अभियुक्तो ने कतार बाधकर कमरे मे प्रवेश किया और सारा कमरा 'इन्कलाब ज़िदाबाद' और दूसरे क्रातिकारी नारो से गूज उठा और अनवर यह देखकर दंग रह गया कि अदालत मे जितने भी लोग मौजूद थे सब अभियुक्तो के सम्मान मे उठ खडे हुए। सारे कैदियो का रग पीला पड गया था और यह जाहिर था कि भूख-हडताल की वजह से वे अभी तक बेहद कमज़ोर थे। भगतसिह को भी अनवर उसकी नुकीली ऐंठी हुई मूछो की वजह से ही पहचान सका। वह बहुत दुबला हो गया था और उसके चेहरे पर तपस्वियो जैसा भाव आ गया था और अनवर ने उसकी आखो मे पहले जो उदासी देखी थी उसके स्थान पर अब उनमे एक नरमी और आत्मिक शांति का भाव दिखाई देता था। ऐसा लगता था कि अब उसके लिए सारी विषमता और सारी कटुता का, सारे संघर्ष और हिंसा का अत हो चुका था

और अब अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करते समय वह केवल अपने पिछले जीवन पर दृष्टिपात कर रहा था और उसे किसी बात का खेद नही था। उसने अनवर को पहचाना और एक क्षण के लिए उसकी नजरो ने अनवर के चेहरे पर रुक-कर मानो चुपचाप ही उसे सलाम किया और फिर सारे कमरे का निरीक्षण करने लगी। सतर्क सी० आई० डी० वालो को इस बात का सदेह तक नही हो सका कि वे नजरे बीच मे कही ठहरी भी थी।

अग्रेज जज आकर अपनी-अपनी कुर्सियो पर विराजमान हो गए। अदालत के कर्मचारियो ने वहा पर उपस्थित लोगो को कह-कहकर माननीय न्यायाधीशो के सम्मान मे खडा किया। लोग खडे तो हो गए पर उत्साह के साथ नही। उनके चेहरो पर अरुचि का भाव स्पष्ट था।

अदालत की कार्रवाई शुरू हुई और सरकारी गवाहो से जिरह शुरू हुई। अनवर चूकि वहा रिपोर्ट लिखने नही आया था इसलिए वह व्यर्थ की ब्योरे की बातो मे कोई दिलचस्पी नही ले रहा था बल्कि इसके बजाय अभियुक्तो की प्रतिक्रिया को देख रहा था। उसने देखा कि ये लोग अदालत की कार्रवाई की ओर जरा भी ध्यान नही दे रहे थे। एक स्थानीय अखबार के रिपोर्टर ने अनवर को कटहरे मे बैठे हुए प्रमुख क्रातिकारियो के नाम बताए। भगतसिह और बटुकेश्वर दत्त को अनवर पहले ही से पहचानता था। बहुत दुबला-पतला आदमी पूना का एक मराठा था जिसका नाम राजगुरु था। उसके पास सुखदेव बैठा था, जिसके बारे मे मशहूर यह था कि वह पूरी पार्टी का दिमाग है। अनवर ने अखबारो मे इस मुकदमे का ब्योरा पढा था और वह जानता था कि सरकारी वकील इस बात की कोशिश कर रहे थे कि उनमे से ज्यादा से ज्यादा लोगो को फासी की सज़ा हो जाए। फिर भी वे सब, जिनमे जवानी और ज़िदगी की उमंग थी, वहा बिलकुल शात बैठे थे जैसे उन्हे किसी बात की चिंता न हो, किसी बात का डर न हो।

एक बजे अदालत लंच के लिए बर्खास्त हो गई। रतन की हिदायतो के अनुसार अनवर के लिए अपना काम करने का वक्त आ गया था। वह दो कदम बढकर कटहरे के पास गया और इस तरह वहा खडा हुआ कि उसके कोट की जेब लकडी के जंगले से सटी हुई थी। उसने भगतसिह की आखो मे आखे डालकर देखा और कहा, "मैं एक अखबार का रिपोर्टर हू। क्या आप मुझे बताएगे कि

आप लोगो के साथ जेल मे कैसा सलूक हो रहा है ?" यह सवाल पहचान के लिए था।

उस क्रातिकारी की आखे एक क्षण के लिए इस तरह चमक उठी जैसे वह उसे पहचानता हो और उसने जवाब दिया, "आप हम लोगो की सूरतो से अन्दाजा लगा सकते है कि हमारे साथ किस तरह का सलूक होता है।" और फिर कटु व्यग्य के भाव से उसने कहा, "क्या हमारी सूरत से नही लगता कि हमे भरपेट खाना मिलता है और हम चैन की जिदगी बसर करते है ? आप देखते नही कि इम सब लोगो का वजन कितना बढ गया है। आप लोग अपने अखबारो मे लिखिए कि हमारी सरकार कितनी रहमदिल और मेहरबान है।"

जिस वक्त वह ये बाते कह रहा था अनवर को कागज की सरसराहट सुनाई दी और एक खत चुपचाप उसकी जेब मे सरक गया।

अनवर "थैक यू, थैक यू !" कहता हुआ जल्दी से कटहरे के पास से खिसक आया क्योकि इसी बीच मे पुलिस के एक दारोगा साहब उसकी तरफ झपट पडे और ठेठ पजाबी लहजे मे उससे पूछने लगे, "क्यो जी, वहा क्या चाहिए तुम्हें ?" अनवर ने शात भाव से उन्हे समझाया कि वह एक अखबार का रिपोर्टर है और वह कैदियो से सिर्फ यह जानना चाहता था कि जेल मे उनके साथ अच्छा सलूक तो हो रहा है न, हालाकि मन ही मन वह डर रहा था कि कही उसकी तलाशी न ली जाए और उसकी जेब मे वह कागज न पकडा जाए।

"ये सब लोग ठीक है, तुम इनकी फिक्र न करो," दारोगा साहब ने गुस्से से झल्लाकर कहा। "खबरदार, जो तुम अब उनके पास गए। मैं तुम्हे यहा से बाहर निकाल दूगा, सारी रिपोर्टरी धरी रह जाएगी।"

अनवर ने वादा किया कि वह अब ऐसा नही करेगा और फिर उसने ऊचे स्वर मे पुलिसवालो को सुनाने के लिए दूसरे रिपोर्टरो से कहा कि वह बाहर खाना खाने जा रहा है और यह कहकर वह जेल से बाहर निकल गया। स्टेशन पहुचकर उसने प्रेस-कार्ड फाडकर फेक दिया और जो बद लिफाफा उसे दिया गया था, उसे अपने बटुए मे हिफाजत से रखकर उसने मेरठ का टिकट खरीदा।

मेरठ मे कम्युनिस्टो पर षड्यन्त्र के मुकदमे से सारी दुनिया मे हलचल

पैदा हो गई और कम्युनिस्ट षड्यन्त्रकारियो के इस मुकदमे की खबर भेजने के लिए न सिर्फ दिल्ली और लाहौर से, बम्बई और कलकत्ता और मद्रास से बल्कि अंग्रेज़ और अमरीकी सवाददाता भी मेरठ आ रहे थे। इसलिए अनवर को 'बाम्बे क्रानिकल' के विशेष सवाददाता की हैसियत से इस मुकदमे की रिपोर्ट भेजने के लिए प्रेस-कार्ड बनवा लेने मे कोई कठिनाई नही हुई। वह जानता था कि इस अखबार ने अपना कोई सवाददाता मेरठ नही भेजा है।

जिस खास अदालत मे इस मुकदमे की सुनवाई हो रही थी वह एक मकान के एक बडे-से कमरे मे कायम की गई थी जिसे 'जरनैल साहब की कोठी' कहते थे। किसी ज़माने मे जनरल गार्डन, जिनका ब्रिटिश साम्राज्य को बढाने मे बहुत बडा हाथ था, यही रहते थे और यह उचित ही था कि साम्राज्य के दुश्मनो पर उन्हीकी छत्रछाया मे मुकदमा चलाया जाए। अनवर पुलिस के कई सतरियो को पार करता हुआ कमरे मे घुसा। अदालत की कार्रवाई शुरू हो चुकी थी। अनवर देख रहा था कि अखबार के रिपोर्टर कहा बैठे है। उसने उस लम्बे-से सफेदी किए हुए कमरे को एक सिरे से दूसरे सिरे तक देखा। बीच मे लकडी का एक बडा-सा चबूतरा ऐसा बनाया गया था जिसपर मजिस्ट्रेट साहब की मेज़ लगी हुई थी। चबूतरे के सामने एक और मेज थी जिसपर कानून की मोटी-मोटी किताबो का बडा-सा ढेर लगा हुआ था और मेज के दोनो तरफ काले गाउन पहने हुए सरकारी और सफाई के वकील बैठे हुए थे। मि० मिल्नर व्हाइट मजिस्ट्रेट, जिनके सामने यह मुकदमा पेश था, बहुत ही छोटे डीलडौल के नम्र स्वभाव के अंग्रेज थे और ऐसा लगता था कि एक ऐसे खतरनाक मुकदमे का फैसला करने के लिए, जिसकी जडे मेरठ से मास्को तक फैली हुई थी, बहुत ही गलत आदमी को चुना गया था। सरकारी वकील के धुआधार भाषण को दर्ज करने के लिए टाइपराइटर पर उगलिया दौडाते हुए मजिस्ट्रेट साहब अनवर को बहुत दयनीय लगे। इस विचित्र और बेतुकी तस्वीर का एक हिस्सा और भी था और वह थी मजिस्ट्रेट साहब की पत्नी जो उनकी बगल मे बैठी हुई बुनाई कर रही थी। उन्हे अदालत की कार्रवाई मे जरा भी दिलचस्पी नही थी।

परन्तु इस नाटक मे मुख्य भूमिका न तो उन छोटे-से शरीफ-सूरत मजिस्ट्रेट साहब की थी और न कटहरे मे खडे हुए उन तीस कैदियों की, बल्कि इस नाटक का मुख्य पात्र वह दुबला-पतला लम्बा-सा सरकारी वकील था जो इस समय

अदालत के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत कर रहा था। वह बोलता था तो ऐसा लगता था कि अगारे उगल रहा है। उसका नाम कुछ अमरीकियो जैसा था—जे० लैंगफर्ड जेम्स—लेकिन एक आख पर बिना कमानी का चश्मा, छितरे-छितरे बालू के रग के बाल, उसकी कटुता-भरी हसी और व्यग उसके ठेठ अग्रेज़ होने के प्रमाण थे। वह किसी समय कलकत्ता के यूरोपियन एसोसिएशन का प्रेसीडेट रह चुका था और ऐसा लगता था कि 'पच' पत्रिका का कोई कार्टून जिदा हो उठा हो। इस मुकदमे मे एक वकील की हैसियत से दिलचस्पी होने के अलावा उसे कम्युनिस्टो पर कीचड उछालने मे खास मज़ा आता था। उसे इस बात की बेहद खुशी थी कि वह कम्युनिज्म के खिलाफ 'जिहाद' मे हिस्सा ले रहा है, चौदह सौ रुपये रोज (छुट्टियो के दिन भी) की तुच्छ फीस लेकर इतना जबर्दस्त काम करना सचमुच बहुत बडी कुरबानी थी।

दूसरे सवाददाताओ से, जो इस मुकदमे के शुरू से ही यहा मौजूद थे, अनवर को इस अजीबोगरीब मुकदमे के बारे मे कुछ बहुत ही दिलचस्प बाते मालूम हुईं, जिसकी बदौलत जेम्स साहब को अपने वाक्चातुर्य का परिचय देने का मौका मिला था। पिछले नौ महीनो से यह मुकदमा चल रहा था और इस अरसे मे तीन सौ से ज्यादा सरकारी गवाह पेश किए जा चुके थे और अन्दाजा लगाया गया था कि जब तक यह मुकदमा खत्म होगा उस वक्त तक इसपर दस लाख रुपये या इससे भी ज्यादा खर्च हो चुके होगे। और लैंगफर्ड जेम्स साहब सरकारी पक्ष मे पाच दिन से बोल रहे थे और उम्मीद की जाती थी कि वे अभी कई दिन तक और बोलते रहेगे। अनवर को ऐसा लगा रहा था कि उनका धुआधार भाषण, जो किसी खास अभियुक्त के खिलाफ दोषारोपण के मुकाबले मे कम्युनिज्म के विचारो पर हमला ज्यादा था, कभी समाप्त नही होगा।

'कैपिटल' का एक मोटा-सा ग्रन्थ ऊपर उठाकर ताड जैसे लम्बे सरकारी वकील ने, जो रूस मे कम्युनिस्टो के अकथनीय 'अत्याचारों' के बारे मे विस्तार-पूर्वक भाषण दे रहा था, क्रोधावेश मे कहा, "इन सिद्धान्तो को···मार्क्स के इन बेतुके सिद्धान्तो को, बडी निर्दयता से लागू किया गया, जैसी निर्दयता इतिहास मे इससे पहले कभी नही देखी गई थी।" इतना कहकर वह बड़े नाटकीय ढग से रुका और किताब मेज़ पर रखकर कुछ ढीले कदमो से अभियुक्तो के कटहरे की तरफ बढा और उन्हे इस तरह घूरकर देखने लगा मानो वह उन सबको इन

अत्याचारो का दोषी ठहरा रहा हो। "यह है," और इन शब्दो पर ज़ोर देते हुए उसने अभियुक्तो को एक बार फिर इस तरह घूरकर देखा मानो वह उन सबको इस सामूहिक विभीषिका मे शामिल कर रहा हो, "यह है वह सुनहरा स्वर्ग जिसके लिए इन हत्यारो के इशारे पर रूस की खुफिया पुलिस ने पच्चीस लाख मर्द, औरत और बच्चे मौत के घाट उतार दिए है।"

वह एक बार फिर रुका ताकि उसके शब्द लोगो के दिलो मे बैठ जाए और मजिस्ट्रेट साहब को अपने छोटे-से टाइपराइटर पर उन्हे टाइप करने का मौका मिल जाए, और वह अभियुक्तो को इस तरह घूरकर देखने लगा जैसे उसे उनमे से हरएक से कोई ज़ाती शिकायत हो और वह उनकी सवेदनशील चेतना मे घाव करके उसे अपने व्यग के चाकू से कुरेदकर आनन्द प्राप्त कर रहा हो। परन्तु इस बार भाषण के बीच मे रुकना उसके लिए घातक सिद्ध हुआ। उस दुबले-पतले अग्रेज की एक आख पर लगे हुए बिना कमानी के चश्मे का सारा रोब धूल मे मिल गया। हुआ यह कि जेम्स साहब के रुकते ही सारे कैदियो ने अपनी उकताहट जाहिर करने के लिए एकसाथ बडे ज़ोर से जम्हाई ली। इसपर सब लोग हस पडे, यहा तक कि खुद जेम्स साहब के नीचे काम करनेवाले एक हिन्दुस्तानी वकील साहब भी जिनके मुटापे की वजह से ठोडी के नीचे खाल लटक आई थी, अपनी हसी नही रोक सके। और तो और मजिस्ट्रेट साहब भी इस हास्यजनक परिस्थिति पर अपनी हसी लाख रोकने पर भी मुस्करा ही दिए। जब जेम्स साहब ने कम्युनिस्ट कैदियो की इस गुस्ताखी पर झुझलाकर तेजी से मुडकर उन्हे घूरा तो उनका चश्मा नीचे गिर पडा और काली डोरी से झूलने लगा। इसपर सब लोग फिर ठहाका मारकर हस पडे।

'योर ऑनर, आई प्रोटेस्ट। मैं आपका ध्यान इस बात की ओर दिलाना चाहता हू कि..."

मजिस्ट्रेट साहब ने अपनी हसी छिपाने के लिए एक फाइल अपने मुह के सामने कर ली और जेम्स साहब को अपना एतराज़ पूरा करने का मौका दिए बिना ही उन्होने कहा, "अच्छा, अब अदालत लच के लिए बर्खास्त होती है।"

कैदियो को खाना खिलाने के लिए बगले के पीछे ले जाया गया। उनका खाना एक लम्बी-सी मेज़ पर लगा हुआ था। बहुत-से सवाददाता कैदियों को नज़दीक से देखने के लिए टहलते हुए उसी तरफ बढ़े। उनमे एक मोटा-सा लाल

मुहवाला अमरीकन भी था जो धूप से बचाव के लिए इतनी बडी हैट लगाए था कि देखकर हसी आती थी। अनवर ने कुछ कैदियो को तो पहचान लिया क्योकि उन्हे वह दिल्ली के स्टेशन पर देख चुका था, बाकी को स्थानीय रिपोर्टरो ने पहचनवा दिया। स्प्रैट और ब्रैडले के अलावा अब उनमे एक तीसरा अग्रेज भी था—हचिसन नामक एक नवयुवक पत्रकार। कैदियो मे सबसे बूढे डी०आर० ठेगडे नामक एक वयोवृद्ध मराठा सज्जन थे, जिनकी उम्र इस समय ६५ वर्ष की थी और जो ट्रेड यूनियन काग्रेस के प्रेसीडेट रह चुके थे। गोरखपुर के एक मोटे-से होमियोपैथ डाक्टर मुखर्जी की सजधज निराली ही थी, उन्होने लेनिन के ढग की एक छोटी-सी काली दाढी रख छोडी थी। पजाब के एक विशालकाय सिख सज्जन के बारे मे, जो अपनी उलझी हुई दाढी के कारण बहुत भयानक दिखाई देते थे, अनवर को बताया गया कि वे मशहूर क्रातिकारी सोहनसिह जोश थे जो भगतसिह की नौजवान भारत सभा के प्रेसीडेट रह चुके थे। इसके बाद अनवर ने एक दुबले-पतले गोरे-से नौजवान के बारे मे पूछा जो सिर से पाव तक काले कपडे पहने था। उसके रिपोर्टर दोस्त ने बताया, "ये है लाहौर के केदारनाथ सहगल, जिन्होने कसम खाई है कि जब तक देश गुलाम रहेगा तब तक काले कपड़े ही पहनेगे।" इन इकतीस कैदियो मे हर तरह के लोग थे और अनवर को ऐसा लगा कि सच्चे मार्क्सवादियो के साथ शायद बहुत-से क्रातिकारी आदर्शवादियो और कुछ सनकी लोगो को भी पकड लिया गया था। उनमे से कुछ स्पष्टतः विद्यार्थी थे जो अभी हाल ही मे कालेज से निकले थे। अनवर उनमे से एक के पास गया जो लगभग उसीकी उम्र का लडका था—भरा हुआ गोल-मटोल चेहरा और आखो पर ऐनक लगी हुई। अनवर ने बातचीत शुरू करने के लिए कहा, "मेरठ में उतनी सर्दी नही है जितनी लाहौर मे थी।"

"क्या तुम लाहौर से आ रहे हो?" उस लडके मे नौजवानी का जोश उमडा पड रहा था और वह बोलते वक्त कुछ हकलाता था।

"हां," अनवर ने जवाब दिया और फिर पीछे मुडकर देखा कि कोई उसकी बात सुन तो नही रहा है, "मैं आप लोगो के लिए टैररिस्ट कैदियो का एक खत लाया हू। क्या मैं आपका नाम जान सकता हूं?"

"पी० सी० जोशी। तुम वह खत मुझे दे दो।"

अनवर ने छोटा-सा पतला लिफाफा जोशी की तरफ सरकाया ही था कि

इतने मे एक पुलिस सब-इस्पेक्टर को अपनी तरफ झपटकर आते हुए देखकर उसके होश उड गए। जोशी खाना खाने मे जुटे रहे। "कुछ तुम भी खाओ," दारोगा साहब के वहा पर पहुचते ही जोशी ने अनवर को खाने का निमन्त्रण देते हुए कहा।

"मैने तुम्हे अभी एक चिट्ठी इन्हे देते देखा है," दारोगा साहब ने अनवर पर आरोप लगाया और फिर जोशी से बोले, "लाओ, निकालो, किधर है वह खत ?"

जोशी ने चुपचाप रोटी का एक बडा-सा कौर मुह मे रखा और जवाब दिया, "कैसा खत ?" जिस वक्त जोशी की तलाशी ली जा रही थी अनवर के होश-हवास गुम थे, लेकिन तलाशी मे कुछ भी हाथ नही आया। दारोगा साहब खिसियाकर यह कहते हुए चले गए, "खैर, लेकिन मेरा खयाल है कि इन्होने कोई चीज़ दी जरूर थी।"

दारोगा साहब जब काफी दूर पहुच गए तो अनवर ने उस नौजवान कम्युनिस्ट की तरफ प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। "तुम फिक्र न करो," जोशी ने एक और कौर अपने मुह मे रखते हुए कहा, "मैने सब पचा लिया है।"

अनवर की सारी मेहनत बेकार गई। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि इस बात पर खुश हो कि पुलिस ने उसे पकडा नही था या इस बात पर निराश हो कि जो खत वह लाया था वह नष्ट हो गया था। लेकिन जब वह बाकी लोगो के साथ वहा से चलने लगा तो जोशी ने चुपके से उससे कहा, "तुम फिक्र न करो। इस बार हम लोग खुद उनके पास खत भेजेगे।"

अनवर का काम पूरा हो गया था फिर भी वह न होने के बराबर था। उसने गाजियाबाद की गाडी पकडी जहा से उसे अलीगढ के लिए गाडी बदलनी थी। उसी डिब्बे मे एक अमरीकन संवाददाता भी सफर कर रहा था—एक गंजा-सा, अधेड उम्र का बहुत ही चुस्त आदमी जो नाक के सुर मे बोलता था। उसने बिना किसी तकल्लुफ के खुद अपना परिचय देते हुए कहा, "मैं अमेरिकन न्यूज फीचर्स का कारेस्पाडेट राबर्ट मिल्स हू।"

"आप सिर्फ इस मुकदमे की रिपोर्ट भेजने के लिए इतनी दूर मेरठ तक आए थे ?"

"हां। लेकिन मैं अभी कुछ दिन और हिंदुस्तान मे रहूगा। मेरा खयाल है

कि अब चूकि गाधीजी ने आजादी के बारे मे मजबूत कदम उठाया है इसलिए अब यहा काफी हलचल रहेगी। गाधीजी ने स्वतन्त्रता की एक शपथ भी जारी की है। तुमने आज का अखबार पढा ?"

अनवर को उस दिन अखबार पढने का मौका नही मिला था इसलिए उसने मिल्स से अखबार लेकर मोटी-मोटी खबरे पढ डाली। केन्द्रीय और प्रातीय विधानसभाओ के सभी काग्रेसी सदस्यो ने इस्तीफा दे दिया था। काग्रेस की नई वर्किंग कमेटी ने हर साल २६ जनवरी को सारे देश मे 'पूर्ण स्वतन्त्रता दिवस' मनाने का फैसला किया था और यह कहा था कि इस दिन हर जगह मीटिंगो मे खुले-आम स्वतन्त्रता की घोषणा पढी जाए और सब लोगो से स्वतन्त्रता की शपथ लेने को कहा जाए।

"ओह ब्वाय, ओह ब्वाय !" वह अमरीकी पत्रकार कह रहा था, "यहा भी हमारे यहा के जेफरसन और टाम पेन वाला किस्सा दुहराया जानेवाला है। मेरा मन कहता है कि तुम्हारे इस प्राचीन देश मे जल्द ही बहुत बडी-बडी घटनाए होनेवाली है। कभी दिल्ली आओ तो मुझसे मिलना। मै सेसिल होटल मे हू।"

अनवर उसकी बात नही सुन रहा था। वह लाहौर की एक खबर बडे गौर से पढ रहा था। खबर का शीर्षक था 'कई आतकवादी पकडे गए—कृष्ण-नगर मे बम फैक्ट्री पर पुलिस का छापा।' गिरफ्तार किए गए लोगो के बारे मे यह लिखा था कि उनमे 'रतनसिह उर्फ रामलाल भी शामिल है जिसे भगतसिह और उनके साथियो की गिरफ्तारी के बाद सगठित किए गए आतक-वादी दल का नेता बताया जाता है।'

अलीगढ़ वापस पहुचकर अनवर की जिन्दगी फिर उसी पुराने ढर्रे पर चलने लगी। सुबह क्लास मे जाना, तीसरे पहर 'राज़' सुभान और उस्मान के साथ राजनीति पर कभी न खत्म होनेवाली बहसे, लेकिन शाम होते ही उसके पाव अपने-आप मैरिस रोड की तरफ उसे इस तरह खीच ले जाते थे जैसे सूरज ढले शराबी शराबखाने की तरफ खिचता है। सलमा से रोज़ मिलना उसके लिए एक नशा-सा हो गया था—इसके बिना वह ज़िन्दा नही रह सकता था। सलमा की तरफ उसका बढता हुआ लगाव एक 'दर्दे-लादवा' हो गया था।

अनवर एक दुहरी जिन्दगी बसर कर रहा था लेकिन कभी-कभी ही उसे खयाल आता था कि इसमे क्या खतरे छिपे हुए हैं। अपने कमरे मे अपने दोस्तो के बीच पहुचकर वह राजनीतिक चेतना रखनेवाला नौजवान बन जाता था जो उस नाटक मे, जो शीघ्र ही सारे देश मे खेला जानेवाला था, अपनी भूमिका अदा करने के लिए न सिर्फ तैयार था बल्कि उत्सुक और बेचैन भी था। 'राज' और कुछ दूसरे लोगो के साथ वह स्थानीय काग्रेस कमेटी का सदस्य बन गया था और उसने खद्दर पहनना शुरू कर दिया था, हालाकि जेल जाने की तैयारी मे उसने 'राज' की तरह पलग और बिस्तर छोडकर फर्श पर सोना शुरू नही किया था। शाम को प्रोफेसर सलीम के घर पर वह राजनीति पर कोई बातचीत नही करता था। अगर कभी राजनीति का कोई प्रसग निकल भी आता था तो वह बातचीत का रुख दूसरी तरफ मोड देने की कोशिश करता था। वह जानता था कि सलमा और उसके अब्बा दोनो ही को उसके विचार पसन्द नही आएगे और वह यह नही चाहता था कि कोई ऐसी बहस छिडे जिससे बदमजगी पैदा हो। सलमा से वह दूसरी ही तरह की बाते करता था—वह उसे इश्किया नज्मे पढकर सुनाता था या फिल्मो के बारे मे बाते करता था या फिर उसे यह बताता था कि उन्नाबी रग का स्वेटर पहनकर वह कितनी खूबसूरत लगती थी। या फिर वह कोई भी बात नही करता था, चुमचाप उसके पास बैठा हुआ उसके समीप होने का आनन्द लेता रहता था। सलमा की उपस्थिति से सारा वातावरण महक उठता था और अनवर की आखे उसके सौदर्य का रसपान करती रहती थी। इस वक्त राजनीति और क्राति उसे बहुत दूर की चीजे मालूम होती थी, जिनका कोई वास्तविक रूप नही था; इस वक्त तो उसके लिए सिर्फ उनके प्रेम का अस्तित्व होता था।

फिर भी रोज़ सलमा के घर के लिए रवाना होते वक्त वह इरादा करता था कि वह अपने सारे विचार उसके सामने रख देगा, वह उसे अपनी दूसरी जिन्दगी की भी एक झलक दिखाएगा, वह भविष्य की अपनी सारी कल्पनाओं के बारे मे उसे बताएगा। वह बार-बार अपने मन मे इस डायलाग का रिहर्सल करता था : 'सलमा, मैं तुम्हारे बिना जिन्दा नही रह सकता, लेकिन मै कौम के लिए अपने फर्ज़ को भी नही भूल सकता। मेरे दिल मे जो तूफानी कशमकश है उसे तुम ही खत्म कर सकती हो—मैं जैसा हूं वैसा ही मुझे कबूल करके,

यह जानते हुए कि मैं आगे चलकर बागी बननेवाला हू।' उसने कई बार अपने दिल मे कहा था कि हो सकता है कि बेरुखी के पर्दे के पीछे सलमा खुद भी एक बागी हो और उसे बगावत की राह पर ले जाने के लिए शायद सिर्फ एक हलके-से इशारे की, मुहब्बत के साथ समझाने-बुझाने की जरूरत हो। शायद···? हो सकता है कि ऐसा न भी हो। वह यह खतरा मोल लेने को तैयार नही था।

स्वतन्त्रता-दिवस से दो दिन पहले 'राज' ने अनवर से कहा कि अगर उनकी यूनिवर्सिटी मे स्वतन्त्रता की घोषणा न पढी गई तो यह उन सबके लिए बहुत ही शर्म की बात होगी। उसका ख्याल था कि यूनियन पर इस बात के लिए जोर डालना चाहिए कि इस काम के लिए एक मीटिंग करे। लेकिन यूनियन का वाइस-प्रेसीडेट अधिकारियो से डरता था और वह इस बात के लिए भी तैयार नही था कि अधिकारियो की इजाज़त के बिना यूनियन की इमारत मे कोई मीटिग हो। लेकिन धीरे-धीरे हर तरफ इस बात का चर्चा फैल गया और विद्यार्थियो के विभिन्न दल, जिनमे सुभान के 'रूसी' भी शामिल थे, उनके कमरे मे आकर उन्हे यकीन दिलाने लगे कि वे इस तरह की मीटिंग करने मे उनके साथ है। नौजवान दिलो मे जोश था और जब २५ जनवरी को उन्हे मालूम हुआ कि अग्रेज प्रो-वाइस-चासलर ने यह कहा था कि वह इस तरह की कोई मीटिंग नही होने देगा तो उनका गुस्सा हद पर पहुच गया।

'आजादी की लडाई के सिपाही की हैसियत से यह मेरी पहली आज़माइश है,' अनवर हर वक्त मन ही मन अपने-आपसे यही कहता रहता था। 'मुझे इस आज़माइश मे पूरा उतरना है, मुझे कदम पीछे नही हटाना है।'

उस दिन शाम को जब वह सलमा के घर पहुचा तो वह कुछ घबराया हुआ और परेशान था, क्योकि उसने फैसला कर लिया था कि आज वह सलमा को बता देगा कि कल वह क्या करने जा रहा है। 'काश वह हमारा साथ दे सके,' यह विचार उसके दिमाग पर हथोडे की तरह चोटे मारता रहा, 'अगर वह हमारा साथ दे तो फिर मुझे दुनिया मे किसी बात की फिक्र नही है।' वह उसे सब कुछ बता देगा, अपने सारे विचार, अपनी आकाक्षाएं, अपनी सारी

योजनाए और अपने सारे स्वप्न, क्योकि वह उसकी जीवनसगिनी बननेवाली थी—उसके सारे जीवन की साथी, उसके सारे प्रेम की साझेदार। कल कुछ भी हो सकता है।

उसने सोचा था कि सलमा घर पर अकेली होगी क्योकि यह उसके अब्बा का क्लब जाने का वक्त था। लेकिन जब वह वहां पहुचा तो न सिर्फ प्रोफेसर साहब वहा मौजूद थे बल्कि उनके अलावा एक लम्बा-चौडा, गोरा-चिट्टा कसरती नौजवान भी वहां मौजूद था जिसका सर इतनी कम उम्र मे ही गजा हो चुका था। इससे पहले अनवर ने उसे वहा कभी नही देखा था। फिर भी वह बडी बेतकल्लुफी से सोफे पर आराम से बैठा हुआ था और सलमा उसे चाय बनाकर दे रही थी। अनवर खुद को इतना समझदार मानता था कि सलमा को किसी दूसरे नौजवान आदमी से बाते-भर करते देखकर उसे ईर्ष्या नही होने लगी, पर न जाने क्यो उसके दिल मे एक अजीब बेचैनी पैदा हुई।

"हैलो अनवर," प्रोफेसर साहब ने उसका स्वागत करते हुए कहा, "ये है मजूर, इनके अब्बा हमारे बहुत पुराने दोस्त है।"

अनवर जब मजूर से हाथ मिला रहा था उसी वक्त सलमा बोल उठी, "पापा, खाली मजूर क्यो कहते है आप इन्हे, कहिए 'मिस्टर मजूरआलम, डी०एस०पी०' क्योकि ये तो किसी भी वक्त किसीको भी पकडकर जेल मे बन्द करवा सकते है।"

अनवर से यू ही रस्मी तौर पर "हैलो, आपसे मिलकर बडी खुशी हुई" कहने के बाद उसने सलमा की चोट का जवाब देते हुए बडी निर्लज्जता से कहा, "सलमा, तुम्हें गिरफ्तार करके कौन पुलिस अफसर खुश नही होगा?"

अनवर को यह देखकर बडा आश्चर्य हुआ कि सलमा उसकी इस बात का बुरा मानने के बजाय इसे अपनी तारीफ समझकर बहुत खुश हुई।

इस बेफिकरे, दभी और लम्बे डीलडौलवाले पुलिस अफसर के सामने अनवर को ऐसा लगा कि उसकी पुरानी भीरुता और झिझक फिर वापस आ गई है। एम० ए० मे पढनेवाले एक काफी प्रमुख विद्यार्थी से बदलकर जो सारी यूनिवर्सिटियो के विद्यार्थियो की कई डिबेटो मे इनाम हासिल कर चुका था, जो जवाहरलाल नेहरू और सुभाष बोस से बाते कर चुका था, जो बडे-बडे क्रांतिकारियो और राजनीतिज्ञो से मिल चुका था, वह अचानक स्कूल मे पढनेवाले

उस शर्मीले और झेंपू लडके जैसा हो गया जो बडे लोगो के बीच आकर खोया-खोया-सा रहता है। जब उसे मालूम हुआ कि मजूर न सिर्फ उनके साथ ठहरा हुआ है बल्कि खाना खाने के बाद वह उन लोगो के साथ सिनेमा देखने भी जानेवाला है, तो सलमा के साथ बाते करने की अनवर की सारी योजनाए धरी की धरी रह गईं।

घूम-फिरकर राजनीति की चर्चा चल पडी और अगले दिन के लिए काग्रेस ने स्वतन्त्रता दिवस के जिस कार्यक्रम की घोषणा की थी उसके बारे मे प्रोफेसर सलीम ने कुछ बहुत ही निंदाजनक बाते कही।

"प्रोफेसर साहब, आप फिक्र न कीजिए," मजूर एकदम बोल पडा, "हम इन काग्रेसियो से निबटने के लिए पूरी तरह तैयार है। आप देखते जाइए कि हम मिस्टर गाधी की इस सिविल नाफ़रमानी की तहरीक को किस तरह चौबीस घटे के अदर-अदर कुचलकर रख देगे। हर चीज का रत्ती-रत्ती फैसला कर लिया गया है। बल्कि हम दो-चार रिहर्सल भी कर चुके है।"

फिर वह किसी बात को याद करके मन ही मन बहुत खुश हुआ और हसने लगा। "मै आपको एक वाकये के बारे मे बताता हू जो खुद मेरे जिले मे हुआ था। जवाहरलाल ने जिले के गावो का दौरा किया था और लोगों मे बगावत फैलानेवाली तकरीरे की थी। मैं चाहता तो उन्हें वही गिरफ्तार कर लेता लेकिन हम लोगो को आर्डर मिले हुए है कि हम अभी कुछ सब्र से काम ले। खैर, उनके चले जाने के बाद ज़मीदारो ने शिक़ायत की कि कुछ किसान, जिन्हे जवाहरलाल काग्रेस का वालटियर बना गए थे, बहुत अकडने लगे थे और गुस्ताखी से पेश आते थे—वे बेगार करने से इकार करते थे, पलटकर जवाब देते थे वगैरह-वगैरह। मैंने अपने आदमियो को भेजकर उनमे से बारह आदमियो को गडबड फैलाने के जुर्म मे गिरफ्तार करवा लिया। उनमे से नौ मामूली किसान थे, उन्हे तो मैंने दस-दस कोडे लगवाकर छोड दिया। लेकिन उनमे से तीन इलाहाबाद के पढे हुए लड़के थे जिन्हे यहा हगामा खड़ा करने के लिए भेजा गया था, इसलिए मैंने उनसे निबटने के लिए दूसरा रास्ता अख्तियार किया।"

मंजूर सिगरेट जलाने के लिए और अपने इस किस्से मे सुननेवालो की दिलचस्पी बढाने के लिए बीच मे रुका तो अनवर के गाल गुस्से से तमतमा उठे। "मंजूर, उनके साथ तुमने क्या किया ?" सलमा ने बेकरार होकर पूछा, "उन्हें

तो शायद कोड़े नही लगवाए होगे।"

"नही, नही, उनके साथ ऐसा भोडा तरीका इस्तेमाल करने का सवाल ही नही था।" मजूर ने सिगरेट का कश लगाते हुए कहा, "मैंने बहुत ही बढ़िया तरकीब इस्तेमाल की जिससे साप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। मैंने शहर के पाच-छ छटे हुए बदमाश बुलवाए और उनको एक-एक बोतल ठर्रा पिलवा दिया। प्रोफेसर साहब, यह ठर्रा भी बहुत ही जालिम चीज होती है। जब वे नशे मे बिलकुल चूर हो गए तो मैने उन्हे उन तीन काग्रेसी वालटियरो के साथ एक ही कोठरी मे बद करवा दिया। सुबह तक मेरे बदमाशो ने उन तीन नौजवान सत्याग्रहियो की हड्डी-पसली एक कर दी। सुबह तक उनकी यह हालत हो गई कि उनके मुह से बोल नही निकलता था। और लुत्फ तो यह था कि हमारे किसी आदमी ने उन्हे हाथ तक नही लगाया। अगर कैदी आपस मे लडे और उनमे से किसीको चोट आ जाए तो इसमे हमारा क्या कसूर है?"

फिर वह अपने इस बेरहमी के मजाक पर जोर से हसा और अनवर को उससे नफरत होने लगी कि कोई आदमी अपने निर्दयी होने पर इतना गर्व करे।

"तो प्रोफेसर साहब, अगर आपको कल यूनिवर्सिटी मे किसी हगामे का खतरा हो तो मुझसे बताइएगा। लेकिन मेरा खयाल है कि आपके यहा इस तरह के सिरफिरे बागी नही होगे—या है?"

इससे पहले कि प्रोफेसर साहब कोई जवाब देते, अनवर अपनी जगह से उठा और जाकर मजूर के सामने खडा हो गया। ऐसा करना उसके लिए आसान नहीं था। वह जानता था कि उसके ऐसा करने से एक तूफान खडा हो जाएगा। उसके गाल और कान अभी तक गुस्से के मारे लाल हो रहे थे, लेकिन वह महसूस कर रहा था कि अगर इस वक्त उसने पुलिस के इस बददिमाग अफसर से मोर्चा न लिया तो वह उम्र-भर मर्द कहलाने के लायक नही रह जाएगा। "मिस्टर मंजूर," उसका स्वर उत्तेजना के कारण काप रहा था लेकिन वह थम-थमकर एक-एक शब्द बहुत तोल-तोलकर कह रहा था, "मैं आपको दावत देता हूं कि कल सुबह ग्यारह बजे यूनियन हाल मे हम लोग इडिपेडेस डे की जो मीटिंग कर रहे हैं उसमे आप भी तशरीफ लाइए। आप वहा तशरीफ लाइए ताकि हम भी देखे कि पुलिस अफसर मे कितना दम होता है।"

"अनवर !" सलमा के मुह से एक चीख-सी निकली, "तुम मजूर की 'इन्सल्ट' कर रहे हो।"

उसकी आवाज़ सुनकर अनवर को ऐसा लगा कि किसीने उसके मुह पर एक जोर का तमाचा मार दिया है, लेकिन जो कदम वह उठा चुका था उससे वह पीछे नही हट सकता था। "ज़ाहिर है मैं 'इन्सल्ट' कर रहा हू," उसने कहा और वहा से चल देने के लिए मुडा।

"अनवर !" प्रोफेसर सलीम ने कडककर कहा।

"अनवर !" सलमा ने उसे पुकारकर कहा, "प्लीज़, कम हियर।"

लेकिन वह उनकी आवाज़ को अनसुना करके बाहर निकल गया। वह जानता था कि उसने कोई बहुत ही खौफनाक बात की है लेकिन साथ ही वह यह भी जानता था कि उसने बहुत शानदार काम किया है। यह पहला मौका था कि सलमा ने उसे पुकारा था और वह कुत्ते की तरह दुम हिलाता हुआ उसके पास नही गया था।

"दोस्तो और साथियो !" अनवर ने भाषरण देना शुरू किया। अनजाने ही उसने अपना भाषरण उन्ही शब्दो से आरभ किया था जो उसने जवाहरलाल नेहरू को बोलते सुने थे। "मुझे इस बात का बहुत अफसोस है कि हमे जबर्दस्ती इस हाल मे घुसना पड़ा, जिसे इस्तेमाल करने का हमे पूरा हक है, लेकिन हमारा यह हक हमे देने से इंकार किया गया था..."

अनवर ने सोचा आज मेरी आवाज़ लडखडा क्यो रही है, मेरा गला रुधा क्यो जा रहा है। वही यूनियन हाल है जहा मैं पहले भी कई बार बोल चुका हूं। कही मैं इस बात से डर तो नही रहा हू कि इसका नतीजा क्या होगा ? लेकिन मैंने तो यू भी यूनिवर्सिटी छोड देने का फैसला कर लिया है। और फिर मैं अकेला भी तो नही हूं। मेरे साथ 'राज' है, सुभान है, उस्मान फज़लभाई है। इन्हे तो डर नही लग रहा। डटे रहो, अनवर, तुम भी डटे रहो।...

"मैं आपके सामने इस वक्त पडित जवाहरलाल नेहरू की वह बात दुहराऊंगा जो उन्होने उस यादगार रात को रावी के किनारे आज़ादी का परचम लहराते वक्त कही थीं। उन्होने कहा था, 'अब हमने अपने मुल्क को विदेशी हुकूमत से

आज़ाद करने की खुली साजिश की है और, साथियो, आपको, हमारे देश के सब भाइयो और बहिनो को, इस खुली साज़िश मे शामिल होने का न्योता दिया जाता है। लेकिन इसके बदले मे आपको तकलीफे उठानी पडेगी, जेल जाना पडेगा और हो सकता है आपको अपनी जान की भी कुरबानी देनी पड़े।'…अब मै 'प्लैज' पढता हू, आप सब लोग मेरे साथ दुहराइए।…

"हम यह यकीन रखते है कि किसी भी दूसरी कौम की तरह हम हिदुस्तानियो का भी यह पैदायशी हक है कि हम आजाद हो और अपनी मेहनत के फल खाए और हमारी ज़िदगी की तमाम जरूरते पूरी हो ताकि हमे तरक्की करने का पूरा मौका मिल सके। हम यह भी यकीन रखते है कि अगर कोई हुकूमत किसी कौम से ये हक छीने और उसपर ज़ुल्म करे तो।…

"…जनता को इस बात का भी हक है कि वह उस हुकूमत को बदल दे या खत्म कर दे। हिदुस्तान मे ब्रिटिश हुकूमत ने हिंदुस्तान की जनता से न सिर्फ़ उसकी आज़ादी छीन ली है बल्कि उसने अपनी बुनियाद जनता का खून चूसने पर रखी है और आर्थिक, राजनीतिक, सास्कृतिक और आत्मिक रूप से तबाह कर दिया है। इसलिए हमारा यह यकीन है कि हिंदुस्तान को अंग्रेज़ो से अपना नाता तोडकर 'पूर्ण स्वराज्य' यानी मुकम्मल आजादी हासिल करनी चाहिए।

"…हिन्दुस्तान को आर्थिक रूप से तबाह कर दिया गया है। हमारी जनता से जो कुछ वसूल किया जाता है वह हमारी आमदनी से कई गुना ज्यादा है। हमारी औसत आमदनी सात पैसे रोज़ है और हम जो भारी टैक्स अदा करते है उसका बीस फीसदी हिस्सा लगान की शक्ल मे लिया जाता है और तीन फीसदी नमक पर टैक्स की शक्ल मे, जिसका सबसे ज्यादा बोझ गरीबो पर पडता है।…

"…गाव के उद्योगो को, जैसे हाथ से सूत कातने के उद्योग को तबाह कर दिया गया है जिसकी वजह से किसान साल मे कम से कम चार महीने खाली बैठे रहते है, उनका हुनर तबाह हो गया है और इसके बदले मे उन्हे कोई दूसरा हुनर भी नही सिखाया गया है जैसाकि दूसरे मुल्को मे किया गया है। बाहर से आनेवाले माल पर टैक्स का और मुद्रा का बन्दोबस्त इस चालाकी से किया गया है कि उसकी वजह से किसानो पर बोझ और बढता है। बाहर से जो माल आता है उसमे ज्यादातर माल ब्रिटेन के कारखानो का बना हुआ होता है। कस्टम

ड्यूटी के मामले मे ब्रिटेन के कारखानो के बने हुए माल के साथ साफ तरफदारी की जाती है और इससे जो आमदनी होती है उसे जनता का बोझ हलका करने के लिए नही बल्कि हुकूमत की फिजूलखर्ची के लिए इस्तेमाल किया जाता है। हिन्दुस्तानी रुपये और ब्रिटिश पौंड मे जो रिश्ता कायम किया गया है उसमे और भी मनमानी धाधली की गई है जिसकी वजह से हमारे मुल्क से करोडो रुपया खिचकर बाहर चला जाता है। ''

वह एक क्षण के लिए रुका। हाल मे लोगो की हलकी-हलकी आवाजो के बीच उसे प्रो-वाइस-चासलर साहब की मोटर का हार्न सुनाई दिया। अच्छा है यह अग्रेज भी चार सौ हिन्दुस्तानियो को आजादी की कसम लेते हुए सुन ले।··· वह सधी हुई आवाज से दुहराता रहा।

"···सियासी एतबार से हिन्दुस्तान की हालत कभी इतनी पस्त नही रही है जितनी कि अग्रेजो की हुकूमत मे। कोई भी सुधार ऐसा नही हुआ है जिससे जनता को सच्ची सियासी ताकत मिली हो। हममे से बडे से बडे आदमी को भी विदेशी हुकूमत के आगे झुकना पडता है। अपने ख्यालात जाहिर करने और संगठन बनाने की आजादी हमसे छीन ली गई है और हमारे बहुत-से देशवासियो को मजबूर होकर अपने देश से बाहर रहना पड रहा है और वे अपने देश वापस नही आ सकते। हमारे लोगो मे सरकार का काम चलाने की जो काबलियत है उसे कुचल दिया जाता है और उन्हे गावो मे छोटी-मोटी सरकारी नौकरिया और दफ्तरो मे क्लर्की पर ही सब्र करना पडता है।···"

अनवर ने देखा कि प्रोफेसर सलीम बाहर बरामदे मे इतज़ार कर रहे थे। उसने यह भी देखा कि एक अजनबी आदमी ने आकर उनसे कुछ पूछा।···वह ज़रूर कोई सी० आई० डी० का आदमी रहा होगा। उसने सोचा, कोई बात नही है, ऐसे आदमी के अलावा और कौन सरकार की मदद कर सकता है?

"सास्कृतिक रूप से, शिक्षा की व्यवस्था ने हमे अपनी जडो से अलग कर दिया है, और हमे जो कुछ सिखाया जाता है उसकी वजह से हम उन्ही जजीरो को सीने से लगाए रहते है जिनमे हम जकडे हुए है।

"रूहानी एतबार से, जबर्दस्ती हमसे हथियार छीन लिए जाने की वजह से हम डरपोक हो गए हैं और हमारे मुल्क पर कब्जा जमाए रखनेवाली विदेशी फौज के मौजूद रहने से, जिसे हमारी विरोध की भावना को कुचलने के लिए

बडी बेरहमी के साथ इस्तेमाल किया जाता है··· ”

उसे अचानक अमृतसर की सडक पर जाती हुई घुडसवारो की वह फौज याद आ गई·· और वह लालमुहा अफसर जिसने 'फायर !' का हुक्म दिया था और बीसियो बदूके मौत की गोलिया उगलने लगी थी। जलियावाला बाग···· क्या अभी इस तरह के और कत्ले-आम होगे ?·· वह रुका और फिर डबडबाई हुई आखो से उसने ज़ोर देकर पढना शुरू किया।

“ ···हम यह सोचने लगे है कि हम अपनी देखभाल खुद नही कर सकते और विदेशियो के हमले से अपनी हिफाजत नही कर सकते या चोरो-डाकुओ और बदमाशो से अपने घरो और अपने परिवारो की हिफाजत भी नही कर सकते।···

“हम और ज्यादा दिन तक एक ऐसी हुकूमत के गुलाम बने रहने को, जिसने इन चार तरीको से हमे तबाह किया है, इंसान और खुदा के खिलाफ एक गुनाह समझते है। लेकिन हम यह मानते हैं कि अपनी आज़ादी हासिल करने का सबसे कारगर तरीका हिंसा का तरीका नही है।···

“ इसलिए हम जहा तक हो सकेगा अपनी मर्ज़ी से ब्रिटिश हुकूमत के साथ कोई ताल्लुक न रखकर अपने-आपको तैयार करेंगे, हम सिविल नाफरमानी (सविनय अवज्ञा) की तैयारी करेंगे, जिसमे टैक्स अदा न करना भी शामिल है। हमे पूरा यकीन है कि अगर हम किसी भी तरह का उकसावा दिए जाने पर भी किसी भी तरह की हिंसा किए बिना अपनी तरफ से कोई मदद न दें और टैक्स अदा करना बद कर दे तो इस बेरहम हुकूमत का खात्मा यकीनी है। इसलिए हम कसम लेते है कि पूर्ण स्वराज्य हासिल करने के लिए काग्रेस वक्त-वक्त पर जो भी हिदायते देगी उन्हे हम पूरा करेंगे।··· ”

और फिर उसने उन सबकी तरफ़ देखा। उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि सबके चेहरो पर आज़ादी की चमक थी। उसने देखा कि 'राज़' की आखो से आंसू बह रहे हैं। सुभान का ऐसा सख्तदिल आदमी भी इस अवसर की गंभीरता से प्रभावित हो गया था और उसकी आंखे नम थी। लेकिन खुद अनवर के गालों पर यह क्या बह रहा था ? पसीना—जनवरी मे ? मुमकिन है। उसने अपने मन में कहा, 'नही, मुझे फौरन इसे पोछ डालना चाहिए क्योकि ये लोग आ रहे हैं—प्रो-वाइस-चासलर, प्रोफेसर सलीम, प्रोफेसर नबीबख्श, प्राक्टर,

वार्डन, यूनियन के वाइस-प्रेसीडेंट साहब और उन सबके पीछे ऐंडता हुआ पुलिस अफसर मजूर। मै मर जाऊंगा लेकिन उन्हे अपनी आखो मे आसू नही देखने दूगा।...

लेकिन इस किस्से का खात्मा अचानक हो गया। अनवर को जिस जोश-खरोश की उम्मीद थी वह कही भी दिखाई नही दिया।

'राज,' सुभान और उस्मान फजलभाई के साथ उसे भी यह सूचना दी गई कि उसे यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया है। उन चारो से कहा गया था कि वे चौबीस घटे के अदर-अंदर हास्टेल खाली कर दे। जिन चार सौ लडको ने वह गैरकानूनी मीटिंग करने मे हिस्सा लिया था उनमे से मुश्किल से दर्जन-भर ऐसे रहे होगे जो खुले तौर पर इन चार अपराधियो का साथ देकर यूनिवर्सिटी से निकाले जाने का खतरा मोल लेने को तैयार हो। देशभक्ति के जोश की लहर उतर गई थी, एक बार फिर नौजवानी का जोश डर, दब्बूपन और बेदिली मे दब गया।

अनवर को यूनिवर्सिटी से निकाले जाने का कोई गम नही था—उसने बी०ए० पास ही कर लिया था और सरकारी नौकरी करने का इरादा उसका कभी भी नही था। लेकिन उसे इस बात की फिक्र ज़रूर थी कि उसके अब्बा पर और सलमा पर इसका क्या असर होगा। क्या सलमा उम्र-भर के लिए एक बागी का साथ देने को तैयार होगी? क्यो नही होगी? माना कि उसे राजनीति मे कोई दिलचस्पी नही है, लेकिन वह उससे मुहब्बत करती है और जब उसे मालूम होगा कि उसने इन्कलाब के रास्ते पर चलने का फैसला कर लिया है तो उसकी मुहब्बत उसके कदमो को भी उसी रास्ते की तरफ मोड देगी। उसके अब्बा जरूर अडचन डालेगे, क्योकि उन्होने अपने दिल मे यह तै कर लिया था कि उनका दामाद आई० सी० एस० हो। इसलिए अनवर के इस तरह गुमराह हो जाने से उन्हे जरूर निराशा होगी। हो सकता है कि वे इस बात की भी कोशिश करे कि उनकी बेटी अनवर को छोडकर मंजूर जैसे किसी आदमी को स्वीकार कर ले, हालांकि सलमा से उसे इस बात का डर नही था कि वह उसे छोडकर किसी दूसरे से प्रेम कर सकती है।

प्रोफेसर सलीम का नौकर सलमा का खत लेकर आया। उसने बहुत जल्दी मे सिर्फ इतना लिखा था, "मुझे अभी सब कुछ मालूम हुआ। लेकिन तुम फिक्र न करना। सब ठीक हो जाएगा। तुम मुझसे मिलने कब आ रहे हो ? मैं तुम्हारा इतजार करूगी।" सलमा को उसका कितना खयाल था। किस्मत के थपेडो से उसे बचाने के लिए और उसे तसल्ली देने के लिए वह उसके पास मौजूद थी। और थोडी ही देर बाद अनवर साइकल तेजी से भगाता हुआ मैरिन रोड पर चला जा रहा था।

सलमा उसकी राह देख रही थी और वह उसे सीधे अपने कमरे मे ले गई। यह देखकर अनवर का दिल भर आया कि उसकी आखे लाल थी जिससे जाहिर था कि वह रो रही थी। जैसे ही सलमा ने दरवाजे की चटखनी लगाई, अनवर ने उसे अपनी बाहो मे जकड़ लिया और उसकी गर्म तथा सूजी हुई पलको को चूमने लगा। बेचारी सलमा! उसकी हर बात कितनी प्यारी थी! उसके हृदय मे सलमा के प्रति कोमल भावनाओ का एक ज्वार उमड आया और सलमा उसकी बाहो मे सिसक-सिसकर रोने लगी।

कुछ देर तक दोनो मे से कोई नही बोला। अनवर अपने चुम्बनो से उसके आसुओ को रोकने की कोशिश करता रहा। उसने उसकी भीगी हुई पलको को, उसके कापते हुए होठो को, उसकी गरदन को और उसके कानो की कोमल लबो को चूमा और हर चुम्बन के साथ उसकी भावनाओ की कोमलता प्रबल कामावेश मे परिवर्तित होती हुई प्रतीत हुई। सलमा ने अपने शरीर को उसके बाहुपाश मे ढीला छोड दिया और अनवर ने उसके स्पदनशील वक्ष को अपने सीने के साथ कसकर जकड लिया। उसके सीने मे वासनाओ की लहर उठ रही थी। अनवर सलमा के लिए अपने हृदय की इस प्यास से हमेशा से परिचित था जो अदर ही अदर एक आग की तरह सुलग रही थी। उस क्षण अनवर को आभास हुआ कि सलमा उससे कितना प्यार करती है, और वह यह भी समझने लगा कि वह उसकी किसी बात को, किसी भी बात को नही टाल सकती।...

अनवर को ऐसा लग रहा था कि उसकी वासना ने उसे ढकेलकर एक अथाह गर्त के किनारे पर ला खडा किया था। "डार्लिंग अनवर, तुम मुझसे प्यार करते हो न ?" सलमा ने एक गहरी सास लेकर कहा।

"मेरी जान, तुम्हे इसमे कोई शक है क्या ?" और यह कहकर उसने जोर

से सलमा के होठों को चूम लिया ।

सलमा ने अपनी बोझल पलके उठाई तो अनवर ने देखा कि वे वासना के बोझ से झुकी जा रही है। लेकिन इतने मे सलमा बोली, "तो तुम मुझे छोडकर नही जाओगे । तुम माफी माग लोगे । माग लोगे न, स्वीटहार्ट ?"

उसके इन शब्दो का वास्तविक अर्थ अन्तर की चेतना पर अकित होते ही वासना का यह तूफान ठंडा पड गया और उसे ऐसा लगा कि धीरे-धीरे उसके सारे शरीर पर एक शिथिलता छा गई। कही ऐसा तो नही था कि उसने सलमा की बात ठीक से सुनी ही न हो ?

"सलमा, क्या कह रही हो तुम ?" अनवर ने उसकी आखो मे आखे डालकर पूछा । "क्या तुम चाहती हो कि मैं गद्दारी करूं ?"

"इसका मतलब यह है कि तुम मुझसे मुहब्बत नही करते," सलमा ने रूठकर कहा और फिर उसके चारो ओर वासना का जाल बुनने लगी, "वरना तुम्हे माफी के कुछ लफ्जो पर दस्तखत कर देने मे क्या एतराज है ? पापा ने प्रो-वाइस-चासलर साहब से सब कुछ तै कर लिया है । डार्लिंग, ज़िद न करो । तुम मुझे छोडकर कैसे चले जाओगे ?"

अनवर ने महसूस किया कि उसे खो देने के डर और मुहब्बत की वजह से ही सलमा ऐसी नासमझी की बाते कर रही थी । उसने कहा, "लेकिन, मेरी जान, तुम जानती हो कि मैं कही भी रहू, जेल मे रहूं या फासी के तख्ते पर, मेरा दिल हमेशा तुम्हारा रहेगा । मैं जो कुछ हू और आगे चलकर जो कुछ भी बनूगा, जो कुछ भी करूगा, तुम हमेशा मेरे साथ रहोगी—क्योकि तुम्हारे बिना मैं हमेशा किसी चीज़ की कमी महसूस करूगा। यह सत्याग्रह हमेशा तो नही चलेगा। जब मैं जेल से वापस आऊगा तब हम शादी कर लेंगे।..."

"नही, नही," सलमा ने बीच मे बात काटकर कहा, "मैं इतने दिन तक इतज़ार नही कर सकती ।"

"अच्छी बात है," अनवर ने फैसला करते हुए कहा, "तो फिर हम अभी शादी कर ले—आज ही, इसी वक्त ।" अनवर जानता था कि उसके अब्बा सलमा जैसी नई रोशनी की लडकी को अपनी बहू बनाना पसंद नहीं करेगे, लेकिन उन्हे वह किसी तरह समझा-बुझाकर राजी कर लेगा । "मैं तुम्हे ज़्यादा कुछ तो नहीं दे सकता लेकिन जो कुछ भी मेरा है, जो कुछ भी मैं इस वक्त हूं और

आगे चलकर बनूंगा—वह सब तुम्हारा है। सलमा, आओ हम लोग शादी करके दुनिया का मुकाबला करें।"

थोडी देर तक तो सलमा ने कोई जवाब नही दिया फिर वह धीरे-धीरे हर शब्द को तोल-तोलकर इस तरह बोली जो उसके लिए बहुत ही अस्वाभाविक बात थी और इसलिए अनवर को उसका इस तरह बोलना बहुत बुरा लगा। सलमा ने कहा, "अच्छी बात है। लेकिन तुम वादा करो कि तुम यह सियासत की सारी बकवास छोड दोगे, मेरे अब्बा जो कुछ कहेगे वह करोगे, आई० सी० एस० की तैयारी करोगे और···"

"नही," अनवर के इस एक तीखे शब्द ने सलमा को चुप कर दिया, जो इस तरह बोल रही थी जैसे अपनी भावनाओं को ताक पर रखकर कोई सौदा चुका रही हो। अनवर गहरी निराशा के कारण काप रहा था।

"तो इसका मतलब सिर्फ यह है कि तुम मुझसे मुहब्बत नही करते। तुम्हारे लिए तुम्हारी सियासत और तुम्हारे गाधी और जवाहरलाल और आजादी की यह सारी बकवास ही सब कुछ है, मेरी मुहब्बत कुछ भी नही है।" और इतना कहकर वह सिसक-सिसककर रोने लगी। "मुझे पहले ही यह समझ लेना चाहिए था। सबने मुझे यही समझाने की कोशिश की थी पर मैं यकीन नही करती थी। मैं यही समझती थी कि तुम सचमुच मुझसे प्यार करते हो। लेकिन उनका कहना सही था और मैं जो कुछ समझती थी, वह गलत था।"

"उनका!" अनवर को यह बहुवचन प्रयोग कुछ खटका। "उनका किनका?"

सलमा ने कुछ ध्यान दिए बिना ही कह दिया, "सभीका। पापा का, मजूर का " और इसके बाद सहसा वह रुक गई।

अनवर को लगा कि उसकी आखो के सामने से एक परदा हट गया। तो यह बात थी। जब तक उसे उम्मीद थी कि वह आगे चलकर आई० सी० एस० बनेगा तभी तक वह उसे एक प्रेमी और पति के रूप मे स्वीकार करने को तैयार थी। खुद उसकी अपनी कोई कद्र नही थी। वह घूरे पर फेंक देने के लायक था। तो इसे वे मुहब्बत, लगाव और इज्जत समझते थे—प्रोफेसर सलीम, मजूर और खुद सलमा भी। फिर भी उसने एक आखिरी कोशिश करने का फैसला किया।

"सलमा, क्या तुमने अच्छी तरह सोच-समझकर यह तै कर लिया है कि तुम्हे मेरी जरूरत नही है। या सिर्फ मजूर की खाकी वर्दी के रोब मे आकर तुम···"

"शट अप !" सलमा चिल्लाई और अनवर ने सलमा को एक नये रूप मे देखा, बदमिजाज और झगडालू सलमा के रूप मे। वह कह रही थी, "तुम्हे मजूर का नाम बीच मे लाने का कोई हक नही है। वह कम से कम शरीफ आदमी तो है। लेकिन तुम···मुहब्बत के झूठे दावे करने के बाद मुझे इस तरह ठुकरा दिया तुमने···मुझे तुमसे नफरत है·· हा, मैं तुमसे नफरत करती हू······"

अनवर समझ गया कि अब और कुछ कहना बेकार है। ऐसी चिडचिडी और बदमिजाज औरत से कोई कैसे बहस कर सकता था।

अपनी सारी कटु भावनाओ को दबाते हुए उसने कहा, "अच्छा सलमा, मै जाता हू। जब तुम्हारा गुस्सा ठडा हो तो मेरे बारे मे ज्यादा सजीदगी से सोचने की कोशिश करना। जहा तक मेरा सवाल है, मैं हमेशा तुम्हारा एहसानमद रहूगा और मेरे दिल मे तुम्हारे लिए हमेशा मुहब्बत रहेगी।" वह कहना तो नही चाहता था फिर भी उसने कह ही दिया, "एक दिन तुम्हे अदाजा होगा कि मैं कितने सच्चे दिल से कितनी पूरी तरह तुमसे मुहब्बत करता था।"

अनवर दरवाजा खुला छोडकर कमरे से बाहर निकल गया पर सलमा ने न तो उसकी बात का कोई जवाब दिया न उसे बुलाया ही। लेकिन जब वह विचारो मे उलझा हुआ और उदास-उदास बैठक से बाहर निकला तो उसने सुना कि सलमा ने बहुत गुस्से के साथ दरवाजा बद करके चटखनी चढा ली।

रेलगाडी उसे अलीगढ से दूर लिए जा रही थी। यूनिवर्सिटी के छोटे-छोटे चौकोर लान, घंटाघर, मस्जिद के गुम्बद और मीनारे रेलगाडी की खिडकी के पास से पीछे भागती हुई दिखाई दे रही थी। सिर्फ यूनिवर्सिटी की बस्ती ही नही बल्कि उसकी जवानी उससे दूर भागकर धुधले क्षितिज मे विलीन हुई जा रही थी। जब घटाघर की चोटी आम के पेडो के पीछे छिप गई और आख से बिलकुल ओझल हो गई तो अनवर को ऐसा लगा कि उसके अदर एक अजीब खालीपन पैदा हो गया है।

जब शीतकाल के आकाश पर अन्धकार छाने लगा तो उसकी उदासी और गहरी होने लगी। ड्योढे दर्जे के छोटे-से घुटे हुए डिब्बे मे बिजली की बत्तियो से बुझी-बुझी-सी रोशनी आ रही थी और ऐसा लगता था कि वे भी अनवर

की तरह ही उदास है। रेलगाडी के पहियो से लगातार एक आवाज आ रही थी जो अनवर के दिमाग पर हथौडे जैसे मार रही थी—सलमा ! सलमा ! सलमा ! उसके हृदय मे निराशा की पीडा छाई हुई थी और उसे ऐसा लग रहा था कि यह निराशा उसका गला घोट देगी। जनवरी की सुर्द हवा से बचने के लिए लोगो ने खिडकिया बन्द कर रखी थी और अनवर का दम घुटा जा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था कि वह मर जाएगा।

उसने घबराकर एक खिडकी खोल दी और बर्फ जैसी ठडी हवा ने जैसे उसके मुह पर एक तमाचा मारा। तेज हवा उसकी आखो मे तीर की तरह चुभने लगी। और उसके ओवरकोट के कालर मे से जब यह हवा अन्दर घुसी तो वह सर्दी से काप उठा। फिर भी न जाने क्यो उसे यह सर्दी अच्छी लग रही थी, उसमे फिर से जान आ गई थी। अधकारमय आकाश, ठडी हवा और गाडी की गडगडाहट—सब उसे चुनौती दे रहे थे, जिससे उसके मस्तिष्क की उलझन दूर हो गई थी और उसमे एक नया जोश पैदा हो गया था। बहुत दूर दिल्ली की दिशा मे अधकारमय क्षितिज पर बिजली चमक रही थी। कही पानी बरस रहा था। महावटो की बारिश शुरू हो गई थी। थोडी देर बाद रेलगाडी तूफान और बारिश को चीरती हुई दिल्ली की तरफ भागी चली जा रही थी और दिल्ली की झपकती हुई रोशनिया मानो इशारा करके उसे अपनी ओर बुला रही थी।



अनोखी यात्रा

वह एक उड़नेवाले घोडे की पीठ पर सवार आसमान की तरफ उडता चला जा रहा था। आसमान का रग बुखार की तरह पीला था। वह घोडा बहुत अजीब था लेकिन फिर भी पहचाना हुआ लग रहा था, जैसे बचपन की कोई भूली हुई याद हो। यह सुखद स्वप्नो की निर्विघ्न प्रवाहमयी उडान नही थी बल्कि वह बडी मेहनत से ऊपर चढ रहा था और उसे बडी तकलीफ हो रही थी। उसे ऐसा लग रहा था कि किसी भी क्षण वह अपना सतुलन खो बैठेगा और नीचे एक अथाह गर्त मे गिर जाएगा। थोडी देर बाद वह घोडा गायब हो गया और वह हवा मे लटका रह गया। उसमे इतनी ताकत नही थी कि वह आसमान पर उड जाए और ज़मीन की तरफ गिरते हुए उसे डर लगता था। क्षितिज उसे धीरे-धीरे अपने शिकजे मे जकडे ले रहा था। क्षितिज का रग गहरा पीला था, बिलकुल सलमा के कसे हुए स्वेटर की तरह पीला। और सलमा के स्वेटर की याद आते ही उसे ऐसा लगा जैसे किसीने उसके दिल मे खजर घुसा दिया हो। उसे आकाश या क्षितिज अपने शिकजे मे नही जकड रहा था बल्कि वह खुद सलमा थी, उसका कोमल शरीर उसके शरीर से सटा हुआ था और उसे गर्मी पहुचा रहा था। और खुद उसका चेहरा सलमा के शरीर से इतना करीब था कि उसे सिर्फ उसके पीछे स्वेटर की बुनाई दिखाई दे रही थी जिसमे उसके सीने की गोलाइया ज्यो की त्यो उभर आई थी। वह उसे दिखाई तो नही दे रही थी पर वह उसे महसूस कर सकता था। उसके यौवनमय शरीर की मादक सुगध उसके अग-अग मे बसी जा रही थी और वह उसकी गर्म वासना-युक्त सास का स्पर्श अपने गालो पर अनुभव कर रहा था। सहसा सैकड़ो पुरानी कोमल स्मृतियो ने जागरित होकर उसके मन मे वासना जागरित कर दी और उसकी गोद मे अपना मुह छिपाकर वह डरे हुए बच्चे की तरह सिसक-सिसककर रोने लगा।

जब उसका स्वप्न भग हुआ तो बुखार से तपते हुए उसके गालो को भीगे हुए तकिये का स्पर्श बहुत सुखद प्रतीत हुआ लेकिन वह ठीक से नही कह सकता था कि यह पसीना था या आसू—हो सकता है दोनो ही रहे हो। उसे समय का कोई ज्ञान नही रह गया था, शायद वह कई हफ्ते से बिस्तर पर लेटा था। लोग कहते थे कि शायद उसे ट्रेन मे सर्दी लग गई थी जिसकी वजह से पहले उसे इनफ्लुएजा हो गया था और फिर टायफाइड। लेकिन वह जानता था कि यूनिवर्सिटी से निकाले जाने पर उसके दिल को जो धक्का लगा था और सलमा से छूट जाने पर उसके दिल पर जो और भी गहरी चोट लगी थी उसीकी वजह से उसका शरीर जवाब दे गया था। बडी अजीब बात थी कि अलीगढ मे वह इतना शात था—अपने अभिमान के कारण वह अपनी पीडा को स्वय भी स्वीकार करना नही चाहता था, दूसरो से उस पीडा की चर्चा करने का तो सवाल ही नही था। जब रेलगाडी तूफान को चीरती हुई आगे बढ रही थी तब उसे ऐसा लगा था कि उसमे फिर से जान पड गई है लेकिन भीतरी चोट की तरह यह उसे अदर ही अदर खोखला किए दे रही थी। उसे अपने अब्बा को यह बताने का भी मौका नही मिला कि वह यूनिवर्सिटी से क्यो निकाल दिया गया था कि इतने मे बुखार ने उसे आ दबोचा।

•

अकबरअली यह खबर सुनकर ज़रा भी परेशान नही हुए। अनवर जानता था कि हाल ही मे आगाखा के नेतृत्व मे मुस्लिम काफ्रेंस नामक जो संस्था बनी थी उसमे उसके अब्बा भी शामिल थे। आगाखा भी एक पहेली थे—वे खुदा, पैगम्बर, फैशनेबल रईस और अग्रेजो के वफादार दोस्त सभी कुछ थे और उनके नेतृत्व में मुस्लिम कांफ्रेंस काग्रेस का, गाधीजी का और सत्याग्रह-आदोलन का ज़बर्दस्त विरोध कर रही थी। ऐसे लोगो की सोहबत मे रहकर अकबरअली कुछ खुश नही थे लेकिन उनका खयाल था कि 'चालाक हिंदुओं का मुकाबला करने' के लिए हर विचार के मुसलमानो को एक हो जाना चाहिए, क्योकि हिंदू सिर्फ मुसलमानो को दबाने के लिए ही आज़ादी चाहते थे और वे समझते थे कि मुसलमानो मे उनके और अली-बधुओ की तरह के जो अग्रेज-विरोधी तत्त्व थे वे आगाखा की मुस्लिम काफ्रेस को अग्रेजो के हाथ की कठ-

पुतली बना देने से रोक लेंगे।

अनवर कुछ समय से यह महसूस कर रहा था कि उसके और उसके अब्बा के राजनीतिक विचारो तथा भावनाओ मे बहुत अतर पैदा हो गया था। जब उसने अपने यूनिवर्सिटी से निकाले जाने की खबर सुनाई तो उसे डर था कि बहुत तूफान मचेगा। उसे डर था कि उसके अब्बा बहुत नाराज़ होगे और उसे घर से निकाल देगे, उसे उत्तराधिकार से वचित कर देगे। वह मन ही मन खुद अपने-आपपर तरस खाने लगा था और अपने-आपको शहीद समझने लगा था। उसने फैसला कर लिया था कि वह मुसीबते उठाकर और अपने-आपको हर सुख से वचित रखकर सेवा और त्याग मे अपना जीवन व्यतीत कर देगा। लेकिन उसके अब्बा ने सिर्फ इतना कहा, "अब तुम बडे हुए, समझदार हो, अपना भला-बुरा खुद समझते हो। तुम जानते हो मेरे सियासी खयालात तुमसे मुख्तलिफ है लेकिन मैं अपने खयालात तुम्हारे ऊपर थोपना नही चाहता। मुझे सिर्फ एक बात की खुशी है कि तुमने अपनी जान बचाने के लिए माफी नही मागी—शाबाश!" और यह कहकर उन्होने अपने बेटे की पीठ भी थपकी थी। अब्बा के इस प्यार ने अनवर की चेतनाओ की रही-सही शक्ति को भी नष्ट कर दिया था। काश उसके अब्बा उसपर बरस पडे होते, काश उन्होने उसे डाटा-फटकारा होता, बुरा-भला कहा होता, तो उनका मुकाबला करने के लिए उसने अपनी शक्ति को कायम रखा होता। लेकिन इस उदारता और सहानुभूति के आगे वह बिलकुल लाचार हो गया, वह कमजोर और शिथिल हो गया। पिछले कुछ दिनो की सारी थकान लौट आई और उसका सिर चकराने लगा और वह सिर्फ इतना ही कह पाया, "अब्बा, जरा मेरी नब्ज़ तो देखिए। मुझे ऐसा लगता है कि मुझे बुखार है।"

अकबरअली ने तन-मन से अपने बेटे की सेवा की। तेज बुखार की बेहोशी मे बीच-बीच मे जब उसे होश आता तो अनवर देखता कि उसके अब्बा उसके माथे पर गीला कपडा रख रहे हैं, उसका बुखार देख रहे है, उसे दवा दे रहे हैं। जब दर्द से उसका सिर फटने लगता तो वे उसका सिर भी दबाते थे और अपने बेटे को बीमारी से चगा करने के लिए वे पांच वक्त नमाज भी पढते थे। उन्हे अपने कारोबार के लिए या अपने दोस्तो के बीच बैठने के लिए बहुत ही थोडा वक्त मिलता था। हकीम बेदिल, जिनके सारे बाल अब सफेद हो चुके थे और

कमर बुढापे से दुहरी हो गई थी, बीमार अनवर को किस्से और शेर सुनाकर उसका दिल बहलाते थे। एक दिन जब अनवर तेज बुखार की वजह से कुछ-कुछ बेहोश था, तो रामेश्वर काका भी उसकी तबियत पूछने आए थे। सबको मालूम था कि वे 'शुद्धि' आदोलन के लिए पैसा देते थे, जिसका उद्देश्य निम्न-वर्ग के गरीब मुसलमानो को हिदू बनाना था। यह काम आर्यसमाज के जरिये हो रहा था जिसने हिंदू धर्म को मजबूत बनाने का बीडा उठाया था। और अकबरअली का सबध तबलीग के आदोलन के साथ था जो मुसलमानो की तरफ से शुद्धि का जवाब था। वे अक्सर अपने पुराने दोस्त और साझीदार रामेश्वरदयाल की बुराई भी करते रहते थे।

अनवर ने आखे खोली और अब्बा के पास बैठे हुए रामेश्वर काका को उसने पहचाना, लेकिन उसमे बोलने की ताकत नही थी। मुस्कराकर वह सोचने लगा, 'सियासत के इस सारे झगडे के पीछे दोनो मे अब भी काफी दोस्ती है।' उसने रामेश्वर काका को कहते सुना, "अकबर, तुम्हे लडके को इतनी ढील नहीं देनी चाहिए नही तो वह इस सत्याग्रह के चक्कर मे फस जाएगा और किसी दिन उसे फासी हो जाएगी।" अकबरअली ने कहा, "उसकी सियासत मुझे भी उतनी ही नापसद है जितनी तुम्हे, लेकिन जिस चीज को वह सही समझता है उसके लिए जान देने की अगर उसमे हिम्मत हो, तो वह हमारे लिए बहुत खुशी की बात होगी।" हमारे लिए ? उसके अब्बा ने विदेशी कपडा बेचनेवाले इस बुज-दिल व्यापारी के साथ अपना नाम क्यो जोडा था, जिसकी दूकान पर काग्रेसी वालटियर किसी भी दिन धरना देनेवाले थे ? अनवर के दिमाग में यह धुधला-सा सवाल उठा ही था कि अपने अब्बा का जवाब सुनकर उसकी शका दूर हो गई, "नही, रामेश्वर, अगर वह गाधीजी की फौज मे भरती होना चाहता है तो मैं उसे रोकूगा नही। मुझे तो बस उसकी सेहत की बडी फिक्र है।"

अनवर इतना उत्तेजित था कि उसके सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। सहसा उसे ऐसा लगा कि उसका जी हलका हो गया है और वह अच्छा हो गया है। वह बार-बार अपने मन मे यही एक बात मंत्र की तरह रटने लगा : मैं अच्छा हो जाऊगा। मैं अच्छा हो जाऊगा। मै अच्छा हो जाऊगा।

अनवर अच्छा हो गया। उसका बुखार उतर गया लेकिन वह कमज़ोर बहुत हो गया था और चलता था तो उसके पैर लडखडाते थे। उसने सोचा कि यह मुनासिब ही होगा कि वह अपने अब्बा को बता दे कि वह जल्द ही सत्याग्रह के लिए काग्रेस के वालटियरो मे अपना नाम लिखा लेगा। अकबर-अली ने कुछ देर सोचने के बाद कहा, "मुझे कोई एतराज़ नहीं है, लेकिन अगर तुम जेल जाना ही चाहते हो तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि पहले तुम बिलकुल अच्छे हो जाओ और तुम्हारे जिस्म मे कुछ ताकत आ जाए ? मेरी राय मे तो तुम जाकर डाक्टर साहब से मिल लो।" उनका अभिप्राय डाक्टर असारी से था इसलिए उन्होने अर्थपूर्ण मुस्कराहट के साथ कहा, "ज़ाहिर है तुम्हे उनसे मिलने में कोई एतराज़ नही होगा। वे तुम्हारी इस बीमारी के अलावा तुम्हारी सियासी बीमारी का भी कोई इलाज बता देंगे।"

अनवर तागा लेकर दरियागजवाली सडक पर फसील के पास जमुना के किनारे डाक्टर असारी के बगले के लिए रवाना हुआ तो उसे अपने अब्बा के इस मज़ाक पर हसी आ गई। अनवर को डाक्टर साहब का यह बडा-सा बगला बहुत अच्छा लगता था—चौडे-चौडे ठडे बरामदे, उनका चमकदार टाइल का फर्श, मिलने आनेवालो और रोगियो के लिए बेत की आरामदेह कुर्सियां। डाक्टर साहब के यहां बीमारो का और मिलने के लिए आनेवालो का ताता बंधा रहता था क्योकि वे एक मशहूर डाक्टर होने के अलावा एक बहुत बडे राष्ट्रीय नेता भी थे। अनवर ने डाक्टर साहब के हर काम को बडी दिलचस्पी के साथ देखा था और दो साल पहले मद्रास काग्रेस मे अध्यक्ष के पद से भाषण देते हुए उन्होने हिन्दू-मुस्लिम एकता की जो ज़ोरदार अपील की थी उससे वह बहुत प्रभावित हुआ था। अनवर इस देशभक्त डाक्टर से दुबारा मिलने के लिए बहुत उत्सुक था।

बरामदे मे जो लोग उनका इन्तज़ार कर रहे थे उनमे बुझे हुए चेहरोवाले घबराए हुए रोगियो के अलावा, जिन्हे डाक्टर साहब मे सिर्फ एक डाक्टर की हैसियत से दिलचस्पी थी, कुछ खद्दरधारी काग्रेसी कार्यकर्ता और लम्बी-लम्बी दाढ़ियोवाले मौलाना भी थे जो शायद जमीअत-उल-उलेमा के लोग थे। यह मुसलमान मौलवियों की अग्रेज़-विरोधी संस्था थी जो काग्रेस की समर्थक थी।

लेकिन अनवर को वहा नीली आखोवाले एक अंग्रेज़ नौजवान को देखकर बडा ताज्जुब हुआ क्योकि उसका सबध इनमे से किसीसे भी नही हो सकता था। वह जो कपडे पहने था, वैसे कपडे अग्रेज़ आम तौर पर नही पहनते थे। वह खद्दर की कमीज, खद्दर की नेकर और नीला खद्दर का कोट पहने था। उसकी टागो पर मोज़े नही थे और पैरो मे वह पेशावरी चप्पल पहने था। सबसे बडी ताज्जुब की बात यह थी कि उसके हाथ मे एक सफेद गाधी टोपी थी जो उसने फौरन अपने सुनहरे बालो पर लगा ली। कोई पक्का साहब कभी भी इस तरह के देसी और विद्रोहियों जैसे कपडे नही पहन सकता था। वह आखिर यहा क्या कर रहा था ?

अनवर ने मेज़ पर रखा हुआ सवेरे का 'हिंदुस्तान टाइम्स' उठाकर देखा तो यह पहेली हल हो गई। पहले ही पृष्ठ पर मोटी-मोटी खबर छपी थी। "वाइसराय के नाम महात्माजी का पत्र—'ब्रिटिश शासन की सगठित हिंसा' का मुकाबला करने के लिए अहिसात्मक सविनय अवज्ञा—सत्याग्रह का कार्यक्रम घोषित—नौजवान अग्रेज शिष्य के हाथ ऐतिहासिक चुनौती भेज दी गई।"

गाधीजी के पत्र के साथ ही नीली आखोवाले उसी नौजवान की तस्वीर छपी हुई थी और तस्वीर के नीचे लिखा था : साबरमती आश्रम के निवासी श्री रेजिनल्ड रेनोल्ड्ज जिन्होने गाधीजी का ऐतिहासिक पत्र लार्ड इर्विन को दिया।

अनवर ने एक बार फिर रेजिनल्ड रेनोल्ड्ज़ की आखो को देखा और उसे उनमे एक अनोखी कोमलता दिखाई दी जो अग्रेज़ो की आखो मे उसने कभी नही देखी थी। या शायद यह जानने की वजह से कि उसने भारत के लिए कितना बडा काम किया था, उसे उसकी आखो मे एक सुखकर तथा आध्यात्मिक भाव दिखाई देने लगा था। वह इस विचित्र अग्रेज़ नौजवान से बाते करने की अपनी इच्छा को न दबा सका।

"मि० रेनोल्ड्ज़," अनवर ने उसके पासवाली खाली कुर्सी पर बैठते हुए उसे संबोधित करके कहा।

"यस प्लीज़।" उस अग्रेज की आवाज़ मे भी बडी नरमी थी, उसमे वह बडे साहबोवाली अकड़ नही थी।

"क्या आपके ऐसे अग्रेज के लिए यह अजीब बात नही है कि आप खुद

अपने लोगो के खिलाफ हम लोगो का साथ दे रहे है ?"

उस नौजवान अग्रेज ने, जो उम्र मे अनवर से कुछ ही बडा रहा होगा, उसकी तरफ देखकर कहा "हा, मेरे दोस्त, दुर्भाग्य से यह कुछ अजीब बात तो है और इसीलिए यह ज़रूरी भी है। हमारे नाम पर साम्राज्य ने जो पाप किए है उसका प्रायश्चित्त हममे से कुछ लोगो को तो करना ही होगा।"

डाक्टर असारी के सेक्रेटरी ने आकर अनवर से कहा कि अब उसकी बारी है और अनवर ने उठकर उस अग्रेज से बिदा लेते हुए कहा, "मेरा नाम अनवर-अली है। मुझे आपसे मिलकर बडी खुशी हुई।" और उससे हाथ मिलाते हुए अनवर ने फिर कहा, "मिस्टर रेनोल्ड्ज, आप जानते है यह पहला मौका है कि मैं किसी अग्रेज़ से हाथ मिला रहा हू…" फिर सहसा उसे यूनिवर्सिटी के अग्रेज़ प्रोफेसरो का खयाल आया और उसने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, "…एक दोस्त की हैसियत से।" रेनोल्ड्ज ने मुस्कराकर जवाब दिया, "मैं उम्मीद करता हू कि यह आखिरी मौका नही होगा।"

जब अनवर डाक्टर असारी के कमरे मे घुस रहा था तो उसे उस सुबह की दूसरी अप्रत्याशित सुखद घटना का अनुभव हुआ, क्योकि उसी वक्त डाक्टर असारी के कमरे से राबर्ट मिल्स निकल रहा था, वही अमरीकी सवाददाता जिससे वह मेरठ मे मिला था।

."हिः देयर !" उसने नाक के स्वर मे अनवर का स्वागत करते हुए कहा, "ग्रेट मैन—दिस डाक्टर इन देयर !"

डाक्टर साहब ने अनवर को अच्छी तरह देखा और सारे समय वे उससे उसकी सेहत के बारे मे ही नही बल्कि उसके अब्बा और उनकी राजनीति के बारे मे भी सवाल करते रहे। उन्होने यह भी पूछा कि वह यूनिवर्सिटी से क्यो निकाला गया था और फिर इस बात पर बडी देर तक चर्चा करते रहे कि वाइसराय के नाम गाधीजी के पत्र से पता चलता है कि सत्याग्रह जल्द ही शुरू हो जाएगा। जब उन्होने अनवर के सीने पर आला लगाकर देखा तो उनकी घनी भवो के नीचे चिता के चिह्न स्पष्ट दिखाई देने लगे। उन्होने अनवर को अपने फेफडों का ध्यान रखने के लिए सचेत करते हुए कहा, "मिया, मुझे यह

आवाज़ कुछ अच्छी नही मालूम होती ।" और फिर अनवर को चिंतित देखकर बोले, "घबराने की कोई बात नही है, लेकिन खास तौर पर टायफाइड की इतनी लम्बी बीमारी के बाद एहतियात बरतना जरूरी है । मै तुम्हे एक टानिक लिखे देता हू । लेकिन उससे ज्यादा जरूरी यह है कि तुम आराम करो, ताज़ी हवा मे खूब टहलो और हरी सब्ज़िया खाओ ।···"

अनवर ने उनकी बात बीच मे ही काट दी । "लेकिन डाक्टर साहब, मै तो सत्याग्रह करने के लिए अपना नाम वालटियरो मे लिखानेवाला हू, फिर जेल मे ताज़ी हवा और हरी सब्ज़िया कहा मिलेगी ?"

"वहा तो नही मिलेगी, इसीलिए तुम्हे कोई भी ऐसा काम करने से मना किया जाता है जिसमे जेल जाने का खतरा हो । हम तुम्हे वालटियर बनाएगे ही नही । कम से कम छः महीने के लिए जेल जाने की बात भूल जाओ ।"

शहीद बनने के ख्वाब देखनेवाला अनवर यह सुनकर बहुत निराश हुआ । "आप मुझे यह हुक्म एक डाक्टर की हैसियत से दे रहे है या काग्रेस के नेता की हैसियत से ?"

"दोनो ही की हैसियत से," डाक्टर साहब ने फौरन जवाब दिया और इस-पर अनवर को अपने अब्बा की बात याद आ गई । अपनी घोर निराशा के बावजूद उसके चेहरे पर मुस्कराहट दौड गई ।

"किस बात पर मुस्करा रहे हो ?" डाक्टर साहब ने पूछा ।

अनवर ने उन्हे बताया कि "चलते वक्त मेरे अब्बा ने कहा था कि डाक्टर अंसारी तुम्हारी इस बीमारी का भी कोई इलाज बताएगे और तुम्हारी सियासी बीमारी का भी ।" इसपर डाक्टर साहब भी खूब हसे । लेकिन उठते-उठते भी अनवर को यही विचार चिंतित कर रहा था कि ऐसे समय पर जबकि सभी देशभक्तों के कदम जेल की ओर उठ रहे होगे वह हाथ पर हाथ धरे बैठा रहेगा । उसने कहा, "डाक्टर साहब, मै आपका कहना तो नही टाल सकता, लेकिन अगर मै इस तहरीक मे हिस्सा न ले सका तो मुझे बहुत दुःख होगा । आप जानते है मैने इसीके लिए यूनिवर्सिटी छोडी है ।" वह इसके साथ ही यह भी कह सकता था कि इसीके लिए उसने सलमा को छोडा था और अपने मुहब्बत के सब ख्वाबो को चकनाचूर कर दिया था ।

"तुम फिक्र न करो," सहृदय डाक्टर साहब ने उसे आश्वस्त करते हुए

कहा, "मेरी यह पाबदी सिर्फ कुछ महीनों के लिए ही है ताकि तुम्हारी तन्दुरुस्ती ठीक हो जाए। और फिर मुल्क की खिदमत करने का अकेला यही तरीका तो नही है कि आदमी जेल चला जाए।"

अनवर ने बडी उत्सुकता से पूछा, "क्या मैं किसी और तरीके से भी खिदमत कर सकता हूं? डाक्टर साहब, अगर कोई तरीका हो तो मुझे बताइए।"

"हा, है क्यो नही," डाक्टर साहब ने मेज पर से एक कार्ड उठाते हुए कहा और कार्ड को इस तरह देखने लगे जैसे उन्हे कोई बहुत अच्छी तरकीब सूझ गई हो। "राबर्ट मिल्स के साथ सारे मुल्क का चक्कर लगाने और उनके इटरप्रेटर और गाइड की तरह काम करने के बारे मे तुम्हारा क्या खयाल है?"

अनवर तो किसी भी किस्म के सफर के लिए हमेशा तैयार रहता था और मिल्स को उसने जितना देखा था उससे तो वह बहुत ही मिलनसार और दोस्त किस्म का आदमी मालूम हुआ था। उसके साथ रहकर शायद वह थोडा-बहुत जर्नलिस्ट भी बन जाए। लेकिन इससे मुल्क की क्या खिदमत होगी?

डाक्टर साहब ने उसे धैर्यपूर्वक समझाया। उन्होने बताया कि यह बहुत जरूरी है कि गाधीजी के नेतृत्व मे भारतीय स्वतत्रता का जो सघर्ष शीघ्र ही आरम्भ होनेवाला है उसके बारे मे दुनिया को बताया जाए। ब्रिटेन के अखबार जाहिर है उसकी ओर कोई ध्यान न देने या उसके महत्त्व को कम करके पेश करने की कोशिश करेगे। लेकिन अमरीकी निष्पक्ष है और अगर अमरीकियो को सचाई बताई जाए तो वे हमारे दोस्त हो सकते है। इसलिए राबर्ट मिल्स जैसे ईमानदार अमरीकी कारेस्पाडेंट की मदद करने से फायदा हो सकता है, जो सत्याग्रह-आदोलन की खबरे अपने अखबारो के लिए जमा करने ही खास तौर पर हिन्दुस्तान आया है। उसे इस आदोलन के हर पहलू को देखने और अपने अखबारो मे उनकी पूरी खबर देने में हर तरह की सुविधा दी जानी चाहिए। "मिल्स के इटरप्रेटर की हैसियत से काम करके एक समझदार देशभक्त नौजवान अपने मुल्क के लिए बहुत कुछ कर सकता है। तुम हिन्दुस्तान और उसकी जनता के अरमानो को अमरीकियो तक पहुचाओगे जो अपनी तारीख और अपनी रवायात की वजह से हमारे साथ हमदर्दी रखते हैं। यह मत भूलो कि सत्याग्रह से गांधीजी मुट्ठी-भर अग्रेजो को परेशान नही करना चाहते बल्कि

वे सारी दुनिया को इंसाफ के लिए ललकारना चाहते है।"

अनवर को और ज्यादा लालच देने की ज़रूरत नही थी। उसने फौरन 'डाक्टर साहब का हुक्म' मानने का वादा कर लिया। उसने चलते हुए कहा, "खुदा हाफिज़, डाक्टर साहब! मैं अपनी तरफ से पूरी कोशिश करूगा और आपको या मिस्टर मिल्स को शिकायत का कोई मौका नही दूगा।"

उसके चले आने के बाद डाक्टर साहब ने घटी बजाकर अपने सेक्रेटरी को बुलाया और उससे कहा कि वह सेसिल होटल मे मिल्स साहब को खबर कर दे कि उनके लिए इटरप्रेटर का इतज़ाम हो गया है। इतने मे टेलीफोन की घटी बजी और उन्होने टेलीफोन उठा लिया।

"हैलो" मैं असारी बोल रहा हू।...कौन, अकबर साहब?...जी हां, सब ठीक है। मैंने उसे अच्छी तरह देख लिया है; उसे सिर्फ आराम और ताज़ी हवा की ज़रूरत है।...आप फिक्र न कीजिए, वह जेल नही जाएगा, कम से कम अभी कुछ दिन तक तो नही। मैंने उसे दूसरा इलाज बताया है।"

कई महीने तक अनवर उस अमरीकी पत्रकार के साथ सफर करता रहा। कहने को तो एक ही अमरीकी उसके साथ था लेकिन वास्तव मे दो थे। एक तो था हट्टा-कट्टा, लाल चेहरेवाला, खबरो का दीवाना राबर्ट मिल्स, जो पिछले पच्चीस बरस से खबरो की तलाश मे कितनी ही लडाइया, गृहयुद्ध और क्रातिया देख चुका था और अब वह नये किस्म की लड़ाई की, एक नई तरह की क्राति की, खबरे जमा करने आया था। राबर्ट मिल्स ने जिस दूसरे अमरीकी से अनवर का परिचय कराया वह कोई जगह नही घेरे हुए था। वह तो बस एक भूत या एक याद की तरह था, फिर भी वह हरदम उनके साथ था और दिल्ली से अहमदाबाद जाते समय राजपूताना के रेगिस्तानो को पार करते हुए अनवर इस सहृदय और बुद्धिमान बूढे अमरीकी से भली भाति परिचित हो गया—हवा मे उडती हुई लम्बी सफेद दाढी, सिर पर एक पुराना हैट और हाथ मे एक लाठी लिए हुए वह उसी लगन के साथ मनुष्य के गीत गाता था जैसे भक्तजन ईश्वर का गुणगान करते है। अनवर ने इससे पहले कभी अब्राहम लिंकन के समकालीन अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन का नाम नही सुना था, क्योकि बी० ए० के अंग्रेज़ी

साहित्य के पाठ्यक्रम मे किसी भी अमरीकी कवि की रचनाएं शामिल नही थी और उसे तो शुबहा था कि उसके प्रोफेसरो ने इस अमरीकी कवि का कभी नाम भी नही सुना होगा। अनवर को यकीन था कि अगर उन्होने नाम सुना भी होगा तो वे इस क्रातिकारी कवि की रचनाएं पढाना कभी भी स्वीकार न करते जिसकी कविता जीवन और साहित्य के किसी बधन को स्वीकार नही करती थी और जिसमे इस विद्रोही भावना का प्रचार किया गया था कि सभी मनुष्य आपस मे भाई है।

लम्बे सफर के लिए मिल्स से अच्छा साथी मिलना मुश्किल था। उसने पृथ्वी के कोने-कोने से ज्ञान का अनत भडार जमा कर रखा था, उसने बहुत कुछ पढ रखा था और बहुत-सी ऐतिहासिक घटनाए अपनी आखो से देखी थी। क्राति के कुछ ही समय बाद वह रूस मे था और बोल्शेविको ने जो कुछ कर दिखाया था उसकी वह बहुत तारीफ करता था लेकिन पक्का 'क्वेकर' होने की वजह से वह उनकी नास्तिकता तथा हिंसा को नापसन्द करता था। यही वजह थी कि उसे गांधीजी के सिद्धान्तो मे इतनी दिलचस्पी थी। वह कहा करता था, "हिन्दुस्तान मे तुम लोग हिंसा के बिना क्राति करके लेनिन के आदर्शों की बुराइया दूर कर सकते हो। और जब यह हो जाएगा तो ईसा के बाद होनेवाले सारे क्रांतिकारियो का काम पूरा हो जाएगा।" फिर वह ईसामसीह की बाते करने लगता। "वह ईसा नही जो धनवानो का सत है, जिसे गिरजाघरो मे काच पर बनी हुई तस्वीरो मे रेशमी वस्त्र पहने हुए दिखाया जाता है। बल्कि असली ईसामसीह जो मेहनत करनेवाला बढई था, जिसने हराम के पैसे बनानेवालो को उसी तरह मार भगाया था जैसे लेनिन ने अपनी तिजोरिया भरनेवालो को रूस से मार भगाया था।" और फिर वह बताता कि ईसामसीह के क्रातिकारी उपदेशों को किस प्रकार भ्रष्ट और विकृत किया गया था। वह गाधीजी का स्रोत ईसा के उपदेशो और उससे भी पहले महात्मा बुद्ध के उपदेशो मे बताता था। "लेकिन यह मत भूलो कि तुम्हारे गांधी के विचारो को ढालने मे हम अमरीकियो का भी कुछ हाथ रहा है।" वह 'गाधी' को हमेशा 'गैंडी' कहता था। "उन्होने खुद एमर्सन का उतना ही आभार माना है जितना टाल्सटाय का।"

लेकिन सबसे ज्यादा आनन्द उसे अनवर को वाल्ट व्हिटमैन की कविताए पढकर सुनाने मे आता था। वह अपने साथ हमेशा बाइबल की एक प्रति के

अलावा उसकी कविताओ का 'लीव्ज आफ ग्रास' नामक मोटा-सा सग्रह भी रखता था। जब वह इन अतुकात कविताओ को पढते-पढते थक जाता तो वह उसे कवि के जीवन के बारे मे बताने लगता। अनवर के लिए यह एक नया साहित्यिक माध्यम था, पर इन अतुकात कविताओ को सुनकर उसमे एक विचित्र उत्साह जागरित होता था। उसने अनवर को बताया कि यह कवि अपने जीवन मे बारी-बारी से बढई, दफ्तर का क्लर्क, मल्लाह और सिपाही सभी कुछ रह चुका था और सबसे बडी बात तो यह थी कि वह अपने जीवन-भर एक घुमक्कड रहा और उस जमाने मे जबकि दास-प्रथा का अन्त नहीं हुआ था और स्त्रियो ने स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी कि उन्हे वोट देने का अधिकार मिलेगा, वह खुले-आम स्त्रियो और पुरुषो की बराबरी और हर जाति तथा वर्ण के लोगो की बराबरी की बाते करता था। व्हिटमैन की 'पैसेज टु इडिया' नामक कविता पढकर सुनाने मे उसे सबसे ज्यादा आनद आता था। इस कविता मे उसने स्वेज नहर के खुलने पर हर्ष प्रकट करते हुए कहा था कि यह 'महाद्वीपो और महासागरो और नाना प्रकार की जलवायु का विवाह-सस्कार है' और इसी प्रसग मे उसने भारत की प्राचीन सस्कृतियो तथा दर्शन-पद्धतियो का गुणगान करते हुए कहा था :

The far-darting beams of the spirit,
    The unloos'd dreams,
The deep diving bibles and legends
    The daring plots of poets, the elder religions

और जब वे 'जयपुर के गुलाबी शहर' से होकर गुजरे और उन्होने वहा के महलो और मन्दिरो को सूरज मे चमकते हुए देखा तब उसे फौरन व्हिटमैन की ये पंक्तिया याद आ गई :

O you temples fairer than lilies
    Pour'd over by the rising sun
You lofty and dazzling towers, pinnacled,
    Red as roses, burnished with gold

"और तुम्हारा ताजमहल ! चादनी मे ताजमहल जितना सुन्दर लगता है उतनी सुन्दर चीज मैंने इस दुनिया मे कही नही देखी। व्हिटमैन ने उसका वर्णन बहुत ही सुन्दर शब्दो मे इस प्रकार किया है कि 'क्षणिक स्वप्नो से ढाली

गई अमर गाथाओ के मीनार।' क्या ताज का इससे सुन्दर कोई वर्णन हो सकता है ?"

चादनी मे ताजमहल ! स्मृति के पखो के सहारे अनवर का अपना 'क्षणिक स्वप्न' फिर उसे व्यथित करने के लिए लौट आया और उस दिन रात को जब वह होटल के कमरे मे सोने के लिए बिस्तर पर लेटा तो उसे नीद नहीं आई। छत पर टगा हुआ बिजली का पखा सारी रात एक ही शब्द दुहराता रहा—सलमा ! सलमा !! सलमा !!

वे ११ मार्च को सुबह अहमदाबाद पहुचे। अहमदाबाद बेढगे तरीके से दूर तक फैला हुआ एक पुराना शहर था जिसमे जगह-जगह पर मिलो की चिमनिया आकाश की ओर चली गई थी। "यह एक ओर सामती पतन और दूसरी ओर उद्योगो के विकास का अनोखा मेल है।" बाब मिल्स ने शहर को देखकर कहा, "रूस की क्राति से पहले पेत्रोग्राद भी बहुत कुछ ऐसा ही शहर था।"

डाकखाने जाकर उन्होने अपनी डाक ली। मिल्स के अखबारो ने उसे तार भेजा था कि वह 'गांधीजी की डडी-यात्रा' के बारे मे विस्तृत रिपोर्टें भेजे। ऐसा लगता था कि अमरीका मे लोगो को इस खबर मे बहुत दिलचस्पी थी। अनवर के नाम उसके अब्बा ने एक मोटा-सा लिफाफा भेजा था जिसमे उन्होंने उसके पीछे उसके नाम आए हुए सारे खत भेजे थे। एक खत सुभान का था जो कानपुर की किसी ट्रेड यूनियन मे काम कर रहा था। उसने लिखा था, "मेहनतकश लोग नये हिन्दुस्तान की इन मिलो और फैक्ट्रियो मे इन्कलाब करेगे, इन्कलाब उस आश्रम मे नही होगा जहा एक सत बैठा हुआ ब्रिटिश साम्राज्य के शेर की दुम पर घर का बना हुआ एक चुटकी नमक रखकर उसे डराने की कोशिश कर रहा है।" सुभानोव्स्की बिलकुल नही बदला था। अनवर अपने मित्र की इस अनोखी उपमा पर मुस्करा दिया। फिर उसने उस पोस्ट-कार्ड पर नज़र डाली जिसपर लखनऊ की मुहर लगी हुई थी। उसपर शायर की बहुत खूबसूरत ज़नानी लिखाई मे गालिब का सिर्फ एक शेर लिखा हुआ था लेकिन उससे उसका यह मतलब बिलकुल साफ था कि उसने सत्याग्रह मे शामिल

होने और जेल जाने का फैसला कर लिया था। पोस्टकार्ड पर लिखा था

खानाजादे-जुल्फ है जंजीर से भागेगे क्यो ?
है गिरफ्तारे-वफा जिंदा से घबराएगे क्या ?

वे लोग वहा ठीक वक्त से पहुचे थे क्योकि गाधीजी उसी दिन रात को अपनी यात्रा शुरू करनेवाले थे और सारे शहर मे एक हलचल थी। प्रोग्राम पहले से घोषित करके 'शत्रु' को उसकी सूचना दे दी गई थी। पुलिस को यह मालूम था कि गाधी-सेना मे कितने सत्याग्रही होगे, उनके नाम क्या है, वे किस रास्ते से होकर दो सौ मील की यात्रा के बाद समुद्र के किनारे डडी नामक स्थान पर पहुचेगे और रास्ते मे किन-किन गावो मे ठहरेगे। यह एक नये ढग की सेना थी जो एक नये ढग की लडाई लड रही थी और सैन्य-कला के इतिहास मे इस रणनीति का कोई दूसरा उदाहरण नही मिलता था। इसलिए इसको एक नया नाम दिया गया था—सत्याग्रह ! सचमुच यह 'सत्य की लडाई' थी।

उन्होने होटल से एक टैक्सी ली और साबरमती नदी का पतला-सा पुल पार करके एक धूल-भरी सडक से होते हुए आश्रम की तरफ चले। आश्रम नीम के पेडो के बीच छोटी-छोटी सफेद झोपडियो का एक समूह था। आश्रम के शात वातावरण मे एक हलचल छिपी हुई थी। जिन पचहत्तर लोगो को इस यात्रा के लिए चुना गया था वे आखिरी तैयारिया कर रहे थे। महात्मा गाधी अपने नियम के अनुसार तीसरे पहर सो रहे थे, लेकिन उनके एक सेक्रेटरी से उन लोगो ने सारी बाते मालूम कर ली। गाधीजी ने खुद बहुत ध्यान देकर ऐसे लोगो को अपने साथ ले चलने के लिए चुना था जो अहिंसा मे पूरा विश्वास रखते थे। इनमे मुसलमान और हरिजन भी शामिल थे और उनको यह आदेश था कि वे अपने साथ बिलकुल ही जरूरी चीजो के अलावा कुछ भी न ले जाए।

सेक्रेटरी की बात बीच मे ही काटकर मिल्स ने कहा, "वे अपने साथ एक लाठी के अलावा और कुछ न ले, न कोई हुडी न रोटी और न पैसा। उनके पैरों मे केवल एक जोडा जूता और शरीर पर केवल एक वस्त्र हो।"

"जी हा, जी हा !" सेक्रेटरी को बडा आश्चर्य हुआ, "आपको यह सब कैसे मालूम हुआ ?"

"यह तो बहुत पुरानी कहानी है—अब से कोई उन्नीस सौ तीस वर्ष पुरानी !" अमरीकी पत्रकार ने गाधीजी के सेक्रेटरी के चेहरे पर विस्मय का

भाव देखकर कहा। "मै तो आपको बाइबल मे लिखी हुई बात सुना रहा था। ईसा ने अपने बारह शिष्यो को यही आदेश दिया था।"

"मेरा विचार है कि गाधीजी को इस पवित्र उदाहरण का पता नही है। लेकिन उन्हे यह सुनकर बहुत खुशी होगी। जब वे सोकर उठेगे तो मै उन्हे आपकी यह बात बताऊगा।"

"ज़रूर, ज़रूर, और उनसे मेरा सलाम कह दीजिएगा। मै आज उन्हे परेशान नही करना चाहता, आज उन्हे बहुत-सी बातो के बारे मे सोचना होगा, लेकिन रास्ते मे कही पर मै उनसे मुलाकात करना चाहूगा।"

शहर वापस पहुचकर मिल्स ने डडी-यात्रा की तैयारियो का वर्णन करते हुए एक तार भेजा। उसी होटल मे दूसरे अग्रेज और अमरीकी सवाददाता भी ठहरे हुए थे इसलिए मिल्स उनसे पीछे रह जाने के लिए किसी भी हालत मे तैयार नही था। वह अपनी 'स्टोरी' टाइप करता जा रहा था और जब एक पेज पूरा हो जाता था तो वह अनवर को उसे तार से भेज देने के लिए टैक्सी पर डाकखाने भेज देता था। यह तूफान की रफ्तार से काम करनेवाली अमरीकी पत्रकारिता थी जिसमे खर्च की कोई चिता नही की जाती थी।

खाना खाकर वे फिर टैक्सी पर आश्रम जा पहुचे। उन्होने देखा कि हजारो लोगो ने उनका रास्ता रोक रखा था। वे अपने हृदयसम्राट महात्मा गाधी को बिदा करने आए थे। आसपास दूर तक फैले हुए मैदान पर अधेरा छाता जा रहा था और प्राय. बिलकुल ही सूखी हुई नदी के उस पार असख्य मशालो की रोशनी हो रही थी मानो अधेरी रात मे जुगनू चमक रहे हो। ये लोग शहर और आसपास के गावो से साबरमती के तट पर स्थित आश्रम की ओर आ रहे थे। जब उनकी मोटर भीड को चीरती हुई आश्रम के निकट पहुची उस समय आधी रात का समय हो चुका था और आसपास की खुली जगह मे लोग खचाखच भरे हुए थे। बडी मुश्किल से वे गाधीजी के सेक्रेटरी के पास पहुचे और उसने उन्हे बताया कि बाइबल मे ऐसी ही घटना के उल्लेख की बात सुनकर गाधीजी बहुत प्रभावित हुए थे पर उन्होने अमरीकी पत्रकार से अनुरोध किया था कि वह इस बात का कही ज़िक्र न करे क्योकि गाधीजी ने कहा था कि ईसा जैसे पैगम्बर के साथ अपनी तुलना करना बहुत अहकार की बात होगी और धर्म का अपमान होगा।

"जो आदमी स्वय सत और पैगम्बर हो, उसीमे इतनी विनम्रता हो सकती है," अमरीकी पत्रकार ने कहा।

पौ फट रही थी। गाधीजी एक लगोटी पहने अपनी झोपडी मे से निकले और उन्हे देखते ही दस हजार कण्ठो ने एकसाथ जयजयकार की 'महात्मा गाधी की जय!' बरामदे मे खडे होकर गाधीजी ने अपने खास ढग से पोपले मुह से मुस्कराकर इस जयज्यकार का उत्तर दिया और हाथ उठाकर लोगो से शात हो जाने को कहा। स्वयसेवको ने जल्दी से उनके चारो ओर एक घेरा बना लिया और उन्हे नदी के तट की ओर ले चले जहा यात्रा आरम्भ होने से पहले प्रार्थना होनेवाली थी। एक दुबला-पतला अधनगा कृषकाय व्यक्ति चबूतरे पर आखे बन्द किए हुए ध्यानमग्न बैठा था। पीछे से आती हुई मशालो की रोशनी मे उसके क्षीण शरीर की केवल एक काली-सी रूपरेखा ही दिखाई दे रही थी। गीता के श्लोक पढे जा रहे थे। इसके बाद सफेद दाढीवाले एक मौलवी साहब ने आकर भारी गूजती हुई आवाज से कुरान की आयते पढी, फिर पारसी धर्म-ग्रथ के कुछ हिस्से पढे गए और अन्त मे ईसाइयो की प्रार्थना 'लीड, काइडली लाइट' गाई गई। मिल्स भी अनायास ही इस समूह-गान मे सम्मिलित हो गया और नाक के सुर से गाते हुए उस अमरीकी पत्रकार की भारी आवाज शर्मीली भारतीय आवाजो पर छा गई। अनवर ने देखा कि गाधीजी ने इस अपरिचित स्वर पर किंचित् विस्मित होकर एक क्षण को अपनी आखे खोली और उस विशालकाय अमरीकी को वही प्रार्थना गाते देखकर उन्होने अपनी आखे बन्द कर ली और उनके पिचके हुए गालो पर और ऐनक के पीछे उनकी आखो में एक मुस्कराहट दौड गई।

प्रार्थना समाप्त होने पर गाधीजी ने अपनी लाठी उठाई और अन्धकार को चीरते हुए अपनी यात्रा पर चल पडे, उनके पीछे-पीछे सत्य के इस युद्ध मे लडने-वाले उनके पचहत्तर सिपाही दो पन्क्तियो मे चले जा रहे थे। जनसमूह ने एक बार फिर सिंहनाद किया 'महात्मा गाधी की जय!' महात्मा गाधी ने अपनी पदयात्रा आरम्भ कर दी थी।

मिल्स भागकर अपने होटल पहुचा और टाइपराइटर पर जल्दी से एक छोटी-सी खबर खडखडा दी। उसके बाद इसी खबर को विस्तारपूर्वक टाइप करने से पहले उसने अनवर को उस सक्षिप्त खबर के साथ डाकखाने दौडा दिया ताकि

वह तीसरे पहर निकलनेवाले अखबारो मे छपने के लिए ठीक समय पर न्यूयार्क पहुच जाए। खिडकी पर तार देते समय अनवर ने उन शब्दो को पढा और उसके सारे शरीर मे उत्साह की एक लहर दौड गई। खबर कुछ इस प्रकार थी

अतर्राष्ट्रीय समाचार . न्यूयार्क

भारत के देहातो मे एक नये ईसा की पदयात्रा। आत्मा की इस अजेय शक्ति के आगे नई दिल्ली के महलो मे अत्याचारी शासक भयभीत हो उठे। आज पौ फटते ही मदगामी साबरमती के तट से महात्मा गाधी ने अपने पचहत्तर अनुगामियो के साथ ईसाइयो की प्रार्थना 'लीड, काइडली लाइट' गाते हुए अपनी ऐतिहासिक पदयात्रा आरभ की। अपने कोटिसख्यक देशवासियो के लिए यह कृषकाय व्यक्ति गहन अधकार के बीच आशा की एक किरण के समान है। नमक बनाकर अग्रेजो का कानून भग करने के लिए गाधीजी ने समुद्र-तट की ओर अपनी यात्रा आरभ कर दी। यही उनके देशवासियो की स्वतत्रता-यात्रा है। विस्तृत समाचार बाद मे भेज रहा हू। ए० मि०

कुछ दिन तक तो गाधीजी जिधर जाते उधर ही वे दोनो भी मोटर से पहुच जाते। अनवर ने ऐसा महसूस किया कि शुरू-शुरू मे उसे जितना जोश था वह गाधीजी के सत्याग्रह के धार्मिक पहलू को देखकर काफी ठडा पड गया था। यह स्वतत्रता की सेना रणक्षेत्र के लिए कूच नही कर रही थी बल्कि ऐसा लगता था कि एक पवित्रात्मा के साथ कुछ यात्री किसी तीर्थस्थान को जा रहे है। जहा भी वे जाते हजारो की सख्या मे गाववाले आकर वहा जमा हो जाते और महात्मा के पैर छूने के लिए, या जहा पर उन्होने कदम रखा था कम से कम वहा की पवित्र धूल ही ले जाने के लिए धक्कामुक्की करने लगते। अनवर जानता था कि महात्मा गाधी इस बात को पसद नही करते थे पर वे इस प्रकार की अधी मूर्ति-पूजा को बर्दाश्त क्यो करते थे ? वे ऐसा वातावरण ही क्यो पैदा करते थे जो लोगो को घृणित सरकार के खिलाफ लडने के बजाय उनकी पवित्रता की ओर आकर्षित करता था ? जिन गावो से होकर वे गुजरे वहा के किसान बहुत गरीब थे। आखिर महात्माजी उन किसानो को न केवल विदेशी

सरकार के खिलाफ बल्कि उनका खून चूसनेवाले जमीदार और महाजन के खिलाफ विद्रोह करने के लिए क्यो नही उकसाते थे ?…आखिर क्यो नही ?… क्यो नही ?

अनवर ने एक बार जब गाधीजी को किसानो की एक भीड के सामने भाषण देते सुना तो उसकी कुछ शकाए दूर हो गईं और उसे अपने कुछ सवालो का जवाब भी मिल गया, वे गुजराती मे बोल रहे थे और एक स्वयसेवक उनके भाषण का अनुवाद हिंदुस्तानी मे करता जाता था, जिसका अनुवाद अनवर को मिल्स के लिए अग्रेज़ी मे करना पडता था। यह बहुत ही लम्बा सिलसिला था और इस दुहरे अनुवाद मे बीच-बीच मे कुछ शब्द रह भी जाते थे लेकिन अनवर को इस बात की खुशी थी कि वे सतो की तरह धैर्य रखने का उपदेश नही दे रहे थे बल्कि उनका भाषण अत्याचार का विरोध करने के लिए एक क्रातिकारी का सदेश था।

उन्होने कहा, "भारत मे ब्रिटिश शासन ने इस महान देश को नैतिक, भौतिक, सास्कृतिक और आत्मिक दृष्टि से तबाह कर दिया है। मै ऐसे शासन को एक अभिशाप समझता हू। मैंने इस शासन-व्यवस्था को नष्ट कर देने का बीडा उठाया है। मै 'गाड सेव द किग' का गीत गा चुका हू और मैंने दूसरो को यह गीत गाना सिखाया भी है। मैं प्रार्थना-पत्रो, प्रतिनिधि-मंडलो और मित्रता-पूर्ण बातचीत की राजनीति मे विश्वास रखता था। परतु ये सब तरीके बेकार साबित हो चुके है। मैं जानता हू कि सरकार इन तरीको से सही रास्ते पर नही आएगी। अब राजद्रोह मेरा धर्म है। हमारी लडाई अहिंसा की लडाई है। हम किसीको जान से मारने के लिए नही निकले हैं लेकिन यह हमारा धर्म है कि इस सरकार के अभिशाप का नाम-निशान मिटा दे।"

अनवर सोचने लगा कि अगर महात्माजी ऐसा कोमल स्वभाव का आदमी इस तरह की बाते कर सकता है तो वह इन्कलाब जिसका नारा भगतसिंह ने बम फेकने के बाद लगाया था, सचमुच आ गया है। किसानो का उत्साह भी नारे लगाने तक ही सीमित नही था। इस सभा मे गाधीजी का भाषण समाप्त होते ही बडी-बडी पगडिया बाधे हुए आधे दर्जन आदमी कूदकर मच पर पहुच गए। वे गावो के सरकार द्वारा नियुक्त किए हुए पटेल थे। मच पर खडे होकर उन्होने अपने इस्तीफे की घोषणा की। उनमे से एक ने चिल्लाकर कहा, "हमे

महात्मा का हुक्म मिल गया है, अब हम इस दुष्ट सरकार की सेवा नही करेंगे। तालियो की आवाज से आकाश गूज उठा और पता लगाने पर उन पत्रकारो को यह मालूम हुआ कि इन छ पटेलो को लेकर गुजरात मे इस्तीफा देनेवाले पटेलो की सख्या दो सौ तक पहुच चुकी है। सरकार को धीरे-धीरे जनता के असहयोग का अदाजा होता जा रहा था।

आखिरकार मिल्स को महात्मा गाधी से इटरव्यू का वह मौका मिल ही गया जिसके फेर मे वह कई दिनो से था। लेकिन जब तक दूसरे विदेशी पत्रकार सत्याग्रहियो की इस टोली के साथ लगे हुए थे तब तक वह इस इटरव्यू को टाले हुए था। लेकिन कुछ दिन बाद अग्रेज और अमरीकी पत्रकार रोज तेज धूप और गर्द मे पद्रह-पद्रह मील चलते-चलते उकता गए और इसलिए वे अहमदाबाद लौट गए। उसी दिन शाम को जम्बूसार नामक गाव मे अनवर और मिल्स गाधीजी से मिले। गाधीजी आम के एक पेड की छाया मे बैठे चरखा कात रहे थे। अनवर ने उन्हे याद दिलाया कि वह एक वार पहले भी उनसे मिल चुका था और गाधीजी ने कहा, "अरे हा, मुझे याद है, मुझे याद है, लेकिन उस वक्त से तुम बहुत बडे हो गए हो। इसके बाद अनवर ने उन्हे राबर्ट मिल्स के बारे मे और भारत की स्वतत्रता के ध्येय के प्रति उसकी सहानुभूति के बारे मे बताया और यह भी बताया कि डाक्टर असारी ने उसे उस अमरीकी पत्रकार के साथ एक इटरप्रेटर की हैसियत से सारे देश का चक्कर लगाने के लिए तैनात किया था। अनवर ने देखा कि महात्माजी इस बात से बहुत खुश हुए क्योकि उन्होने मुस्कराकर कहा, "अच्छा ! अच्छा !" गाधीजी के सेक्रेटरी ने बताया कि मिल्स भारत की ओर मित्रता की भावना रखनेवाला वही अमरीकी सवाददाता था जिसने ईसामसीह के जीवन की एक घटना के साथ सत्याग्रहियो की तुलना की थी। यह सुनकर गाधीजी ईसामसीह की बाते करने लगे जिनके प्रति वे बहुत श्रद्धा रखते थे। इसके बाद वे ताल्सताय और एमर्सन की बाते करते रहे, जिनके दोनो ही बहुत प्रशसक थे। बातो के दौरान मे मिल्स ने वाल्ट व्हिटमैन का उल्लेख किया पर गाधीजी ने इस कवि की कोई रचना नही पढी थी। फिर भी जब उन्हे बताया गया कि लिंकन की घोषणा से बहुत पहले ही इस कवि ने दास-प्रथा के उन्मूलन के बारे मे बहुत कुछ कहा था और उसके लिए बहुत काम किया था तो गाधीजी को इस कवि मे बडी दिलचस्पी पैदा हुई। मिल्स ने जब देखा

कि उसे इटरव्यू के लिए जो एक घटे का वक्त दिया गया था उसका ज्यादातर हिस्सा तो राजनीति से कोई सबध न रखनेवाली इधर-उधर की बातो मे निकल गया, तो उसने आखिरी कुछ मिनटो मे जल्दी-जल्दी सामयिक समस्याओ के बारे मे प्रश्न पूछने शुरू किए।

"महात्मा गैंडी,"—वह 'गाधी' को अब भी 'गैंडी' ही कहता था लेकिन दूसरे पत्रकारो की तरह वह उसके पहले 'मिस्टर' का शब्द नही जोडता था—"अग्रेजो से आपको क्या शिकायत है ?"

गाधीजी ने चरखा चलाते हुए उत्तर दिया, "एक शब्द मे मेरी शिकायत का आधार उनका शोषण है। वे हिन्दुस्तान का खून चूसे ले रहे है। वाइसराय की तनख्वाह को ही ले लीजिए, जिसका जिक्र मैंने लार्ड इर्विन के नाम अपने पत्र मे किया था। उसे हर महीने इक्कीस हज़ार रुपये से ज्यादा मिलते हे। इसका मतलब यह है कि उसे रोज सात सौ रुपये से ज्यादा मिलते है जबकि औसत हिदुस्तानी की आमदनी दो आने रोज से भी कम है—जिसका मतलब यह है कि उसे औसत हिंदुस्तानी के मुकाबले मे पाच हजार गुने मे भी ज्यादा तनख्वाह मिलती है। औसत अग्रेज की आमदनी दो रुपये रोज है, फिर भी वहा के प्रधान मत्री को केवल १८० रुपये रोज़ मिलते है। क्या यह शोषण नही है ? यह तो सिर्फ एक मिसाल है। शासन का पूरा तरीका गलत और अत्याचार का तरीका है।"

"अग्रेजो की हुकूमत का मुकाबला करने के लिए आपने नमक कानून जैसे छोटे कानून को तोडने के लिए क्यो चुना ?"

"क्योकि गरीबो की नज़र से देखा जाए तो इस कानून को मै सबसे ज्यादा बेइसाफी का कानून समझता हूं। चूकि आज़ादी का आदोलन बुनियादी तौर पर सबसे गरीब लोगो के लिए है, इसलिए मैने सबसे पहले इस बुराई को ही दूर करने का बीडा उठाया है।"

"अगर आप गिरफ्तार हो गए तो क्या होगा ?"

"मैं गिरफ्तार भी किया जा सकता हू और यह भी हो सकता है कि मैं जान से मार दिया जाऊ। लेकिन मुझे इस बात की पूरी उम्मीद है कि मेरे बाद इस काम को अनुशासित ढंग से पूरा करने के लिए दसियो हज़ार लोग तैयार होगे।"

"थियोडोर पार्कर ने भी बिलकुल ऐसी ही बात कही थी।"

"मैं बहुत अज्ञानी आदमी हू," गाधीजी ने कहा, "थियोडोर पार्कर कौन थे ?"

मिल्स ने उन्हे थियोडोर पार्कर का किस्सा बताया। वह लिकन और व्हिटमैन के ज़माने मे एक बहुत बडा धर्मोपदेशक गुजरा था और दास-प्रथा के उन्मूलन का प्रचार करनेवाले सर्वप्रथम लोगो मे से था। उसका कहना था कि यह निंदनीय दास-प्रथा ईसाई धर्म के खिलाफ है। जो धर्मशास्त्री इस अन्यायपूर्ण स्थिति को ज्यो का त्यो कायम रखना चाहते थे उन्होने उसे खुले-आम बहस करने के लिए ललकारा। उसके दोस्तो ने उसे सलाह दी कि वह उस सभा मे न जाए क्योकि यह उसे मार डालने का षड्यन्त्र था। लेकिन वह जाने पर तुला हुआ था इसलिए उन्होने उसे उसके घर मे बद कर दिया। सभा मे उसके शत्रुओ ने उसपर कायरता का आरोप लगाया। सहसा पार्कर वहा आ पहुचा और कूदकर मच पर जा खडा हुआ और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाकर कहने लगा, "अगर चाहो तो मुझे जान से मार डालो ! लेकिन तुम मेरा जो खून बहाओगे उसकी एक-एक बूद से हज़ारो पार्कर पैदा होगे और दास-प्रथा का अंत कर देगे।" उसके शत्रु लज्जित होकर चुप हो गए।

गाधीजी पार्कर के उदाहरण से स्पष्टत: बहुत प्रभावित हुए और कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद बोले, "यह अहिंसा की शक्ति का एक ज्वलत उदाहरण है।" पर मिल्स फिर तात्कालिक राजनीतिक समस्याओ पर बाते करने लगा।

"लार्ड इर्विन ने आपके पत्र का जो जवाब दिया है उसके बारे मे आपका क्या खयाल है ?'

"घुटने टेककर मैंने रोटी मागी थी और जवाब मे मुझे पत्थर मिला। फिर भी मुझे इसपर कोई आश्चर्य नही है। अग्रेज़ कौम सिर्फ ताकत के आगे सिर झुकाती है।"

गाधीजी के सेक्रेटरी पत्रो का एक बडा-सा ढेर लिए चले आ रहे थे इसलिए मिल्स ने जल्दी से एक सवाल और पूछा, "अग्रेज़ो की इस दलील के बारे मे आपका क्या खयाल है कि उनके शासन से हिंदुस्तान को फायदा ही पहुचा है क्योकि उन्होने इस देश मे शाति कायम की है ?"

अंग्रेज़ो के शासन मे हमारे देश को जो शाति नसीब हुई है वह जेलखाने या कब्रिस्तान की ही शाति है। उन्होने पूरे हिन्दुस्तान को एक बहुत बड़ा

जेलखाना बना रखा है।"

इतने मे गाधीजी जो सूत कात रहे थे वह टूट गया और ऐसा प्रतीत हुआ कि सूत का टूटना बातचीत का क्रम समाप्त होने का सूचक था। गाधीजी ने अपनी कमर पर से एक जजीर से लटकती हुई सस्ती-सी ग्रोल जेबी घडी हाथ मे लेकर अमरीकी पत्रकार को दिखाते हुए कहा, "आप पाच मिनट वक्त ज्यादा ले चुके है" और यह कहकर वे बच्चो की तरह खिलखिलाकर हस पडे।

वहा से बाहर निकलते हुए अनवर ने मिल्स से पूछा, "हमारे महात्मा के बारे मे आपका क्या खयाल है?"

"मै चाहता था कि मै और कुछ देर उनसे बाते कर सकता। अभी भी बहुत-सी ऐसी बाते है जो मेरी समझ मे नही आती, जैसे मिसाल के लिए यह बात कि वे चरखे पर इतना ज़ोर क्यो देते है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यह प्रगति के क्रम को पीछे मोड देने के समान है। लेकिन इस बातचीत के बाद मुझे एक बात का पहले से भी ज्यादा यकीन हो गया है—वह है उनकी ईमानदारी और नेकी। इतनी नेकी खतरनाक हो सकती है।"

"किसके लिए खतरनाक हो सकती है?"

"यह तो मैं नही कह सकता, लेकिन हो सकता है खुद उनके लिए।"

अनवर इस बात का पूरा मतलब नही समझ सका इसलिए उसने पूछा, "आपका मतलब मै समझ नही पाया।"

"यह तो मैं भी नही बता सकता," उस अमरीकी पत्रकार ने विचारमग्न होकर कहा, "मै फिर ईसा की बात सोच रहा था।"

जब वे अहमदाबाद वापस पहुचे उस समय अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी के सैकडो सदस्य—जिसे राष्ट्रवादी अखबार 'राष्ट्र की ससद' कहने लगे थे—सविनय अवज्ञा आदोलन आरभ करने के बारे मे वर्किंग कमेटी के निर्णय का अनुमोदन करने के बाद वापस जाने की तैयारिया कर रहे थे। उन्होने काग्रेस के अध्यक्ष पडित जवाहरलाल नेहरू की एक झलक देखी। वे अपने साथियो से बिदा ले रहे थे। इस बात की सभावना थी कि उन थोडे-से लोगो को छोड़कर जो जेल मे उनके साथ ही रखे जाए, बाकी लोगो से कई बरस तक उनका

मिलना न हो सके। जब वे लोग एक-दूसरे से गले मिलकर बिदा हो रहे थे उस समय उनके चेहरो पर एक उदासी की झलक थी, साथ ही उन्हे इस बात का भी आभास था कि वे आखिरी कदम उठाने जा रहे है; लडाई के लिए दोनो तरफ के मोर्चे जम चुके है। लेकिन साथ ही उनकी आखो मे एक चमक भी थी, शत्रु को अपना कसबल दिखा देने का दृढ सकल्प भी था। वातावरण मे चिन्ता की जो भावना व्याप्त थी उसे मानो दूर करने के लिए बीच-बीच मे लोग हसी-मजाक भी कर रहे थे। सरोजिनी नायडू, जो कवयित्री भी थी और राजनीतिज्ञ भी, जो बात-बात मे लोगो को हसाती थी और कई सग्रामो मे वीरतापूर्वक लड भी चुकी थी, जिनमे अपने भारी-भरकम शरीर और अधेड उम्र के बावजूद अभी तक लडकियो जैसी चपलता थी। वे अपनी खास आवाज मे कह रही थी, "अच्छा जवाहर, बिदा। मेरा खयाल है कि अब हम सब लोगो को जेल की तीर्थयात्रा की तैयारियां कर लेनी चाहिए।"

जब ऐतिहासिक घटनाओ का रगमच अहमदाबाद से हटकर कही और जा रहा था, इसलिए रात की गाडी से अनवर और मिल्स बम्बई के लिए रवाना हो गए।

बम्बई! अनवर के लिए तो इस नाम मे ही एक जादू-सा था। नगर के वातावरण मे सजीवनी का प्रभाव था। बडी-बडी इमारते, सडको की भीड-भाड, ट्रामे, बसे और बिजली की रेलगाडिया, होटलो और चायखानो मे तरह-तरह के लोगो की चहलपहल, जगमगाती हुई दूकाने—हर चीज आधुनिकता के साचे मे ढली हुई मालूम होती थी। हर चीज उसे मुग्ध भी करती थी और साथ ही पहुच के बाहर भी मालूम होती थी। उसे ऐसा लगता था कि इस शहर मे उज्ज्वल भविष्य की सभावना भी है और एक चुनौती थी। उसने फैसला कर लिया कि वह इस नगर पर विजय प्राप्त करेगा।

वे लोग ताज मे ठहरे। अपने सीधे-सादे विद्यार्थियोवाले लिबास मे अनवर को ऐसा लगा कि वह इस जगह के लायक नही है। और इसके अलावा वह इसका भी कोई कारण नही समझता था कि जब वह आसानी से अपने एक दोस्त के साथ ठहर सकता है तो फिर मिल्स उसके लिए इतना पैसा क्यों खर्च

करे। इसलिए उसने उस्मान फजलभाई को उसके अब्बा के इत्र के कारखाने मे टेलीफोन किया और उसे फौरन टेलीफोन पर ही इस बात का आभास हो गया कि उस्मान को उसकी आवाज सुनकर कितना आश्चर्य हुआ था और साथ ही कितनी खुशी हुई थी। घटे-भर के अदर ही उस्मान अनवर को अपने घर ले जाने के लिए होटल आ पहुचा। अनवर के साथ ही उस्मान को भी कालेज से निकाल दिया गया था। मिल्स नही चाहता था कि अनवर उसे छोडकर जाए। वह अपने इंटरप्रेटर को सचमुच बहुत प्यार करने लगा था और वह महसूस करता था कि उसकी पूरी ज़िम्मेदारी उसके ऊपर है, लेकिन जब उस्मान ने बहुत जोर दिया तो वह राजी हो गया। इसके अलावा अनवर ने मिल्स को यह भी बताया कि ताज मे रहकर बम्बई से उसका सम्पर्क नही रह पाएगा और चूकि उस्मान स्थानीय कांग्रेस की सरगर्मियो मे आगे बढकर हिस्सा ले रहा था इसलिए उसके ज़रिये वह अपने दोस्त के लिए खबरे हासिल कर सकेगा।

६ अप्रैल को खबर आई कि गाधीजी डडी पहुच गए थे और उन्होंने समुद्र-तट पर से नमक उठाकर नमक कानून तोडकर सविनय अवज्ञा आदोलन शुरू कर दिया था। यह सारे देश मे कानून भग करने का आदोलन आरभ करने का संकेत था। हर जगह सभाए हुई, जुलूस निकाले गए, विदेशी कपडे की दूकानो पर धरना दिया गया और खुले-आम नमक बनाया गया। सरकार ने इस विद्रोह को भडकानेवाले मुख्य नेता को तो हाथ नही लगाया पर उसके अनुगामियो पर अभूतपूर्व पाशविकता के साथ प्रहार किया।

उस्मान का एक दोस्त 'बाम्बे क्रानिकल' मे सब-एडीटर था और अनवर अपना बहुत काफी समय वही बिताकर वह देखता रहता था कि अखबार के दफ्तर मे किस तरह खबरे लगातार आती रहती थी। कराची मे एक अदालत के सामने, जहा कुछ सत्याग्रहियो पर मुकदमा चल रहा था, एक निहत्थी भीड पर गोली चलाई गई। दो नवयुवक मारे गए और सात को गहरी चोट आई, जिनमे गठे हुए शरीरवाले सिंधी नेता जैरामदास दौलतराम भी थे, जिन्हे अनवर ने अभी कुछ ही दिन पहले अहमदाबाद मे देखा था। पटना, कलकत्ता, मद्रास, रत्नागिरी और शिरोदा से भी गोली चलने की खबरे आई थी। पेशावर मे कई लोग फौज और पुलिस की गोलियो से मारे गए थे जिनमे एक औरत और उसका बच्चा भी था जिसे मा के स्तन से दूध पीते हुए ही गोली का निशाना बना दिया

गया था। एक सब-एडीटर ने अनवर को बताया, "शुरू-शुरू मे तो जब कही भी पुलिस गोली चलाती थी तो वह खबर इतनी सनसनीपूर्ण समझी जाती थी कि उसे पहले पृष्ठ पर सात कालम की हैड-लाइन लगाकर छापा जाता था, लेकिन अब तो रोज़ इतनी जगहो से गोली चलने की खबरे आती है कि हम उन्हे एक कालम से ज़्यादा की हैड-लाइन नहीं दे सकते। लाठी-चार्ज की खबरे तो योही किसी कोने मे छापकर टाल दी जाती है।"

सारे देश मे विद्रोह की आग धधक रही थी। बम्बई में भी यही हाल था। अनवर को ऐसा लगता था कि किसी भी दिन यह आग भडक उठेगी। इस शहर मे काग्रेस का सगठन दूसरे शहरो के मुकाबले मे ज्यादा अच्छा था और इसलिए यहा वह ताकतवर भी ज्यादा थी। उस्मान ने उसे बताया कि बम्बई मे अग्रेज़ सरकार से अलग, एक दूसरी सरकार की बुनियाद पड रही थी। काग्रेस के हज़ारो स्वयसेवक थे जिनकी अपनी अलग वर्दी थी, इनमे मर्द भी थे और औरते भी। घायलो को ले जाने के लिए एम्बुलेस गाडियो, प्राथमिक चिकित्सा-केन्द्रो और अस्पताल का पूरा प्रबन्ध था। काग्रेस हाउस की आज्ञा पर करोडो रुपये के विदेशी कपडे से भरे हुए गोदामो मे ताला लगा दिया गया था और काग्रेस के स्वयसेवक दिन-रात उनपर पहरा देते थे। शराब की दूकानो पर धरना दिया जा रहा था और शराब का कारोबार लगभग बिलकुल ठप पडा था। चूकि अखबारो पर रोक लगाने के लिए उनके सम्पादको के खिलाफ कई आज्ञाए जारी कर दी गई थी इसलिए गैरकानूनी तौर पर साइक्लोस्टाइल करके काग्रेस बुलेटिन सुबह और शाम को निकाले जाते थे और खुले-आम सडको पर बेचे जाते थे। सबसे ताज्जुब की बात तो यह थी कि पुलिस की नजरो से छिपाकर काग्रेस का एक रेडियो स्टेशन भी काम कर रहा था, जो विद्रोह का सदेश प्रसारित करता था और चाय की दूकानो मे हज़ारो लोग खुले-आम पुलिस के सामने इस रेडियो का कार्यक्रम सुनते थे।

एक रात जब अनवर मिल्स के साथ ताज मे खाना खा रहा था तो उसने विद्रोह की इस नई भावना का एक विचित्र प्रदर्शन देखा। खाना खानेवाले ज्यादातर लोग अग्रेज या अमरीकी थे। मर्द काले रग के डिनर-कोट और औरते ईवनिंग गाउन पहने थी। इनमे कुछ पारसी, एंग्लो-इडियन और इक्का-दुक्का ऐसे हिन्दुस्तानी भी थे जो अपने रहन-सहन मे बिलकुल अग्रेजो जैसे थे। इतने में

उनके बीच से एक लम्बा-तगडा, खूबसूरत-सा नौजवान सफेद खद्दर की धोती, कुरता और गाधी टोपी पहने हुए गुज़रा। वह चुपचाप एक मेज पर जाकर बैठ गया और खाने का आर्डर देने लगा। हैड वेटर इस खद्दरपोश नौजवान को देखकर स्तम्भित रह गया और सैकडो आखे इस नौजवान पर आकर जम गई जिसके खद्दर के कपडे काले कोटो के समुद्र मे एक सफेद द्वीप की तरह चमक रहे थे। अनवर अपनी फंटीचर काली शेरवानी की वजह से यू ही कुछ घबराया हुआ बैठा था। जब उसने मैनेजर को क्रोध से उस नौजवान की मेज की तरफ बढते देखा तो अनवर ने समझा कि अब वह खद्दरपोश बहुत बेइज़्ज़ती के साथ वहा से निकाल दिया जाएगा। लेकिन जब मैनेजर मेज़ के पास पहुचा तो उसका पूरा रवैया ही बदल गया। वह बहुत झुककर मुस्करा-मुस्कराकर कहने लगा, "डिनर सर, यस सर, इनडीड सर।" बोलते हुए उसकी जबान लडखडा रही थी और वह बिना मुडे पीठ की तरफ कदम उठाता हुआ वहा से चला गया। पास की मेज़ पर बैठे हुए एक पारसी नौजवान ने बताया, "आप जानते हैं, यह नौजवान आदमी मोहन शाह है। इसके बाप कोई एक दर्जन मिलो के मालिक होगे और अगर वे चाहे तो इस होटल को खरीद सकते है।"

खाना खाकर उस खद्दरपोश नौजवान ने बिल पर दस्तखत किए, वेटर को टिप दी और एक सुनहरे सिगरेट-केस का खटका दबाकर उसमे से बीडी निकाली और प्लेटिनम के लाइटर से उसे जलाकर चल देने को उठ खडा हुआ। अनवर ने देखा कि वह अपनी बगल मे कागजो का एक बडल लिए हुए था और उनकी मेज़ के पास से गुज़रते समय उसने एक कागज़ इस तरह गिरा दिया मानो अपने-आप गिर गया हो। अनवर ने जल्दी से वह कागज़ उठा लिया। वह साइक्लो-स्टाइल किया हुए काग्रेस बुलेटिन था और उसके सामनेवाले पृष्ठ पर मोटे-मोटे अक्षरो मे लिखा हुआ था .

प० जवाहरलाल नेहरू गिरफ्तार

कल शहर मे विरोध प्रकट करने के लिए बहुत बडा जुलूस निकाला जायगा।

अनवर को याद नही था कि पहले उसने उसे देखा या झंडे को—लेकिन

जुलूस मे वे ही दोनो सबसे ज्यादा उभरकर सामने आ रहे थे। या शायद वे दोनो एक ही थे क्योकि दोनो एक ही विचार, एक ही भावना के प्रतीक थे। वह बिलकुल झडे जैसी थी—साहसी और सीधी तनी हुई। हरे रग का ब्लाउज़ और केसरिया रग के किनारे की सफेद साडी पहने हुए वह साकार एक तिरगा झडा लग रही थी और वह इतनी नाजुक थी कि हवा के झोके से उसका शरीर हिलता हुआ प्रतीत होता था। और झडा बिलकुल उसका जैसा था—रगीन, स्पदनशील, सप्राण वस्तु, गर्वीली और चचल।

झडा जुलूस के आगे-आगे चल रहा था। दो स्वयसेवक उसे मजबूती से अपने हाथो मे थामे हुए थे—उनमे से एक दाढीवाला सिख नौजवान था जो सिर पर अकालियोवाली नीली पगडी बाधे था (उसे देखते ही अनवर को रतन की याद आ गई, जो इस वक्त किसी जेल मे पडा सड रहा था और मौत की सज़ा का इतज़ार कर रहा था) और दूसरा एक नौजवान पठान था जो स्लेटी रग की खद्दर की शलवार और लाल कमीज पहने था। उनके ठीक पीछे झडे के नीचे स्वयसेविकाओ की एक टोली चल रही थी, और इस टोली की सबसे अगली पात मे वह थी, उनके बाद हजारो दूसरे स्वयसेवको की कतारे थी, जिन्हे फौज के ढग से अलग-अलग जत्थो मे बाट दिया गया था, इनमे पजाब के अकाली और सीमाप्रात के पठान 'लाल कुर्तीवाले' सबसे ज़्यादा चमक रहे थे।

हर चीज़ शात थी। सडको पर आवाजाही बद थी और सिर्फ दो लाख पैरो की सधी हुई आवाज़ सुनाई दे रही थी। अनवर को ऐसा लगा कि उसने अपनी सारी जिदगी मे इससे ज्यादा खूबसूरत और उत्साहवर्धक दृश्य नही देखा था। यह साम्राज्य की ताकत को भारतवासियो का जवाब था, जिसने उनके प्रिय नेता जवाहरलाल पर हाथ डाला था। यह विद्रोह के मार्ग पर अग्रसर भारत था। और इस जुलूस का सारा तात्पर्य जुलूस की अगली पात मे चलनेवाली उस लडकी के चेहरे पर झलकनेवाली विद्रोह की पवित्र भावना मे केन्द्रीभूत हो उठा था।

जुलूस की सबसे पिछली पातो से तूफान की घन-गरज की तरह एक आवाज़ गूज उठी—इन्कलाब ज़िन्दाबाद! जुलूस के बीच मे से किसीने इस नारे को उठा लिया और फिर उसे वापस पीछे लौटा दिया। ऐसा लगता था कि खेल मे गेंद इधर से उधर फेकी जा रही हो। यह आवाज़ क्राफर्ड मार्केट की दीवारो से

टकराती हुई ऊपर को उठी और ट्राम के बिजली के तारो को पार करती हुई मेघाच्छ दित आकाश पर छा गई ।

इन्-क-लाब जिन्दाबाद ! सीमाप्रात के पठान लडके 'क' की' आवाज़ गले की गहराई मे से इतनी शुद्ध निकालते थे कि ऐसा लगता-था कि वे कुरान की आयते पढ रहे हो ।

इन-कि-लाब ज़िन्दा-बाद । पजाब के मिख अरबी के शुद्ध उच्चारण की ओर कोई ध्यान दिए बिना पूरे जोश के साथ नारा लगा रहे थे ।

"इन्न-किलाब···" स्वयसेवको की टोली के एक कप्तान ने नारा लगाया और हजारो युवा कठो ने एक स्वर से जवाब दिया—"ज़िन्दाबाद !"

दजनो प्रकार के अलग-अलग उच्चारणो मे, मोटी और पतली, तेज़ और धीमी आवाज़ो मे, मत्र की तरह उच्चरित या युद्ध-घोष की तरह गुजित इन दो शब्दो ने एक विशाल जनसमुदाय को मन्त्रमुग्ध कर रखा था—जिसमे हिन्दू और मुसलमान और सिख और पारसी सभी थे, उनमें गुजराती सेठ भी थे और मिलो के मराठे मज़दूर भी, सीमाप्रात के गोरे पठान भी और दक्षिण के काले मद्रासी भी । अनवर सोच रहा था कि यह भी कैसी अजीब बात है कि 'इन्कलाब' अरबी का शब्द था और 'ज़िदाबाद' फारसी का, लेकिन इन दोनो शब्दो ने मिलकर हिंदुस्तानियो को वह नारा दिया था जो सारी दुनिया के मज़दूरो का सघर्ष का नारा था : क्राति अमर हो ।' उसे उदास आखोवाले सुहृदय क्रातिकारी भगतसिंह की याद आ गई जिसने देश को यह नारा दिया था और जो शीघ्र ही देश के लिए अपने प्राणो की बलि देने-वाला था । उसे मेरठ के उन बत्तीस कैदियो का ध्यान आया जिनपर इसी 'इन्कलाब' को लाने का षड्यन्त्र करने का अभियोग लगाया था, जिसकी घोषणा उनके लाखो देशवासी खुले-आम किसी भी चीज़ की परवाह न करते हुए कर रहे थे । उसकी आखो के आगे गाधीजी का दुबला-पतला शरीर नाचने लगा, जिन्होने समुद्र-तट पर से नमक उठाकर, जो देखने मे बहुत ही छोटी बात मालूम होती थी, सारे देश मे विद्रोह की लहर पैदा कर दी थी । उसे वह बात याद आई जो जवाहरलाल नेहरू ने सुभान की आटोग्राफ बुक मे लिखी थी और उसे अब ऐसा महसूस हो रहा था कि सारा देश 'जान हथेली पर रखकर' निकल पडा था । हर आदमी 'इन्कलाब' को अपने ढग से समझता था—गाधीजी चाहते थे कि

हर आदमी चरखा चलाए, कम्युनिस्ट चाहते थे कि सामूहिक खेत कायम किए जाए, हज़ारो और फैक्ट्रिया लगाई जाएं ताकि देश का उद्योगीकरण हो सके—लेकिन इन्कलाब तक पहुचने के लिए पहले कदम के बारे मे सबकी राय एक थी कि विदेशी सरकार को हटाया जाए।

जब जुलूस विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन के पास पहुचा तो कम से कम एक हजार पुलिसवालो ने उसे आगे बढने से रोक दिया। पुलिसवाले नीली वर्दियां पहने थे और उनके सिरो पर छोटी-छोटी पगडियो की शक्ल की टोपिया थी। कुछ के हाथ मे लाठिया थी और कुछ के हाथ मे राइफलें, अफसरो के पास रिवाल्वर थे। मिल्स ने अनवर के कान मे भारी आवाज मे कहा, "अब तमाशा देखना।" अनवर का दिल धक् से हो गया। वह सोचने लगा कि अगर कही कुछ हो गया तो वह तो आगे सबसे पहली कतार मे है, पहला वार उसीपर पडेगा।

एक पुलिस अफसर सीधा औरतो के पास गया और उसने उनसे कहा कि जुलूस गैरकानूनी है इसलिए सब लोग फौरन वहा से चले जाए। औरतो ने उसे जवाब दिया कि वे चौराहे के उस पार आजाद मैदान मे मीटिंग करने जा रही हैं और कोई भी ताकत उन्हे वापस नही लौटा सकती। अफसर ने अपनी घडी देखकर कहा कि वह उन्हे पाच मिनट का वक्त दे सकता है। इसके जवाब मे औरतें सडक पर धरना देकर बैठ गईं। काग्रेस के अधिकारियो और जुलूस का नेतृत्व करनेवाली औरतो के बीच, जिनमे वह भी शामिल थी, कुछ सलाह-मशविरा हुआ और यह फैसला किया गया कि सिर्फ औरते सत्याग्रह करेगी और बाकी लोग शातिपूर्वक वापस चले जाएगे। सिर्फ वे दो लोग जो झडा लिए हुए थे और अकाली और पठान स्वयसेवक बाकी रह गए और उन्होने ज़मीन पर बैठी हुई औरतो की रक्षा करने के लिए उनके चारो ओर एक घेरा बना लिया।

यह कोई शाम के चार बजे की बात होगी और जब सूरज डूबा और सडक की बत्तिया जली, उस वक्त भी औरते वही बैठी थी। आसपास की चाय की दूकानो के मालिक सत्याग्रहियो के लिए केतलियो में भर-भरकर चाय और

मिठाई के डिब्बे भेज रहे थे। अनवर को यह देखकर हसी आ गई कि कुछ औरतो ने घर से अपने बच्चो को मगवा लिया था और वे उन्हे वही सडक पर बैठकर दूध पिला रही थी। लेकिन पुलिस अफसरो को इसमे खुश होने की कोई बात दिखाई नही दी क्योकि उन्हे अभी तक खाना नसीब नही हुआ था।

जब घटाघर ने रात के बारह बजाए, उस वक्त औरते बहुत जोश के साथ गाने गा रही थी। "ये लोग आठ घटे से यहा बैठी है," राबर्ट मिल्स ने कहा, "मैं सोचता हू दुनिया को इसकी खबर कर देनी चाहिए।" और वह सडक की बत्ती के नीचे बैठकर तार लिखने लगा। अनवर ने उसके कधे पर से झाककर तार पढा और उसके पहले ही शब्द पढकर वह रोमाचित हो उठा :

रात के बारह बजे बम्बई की पाच हजार औरते पिछले आठ घटो से सडक पर धरना दिए बैठी हैं। वे न सिर्फ एक हजार पुलिसवालो का मुकाबला कर रही है बल्कि भारतीय जनता द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य की ताकत के अहिंसात्मक विरोध का प्रतीक हैं।...

बम्बई मे सुबह हो रही थी लेकिन वे औरते अब भी वही थी। चौदह घटे तक वहा बैठे रहने के बाद भी उनके चेहरो पर न थकावट थी न निराशा। पुलिस के अफसरो की आखे रात-भर जागने की वजह से लाल हो रही थी और वे झुझला रहे थे। उनमे से एक अफसर ने एक बार फिर उन औरतो के पास जाकर उन्हे चेतावनी दी कि वे वहा से हट जाए नही तो...। औरतो ने इसके जवाब मे एक विद्रोही गीत गाना शुरू कर दिया :

नही रखनी, नही रखनी,
सरकार जालिम नही रखनी।

सुबह आठ बजे जब अनवर दूसरा तार देने तारघर गया तो वह वहां से एक तार लाया भी जो पहले तार के जवाब मे आया था। उस तार मे लिखा था :

बधाई। बम्बई की औरतोवाली खबर ने सनसनी पैदा कर दी। सब अखबारो मे पहले पृष्ठ पर छपा। अगर प्रदर्शन जारी रहे तो दो-दो घटे बाद तार भेजना।

एक एग्लो-इडियन सार्जेंट, जो देखने से ही झुझलाया हुआ मालूम होता था, उनके पास आकर ज़ोर से बोला, 'तुम लोग यहा क्या कर रहे हो?" जवाब मे मिल्स ने उसे न्यूयार्क से आया हुआ वह तार थमा दिया जिसे देखकर

सार्जेंट का मुह फौरन उतर गया। वह उनके पास से चला गया और जाकर सडक पर जमा होती हुई भीड पर चिल्लाने लगा। वह उनपर चिल्लाता, उन्हे गालिया देता और डडे से उन्हे धमकाता पर भीड उसकी इन हरकतो पर हस देती जिससे उसे और गुस्सा आता लेकिन वह कुछ भी नही कर सकता था। मिल्स ने तार पर लिखा, "देवियो, दुनिया की नज़रे आपपर लगी हुई है" और एक स्वयसेवक के हाथ वह तार सडक पर बैठी हुई औरतो के पास भेज दिया। उन दोनो ने देखा कि आन की आन मे खबर सारी औरतो के बीच पहुच गई और उनके चेहरे खुशी और दृढ सकल्प से चमक उठे। अनवर ने कहा, "अब इसके सहारे वे कम से कम कुछ घटे और जमी रहेगी।"

लेकिन इतने मे पानी बरसना शुरू हो गया—मानसून का पहला छीटा और ऐसा प्रतीत हुआ कि पानी का छीटा पडते ही पुलिसवालो की पस्तहिम्मती और झुझलाहट दूर हो गई और उनमे नया जोश आ गया। अपनी बरसातिया पहने या छतरिया लगाए वे औरतो को मूसलाधार बारिश में भीगता हुआ देखते रहे। वे उम्मीद लगाए हुए थे कि किसी भी क्षण औरते घबराकर वहा से भाग खडी होगी। थोडी ही देर मे सडक पर कई-कई इच पानी भर गया लेकिन औरते उसी पानी मे बैठी रही। सारी औरते सिर से पाव तक भीग चुकी थी और उनकी गीली साडिया बदन से चिपकी जा रही थी पर वे टस से मस न हुईं। अनवर इस बात पर बहुत लज्जित हुआ कि ऐसे क्षण मे वह अगली पातवाली उस लडकी के सुडौल शरीर को प्रशसा-भरी दृष्टि से देख रहा था।

पानी फट-फटकर बरसता रहा यहा तक कि बादलो का सारा पानी खत्म हो गया और पुलिसवालो का धैर्य भी टूट चुका था। मूसलाधार बारिश कम होती गई, अब सिर्फ फुहारे पड़ रही थी और जब शाम के चार बजे और आसमान पर से बादल छट गए, उस समय भी औरते सडक पर बैठी थी। "चौबीस घटे !" मिल्स ने कहा, "इन लोगो ने तो रिकार्ड तोड दिया। मै जाकर एक और तार दे दू। अनवर, तुम यही ठहरना और देखते रहना कि क्या होता है मैं एक घटे मे वापस आता हू।"

जब साढे चार बजे तो पुलिस के अफसर काबू से बाहर हो गए। उन्होने आखिरी बार चेतावनी दी कि अगर औरतें पाच मिनट के अदर वहा से नही हटी तो उन्हे मजबूर होकर लाठी-चार्ज करना पडेगा। सीटिया बजी और पुलिसवाले अपनी

अपनी जगहो पर लाठिया संभालकर खडे हो गए। वे सडक पर अपनी लाठिया पटक-पटककर देख रहे थे कि वे कितनी मज़बूत है। अकाली और पठान स्वय-सेवको ने औरतो के चारो ओर घेरा बना लिया। ध्वजावाहको ने फिर आगे बढकर झडा फहरा दिया, जो बारिश से बचाने के लिए लपेट लिया गया था। पाच मिनट बीतते ही 'महात्मा गाधी की जय!' के गूजते हुए नारे ने निस्तब्धता को काच की दीवार की तरह भग कर दिया।

और फिर लाठिया बरसने लगी।

अनवर ने लाठी-चार्जो के बारे मे सुना और पढा था लेकिन उसके लिए वे दूसरी घटनाओ की तरह की ही एक घटना थे—उन्हे वह बुरी ज़रूर समझता था लेकिन उनके साथ उसका कोई सबन्ध नही था। लेकिन इस वक्त उसने जो कुछ अपनी आंखों से देखा उसके बारे मे वह यह नही कह सकता था कि उसके साथ उसका कोई सबन्ध नही है। लाठी का हर वार किसीके सिर पर या सीने पर या पीठ पर या टाग पर पडता था और यह कोई इसान होता था जिसकी मांसपेशिया सवेदनशील होती थी, जिसकी हड्डिया टूट सकती थीं, जिसका खून बह सकता था। उनमे से हरएक किसीका बेटा या भाई, किसीका दोस्त या साथी, किसीका पति या प्रेमी था। लाठी के हर वार के पीछे एक कहानी थी—मुसीबते झेलने और वीरता के साथ लडने की कहानी। ये स्वयसेवक—ये अकाली और पठान, गुजराती और मराठे—आखिर किस चीज़ के बने थे कि वे बेरहमी से चलाई जानेवाली लाठियो की मार खाते रहते थे पर अपनी जगह से टस से मस नही होते थे, वे ज़रा भी नही हिचकते थे, वे अपना मुंह भी नहीं फेरते थे! वे सीधे-सादे मामूली लोग थे—क्लर्क और विद्यार्थी और दूकानदार और मिल-मजदूर—लेकिन वे साबित कर रहे थे कि वे भी हीरो बन सकते हैं।...

बीसियो लोग घायल और बेहोश होकर गिर रहे थे और उन्हे फौरन स्ट्रेचरो पर उठाकर पास ही खडी हुई एम्बुलेसो पर पहुचा दिया जाता था। यह सचमुच की लडाई थी—लेकिन अजीब लडाई थी जिसमें मारने का सारा काम एक पक्ष करता था और दूसरा पक्ष धैर्यपूर्वक सब कुछ बर्दाश्त करता जाता था।

अनवर ने देखा कि एक तगडे पठान के सीने पर लगातार लाठियां पड रही थी और हर वार पड़ते ही वह जोर से नारा लगाता था, यहा तक कि पुलिसवाले ने झुझलाकर उसकी खोपडी पर वार किया। पठान चक्कर खाकर गिर पडा, उसके सिर से खून बह रहा था। पर उसके गिरते ही उसकी जगह एक सिख ने ले ली और इस बार पुलिसवाले ने छूटते ही उसके सिर पर वार किया। एक गुजराती वालटियर स्ट्रेचर लेकर उसकी तरफ लपका लेकिन पुलिसवाले के सिर पर तो खून सवार था, उसने एक लाठी उसके भी रसीद कर दी। कुछ देर बाद जब दूसरे स्ट्रेचर पर उन्हे वहा से ले जाया गया तो अनवर ने देखा कि जहा वे तीनो गिरे थे वहा पर खून का एक बहुत बड़ा धब्बा था।...

स्वयसेवको की सख्या कम होती गई और जो थोडे-बहुत बच गए थे उन्हे पुलिस कभी भी मार गिरा सकती थी। ऐसी दशा मे औरतो ने आगे बढकर उन नौजवान लडको की रक्षा करने के लिए उनके चारो ओर घेरा डाल लिया। अधेड उम्र की एक गुजराती औरत खून देखकर बिलकुल पागल हो उठी थी और वह लगातार चीख-चीखकर यही कह रही थी, "मारो, और मारो, मुझे मार डालो।" एक क्षण के लिए तो पुलिसवालो ने लज्जित होकर अपने हाथ रोक लिए लेकिन जब उन्होने देखा कि औरते दृढ सकल्प के साथ मैदान की ओर बढ रही है तो वे उनपर बेरहमी से टूट पडे। वह औरत जो पहले चिल्ला रही थी, उसकी टाग पर एक लाठी पडी और वह ट्राम की पटरी पर गिर पडी, लेकिन वह अब भी यही चिल्ला रही थी, "मारो, मार डालो मुझे।" इतने मे कुछ ज्यादा जोशीली लडकिया और वे दोनो स्वयसेवक जो झडा उठाए हुए थे, पुलिस का घेरा तोडकर मैदान मे जा पहुचे थे। अनवर लपककर वहा पहुचा और उसने देखा कि औरते झडे के चारो ओर ज़मीन पर बैठी थी और वह दुबली-पतली लडकी उनके सामने भाषण दे रही थी। इस समय वह पहले से भी ज्यादा विद्रोह की भावना का प्रतीक मालूम हो रही थी। तो आखिरकार उन लोगो ने पुलिस को नीचा दिखाकर अपनी मीटिंग कर ही ली थी।

यह देखकर पुलिस पागल हो उठी और भागकर वहा जा पहुची और उन दोनो स्वयसेवको पर टूट पडी जो झंडा लिए हुए थे। वह पठान और अकाली बहादुरी से अपनी जगह पर डटे रहे और मज़बूती से झडा ऊचा किए रहे, लेकिन पुलिस ने भी बडी चालाकी से पहले तो उनकी टागो पर लाठिया मारी

और जब उन्होने गिर पडने के बाद भी झडे को नीचा न होने दिया तो पुलिस-वालो ने उनके हाथो पर लाठिया मारनी शुरू की। इतने मे हड्डी चटकने की आवाज आई। लाठी ने किसीकी कलाई तोड दी थी। झडा डगमगाकर जमीन की तरफ गिरने लगा। गोरे सार्जेंट के चेहरे पर पैशाचिक मुस्कराहट खेलने लगी।

लेकिन झडे को गिरने नही दिया गया। जो लडकी भाषण दे रही थी उसने लपककर झडे को थाम लिया और उसे इतनी मजबूती से कसकर पकड लिया कि उसके छोटे-छोटे नाजुक हाथो की उगलियो के जोड सफेद पड गए। वह पुलिसवालो के सामने सीना ताने खडी थी। यह सब कुछ पलक मारते मे हो गया। एक सिपाही ने अपनी लाठी उठाकर हवा मे ही रोक ली। एक लडकी पर वार करने का उसे साहस न हुआ। एक गोरे सार्जेंट ने गरजकर कहा, "झडा छोड दो!" लेकिन जब इसके जवाब मे लडकी ने 'महात्मा गाधी की जय!' का नारा लगाया तो वह सार्जेंट आपे से बाहर हो गया और पुलिस-वाले की लाठी छीनकर उसकी तरफ झपटा, उसका चेहरा क्रोध के मारे विकृत हो गया था। अनवर को कुछ हो गया। एक क्षण मे उसने अपनी स्वाभाविक भीरुता, अहिंसा मे अपने बौद्धिक विश्वास, सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के भय, और आत्मसयम को इस तरह त्याग दिया जसे साप अपनी केंचुल उतार देता है। उसके दिमाग पर बस एक ही विचार छाया हुआ था: इस लडकी को कोई हाथ न लगाने पाए। क्योकि उस क्षण वह उसकी नजरो मे केवल एक लडकी नही थी बल्कि झडे की इज्जत थी, भारत की आत्मा थी। उसकी आखो के आगे लाल-पीले धब्बे नाचने लगे और दीवानो की तरह वह सार्जेंट पर टूट पडा।

उसकी पीठ पर लाठी का जो पहला वार पडा वह सबसे खतरनाक था। उसके सारे शरीर मे पीडा की लहरे दौड गईं और जब उसके कधे पर दूसरा वार पडा तो उसकी आखो मे आसू छलक आए। लेकिन उसने अपने दात भीचकर आसू रोक लिए। 'नही, हरगिज नही, मै इन लोगो के सामने और उसके सामने बुजदिली का सबूत नही दूगा। मै इन सार्जेंटो और पुलिसवालो को अपना मजाक नहीं उडाने दूगा।' उसने अपने दात अपने होठो मे गडा लिए और जब उसकी पीठ पर, टागो पर और बाहो पर लगातार लाठिया पड़ने लगी तो उसने स्वय अपने

रक्त का स्वाद अनुभव किया। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसे अब उतनी पीडा नही हो रही थी। 'ये लोग अगर मुझे मारते-मारते अपनी लाठिया भी तोड दे तो भी मैं पीछे नही हटूगा। मारने दो! मारने दो!' इतने मे उसने देखा कि वही सार्जेंट उसकी तरफ वही लाठी लिए हुए झपटा चला आ रहा है जिससे उसने उस लडकी को मारने की कोशिश की थी और जैसे ही लाठी हवा मे घूमी उसे एक लडकी के चीखने की आवाज़ सुनाई दी और उसने जल्दी से सिर घुमाकर देखा तो उसे लडकी की आखो मे भय दिखाई दिया, लेकिन वह अभी ठीक से उसे देख भी न पाया था कि उसे ऐसा महसूस हुआ कि ज़मीन आकर उसके माथे से टकराई और उसकी आखो के आगे सितारे नाचने लगे और फिर उसकी आखो मे अधेरा छा गया।



भूखा शेर

हलकी-हलकी पीडा की बेहोशी मे अनवर ने अधखुली आंखो से उसे देखा। चार दिन तक अस्पताल के दृश्य देखने, अस्पताल की आवाज़े सुनने और अस्पताल की खुशबुए सूघने के बाद—वही सफेद दीवारे, पलगो की कभी समाप्त न होनेवाली दुहरी कतारें, घायलो की आहे और कराहे और हर तरफ फिनायल की तेज़ खुशबू—इन तमाम चीजो के दरमियान उसे बस एक नज़र देख-भर लेना अनवर के लिए अक्सीर साबित हुआ।

अनवर को बेहोशी की हालत मे लोगो ने स्ट्रेचर पर कांग्रेस अस्पताल पहुचा दिया था। लाठी-चार्ज के बाद उसे इसी मैदान मे उसी हालत मे पडा पाया गया था। जब उसकी बेहोशी टूटी उस वक्त तक उसकी खोपडी के जख्म मे टाके लग चुके थे और पट्टी बाधी जा चुकी थी और यह समझने मे उसे कुछ देर लगी कि उसके सिर मे जो सख्त दर्द हो रहा था उसका पिछली शाम की घटनाओ के साथ भी कुछ सबध था। फिर भी उसकी समझ मे यह नही आ रहा था कि हर बार जब वह गहरी सास लेता था तो उसके सीने मे दर्द क्यो होता था। उसने नौजवान खद्दरपोश डाक्टर से जब यह बात कही तो उसने बताया कि शायद बेहोश हो जाने के बाद उसे एक लाठी और जड दी गई होगी। लेकिन इस समय उसे आता देखकर उसकी सारी पीडा दूर हो गई।

चोट की पीडा से ज्यादा वह अकेलेपन की पीडा अनुभव कर रहा था—खचाखच भरे हुए अस्पताल का वह अजीब अकेलापन जहा ज्यादातर बीमार या तो बेहोश थे या उन्हे इतनी सख्त तकलीफ थी कि वे एक-दूसरे से बाते भी नहीं कर सकते थे। जैसे ही वे चलने-फिरने और बाते करने लायक होते थे वे 'मोर्चे' पर से घायल होकर आनेवाले दूसरे लोगो के लिए जगह खाली करके अस्पताल से चले जाते थे। लडाई अब भी पूरे ज़ोर पर जारी थी। अनवर के पलग की दाहिनी तरफ वाले पलग पर एक बहुत दुबला-पतला गुजराती लडका था

जिसका रग बिलकुल पीला पड चुका था। जब स्वयसेवक उसे उठाकर लाए उस वक्त तक उसके सिर की चोट से इतना खून बह चुका था कि डाक्टरो ने उसके बचने की उम्मीद ही छोड दी थी। लेकिन इच्छाशक्ति का चमत्कार समझिए कि वह बच गया, हालाकि उसका चेहरा बिलकुल मुर्दों जैसा हो गया था और अस्पताल आने के बाद से उसने अभी तक आखे भी नही खोली थी। अनवर के पलग की दूसरी तरफ एक लम्बा-तगडा काली दाढीवाला सिख था और उसे देखकर अनवर को फिर रतन की याद आई जिसपर लाहौर मे मुकदमा चल रहा था। अनवर का जी चाहता था कि वह उससे बाते करे लेकिन उस सिख के शरीर के हर हिस्से पर चोट लगी थी और उसे बहुत तेज़ बुखार था और वह लगातार बेहोशी मे बडबडाता रहता था। वह गालिया देता, नारे लगाता और कभी-कभी पजाबी मे चिल्लाने लगता और अनवर उसकी बातो का कुछ भी मतलब नही समझ पाता। 'मारो, और मारो, सुअर के बच्चो !' वह कभी-कभी बुडबुडाता और कभी चिल्ला पडता, 'सुअरो, मै तुम्हारे सिर तोड देता लेकिन मैं महात्माजी को वचन दे चुका हू, मै वचन दे चुका हू कि मै पलटकर नही मारूगा, मै वचन दे चुका हू'''।' उसकी आवाज धीरे-धीरे बिलकुल डूब जाती और अनवर अपनी पीडा भूलकर यह सोचने लगता कि सिखो और पठानो जैसे जोशीले और लडाकू लोगो के लिए यह कितना मुश्किल होता होगा कि मारते-मारते उनकी हड्डी-पसली एक कर दी जाए फिर भी वे अहिंसा पर डटे रहे, जबकि खुद उसका जैसा स्वभावत दब्बू आदमी भी पलटकर मारने से बाज़ नही रह सका था।

मुलाकात के वक्त राबर्ट मिल्स उसे देखने आया था—बेचारा अनवर की वजह से बहुत परेशान नजर आता था, वह यह महसूस करता था कि पुलिसवालो ने अनवर को जो चोट पहुचाई थी उसके लिए ज़ाती तौर पर वह ज़िम्मेदार था। वह खबर लाया था कि विलायती कपडे के गोदाम पर धरना देने के लिए स्वयसेवको की एक टोली को ले जाते हुए उस्मान गिरफ्तार कर लिया गया था। अकेले रह जाने की वजह से अब मिल्स को इस अनोखी लडाई के विभिन्न 'मोर्चों' की खबरे जमा करने के लिए ज्यादा दौड-भाग करनी पडती थी, और यह लडाई भी रोज ज्यादा ज़ोर पकडती जा रही थी। अनवर मिल्स के काम का महत्त्व समझता था और इसलिए उसने उससे मना कर दिया कि वह बार-बार

अस्पताल आने की चिन्ता न किया करे।

अनवर इसी तरह अस्पताल मे लेटा-लेटा छत की खपरैले गिनता रहता था या खिडकी मे से सूरज और बादलो की आखमिचौनी देखता रहता था। वह बिलकुल अकेला था और रात के वक्त चोरो की तरह सलमा की याद उसके दिल मे आती थी, उसे तसल्ली देने के लिए नहीं बल्कि उसे सताने के लिए। कभी-कभी तो उसे लगता था कि उसके हृदय का रीतापन उसके सिर के घाव या उसके सीने की छिपी हुई चोट से भी ज़्यादा कष्टदायक था।

इतने मे वह आई। केसरी रग की गोट लगी हुई खद्दर की सफेद साडी और हरा ब्लाउज़ पहने हुए वह फूल की तरह खिली हुई थी। अनवर को मन ही मन उस आदमी से ईर्ष्या हो रही थी जिससे मिलने वह आई थी, लेकिन उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि वह उसे ही खोज रही थी। अनवर को विश्वास नही हुआ।

"हेलो," उसने खिली हुई मुस्कराहट के साथ अनवर का स्वागत किया मानो वे बरसो से एक-दूसरे को जानते हो, "मै आपका शुक्रिया अदा करने आई हूं। आप न होते तो शायद मेरी जान न बचती।"

अनवर खुशी के मारे बिलकुल दीवाना हो गया। उसने दबी ज़बान मे कुछ इस तरह की बात कही कि यह तो उसका फर्ज़ था।

"अच्छा, अब आप कैसे हैं? चोट तो बहुत बुरी आई थी लेकिन अब तो आप ठीक दिखाई देते है।" और यह कहकर उसने उसके सिर पर बधी हुई पट्टी पर इतनी नरमी से प्यार के साथ हाथ फेरा कि अनवर को न जाने क्यो दर्द कम मालूम होने लगा। वह उसके पलग की पट्टी पर बैठ गई और उसके बालो की खुशबू अनवर को मदहोश करने लगी।

"किस बात पर मुस्करा रहे है आप?"

"कुछ नही, बस यू ही गालिब का एक शेर याद आ गया था।" वह उसके सामने वह शेर पढने से झिझक रहा था।

"गालिब?"

"हा, एक शायर थे जो मुझे बहुत पसन्द हैं।"

"क्या कहा है उन्होने?"

उसके इस बेबाक दोस्ताना रवैये को देखकर अनवर की सारी झिझक दूर

हो गई और उसने शेर पढ़कर सुनाया—

उनके देखे से जो आ जाती है मुह पर रौनक,
वह समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

और फिर इसकी व्याख्या करते हुए उसने कहा, "इसका मतलब है कि तुम्हे देखकर कोई भी बीमार अपने-आपको चगा महसूस करेगा।"

अनवर का खयाल था कि इस तरह की खुली तारीफ पर वह झेंप जाएगी, लेकिन वह हस दी।

"मुझे इस बात की बडी खुशी है कि आप ऐसा समझते हैं," उसने कहा। "मैं आपको अपने घर ले जाने के लिए आई थी।"

अनवर उस बडी-सी पीली मोटर मे इस अजनबी लडकी की बगल मे बैठा उसे देख रहा था जिसने बिना किसी तकल्लुफ के उससे दोस्ती कर ली थी। लडकी खुद मोटर चला रही थी। जुलूस मे तो वह झडे की तरह ही एक प्रतीक थी, अब जाकर अनवर ने पहली बार उसे एक व्यक्ति के रूप मे देखा था। उसका कद छोटा और शरीर दुबला-पतला था। उसने अपने काले चमकदार बालो को बीच से माग निकालकर पीछे कसकर एक जूडा बाध रखा था जिसमे उसने चमेली के फूलो की वेणी लगा रखी थी। उसकी नाक पर बच्चों की तरह छोटी-छोटी लाल चित्तिया पडी हुई थी और जब भी वह मुस्कराती थी तो उसके दोनों गालो पर छोटे-छोटे गढे पड जाते थे। बम्बई मे हर आदमी की तरह उसका रंग भी कुछ पीला और फीका था और अनवर को यह देखकर बहुत खुशी हुई कि वह पाउडर, सुर्खी या लिपस्टिक नही इस्तेमाल करती थी। वह किसी भी एतबार से बहुत सुन्दर नही थी और न ही उसमे कामुकता का वह आकर्षण था जिसमे सलमा नहाई रहती थी। फिर भी उसके निर्मल, दुबले-पतले, यौवन-मय शरीर मे, उसकी ऊपर को उठी हुई नाक मे, उसके बात करने के उल्लास-मय, नि:सकोच और सीधे-सादे ढंग मे और जिस आत्मविश्वास के साथ वह मोटर चला रही थी उसमे कोई बात ऐसी जरूर थी जिसकी वजह से उसका व्यक्तित्व हृदय को बरबस अपनी ओर खीच लेता था।

"क्या आप जानती हैं कि मुझे आपका नाम तक नही मालूम ?" अनवर ने

कहा। लडकी उस समय बडी होशियारी से क्राफर्ड मार्केट के भीड-भाडवाले इलाके से मोटर निकाल रही थी।

"हा, मै जानती हू," उसने उत्तर दिया और उसके गालो मे गढे पड गए और उसके चेहरे पर शरारत-भरी मुस्कराहट दौड गई। "नाम तो मैं भी नही जानती आपका। चलिए दोनो बराबर हो गए।"

फिर मजबूती से स्टियरिंग व्हील सभालकर उसने मुडकर अनवर की तरफ देखा और मोतियो की तरह चमकते हुए छोटे-छोटे दातो की छटा दिखाते हुए बोली, 'मेरा नाम आशा है। आशा शाह। और आपका ?"

"अनवरअली।"

उसका हाथ पहिये पर ज़रा-सा डगमगा गया और अनवर को उसके स्वर मे विस्मय के साथ ही कुछ निराशा का भी आभास हुआ, जब उसने पूछा, "तो आप मुसलमान हैं ?"

इसमे बुरा मानने की तो कोई बात नही थी फिर भी अनवर ने कुछ चिढ-कर कहा, "जी हा, मै मुसलमान हू। आपको कोई एतराज है ?"

एक क्षण के लिए विचलित होने के बाद वह फिर सभलकर मोटर चला रही थी और चौराहे पर बडे इतमीनान के साथ मोटर घुमाते हुए उसने हसकर कहा, "जी नही, मुझे क्यो एतराज होगा ? मेरे कई बहुत अच्छे दोस्त मुसलमान है। मुझे कुछ ताज्जुब जरूर हुआ क्योकि आप देखने मे मुसलमान लगते नही।"

अनवर की समझ मे नही आ रहा था कि यह कोई तारीफ की बात है या नही, इसलिए उसने बातचीत का रुख बदलते हुए पूछा, "हम लोग कहा जा रहे हैं ?" मोटर फोर्ट के इलाके मे बाज़ार की तरफ जा रही थी।

"पहले तो मैं तुम्हे डाक्टर के पास ले जाऊगी," आशा ने सीधा-सादा जवाब दिया। काग्रेस अस्पताल के डाक्टर अभी नये-नये है और उन्हे बहुत तजुर्बा भी नही है। फिर उन्हे इतने बहुत-से लोगो की देखभाल करनी पडती है कि वे किसीका खास ध्यान नही रख सकते। उन लोगो ने तुम्हारे घाव को तो ठीक-ठाक कर दिया है पर हाउस सर्जन ने मुझे बताया कि उसे तुम्हारे सीने की चोट के बारे मे इतमीनान नही है इसलिए उसने मुझसे कहा था कि मैं किसी स्पेशलिस्ट को दिखा लू।"

वह स्पेशलिस्ट एक बहुत ही खुशमिज़ाज बूढे पारसी डाक्टर थे। अनवर

ने देखा कि वे भी खद्दर के कपडे पहने थे। डाक्टर ने अनवर का सीना अच्छी तरह ठोक-बजाकर देखा, पसलियो पर आला रखकर बडे गौर से उसके दिल की धडकन सुनी और सहसा उनके चेहरे पर चिंता के चिह्न प्रकट हुए।

"खासी बुरी तरह पिटाई हुई है तुम्हारी," उन्होने जाच करने के बाद कहा, "लेकिन फिर भी तुम्हारे सीने की जैसी बुरी हालत है वह पिटाई की वजह से नही हो सकती।" और फिर अचानक उन्होने पूछा, "तुम्हारे बाप को तो सीने या फेफडो की कोई बीमारी नही थी—ब्राकाइटिस, दमा, निमोनिया, टी० बी० वगैरह।

जहा तक अनवर को याद था उसने अपनी ज़िंदगी मे कभी अपने अब्बा की किसी बीमारी का ज़िक्र नही सुना था। साठ बरस की उम्र मे भी वे सीधे तनकर चलते थे और उनके गालो पर अभी भी लाली थी जो अच्छी तन्दुरुस्ती की निशानी थी। उनका कहना था कि बचपन मे अच्छा घी खाने और ख़ालिस दूध पीने से ही उनकी सेहत इतनी अच्छी थी। अनवर ने डाक्टर साहब को अपने अब्बा की तन्दुरुस्ती के बारे मे बताया और बूढे डाक्टर साहब को इस बात पर सचमुच बहुत ताज्जुब हुआ। फिर उन्होने अनवर से उसकी मा के बारे मे पूछा और अनवर को यह बताना पडा कि उसे अपनी मा के बारे मे कुछ भी मालूम नही था, क्योंकि वे तो उसके पैदा होते ही मर गई थी।

"मुमकिन है उन्हीके खून का असर हो," डाक्टर साहब ने सोचते हुए कहा, "हालांकि आम तौर पर वह बाप के ही खून का असर होता है।" यह कहकर वे मेज पर बैठ गए और अनवर के लिए ताकत की कुछ दवाए लिखने लगे। "इनसे तुम हफ्ते-भर मे ठीक हो जाओगे लेकिन तुम्हे बहुत खयाल रखना चाहिए। तुम्हारा दिल और सीना दोनो बहुत कमज़ोर है। सर्दी से बचो, अच्छा और ताकत देनेवाला खाना खाओ—अडे, दूध और हरी सब्ज़िया—और सुबह उठकर रोज़ खुली हवा मे गहरी सास लिया करो। अच्छा, यह तो बताओ कि आम तौर पर तुम्हारा इलाज कौन डाक्टर करता है? क्या तुम्हारे घर का कोई बंधा हुआ डाक्टर है?"

अनवर ने डाक्टर असारी का नाम बताया।

"ओह, असारी! बहुत ही उम्दा डाक्टर है और आदमी भी बहुत अच्छे हैं। मेरे साथ एडिनबरा मे पढ़ते थे। उनसे अच्छा डाक्टर मिलना मुश्किल है।

लेकिन जब तक वे जेल मे है तब तक अपनी सेहत का खयाल रखना।"

अनवर ने हिम्मत करके यह भी बताया कि वह खुद भी जेल जाना चाहता था पर डाक्टर उसे इस बात की इजाज़त देने को बिलकुल तैयार नही थे। "बेकार की बाते न करो," डाक्टर ने सहसा बिगडकर कहा, 'असारी भी तुम्हे कभी इस बात की इजाजत नही देते।" फिर वे आशा को सम्बोधित करके बोले, "आशा, अपने दोस्त का खयाल रखना और उसे किसी हंगामे मे न फसने देना। अच्छा, अब तुम लोग चलो। बाहर बहुत-से मरीज इतज़ार कर रहे है। और अपने पापा और मा से मेरा सलाम कहना न भूलना।"

"डाक्टर जमशेदजी बहुत ही प्यारे आदमी है, है न ?" आशा ने मोटर मे बैठते हुए कहा।

"हा, ठीक ही है," अनवर ने कुछ चिढकर कहा। "लेकिन मैं इसे पसद नही करता कि मुझे बीमार समझा जाए।' फिर सहसा उसे यह आभास हुआ कि आशा ने उसे इतने बडे डाक्टर के पास ले जाकर उसपर जो उपकार किया था उसका वह आभार नही मान रहा है, इसलिए उसने कहा, "मेरी बात का बुरा न मानना। जब से डाक्टर असारी ने मुझे जेल जाने को मना किया है तब से मुझे डाक्टरो से चिढ हो गई है।"

"मै अपनी मा को ले लू, तुम्हे कोई जल्दी तो नही है ?" आशा ने मोटर पीछे करते हुए पूछा। "जब से उन्होने सुना है कि तुमने किस तरह मुझे पुलिस की लाठियो से बचाया है उस दिन से वे तुमसे मिलने को बहुत बेचैन है। असल मे उन्होने ही मुझसे कहा था कि मै तुम्हे घर ले आऊ। तुम्हे मेरी मा बहुत अच्छी लगेगी।"

अनवर ने हामी भरी।

"हा, तुम्हे मेरी मा तो अच्छी लगेगी, लेकिन शायद पापा अच्छे न लगे।" आशा के स्वर मे कुछ खिसियाहट थी।

अनवर ने पूछा कि उसके पापा मे ऐसी क्या बात थी कि वे अच्छे न लगे।

"मालूम नही," आशा ने भीड मे से मोटर निकालते हुए नज़रे घुमाए बिना

ही उत्तर दिया, "कह नही सकती। एक बात तो यह कि वे काग्रेसी नही हैं और इस आदोलन से खुश नही है। दूसरी बात यह कि वे पूजीपति है और मेरा खयाल है कि तुम पूजीवाद को पसद नही करते, मै भी नही करती। खैर छोडो, कुछ और बात करे। मुझे अपने बारे मे बताओ।"

अनवर ने कहा कि वह अपने बारे मे ज़्यादा तो क्या बता सकता है, अलावा इसके कि वह अलीगढ यूनिवर्सिटी मे पढता था और उसे एक मीटिंग मे आज़ादी की कसम पढकर सुनाने के जुर्म मे यूनिवर्सिटी से निकाल दिया गया था और फिर कुछ दिन बीमार रहने के बाद वह अमरीकी पत्रकार राबर्ट मिल्स के इटरप्रेटर की हैसियत से काम कर रहा था। फिर अनवर ने आशा से उसके बारे मे पूछा। उसने बताया कि वह बी० ए० के पहले वर्ष मे पढती थी। जब गाधीजी ने आदोलन के लिए सारे देश को ललकारा तो वह भी पढाई छोडकर स्वयसेवक बन गई। "हज़ारो लडकिया स्वयसेवको मे भरती हुई हैं लेकिन उनमे सबसे बहादुर सफ़िया सोमजी है जो आजकल जेल मे है। जैसाकि तुम्हे उसके नाम से ही पता चलता होगा, वह मुसलमान है। वह मेरी बहुत गहरी दोस्त है।" अनवर ने देखा कि आशा ने आखिरी बात बहुत ज़ोर देकर कही थी।

मोटर भिडी बाज़ार की मुस्लिम बस्ती से निकलकर भायखला का पुल पार करके लालबाग की तरफ चली जा रही थी। उनके सामने मिलो की ऊची-ऊची चिमनिया सिर ऊचा किए खडी थी और उनसे धुआ निकलकर आसमान पर फैल रहा था। सडक पहले से बहुत खराब था, पटरिया भी बहुत पतली और गदी थी और लोग भी मैले-कुचैले दिखाई पडते थे। वे छ:-सातमज़िली इमारतो के बीच से होकर गुजर रहे थे जिनमे लोग शहद की मक्खी के छतो की तरह छोटी-छोटी खोलियो मे रहते थे। हवा मे पैट्रोल, चिमनियो के धुए, नारियल के तेल, सडती हुई खुली नालियो और पसीने की मिली-जुली गध बसी हुई थी। आशा ने अपना सेट से महकता हुआ रूमाल निकालकर नाक पर रख लिया। फिर मोटर बाई ओर को मुडी और रेल का पुल पार करके एक पतली-सी गली मे घुसी और रास्ते के बीचोबीच पडे हुए कचरे के ढेर के पास जाकर रुक गई। सडक की पटरी पर, जो पान की पीक और केले के छिलको से बेहद गदी थी, बहुत-से बेघरबार लोग सो रहे थे। यहा की इमारते तो बड़ी

सडक पर बनी हुई उन चालो की तरह ऊची भी नही थी, जिनके बीच से होकर वे अभी आए थे। दुमजिले मकान, जो पुराने होकर बिलकुल गिरने को हो रहे थे और जिनपर बनने के बाद से कभी पुताई नही हुई थी, इस तरह एक-दूसरे मे सटे हुए खडे थे जैसे शराबी एक-दूसरे का सहारा लेकर खडे हो। और इन मकानो के चारो ओर गरीबो के और भी गरीब रिश्तेदारो की तरह टीन की छतोवाली टूटी-फूटी झोपडियो का एक झुड था, जो चीड के पुराने बक्सो की लकडी, टूटे-फूटे टीन के टुकडो और टाट के चीथडो से बनाई गई थी। उनमे एक झोपडी ऐसी भी थी जो एक छोटे-से तम्बू की शक्ल की थी और जिसकी छत किसी सिनेमा के पुराने बोर्ड के कपडे से बनाई गई थी; कपडे पर तस्वीर के रग बहुत कुछ धूप से उड गए थे पर उसमे मशहूर 'दिल की रानी' की शक्ल अब भी साफ पहचानी जाती थी। बहुत-से दुबले-पतले, सूखी टागोवाले, नगे बच्चे सडक पर और नालियो मे खेल रहे थे और सडक के नल के पास औरतो की भीड जमा थी क्योकि उस पूरे इलाके मे यही एक नल था और उसमे भी पानी बहुत पतली धार से आता था।

"ये है वे गदी बस्तिया जिनपर हमारे शहर को इतना नाज है," आशा ने अनवर को चारो ओर नज़र डालते हुए देखकर बडी व्यग-भरी कटुता से कहा।

"हा, लेकिन हम लोग तो तुम्हारी मा को लेने जा रहे थे।"

"चलेगे, लेकिन मैंने तुम्हे यह दिखाने के लिए ही मोटर रोकी थी।' यह कहकर उसने मोटर फिर स्टार्ट कर दी और अनवर को यह देखकर बहुत ताज्जुब हुआ कि अब मोटर पहले से भी पतली और गदी गली मे घुस रही थी जो रेल की पटरी के किनारे ताड के पेडो के झुरमुट मे जाकर खत्म हो गई थी। इतने मे अचानक बारिश शुरू हो गई और उन्हे मोटर की खिडकियो के शीशे चढा लेने पडे। अनवर की समझ मे अब भी यह नही आ रहा था कि वे आशा की मा को लेने ऐसी गदी जगह क्यो आए थे और उसने यह बात आशा से कह भी दी। जवाब मे आशा ने सिर्फ एक झोपडी की तरफ इशारा किया जो फूस के छप्परवाली दूसरी झोपडियो जैसी ही लगती थी। अनवर को भीगे हुए शीशो मे से धुधला-धुधला दिखाई दिया कि उस झोपडी के सामने एक भीड जमा है। आशा ने बटन दबाया और सामने का शीशा साफ करनेवाला पुर्जा

चलने लगा। अनवर ने देखा कि वह झोपडी असल मे ताडी की दूकान थी और उसके सामने मूसलाधार बारिश मे एक दुबली-पतली औरत सफेद साडी पहने खडी भीग रही थी, वह हाथ जोडकर अदर जानेवाले ग्राहको से, जो देखने मे हट्टे-कट्टे पहलवान लगते थे, मिन्नते कर रही थी कि वे दूकान मे न जाए।

"तो ये तुम्हारी मा है ?" अनवर यह तो जानता था कि बडे-बडे होटलो और विलायती शराब की दूकानो के सामने औरते धरना देती थी लेकिन उसने कभी सोचा भी नही था कि आशा की मा जैसी अमीर घराने की बूढी औरत शराबबंदी के बारे मे गाधीजी के सदेश का प्रचार करने के लिए इतनी गदी बस्ती मे आने की हिम्मत करेगी।

"नौजवान लडकिया शहर के ऐसे हिस्सो मे आने से घबराती थी, इसलिए इन गन्दी बस्तियो मे धरना देने का काम मेरी मा और दूसरी बूढी औरतो ने सभाल लिया। मेरी मा..."

बाकी वाक्य पास से गुजरती हुई बिजली की रेल के शोर मे डूब गया।

"क्या कह रही थी तुम ?" अनवर ने ऊचे स्वर मे पूछा।

रेलगाडी का शोर खत्म हो गया। "मै यह कह रही थी कि मेरी मा एक खास वजह से शराब की दूकानो पर ही धरना देती है। जब तुम मेरे पापा से मिलोगे तो तुम्हे इसकी वजह समझ मे आ जाएगी।"

अनवर अपने दिमाग मे एक तस्वीर बनाने लगा जिसमे एक पतिव्रता स्त्री और उसके शराबी पति के बीच हरदम झगडा रहता था और इसलिए वह चुप हो गया। इतने मे बारिश और तेज हो गई और उसने देखा कि आशा की बूढी मा की खद्दर की साडी बिलकुल भीग चुकी थी, लेकिन उन्होने ज्यादातर ग्राहको को लज्जित करके घर वापस भेज दिया था। सिर्फ एक तगडा-सा आदमी, जो पहले से ही नशे मे मालूम होता था और जिसके पैर लडखडा रहे थे, बडी ढिठाई के साथ अब तक वहा डटा हुआ था।

"तुम्हारे खयाल मे क्या यह बेहतर न होगा कि अब हम लोग उन्हे वहा से ले आए ? बिलकुल भीग गई है। मेरा तो खयाल है कि वे आज-भर के लिए काफी लोगो को इस पाप के गढे मे गिरने से बचा चुकी है।"

आशा ने अपनी घड़ी देखी। "पाच मिनट बाद दूकान बद हो जाएगी।

बारिश तो क्या अगर बर्फ भी गिरने लगे तो भी वे दूकान बद होने से पहले वहा से नही हटेगी। मैंने तो उनसे इस मामले मे बहस करना ही छोड दिया है।"

आखिरकार ताडी की दूकान बद होने का वक्त हो गया और अनवर ने यह अनहोनी बात देखी कि ताडी बेचनेवाले ने उस औरत को हाथ जोडकर नमस्कार किया जो उसके धधे के खिलाफ लोगो मे प्रचार कर रही थी और उसके ग्राहको को दूकान मे आने से रोक रही थी।

"मानना पडता है कि यह अनोखी शराफत है," अनवर ने कहा।

"नही, यह एक अनोखा देश है," आशा ने अनवर की बात को ठीक करते हुए कहा।

वे वृद्ध महिला चलकर मोटर तक आईं और जब अनवर उनका स्वागत करने के लिए घबराकर मोटर से नीचे उतरा तो उन्होने अनवर से परिचय होने का इन्तज़ार किये बिना ही उसे बडे प्यार से डाटते हुए कहा, "तू क्यो भीगता है, बेटा ? बैठ अन्दर।" वे गुजराती लहजे मे हिंदुस्तानी बोलती थी पर उनकी आवाज़ मे नरमी और मिठास थी।

अनवर उन वृद्ध महिला के साथ पीछे की सीट पर बैठ गया। वे एक सूखे तौलिये से अपने भीगे हुए हाथ और मुह पोछने लगी और अनवर उन्हे ध्यान से देखने लगा। उसने सोचा पचास से काफी ऊपर होगी लेकिन उनके चेहरे पर झुर्रियो का कही नाम भी नही था। बालो मे एक पट्टी चादी की तरह चमकते हुए सफेद बालो की थी और छोटी-छोटी चमकदार आखो के चारो ओर गहरे गढे पड गए थे। लेकिन उनकी नाक भी बेटी की तरह ही ज़रा-सी ऊपर को उठी हुई थी और यह भी साफ था कि हसते वक्त आशा के गालो मे जो गढे पडते थे वे भी उसे अपनी मा से मिले थे।

जब उन्होने 'मेरी बेटी की जान बचाने के लिए' अनवर को बार-बार धन्यवाद देना शुरू किया तो अनवर कुछ खिसिया-सा गया क्योकि वे बडे विस्तार से इस बात का ज़िक्र कर रही थी कि बिना सोचे-समझे पुलिस सार्जेंट पर टूट पडने मे उसने असाधारण वीरता का परिचय दिया था। इसलिए जब उन्होने बातचीत का रुख बदलते हुए पूछा, "बेटा, तुम्हारा नाम क्या है ?" तो अनवर को बहुत खुशी हुई।

अनवर ने अपना नाम बताया और उसे यह देखकर बहुत सतोष हुआ

कि यह जानकर कि वह मुसलमान है उन्होने कोई आश्चर्य नही प्रकट किया।

"जुग-जुग जियो बेटा !" उन्होने आशीर्वाद देते हुए कहा।

बेटा ! अनवर को इन उदार वृद्ध महिला के मुह से यह शब्द बहुत ही मीठा लगा। और अपनी उम्र मे पहली बार अनवर को अपने हृदय मे छिपी हुई एक तृष्णा का आभास हुआ—अपनी मा को देखने की लालसा का, जिसे उसने कभी नही देखा था।

कोई हफ्ते-भर बाद एक दिन सुबह जब अनवर की आख खुली तो उसने देखा कि उसके कमरे की खिडकी के बाहर गौरैयाओ का एक झुड शोर मचा रहा है। अनवर को ऐसा लगा जैसे वह बहुत लम्बा सुखद सपना देखकर उठा हो। उसे अनुभव हुआ कि स्प्रिगदार पलग उसके शरीर के बोझ मे लचक रहा था, उसने दीवार के पास रखी हुई बहुमूल्य शृगार मेज देखी ; बाग से फूलो की मादक सुगध आ रही थी। उसे यह समझने मे कुछ देर लगी कि वह सेठ मानिकलाल शाह की मलाबार हिल वाली कोठी मे मेहमान है। वह मिष्टभाषी सेठजी से एक बार मिला था, जिनका गजा सिर बिलकुल उबले हुए अडे की तरह चिकना था और उसने देखा था कि उनकी छोटी छोटी आखो मे चालाकी और धन-लोलुपता की चमक थी लेकिन उन आखो के चारो ओर गहरे रग के घेरे भी पडे हुए थे। सारा दिन वे दलाल स्ट्रीट के अपने दफ्तर मे, सट्टा बाजार मे शेयर खरीदने और बेचने मे या परेल मे अपनी किसी मिल का निरीक्षण करने मे व्यतीत करते थे और रात को ताज मे या जुहू के अपने उस बगले मे शराब पीते रहते थे जो खास तौर पर इसी काम के लिए ले रखा गया था। लोग दबी जबान मे यह भी चर्चा करते थे कि सेठजी ने वहा कोई रखैल रख छोडी थी। जुहू के बगले मे जुए और शराब की महफिल जमती थी और सेठजी की तफरीह के लिए किराये पर नाचनेवालिया लाई जाती थी। सेठजी शायद ही कभी दो बजे रात से पहले घर लौटते थे और उनकी पत्नी बीमार होने पर भी कभी उनके लौटने से पहले सोती नही थी। फिर भी सेठजी न जाने क्यो अपनी दुबली-पतली, छोटी-सी पतिव्रता स्त्री से डरते थे। अनवर ने कभी भी उन्हे घर पर ऊंची आवाज मे बोलते या अपनी पत्नी की बात का खडन

करते नही सुना था।

उनसे अनवर की सिर्फ एक बार मुलाकात हुई थी और वे अनवर के साथ बहुत ही शराफत के साथ पेश आए थे। लेकिन जिस ढग से उन्होने बात की थी उससे अनवर को ऐसा लगा था कि वे अपने-आपको ऊचा और अनवर को नीचा समझते है। खास तौर पर जिस उदारता के साथ उन्होने अनवर को 'जब तक जी चाहे' रहने का निमन्त्रण दिया था। उसमे जोर इस बात पर था कि वे अपनी पत्नी और बेटी की इस तरह की हर सनक को पूरा करने का खर्च बर्दाश्त कर सकते है। आशा ने उसे पहले ही से अपने पापा के बारे मे बता दिया था, फिर भी अनवर का दिल किसी तरह इस बात को मानने को तैयार नही होता था कि ऐसा आदमी आशा जैसी लडकी का बाप और माजी जैसी औरत का पति हो सकता था।

उस परिवार मे बस एक आदमी और था, आशा का बडा भाई मोहन। मोहन वही खद्दरपोश नौजवान निकला जिसे अनवर ने ताज मे खाना खाने के बाद कांग्रेस का गैरकानूनी बुलेटिन बाटते देखा था। अनवर यह फैसला नही कर पा रहा था कि मोहन उसे अच्छा लगता है या नही। मोहन कुछ था ही ऐसा। वह अभी कुछ साल तक पेरिस मे रहने के बाद वापस लौटा था, जहा उसने लम्बे-लम्बे बाल बढा लिए थे और आर्ट सीखने के बहाने वह बिलकुल लाबालीपन की 'बोहेमियन' ज़िन्दगी बिता रहा था। भारत लौटने के बाद से उसने खद्दर पहनना शुरू कर दिया था और उसका यह इन्कलाबी चोला भी उतना ही बनावटी था जितना कि उसका पहलेवाला कलाकारो का भेस। उसमें भोलेपन और दिखावटी अकड का एक अजीब मिश्रण था। उसमे दिखावा जरूर था लेकिन ऐसा भी नही था कि उसके दिल मे बिलकुल ही लगन न रही हो। वह एक खद्दरपोश शौकीन नौजवान था, वह ऐसा देशभक्त था जो खुशी-खुशी फासी पर चढ जाता लेकिन इस शर्त पर कि शहीद होते वक्त उसकी तस्वीरे खीचने के लिए अखबारों के फोटोग्राफर वहा मौजूद हो। वह अनवर पर बहुत रोब झाडता था, लेकिन उसे नीचा दिखाने के लिए नही बल्कि एक बडे भाई की तरह। वह अनवर को हमेशा 'माई ब्वाय' कहता था। जब भी दोनो अकेले होते वह अनवर से कहता, "माई डियर ब्वाय, तुमने ज़िन्दगी नही देखी है। जब तक आदमी कम से कम साल-भर तक पेरिस की रगीनी न देखे तब तक उसने ज़िन्दगी में कुछ भी नही

देखा ।" लेकिन दूसरे ही क्षरण वह गैरकानूनी पर्चे छापने और बांटने के बारे मे अपनी किसी अनोखी योजना पर बहस करने लगता था ।

बिस्तर पर लेटे-लेटे अनवर उन विचित्र परिस्थितियो पर विचार कर रहा था जिन्होंने उसे इस घर मे पहुंचा दिया था । इतने मे उसे माजी की आवाज़ सुनाई दी, "उठ गए बेटा ? चाय भेज दू ?"

"जी हा माजी, मैं बिलकुल तैयार हूं ।" अनवर ने चादर उतार फेकी और फुर्ती से उठकर खिडकी के पास जाकर बूढे डाक्टर जमशेदजी के आदेशानुसार खुली हवा मे गहरी-गहरी सासे लेने लगा । उसके सीने का दर्द लगभग बिलकुल खत्म हो गया था । माथे का घाव भी भर गया था, सिर्फ एक निशान बाकी रह गया था । अनवर के शरीर मे नई स्फूर्ति आ गई थी ; उसके मन मे नई उमग थी ।

चाय आई तो उसके साथ आशा और मोहन भी आए । आशा लडको जैसा पाजामा पहने थी और उसके खुले हुए बाल उसके कधो पर बिखरे थे । उसे देखकर अनवर को हसी आ रही थी पर साथ ही वह अच्छी भी बहुत लग रही थी । मोहन का पहनावा उसके स्वभाव की तरह ही आधा तीतर और आधा बटेर था । वह खादी के स्लीपिंग सूट पर चीनी सिल्क का ड्रैसिंग गाउन पहने था और मुह के एक कोने मे वह लम्बा-सा सिगरेट-होल्डर दबाए था ।

"अनवर, हम लोग तुमसे एक काम करवाना चाहते है । क्या तुम्हारी तबियत अब इतनी ठीक है कि तुम बाहर जा सको ?" आशा ने बडी उत्सुकता से पूछा ।

"जाएगा क्यो नही, अब यह बिलकुल चगा हो गया है," मोहन ने आशा को डाटते हुए कहा । "तुमने भी इसे बिलकुल बच्चा बना रखा है ।"

"बच्चा न सही, लेकिन बीमार तो था । जानते हो डाक्टर जमशेदजी ने..."

"छोडो उस बुड्ढे अनाडी डाक्टर की बाते । उसकी बातों के चक्कर मे जो पड जाए उसे उम्र-भर बैसाखियो का सहारा लेकर ही चलना पडे ।"

अनवर भाई-बहिन के हर वक्त के इन झगडो का आदी हो चुका था लेकिन चूकि यह झगडा उसे लेकर हो रहा था इसलिए उसे बीच मे बोलना पडा । "अच्छा, तुम दोनो अपना झगड़ा बन्द करके कुछ यह भी बताओगे कि आखिर काम क्या है ।"

"अनवर, माई ब्वाय,..." मोहन अवसर के महत्त्व को देखकर कुछ सोचने लगा।

"ज़रा ठहरो," आशा ने घबराकर ऊचे स्वर मे कहा, "पहले मैं दरवाज़ा बन्द कर लू। कोई कही हमारी बाते न सुन ले।"

अनवर इस सारी कार्रवाई के जासूसी वातावरण को देखकर बहुत चकित हो गया।

"बात यह है कि काम बहुत ही ज़रूरी है," मोहन ने दुबारा कहना शुरू किया, लेकिन उसकी अधीर बहिन ने उसे फिर रोक दिया।

"भैया, तुम सारा खेल बिगाड दोगे। मैं बताऊगी।"

आखिरकार अनवर को सारी बात का पता चल गया और उसे यह जानकर कुछ आश्चर्य हुआ कि बात सचमुच गभीर थी। उन लोगो को किसी गुप्त स्रोत से पता चला था कि गाधीजी उसी रात को धरसाना मे गिरफ्तार करके पूना के पास यरवदा जेल ले जाए जानेवाले थे।

"हम लोग चाहते यह है कि तुम जाकर गाधीजी से मिलो," मोहन ने उसे समझाते हुए कहा। "हम सब लोगो पर पुलिस की नज़र है, इसलिए अगर हममे से कोई बम्बई से बाहर जाएगा तो पुलिस को शक होगा। लेकिन तुम आसानी से जा सकते हो, क्योकि यहा की सी० आई० डी० अभी तुम्हे जानती नही है।"

"अनवर," आशा ने बडे आग्रहपूर्वक कहा "तुम महात्मा गाधी का सदेश ले आओ फिर हम उसे अपने बुलेटिन मे छापेंगे और अपने काग्रेस रेडियो पर पढकर सुनाएगे। सनसनी फैल जाएगी। बहुत बडा 'स्कूप' रहेगा।"

अनवर ने उन्हे यकीन दिलाया कि वह यह काम बडी खुशी से करेगा, लेकिन सवाल यह था कि रात से पहले वह धरसाना पहुचेगा कैसे ?

"वह सब इतज़ाम हम लोग कर देंगे, माई ब्वाय, लेकिन गाधीजी का इंटरव्यू तुम उनके गिरफ्तार होने के बाद ही लेना। यह असली बात है। अनवर, बस तुम हमारा इतना काम कर दो, फिर तुम जो कहोगे वह मैं करूगा।"

"करोगे ?" अनवर ने पूछा।

"हा, जरूर करूगा," मोहन ने उसे आश्वासन दिया।

"अच्छा, तो मुझे 'माई ब्वाय' न कहा करो।"

"मान लिया, माई ब्वाय।"

इसपर सब लोग हस पडे और मोहन दाढी बनाने चला गया और आशा नहाने। आशा ने दरवाज़े पर से पीछे मुडकर देखा और बोली, "मैं तो कांग्रेस हाउस जा रही हू और शायद तुम्हारे जाने से पहले फिर तुमसे मुलाकात न हो सके। काम पूरा करके आना।"

तो आखिरकार सरकार ने गाधीजी को गिरफ्तार करने का फैसला कर ही लिया, अनवर ने उठते हुए सोचा। इसका मतलब था कि अब कोई समझौता नही हो सकता। जब सरकार जनता के महान नेता को गिरफ्तार कर लेगी तो जनता और भी दृढ सकल्प के साथ अपने लक्ष्य की ओर, अपने नारो और अपने स्वप्नो के इन्कलाब की ओर आगे बढेगी।

वह बहुत ही ऐतिहासिक दिन होनेवाला था। इसलिए अनवर ने कलैडर पर नज़र डाली। ४ मई, १६३१—शनिवार का दिन था।

अनवर का काम उससे कही मुश्किल साबित हुआ जितना कि उसने समझा था। उसने मोहन और आशा से यह बात मनवा ली थी कि वह राबर्ट मिल्स को भी इस योजना मे शामिल कर लेगा क्योकि बहरहाल वह अब भी मिल्स के ही साथ काम कर रहा था। मिल्स यह खबर सुनकर बेहद खुश हुआ और उसने अनवर को इस 'स्कूप' के लिए पहले ही से बधाई दी, जिसके लिए वे अभी योजनाए ही बना रहे थे। उसे अपनी सफलता का इतना विश्वास था कि उसने अपने न्यूयार्क के दफ्तर को एक महत्त्वपूर्ण 'स्टोरी' की 'प्रतीक्षा करने' के लिए तार भी भेज दिया। शाम के वक्त वे सेठ मानिकलाल की मोटर मे बैठकर सूरत के लिए रवाना हुए। रास्ते मे खाने के लिए उन्होने अपने साथ कुछ सैंडविच रख लिए थे। लगभग दो हफ्ते तक पलग पर पडे रहने के बाद अनवर के लिए यह बहुत ही सुखद अनुभव था और उसे कुछ-कुछ इस बात का भी आभास था कि वह इतिहास के विकास-क्रम मे हिस्सा ले रहा है।

गाडी आधी रात के बाद आई लेकिन उसे वक्त से ज्यादा देर तक रोक रखा गया। एक बजे तक तमाम खोचेवालो को और उन तमाम लोगो को जिनके पास उस गाड़ी के टिकट नही थे प्लेटफार्म पर से हटा दिया गया।

इतने मे गार्ड ने सीटी बजाई और लोग भागकर अपने-अपने डिब्बो मे पहुच गए। लेकिन एक क्षण तक सकोच करने के बाद जैसे ही अनवर और मिल्स लपककर एक डिब्बे मे चढे वैसे ही गाडी एक झटके के साथ रुकी और साथ ही सफेद वस्त्रो मे गाधीजी की आकृति दिखाई दी। उनके साथ पुलिस अफसरो की एक टोली थी। दूसरे ही क्षण गाडी फिर चल दी।···

इस तरह अनवर उसी गाडी पर सफर कर रहा था जिसपर गाधीजी को जेल ले जाया जा रहा था। अब सवाल यह था कि उनमे मुलाकात कैसे की जाए। जब गाडी अगले स्टेशन पर रुकी तो वे दोनो यह पता लगाने के लिए उतरे कि कैदी को किस डिब्बे मे बिठाया गया था। प्लेटफार्म पर मिट्टी के तेल के कुछ लैम्पो से जो धुधली-धुधली रोशनी हो रही थी उसमे उन्होने कुछ हथियारबद पुलिसवालो को डाइनिग कार के सामने टहलते देखा। "यही है।" मिल्स ने चुपके से कहा, "इसी डिब्बे मे है, और कही हो ही नही सकते।" अब सवाल उनके पास तक पहुचने का था। गाडी बहुत सवेरे ही बम्बई पहुच जानेवाली थी और यह यकीन था कि बम्बई से पहले ही उन्हे किसी जगह उतार लिया जाएगा। मिल्स ने आखो मे धूल झोककर डिब्बे मे घुस जाने का फैसला किया और डिब्बे के सामने टहलते हुए पुलिसवालो की जरा भी परवाह किए बिना वह डाइनिंग कार के दरवाजे के पास गया और बिल्कुल पक्के साहबो की तरह 'ब्वाय ! ब्वाय !!' पुकारने लगा।

"क्या चाहिए, सा'ब ?" एक पुलिसवाले ने उसका रास्ता रोककर काफी झिड़ककर पूछा।

अनवर वहा से कुछ दूर पर खडा राबर्ट की हाजिरजवाबी पर मन ही मन मुस्करा रहा था। "व्हिस्की-सोडा मागता—जल्दी ! समझा ?" और यह कहकर मिल्स ने दरवाजा खोलने की कोशिश की लेकिन वह अदर से बद था।

"नही साहब। डाइनिंग कार बद हो चुकी है। अब व्हिस्की-सोडा का टाइम नही है।" पुलिसवाले ने भी साफ-साफ बता दिया कि राबर्ट की तिकडम नही चलेगी और इसलिए अमरीकी पत्रकार को उलटे पाव वापस आना पडा।

गाडी ने सीटी दी और उन्हे भागकर अपना डिब्बा पकडना पडा, लेकिन जब गाडी चल पडी तो अनवर ने इतना जरूर देख लिया कि डाइनिंग कार का दरवाजा खुला और पुलिसवाले चलती गाडी मे लपककर चढ गए।

अगले स्टेशन पर ही उनके लिए आखिरी मौका था, क्योंकि उसके बाद गाडी दादर पर ही खडी होनेवाली थी और उन्हे पूरा यकीन था कि गाडी उससे कुछ मील पहले ही रोक दी जाएगी और गाधीजी को चुपचाप वहा से मोटर मे बिठाकर ले जाया जाएगा। इसलिए अनवर ने राबर्ट को मना कर दिया कि वह अगले स्टेशन पर न उतरे नही तो पुलिसवालो को शक हो जाएगा। इस बार उसने खुद किस्मत आज़माने का फैसला किया था।

जब गाडी छोटे-से सुनसान स्टेशन पर रुकी तो अनवर एक थर्मस लेकर नीचे उतरा और पीने का पानी ढूढने लगा। उसने स्टेशन पर पानी का कोई इन्तज़ाम न होने के बारे मे कुली, टिकट-कलेक्टर और स्टेशन-मास्टर सबसे बहस की। वह पुलिसवाले की तरफ ध्यान दिए बिना डाइनिंग कार से आगे निकल गया लेकिन जाते-जाते उसने खिडकी के काच पर गाधीजी की जानी-पहचानी आकृति की छाया देखी। पूरब की ओर आकाश पर पौ फट रही थी। जब गार्ड ने सीटी दी और गाडी चलने लगी उस वक्त वह इजन के पास था। वह घबराया हुआ पीछे अपने डिब्बे की तरफ भागा लेकिन गाडी की रफ्तार काफी तेज हो चुकी था और अगर इस गडबडी मे उसने पुलिसवालो के घुस जाने के बाद डाइनिंग कार का हैडिल पकड लिया तो इसमे उसका क्या दोष था? इससे पहले कि पुलिसवाले समझ पाते कि क्या हो रहा है, वह अन्दर पहुच चुका था और उस महान कैदी के सामने खडा था।

गाधीजी उसे पहचानकर मुस्करा दिए। "चलती गाडी मे चढकर अपनी जान खतरे में डालना अच्छी बात नही है।"

"मैं जानता हू," अनवर ने अपनी नोटबुक और पैसिल निकालते हुए जवाब दिया, "लेकिन आपसे मिलना ज़रूरी था। आप अपनी गिरफ्तारी के बाद जनता से क्या करने की उम्मीद करते हैं?"

"ज़ाहिर है मै यही उम्मीद करता हूं कि वे आदोलन चलाते रहे।" वे धीरे-धीरे बोल रहे थे मानो हर शब्द कहने से पहले तोल रहे हो। "बिना कुरबानी के जो स्वराज मिलता है वह कभी कायम नही रहता। इसलिए लोगो को बेहद कुरबानी देनी होगी। असली कुरबानी में सारी तकलीफे एक तरफ वालो को बर्दाश्त करनी पडती है, दूसरे की जान लिए बिना खुद अपनी जान देनी पडती हैं। मैं चाहता हू कि भारत इस आदर्श पर चल सके। इस समय भारत की इज़्ज़त और

हर चीज मुट्ठी-भर नमक मे छिपी हुई है। यह मुट्ठी तोड भले ही दी जाए लेकिन खुलने न पाए।"

गाडी धीमी हो चली थी और वे बम्बई के पास पहुच चुके थे। अनवर गाधीजी से कोई स्पष्ट और निश्चित सदेश चाहता था इसलिए उसने पूछा, "क्या सत्याग्रह की हद नमक कानून तोडने तक ही रहनी चाहिए या लोगो को इसके अलावा भी कोई कदम उठाना चाहिए ?"

अनवर को अपने प्रश्न का जो उत्तर मिला उससे वह रोमाचित हो उठा। वह अहिंसा की सेना के सेनापति से बाते कर रहा था जो लडाई चलाने के बारे मे आदेश दे रहे थे। "समुद्र-तट से नमक बटोरने या नमक बनाने मे पूरे के पूरे गांवो को हिस्सा लेना चाहिए। औरतो को शराब की दूकानो, अफीम के ठेको और विलायती कपडे की दूकानो पर धरना देना चाहिए। विलायती कपडे की होलिया जलाई जानी चाहिए। हिंदुओ को किसीके साथ छुआछूत का बरताव नही करना चाहिए। हिन्दुओ, मुसलमानो, पारसियो और ईसाइयो सभीको एक-दूसरे को भाइयो की तरह गले लगाना चाहिए। लडको को सरकारी स्कूल छोड देने चाहिए और सरकारी नौकरो को सरकारी नौकरिया छोडकर जनता की सेवा करनी चाहिए, जैसाकि गुजरात के पटेलो और तलातियो ने किया है।"

अनवर ने देखा कि जब वह गाधीजी का संदेश लिख रहा था उस समय पुलिस के अफसर क्रोध के मारे तिलमिला रहे थे,पर वे कुछ कर नही सकते थे। वे शायद यह फैसला कर ही रहे थे कि उसे वही गिरफ्तार कर ले कि इतने मे गाडी के ब्रेक लगे और वह एक झटके के साथ रुक गई। ऐक्सप्रेस रुक गई और डाइनिंग कार रेल की पटरी को पार करनेवाली सडक के फाटक के सामने आ लगी। अब पुलिसवाले अपने कैदी को उतारने मे इतने व्यस्त थे कि उन्हे और किसी बात का ध्यान ही नही था।

अनवर ने हाथ जोडकर चुपचाप नमस्कार किया और गाधीजी ने मुस्कराकर उसे आशीर्वाद दिया और खद्दर की चादर अपने कधो पर डालकर गाडी से नीचे उतर गये।

फाटक के पास खडे हुए दो विदेशी पत्रकारों को अनवर ने पहचाना और वह मन ही मन इस बात पर मुस्कराने लगा कि जब उन्हे यह मालूम होगा कि

कोई उनसे पहले ही गाधीजी से इटरव्यू ले चुका है तो वे कितना कुढेगे।

"मिस्टर गाधी, आपको कुछ कहना है ?" उसने एक पत्रकार को सवाल करते सुना और गाधीजी ने उत्तर दिया, "इग्लैड और अमरीका के लोगो से कहिए कि आज सुबह जो कुछ आप देख रहे है उसका असली मतलब समझे। क्या यही आजादी है ...?"

वे इससे ज्यादा और कुछ नही पूछ सके, क्योकि पुलिस जल्दी से गाधीजी को मोटर मे बिठाकर फौरन वहा से ले गई। जब ऊघते हुए मुसाफिरो को इस ऐतिहासिक नाटक का पता चला तो हर डिब्बे से लोग बाहर झाक-झाककर देखने लगे। लेकिन पुलिसवालो को और पत्रकारो को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस डिब्बे मे गाधीजी सफर कर रहे थे उसीकी एक खिडकी मे से अनवर बाहर सिर निकाले झाक रहा था।

"भला यह कौन है ?" उनमे से एक ने पूछा। उसे कुछ-कुछ इस बात का शक हो गया था किसीने उससे भी ज्यादा फुरती दिखाकर मार्के की खबर पहले ही उडा ली थी।

लेकिन गाडी चल पडी थी और अनवर अपना खाली थर्मस हिला-हिलाकर चिल्लाकर कह रहा था, "जानते नही हो, मै पानी की खोज मे भटकनेवाला काला आदमी हू।"

गाधीजी का सदेश लाने मे अनवर की सफलता पर आशा इतनी खुश थी कि उसने अनवर को निमत्रण दिया कि वह भी उसके साथ काग्रेस के गुप्त रेडियो स्टेशन मे चले जहा से वह सदेश उसी शाम को प्रसारित किया जानेवाला था।

"तुम्हे यकीन है कि मुझे अपना इतना बडा भेद बताकर तुम कोई खतरा नही मोल ले रही हो ? मान लो अगर मैं सी० आई० डी० का भेजा हुआ भेदिया हू तो ?" वह आशा को छेड रहा था और यह भी देख रहा था कि वह उसपर कितना भरोसा करती है।

"बकवास न करो, हम तुम्हे अपना ही आदमी समझते हैं।" जिस तरह से उसने यह बात कही उसमे मित्रो जैसे विश्वास के अलावा भी कुछ था।

"और फिर सी० आई० डी० का कोई आदमी एक वालटियर की जान बचाने के लिए पुलिस से अपनी खोपडी न तुडवाता।"

"पहली बात तो यह कि तुम कोई मामूली वालटियर नही हो, और फिर गद्दारो के सीने मे भी तो दिल होता है।" आशा अपनी यह तारीफ सुनकर कुछ शरमा गई। पर वह सीधे-सादे स्वभाव की थी। उसे नखरे दिखाना बिलकुल नही आता था। "दूसरी बात यह कि कभी-कभी दूसरो का एतबार हासिल करने के लिए सी० आई० डी० वालो को अपना सिर भी तुडवाना पडता है, जैसाकि मैने किया है। मेरा खयाल है कि मुझे जो चोट लगी है उसकी वजह से मुझे तरक्की मिल गई है।"

आशा बहुत ही दोस्ताना ढग से लडको की तरह हसी। अनवर को उसकी यही बात अच्छी लगती थी। आप उसके साथ बिलकुल बराबरी से बाते कर सकते थे, हसी-मजाक कर सकते थे और आपको यह एहसास भी नही होता था कि आप किसी लडकी से बाते कर रहे है।

दोपहर का खाना खाने के बाद वे आशा की मोटर मे बैठकर अपोलो बदर गए और वहा से आशा ने ड्राइवर के साथ मोटर वापस भेज दी। उस समय समुद्र-तट पर बने हुए घाट पर बिलकुल सन्नाटा था, सिर्फ गेटवे आफ इडिया के ठडे फर्श पर कुछ बेघरबार लोग चैन से सो रहे थे। उन दोनो ने ताज हर्बर बार मे जाकर कुछ सैंडविचे और केक खरीदे। फिर वे घाट पर जाकर एक मोटरबोट मे बैठ गए। अनवर ने देखा कि बोटवाला आशा को जानता था क्योकि उसने न तो पैसो के लिए कोई मोलतोल किया और न ही यह पूछा कि वे कहा जाना चाहते है।

जब मोटरबोट फट-फट करती हुई बदरगाह से बाहर निकली तो अनवर ने पूछा, "किसीको शक तो नही होगा? कही ऐसा न हो कि कोई हमारा पीछा करे?"

"हद से हद कोई यही तो शक करेगा कि मैं तुम्हारे साथ रोमास करने के लिए सैर को जा रही हू और लोग हमारे बारे मे तरह-तरह की बाते करेगे।"

"और तुम्हे इसकी कोई परवाह नही है?"

'नही, बिलकुल नही, अगर इससे काग्रेस रेडियो का भेद छिपाए रखने मे मदद मिलती हो।'

अब वे खुले समुद्र मे पहुच चुके थे और अनवर सोच रहा था कि शायद वे किसी रमणीक द्वीप की तरफ जा रहे है। उसने देखा कि बोटवाला उसे कुछ अविश्वास और चिता के साथ देख रहा था और अनवर इसे कोई बुरी बात भी नही समझता था। जो लोग गुप्त क्रातिकारी काम करते थे उन्हे हर तरह से सतर्क रहना ही पड़ता था, खास तौर पर नये लोगो के मामले मे। बोटवाला अपनी उत्सुकता को दबा न सका और उसने अनवर की तरफ इशारा करके मराठी मे आशा से कुछ कहा। अनवर की समझ मे यह तो नही आया कि उसने क्या कहा था लेकिन वह इतना जरूर समझ गया कि वह उसीके बारे मे पूछ रहा था। लेकिन आशा ने उसकी बात का जवाब हिंदुस्तानी मे देते हुए उससे अनवर का परिचय कराया और बताया कि "ये उत्तर भारत के एक साथी हैं, जो आदोलन की बडी सेवा कर रहे है।" उसने बोटवाले को यह भी बताया कि अनवर ने किस प्रकार सुबह गाधीजी से मुलाकात की थी। इसपर मराठा बोटवाला खुश होकर मुस्करा दिया। यह सब कुछ जान लेने के बाद ही उसने मोटरबोट को एक दूसरी नाव की दिशा मे मोडा जो समुद्र मे अकेली तैर रही थी और जिसके सफेद पाल हवा मे तने हुए थे। ऐसा लगता था वह मछलिया पकडनेवाली कोई नाव थी।

इसी नाव पर काग्रेस का गुप्त रेडियो स्टेशन था—उसके ऊचे-ऊचे मस्तूल बडी आसानी से एरियल का काम देते थे और बैट्रिया, माइक्रोफोन और दूसरी मशीने नाव मे बने हुए एक बक्स मे छिपा दी गई थी। अनवर ने जब अपने ही लाए हुए गाधीजी के सदेश को रेडियो पर सुना तो वह बहुत रोमाचित हो उठा। "हम काग्रेस रेडियो से बोल रहे है! यह काग्रेस रेडियो है!! अब हम आपको अपने प्रिय नेता महात्मा गाधी का वह सदेश पूरा सुनाते है जो उन्होने आज सुबह हमारे विशेष सवाददाता को अपनी गिरफ्तारी के बाद दिया था।"

अनवर को शक था कि शायद गाधीजी इस तरह की गुप्त कार्रवाइयो को पसद न करे। काग्रेस रेडियो का प्रबध पूरी तरह कुछ साहसी और सूझ-बूझ-वाले नौजवानो के हाथ मे था। उन्होने अपने ट्रासमीटर की जगह जल्दी-जल्दी बदलकर पुलिस के जासूसो और सरकार के रेडियो-विशेषज्ञो को चक्कर मे डाल रखा था। कभी वे शहर के बाहर किसी सुनसान बगले मे अपना रेडियो

स्टेशन चलाते थे, तो कभी किसी सुनसान सडक पर चलती हुई मोटर पर। एक बार तो उन्होने एलिफैंटा की गुफाओ मे भी अपना रेडियो स्टेशन कायम किया था। लेकिन समुद्र मे तैरती हुई नाव पर रेडियो स्टेशन कायम करने की व्यवस्था सबसे सुविधाजनक और सुरक्षित साबित हुई थी।

जब वे दोनो वहा से बिदा हुए उस समय भी ट्रासमीटर पूरी आवाज से कह रहा था—"यह कांग्रेस रेडियो है! हम कांग्रेस रेडियो से बोल रहे हैं!! आप आजादी की आवाज़ सुन रहे है।"

जब वे अपोलो बदर वापस पहुचे तो मोटर उनका इतज़ार कर रही थी। इस बार आशा ने ड्राइवर को छुट्टी दे दी और खुद मोटर चलाने लगी।

"शहर के बाहर घूमने चलते हो?" उसने पूछा और इससे पहले कि अनवर कोई जवाब देता आशा ने कहा, "मेरा एक दोस्त खार मे रहता है और मै चाहती हू कि तुम उससे ज़रूर मिलो।"

यह फैसला होते ही मोटर हार्नबी रोड पर दफ्तर से लौटते हुए लोगो की भीड मे से होती हुई, बोरीबदर स्टेशन और क्राफर्ड मार्केट को पार करती हुई भिंडी बाज़ार, लालबाग और परेल की गदी बस्तियो से गुज़रकर दादर पहुची, फिर बाई ओर मुडकर तिलक ब्रिज पार करके माहिम पहुची और फिर वहा समुद्र पर बना हुआ छोटा-सा पुल पार करके बबई के उपनगर की बस्तियों की ओर बढी। सारी देर अनवर यही सोचता रहा कि आशा का यह दोस्त किस किस्म का आदमी होगा। आशा ने जिस ढग से उसके बारे मे बताया था उससे यह स्पष्ट था कि वह उसका कोई 'साधारण मित्र' नही था, बल्कि कोई ऐसा आदमी था जिसके लिए उसके दिल मे खास इज़्ज़त थी। शायद वह उससे प्यार करती थी! यह विचार आते ही उसका मन बेचैन क्यो हो उठा, उसे कुछ कुछ ईर्ष्या क्यो होने लगी? कही ऐसा तो नही था कि वह खुद आशा से थोडा-थोड़ा प्यार करने लगा था?

वह विचार मन मे पैदा होते ही उसने अपने-आपको समझाया, "अनवर, बेवकूफी की बाते नही करते।" इतने मे मोटर एक छोटे-से बगले के अहाते मे जाकर रुक गई। "वह यही रहता है," आशा ने मोटर का इजन बद करते हुए

कहा, "और हा, उसका नाम यशवत देसाई है ।"

यह कहकर वह अनवर को बगले मे नही बल्कि मोटरखाने मे ले गई जो उसी अहाते मे बगले के पीछे की तरफ बना हुआ था । अनवर के चेहरे पर आश्चर्य का भाव देखकर आशा ने कहा, "बडी अजीब बात लगती है न, लेकिन वह है ही अजीब आदमी । और फिर आजकल घर मिलना भी मुश्किल है ।" दरवाज़ा खटखटाए बिना वे अदर चले गए और वहा अनवर ने एक विचित्र वातावरण मे एक अजीब आदमी को देखा ।

यशवत बहुत दिनो से बीमार था और चारपाई पर ही पडा रहता था । उसका शरीर घुलकर बिलकुल ढाचा रह गया था और उसकी दाढी बहुत बढ आई थी, उसके शरीर मे सिर्फ आखे ही ऐसी थी जिनमे जान मालूम होती थी—बडी-बडी डरावनी आखे थी उसकी, लेकिन साथ ही उन आखो मे भी कोई अज्ञात भय छिपा हुआ था, उनमे एक अजीब आकर्षण था । आशा ने उन दोनो का परिचय कराया । यशवत कोशिश करके मुस्कराया और उसने कम्बल के नीचे से अपना सूखा हुआ हाथ निकालकर अपने मेहमान की तरफ बढा दिया । उस हाथ को अपने हाथो मे पकडकर अनवर को अजीब-सा लगा, जैसे वह स्वय मौत से हाथ मिला रहा हो ।

'कहिए, मेरा महल आपको कैसा पसद आया ?" उसका मजाक भी निराशा के रग मे डूबा हुआ था और उसकी आवाज बच्चो की तरह पतली और बेझिझक थी ।

अनवर ने कमरे मे चारो तरफ नजर दौडाकर देखा । दीवार पर कार्ल मार्क्स, ताल्सताय, लेनिन और स्तालिन की तस्वीरे लगी थी । एक तरफ हसिया और हथौडेवाला लाल झडा लगा हुआ था, काठियावाड के कुछ परदे दीवार पर टगे हुए थे और एक कील पर टैम्परेचर का चार्ट लटक रहा था । हर तरफ किताबो के ढेर थे—अलमारियो मे, मेज़ पर, पलग के पास लगी हुई एक लम्बी बच पर और खुद पलग पर भी । यह साफ ज़ाहिर था कि वह मार्क्सवादी था और उसे पढने-लिखने का शौक था । और वह जिस नरमी के साथ आशा से कोई काम करने को कहता था उससे साफ ज़ाहिर था कि वह उससे बेहद प्यार करता था ।

अनवर ने यशवत से कहा कि उसका कमरा उसे बेहद पसद आया था और

उसने किताबो का इतना अच्छा संग्रह लाइब्रेरियो के अलावा और कही नही देखा था। यह सुनकर बीमार खुश हुआ।

आशा फौरन कमरा ठीक करने मे जुट गई। उसने किताबे झाडकर फिर अलमारियो मे रखी, तस्वीरे सीधी की और पलग पर बिस्तर ठीक से बिछाया। बडे प्यार से सहारा देकर उसने यशवत को बिठा दिया और उसकी पीठ के पीछे तकिये ठीक से लगा दिए। फिर वह बैंच पर पडी हुई जूठी प्लेटे और गिलास उठाकर उन्हे धोने के लिए नल पर चली गई। अनवर देख रहा था कि यशवत आशा के हर काम को ऐसी नजरो से देखता था जैसे वह अपनी किसी चीज पर गर्व कर रहा हो। अगर उसकी वह हालत न होती जो इस समय थी तो उसका यह आचरण हास्यास्पद लगता। अब उसकी हरकतो पर सिर्फ तरस आता था।

आशा के जाते ही रोगी ने अनवर से एक ऐसा सवाल पूछा जिसे सुनकर वह दग रह गया। यशवत ने पूछा, 'क्या तुम उससे प्यार करते हो?" यह सवाल इस तरह अचानक पूछा गया था और इतना अनुचित सवाल था कि एक क्षण के लिए तो अनवर की समझ मे ही नही आया कि इसका क्या जवाब दे। फिर उसने लडखडाती जबान से कुछ सिटपिटाकर जरूरत से ज्यादा जोर देकर कहा, "नही, बिलकुल नही।" तुम्हे यह खयाल ही क्यो पैदा हुआ?...हमे अभी मिले हुए मुश्किल से दो हफ्ते हुए है।"

यशवत खुद यह सवाल पूछकर पछता रहा था और उसने माफी मागते हुए कहा, "मै जानता हू कि मुझे ऐसा सवाल नही पूछना चाहिए था। लेकिन तुम मेरी बात का बुरा न मानना। इस वक्त मेरी जो हालत है उसमे मेरे लिए उसकी मुहब्बत इतनी जरूरी है कि कभी-कभी मुझे बिला वजह दूसरो से जलन होने लगती है। बात यह है कि मैं बीमार आदमी हू और मार्क्स की किताबे पढने के बाद भी मेरी हर बात समझदारी की नही होती।" यह कहकर वह निढाल होकर लेट गया। अब अनवर के पछताने की बारी थी कि उसने उसकी बात का इतना बुरा क्यो माना था।

आशा प्लेटें धोकर वापस लौटी और उसने हमेशा की तरह खिली हुई मुस्कराहट के साथ पूछा, "तुम दोनो क्या बातें कर रहे थे?" और फिर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने यशवत से पूछा, "तुमने कुछ और काम किया?"

उसने स्वीकृति मे सिर हिलाया और जब आशा ने कहा "तो फिर मुझे पढकर सुनाओ," तो उसका चेहरा खिल उठा।

जितनी देर मे यशवत ने अपने तकिये के नीचे से लिखे हुए कागजों का बडल निकालकर उन्हे सभाला उतनी देर मे आशा ने अनवर को बताया कि यशवत साल-भर से मार्क्स के 'कैपिटल' का गुजराती मे अनुवाद कर रहा था और अब यह काम लगभग पूरा हो गया था। अनुवादक ने खुद अपनी सफाई देते हुए कहा, "मुझे कुछ तो करना ही था। अगर मै चगा होता तो मै कम्युनिस्ट पार्टी मे शामिल हो जाता या किसी ट्रेड यूनियन मे काम करता। अब मैं यहा लेटे-लेटे सिर्फ पढता रहता हू या कभी-कभार कुछ लिख लेता हू। मौजूदा समाज बिलकुल बीमार और सडा हुआ है—मेरी तरह—और उसे मरना होगा। जितनी जल्दी वह मर जाए उतना ही अच्छा है।"

इसके बाद वह धीमी कमजोर आवाज़ मे अपना अनुवाद पढने लगा और आशा उसपर अपनी नज़रे जमाए सुनती रही। बीच-बीच मे वह कही पर तारीफ मे कोई शब्द कह देती या अपनी तरफ से कोई सुझाव देती। अनवर गुंजराती नही समझ पा रहा था लेकिन इतना वह जरूर जानता था कि यह अनुवाद उन दोनो के बीच सबध स्थापित करनेवाली कोई कडी थी। एक का अनुवाद पढकर सुनाना और दूसरे का उसे सुनना बौद्धिक स्तर पर उनके प्रेम का चरम रूप था। यशवत के शरीर मे बहुत देर तक पढने की ताकत नही थी इसलिए शीघ्र ही उसके स्वर मे थकान पैदा हो गई। उसकी पलके कमजोरी की नीद से बोझल हो गईं। "आज बस करो, यशवत। बहुत अच्छा अनुवाद हुआ है। बाकी मै कल सुनूगी।" और यह कहकर आशा ने यशवत के शिथिल हाथो से गिरे हुए पन्ने उठा लिए और उन्हे सभालकर तकिये के नीचे रख दिया। फिर उसने चुपके से उसके पीछे से गद्दिया हटा दी और उसका सिर तकिये पर टिका दिया। यशवत ने आखे खोले बिना गुजराती मे कुछ कहा और आशा ने उसका माथा थपककर उससे बिदा ली। उसने अनवर को इशारा किया और दोनो दबे पाव कमरे से बाहर निकल आए।

जिस समय वे दोनों उस मोटरखाने मे से निकले उस समय सूरज डूब चुका

था और सडक की बत्तियां एक-एक करके जलती जा रही थी। आशा सहसा किसी सोच मे डूबकर बिलकुल चुप हो गई थी। सडक पर पहुचकर वह बोली, "चलो, जुहू चलते है। आज चादनी रात है।"

वे शहर के बाहर के छोटे-छोटे बगलो की कतारो के बीच मे होते हुए चुपचाप मोटर पर चले जा रहे थे। आखिरकार आशा ने कहा, "यशवत भी कमाल का आदमी है। क्यो, तुम्हारा क्या खयाल है ? उसका शरीर बीमारी की वजह से बिलकुल तबाह हो गया है लेकिन उसका दिमाग बहुत तेज है—बिलकुल हीरे की तरह साफ।"

"क्या बीमारी है उसे ?"

"टी०बी०।"

"अच्छा ? मैंने तो उसे एक बार भी खासते नही देखा।"

"नही, वैसी टी० बी० नही है। उससे भी बुरी बीमारी है। उसे रीढ की हड्डी की टी० बी० है। कोई इलाज ही नही है इसका।"

"डाक्टर क्या कहते है ?"

"कहते हैं कुछ महीने और चल जाएगा, लेकिन जब तक यह अनुवाद पूरा नही होता तब तक वह मरनेवाला नही। उसीके सहारे वह जिन्दा है। ..."

"और तुम ! तुम यह तो जानती ही हो कि वह तुम्हे बेहद प्यार करता है।"

आशा ने उदास होकर सिर हिला दिया।

"और तुम ? क्या तुम भी उसे प्यार करती हो ?"

आशा चुपचाप मोटर चलाती रही। थोडी देर बाद उसने जवाब दिया, "मै हमेशा से उसकी बुद्धि और ईमानदारी की वजह से उसकी इज्जत करती रही हू। वह हमारे कालेज मे सबसे तेज़ लडका था। वह अपने विचारो का बहुत पक्का था। उसने अपना घरबार इसलिए छोड दिया कि उसके घरवाले बहुत बडा दहेज लेकर उसका ब्याह करना चाहते थे। कुछ दिन तक वह एक स्कूल मे पढाता रहा और वही उसे यह भयानक रोग लग गया। पिछले साल-भर से तो वह चारपाई से ही लगा है।"

"तुमने मेरे सवाल का जवाब नही दिया।"

"तुम्हारे सवाल का जवाब देना मुश्किल है। मै उसे सराहती हू और मुझे

उसकी हालत देखकर दुःख होता है। क्या ये दोनो चीजे मिलकर मुहब्बत बन जाती है? नही, मेरा खयाल है मुहब्बत के लिए किसी और चीज की भी जरूरत होती है। और फिर जिस आदमी की कोई जरूरत से ज्यादा इज्जत करता हो उसे वह प्यार नही कर सकता। आदमी अपने बराबरवाले से प्यार कर सकता है। मेरे ऊपर तो हमेशा उसकी विद्वत्ता का रोब रहा है।"

"लेकिन वह तो समझता है कि तुम उसे प्यार करती हो। तुम्हे यह बात मालूम है ना?"

"हा, मै जानती हू और अगर इससे उसकी उम्मीद बधती है और उसमे ज़िन्दा रहने की ताकत आती है तो मैं इसमे कोई बुराई भी नही समझती।"

आशा ने मोटर नारियल के पेडो के एक झुरमुट मे खडी कर दी और दोनो चादनी मे एक रेत के टीले पर बैठ गए। समुद्र मे ज्वार आ रहा था और लहरो मे पिघली हुई चादी की चमक थी। अनवर को इस शान्त वातावरण मे पीडा का आभास हुआ। शायद इसकी वजह यह रही हो कि वह अभी यशवत से मिलकर आया था और उसके दयनीय आशाहीन प्रेम पर उसे दुःख हो रहा था। लेकिन अनवर के हृदय मे भी निराशा व्याप्त थी, वह सलमा के लिए बेचैन था। उसने सोचा था कि आशा का साथ पाकर वह उसे भूल जाएगा, पर न जाने क्यो इसका असर बिल्कुल उलटा ही हुआ था। आशा जो कुछ भी करती थी या कहती थी उससे अनवर के दिल मे सलमा की याद ताज़ा हो जाती थी।

आशा ने उससे कहा, "अनवर, मुझे अपने बारे मे, अपने घरवालो और दोस्तो के बारे मे, अपने बचपन और कालेज के दिनो के बारे मे बताओ। तुम अपनी जिन्दगी मे क्या करना चाहते हो?"

अनवर ने उसे बताना शुरू किया और एक-एक करके उसके जीवन की सारी घटनाए उसकी आखो के सामने घूम गईं—अजुम के साथ बचपन के हसी-खुशी के दिन, अमृतसर की भयानक घटना की गहरी छाप, अजुम की मृत्यु और ईश्वर पर से उसका विश्वास उठ जाना, साम्प्रदायिक दगे और गाधीजी से उसकी मुलाकात, यूनिवर्सिटी का जीवन और अंत मे वहा से निकाला जाना। उसने आशा को अपने अब्बा के बारे मे, रतन के बारे मे, उस्मान के बारे मे, और सुभानोव्स्की के बारे मे बताया—आशा यह नाम सुनकर मुस्करा दी।

और आखिर मे उसने यह भी बताया कि वह खुद भी नही जानता कि वह जिन्दगी मे क्या करना चाहता है। शायद वह पत्रकार बनना चाहता था लेकिन उसे अपने-आपपर और अपनी योग्यता पर इतना विश्वास नही था कि वह कुछ भी कर सके।

"अनवर," आशा के स्वर मे इतनी कोमलता थी कि अनवर को ऐसा लगा जैसे कोई अपने कोमल हाथो से बडे प्यार से उसे सहला रहा हो, "तुम्हारे अन्दर इतनी हिम्मत और इतनी योग्यता है कि तुम अपने देश के लिए बहुत कुछ कर सकते हो। यह और बात है कि तुम अभी यह न बता सको कि तुम क्या कर सकते हो। इसलिए तुम मुझसे वादा करो कि तुम अपने-आपपर भरोसा रखना नही छोडोगे।"

अनवर ने सिर ऊपर उठाकर देखा और उसकी नजरे आशा की नजरो से चार हुई। वह रेत के कोमल शीतल तकिये मे अपनी कुहनिया टिकाए बैठी थी और हवा ने उसके बाल बिखेर दिए थे। चादनी और समुद्र की लहरे और नारियल के पेडो के जालीदार साये—ये सब उस क्षण आशा के व्यक्तित्व मे सिमट आए थे। वह बहुत अच्छी लग रही थी, अनवर बरबस उसकी ओर खिचा जा रहा था। उसका जी चाह रहा था कि वह उसकी गरदन को, उसके गालो पर पडनेवाले गढो को, उसकी लजाई हुई पलको को चूम ले। लेकिन उसकी नजरो के सामने आशा नही थी, वह आशा को नही चूमना चाहता था, बल्कि वह सलमा थी—सलमा जैसीकि वह थी, और सलमा जैसीकि वह उसे बनाना चाहता था। और अगर इस समय वह आशा को चूम लेता तो यह उसके लिए अपने-आपको धोखा देना होता। वह आशा की इतनी ज्यादा इज्जत करता था कि वह उसे सलमा की जगह नही रख सकता था।...

इसलिए उसने हाथ मे कुछ रेत उठा ली और उगलियो के बीच से उसे गिराने लगा। उसके हाथो को रेत ठडी लग रही थी और इस प्रकार उसे अपने उद्विग्न मन को शान्त करने मे बहुत मदद मिली। थोडी देर बाद उसने कहा, "आशा, जानती हो, यशवत मुझसे पूछ रहा था कि क्या मैं तुमसे प्यार करता हू।"

"फिर तुमने क्या कहा ?" आशा ने बिना किसी संकोच के उससे पलटकर पूछा।

"मैंने कहा···मैंने कहा····," वह आशा को वह बात नही बताना चाहता था जो उसने कही थी बल्कि जो उसे कहनी चाहिए थी । "मैंने कहा कि तुम इतनी अच्छी हो कि मै तुम्हारे लायक नही, कि मैं तुम्हारी इतनी इज्जत करता हूं कि तुम्हे प्यार नही कर सकता । इसके अलावा मुझे एक दूसरी लडकी से मुहब्बत है जो तुमसे आधी भी अच्छी या समझदार नही है । मेरा तो खयाल है कि वह मुझसे प्यार भी नही करती । लेकिन फिर भी मै उसे प्यार करता हू—क्या इसमे कोई अजीब बात या बुराई है ?"

"नही, मैं तो नही समझती । इसान का दिल इतना पेचीदा है कि वह किसी कानून का पाबन्द नही हो सकता ।" उसके होठो से एक हलकी-सी आह निकलकर समुद्र की लहरो और नारियल के पत्तो मे से होकर बहती हुई हवा के शार मे खो ़ । थोडी देर बाद वह उठी और बोली, "चलो चले, बहुत देर हो गई ।"

गाधीजी की गिरफ्तारी की खबर सारे देश मे आग की तरह फैल गई और जगह-जगह विद्रोह होने लगे । लोगो ने अपना गुस्सा ज़ाहिर करने के लिए हडताले की, जुलूस निकाले, नमक सत्याग्रह ने फिर जोर पकडा, विदेशी कपडे का बायकाट शुरू हुआ और सडको पर विलायती कपडे की होलिया जलाई जाने लगी, शराब की दुकानो पर धरने दिए गए । गिरफ्तारिया हुई, लाठिया और गोलिया चली ।

जब अनवर दूसरे दिन सुबह राबर्ट से मिला तो वह बूढा अमरीकी पत्रकार क्रोध से पागल हो रहा था । उससे पहले दिन शाम को उसने अपनी आखो से मैदान मे विरोध-सभा करने के लिए एकत्र सत्याग्रहियो पर एक पाशविक लाठी-चार्ज देखा था । सैकडो लोग बेहोश हो गए थे ।

"बाई गॉड, अनवर," उसने कसम खाकर कहा, "मैंने अपनी सारी जिदगी मे ऐसा भयानक दृश्य नही देखा । मैंने एक आदमी को मार खाते देखा—मुश्किल से बीस बरस का लडका रहा होगा । वह बार-बार चोट खाकर गिरता था, उसका चेहरा खून से लथपथ था, लेकिन वह हर बार उठ खडा होता था और कहता था 'और मारो !' यहा तक कि अग्रेज़ पुलिस सार्जेंट भी, जो उसे

पीट रहा था, लज्जित हो गया और उसने अपना डडा फेंक दिया।"

राबर्ट ने अपनी रिपोर्ट मे इस लडके की पिटाई का ज़िक्र किया था। उसने हमेशा से ज्यादा कठोर शब्दो का प्रयोग किया था और इसीलिए स्थानीय सेसर ने उसकी रिपोर्ट रोक ली थी। इसपर बूढे को गुस्सा आ गया था और वह सबको टेलीफोन करके धमकी दे रहा था कि अगर उसकी रिपोर्ट रोकी गई तो इगलैड और अमरीका के कूटनीतिक सम्बन्ध टूट जाएगे। अनवर ने उससे पूछा कि उसे यह कैसे मालूम हुआ कि उसका तार रोक लिया गया है। राबर्ट ने उसे बताया कि बहुत सवेरे उसे एक गुमनाम पर्ची मिली थी जिसपर लिखा था, 'आपकी रिपोर्ट सेसर ने रोक ली है। होम सेक्रेटरी से बात कर लीजिए।' जब उसने होम सेक्रेटरी को टेलीफोन किया तो साम्राज्य का भार अपने कंधो पर संभालनेवाले उस सूरमा ने न सिर्फ यह स्वीकार किया कि उसका तार रोक लिया गया है बल्कि राबर्ट से यह कहने की धृष्टता भी की कि उसकी रिपोर्ट मे सचाई को तोड-मरोड़कर और बहुत बढा-चढाकर पेश किया गया था।

"उसकी यह मजाल कि मुझसे यह कहे," बूढे ने गरजकर कहा, "मुझसे —राबर्ट मिल्स से—मैं जोकि पाच महाद्वीपो मे खबरो को सच-सच, बल्कि कुछ कम करके ही बयान करने के लिए मशहूर हू।"

अनवर को उस बिफरे हुए अमरीकी पत्रकार का क्रोध शात करने में काफी समय लगा और इस बीच मे उसे कई गिलास ठडा शरबत भी पिलाना पडा। थोडी देर बाद अनवर ने उससे कहा, 'राबर्ट, तुम उसे डाक से क्यो नही भेज देते? अगर हवाई जहाज़ से डाक भेजने का इतज़ाम होता तो कितना अच्छा होता!..."

"मेरी समझ मे आ गया," सहसा राबर्ट उछल पडा। "बस, अब कुछ न कहना। तुमने मुझे ऐसी तरकीब सुझा दी है कि मैं इन अन्धे साहब लोगों के दिमाग ठिकाने लगा दूगा। ज़रा मुझे टेलीफोन तो देना।"

उसने फिर होम सेक्रेटरी का नम्बर मिलाया। "मैं फिर राबर्ट मिल्स बोल रहा हू। बस!...जी हा, अपनी उसी रिपोर्ट के बारे मे जिसे सेसर ने रोक लिया है।...जी हा।...लेकिन अगर मैं एक प्राइवेट हवाई जहाज़ चार्टर करके ईरान चला जाऊ और वहा से अपना तार भेजू तो आपको कोई

एतराज तो न होगा, और उसके बाद में यह भी जोड दू कि हिन्दुस्तान मे उसे सेसर ने रोक लिया था।' "जी नही, मै मजाक नही कर रहा हू। दरअसल मै एयरोड्रोम ही जा रहा था लेकिन मैने सोचा कि आपको बता दू, शायद आपने अपना इरादा बदल दिया हो।" क्या कहा ?" रिपोर्ट ?"'जी हा, मैं अपनी इज्जत की कसम खाकर कह सकता हू कि उसका एक-एक लफ्ज सच है और मैने जो कुछ अपनी आख से देखा है वही लिखा है। अगर आप सच पूछें तो मैने सचाई को कुछ घटाकर ही पेश किया है।" तो आप उसे जाने देंगे।" आपका बहुत-बहुत शुक्रिया।"

तार भेज दिया जाएगा। लेकिन इसके बाद होम सेक्रेटरी बहुत देर तक टेलीफोन पर कुछ कहता रहा, जिसे सुनकर राबर्ट के चेहरे पर चिंता के बादल छा गए।

दूसरे दिन अनवर को अपने अब्बा का एक खत मिला जिसमे उन्होने लिखा था कि उसकी चचेरी बहिन बिलकीस की शादी सलामपुर के नवाब साहब के बेटे के साथ हो गई थी और चूकि अनवर छोटे नवाब की ऐयाशी से भली भाति परिचित था इसलिए उसे यह खबर सुनकर कोई खुशी नही हुई। वह सोचने लगा, बेचारी बिलकीस सोने के पिंजरे मे बद हो गई। पेशावर से यूनुस का खत आया था जिसमे उसने खान अब्दुलगफ्फारखा के बारे मे लिखा था, जिनका नाम पठानो ने प्यार से 'बादशाह खा' रख छोडा था। उसने लिखा था, 'बादशाह खा ने हम पठानो मे एक नई हिम्मत फूक दी है—यह हिम्मत कि हम अपनी जान दे दे लेकिन न तो दुश्मन को पलटकर मारे न उससे डरे। काश तुम देख पाते कि उन्होने पठानो को कितना बदल दिया है!' बेजवाडा जेल से सुदरम का खत आया था। उसने लिखा था कि उसे सरकार के खिलाफ लोगो को भडकाने के जुर्म मे दो साल की सजा हो गई थी।

उसने दूसरा खत उठाया और जब उसने उसपर लिखाई देखी तो उसका दिल बल्लियो उछलने लगा। सलमा का खत था जो दिल्ली के पते पर गया था और उसके अब्बा ने उसे बम्बई भेज दिया था। आखिरकार उसने खत लिखा। उसने इस बात की माफी मागी होगी कि वह उसे ठीक से पहचान न सकी,

और शायद उसने फिर अपनी मुहब्बत का यकीन दिलाया होगा। लिफाफा खोलते वक्त अनवर के हाथ काप रहे थे।••

"अनवर!" राबर्ट ने मोटे कागज के लैटरहेड पर छपे हुए खत पर से नजर उठाकर उसे सम्बोधित करते हुए कहा, "सारे मुल्क का चक्कर लगाने के बारे मे तुम्हारा क्या खयाल है? मेरे अखबारवालो ने लिखा है कि मै तुम्हारी इस अनोखी लडाई के हर मोर्चे पर जाकर वहा की खबरे भेजू।"

अनवर ने कोई जवाब नही दिया। शायद उसने राबर्ट की बात सुनी ही नही। वह आखे फाडे अपने हाथ के खत को देख रहा था। वह खत नही था। खूबसूरत कागज पर सुनहरे अक्षरो मे छपा हुआ निमत्रण-पत्र था। प्रोफेसर मुहम्मद सलीम ने उसे डिप्टी-सुपरिटेडेट आफ पुलिस मि० मजूरआलम के साथ अपनी बेटी सलमा की शादी के मुबारक मौके पर १० मई, १९३१ को अपनी कोठी सलीम मजिल, मैरिस रोड, अलीगढ पर दावत मे आने का न्योता दिया था।



मृगतृष्णा

. अनवर कई महीनो के लिए दौरे पर जानेवाला था इसलिए वह माजी और मोहन से मिलने गया, लेकिन वे दोनो कही बाहर गए हुए थे, शायद काग्रेस के किसी काम से गए होगे। निराश होकर वह वहा से वापस आ रहा था कि इतने मे एक नौकर ने आकर उससे कहा कि सेठजी उससे मिलना चाहते है। अनवर को ताज्जुब हुआ। सेठ मानिकलाल ने उसमे पहली बार दिलचस्पी दिखाई थी। आखिर वे उससे क्या बाते करना चाहते थे ? वह डर रहा था कि सेठजी उसपर अपना रोब झाडेगे और उससे इस तरह से बाते करेगे जैसे वह उनके सामने बहुत ही घटिया आदमी हो। अनवर को उनके बात करने के इस ढग से बडी झुझलाहट होती थी। पर जाने से इकार करना भी तो बहुत बदतमीजी होती। आखिर वह उनके घर मे हफ्ते-भर तक मेहमान रह चुका था और उनका 'नमक खा चुका था', फिर उसे यह जानने की भी उत्सुकता थी कि उसे क्यो बुलाया गया है। उन्होने केवल शिष्टाचार के नाते उसे बुला लिया था या उन्हे उससे कोई जरूरी बात कहनी थी ?

वह उस कमरे मे गया जो उनका 'पढने का कमरा' कहलाता था, हालाकि वहा जो बहुत-सी किताबे रखी हुई थी वे सिर्फ सजावट के लिए मंगाई गई थीं और शायद ही कभी अलमारी मे से निकाली जाती थी। सेठजी तो खैर कभी कोई किताब छूते ही नही थे क्योकि उनकी साहित्यिक रुचि 'टाइम्स आफ इंडिया' के वाणिज्य तथा व्यापारवाले पृष्ठ तक सीमित थी। सेठ मानिकलाल ने, जो बढिया चीनी सिल्क का कुरता और मलमल की धोती पहने थे और जिनकी हीरे की तीन अगूठिया और सोने के दो दात चमक रहे थे कुर्सी से उठकर बडे तपाक से अनवर का स्वागत किया। पहले तो उन्होने अनवर से उसके स्वास्थ्य के बारे मे पूछा और फिर यह पूछा कि वह 'मानिक मैंशन' छोडकर लाज मे क्यो रहने लगा था ; वहा तो उसका पैसा बेकार ही खर्च होता

होगा। अनवर ने उन्हे बताया कि मि० मिल्स को, जिनके साथ वह काम करता था, वहा हर वक्त उसकी ज़रूरत रहती थी और रही खर्च की बात सो वह तो अमरीकन न्यूज़ एजेसी देती थी। इस बात का सेठजी पर काफी रोब पडा। करोडपति सेठजी की नज़रो मे अनवर की इज़्ज़त बढ गई क्योकि वे हर आदमी को पैसो की दृष्टि से आकते थे।

"मेरा खयाल है कि इस अमरीकन जर्नलिस्ट के साथ काम करने दौरान मे तुम बहुत-से काग्रेसी लोगो से भी मिलते होगे। मैने सुना है कि तुम गाधी से, मेरा मतलब है महात्माजी से मिल चुके हो और उनसे बाते कर चुके हो।"

अनवर ने स्वीकार किया कि उसे यह सौभाग्य प्राप्त तो हो चुका था।

"और तुम्हे बहुत-सी ऐसी राजनीतिक बातो का भी पता होगा जिनकी खबर भी हमे नही होती ?"

इसपर उस आधे पत्रकार ने (अनवर अपने-आपको अब आधा पत्रकार कहने लगा था) जवाब दिया कि जो कुछ वे देखते या सुनते थे वह सब अखबारो मे भी छप जाता था।

सेठजी ने सोचा कि अनवर विनम्रता के कारण ही ऐसा कह रहा है और उन्होने एक बार फिर जोर देकर कहा कि पत्रकारो को हमेशा उससे ज्यादा बाते मालूम होती है जितनी कि वे अखबारो मे छापते है। "बात यह है," उन्होने अपना आशय समझाते हुए कहा, "मै काग्रेस के बारे मे और इस आदोलन के बारे मे जानना चाहता था, जोकि—मेरा मतलब है—महात्माजी ने शुरू कर रखा है।"

अनवर सोचने लगा कि कही ऐसा तो नही है कि सेठजी मे हृदय-परिवर्तन हो रहा हो और वे देशभक्त बनते जा रहे हो। उसने कहा, "आपके अपने घर मे तीन पक्के काग्रेसी है जो शायद आपको इन बातो के बारे मे मुझसे ज्यादा बता सकते है।"

"अरे, उनकी बात छोडो !" सेठजी ने बडे तिरस्कार से कहा, "मेरी बीवी तो हर बात को धार्मिक काम समझकर करती है और इसलिए वह गाधीजी को देवता की तरह पूजती है। आशा बिलकुल बच्ची है और उसे राजनीति का कुछ भी पता नही है हालाकि वह जेल भी चली गई है। और मोहन—मोहन के लिए यह सब एक तमाशा है, एक नया फैशन है।" हालाकि सेठजी ने अपने परिवार

के सभी सदस्यो के बारे मे बहुत सख्त बाते कही थी लेकिन उनकी राजनीति के बारे मे उन्होने काफी सोच-समझकर अपनी राय कायम की थी।

"आप क्या बात जानना चाहते है ?" अनवर ने आखिरकार पूछा।

"पहली बात तो यह कि तुम्हारी राय मे क्या यह आदोलन चलेगा या राजनीतिक आतिशबाजो की तरह कुछ दिन बाद ठडा पड जाएगा ? या यो समझ लो, मैं यह जानना चाहता हू कि क्या काग्रेस के पीछे इतनी ताकत है कि वह सरकार पर काफी दिन तक दबाव डाल सके ? 'टाइम्स आफ इडिया' का तो कहना है कि काग्रेस के साथ सिर्फ कुछ मिट्टी-भर सिरफिरे लोग, कुछ ऐसे लोग जिनके पास राजनीति के अलावा और कोई काम ही नही है और कुछ गैरजिम्मेदार नौजवान ही है।"

अनवर ने उन्हे बताया कि 'टाइम्स आफ इडिया' जैसे अखबार से, जिसके मालिक अग्रेज़ है और जो सरकार का पिट्ठू है, यह उम्मीद ही करना बेकार है कि वह कभी भी इस बात को मानेगा कि ज्यादातर लोग काग्रेस के साथ है—लेकिन यह हकीकत है। चूकि अनवर जानता था कि सेठ मानिकलाल जैसे लोग विदेशी लोगो की राय को कितना महत्त्व देते है इसलिए उसने कहा, "और यह सिर्फ मेरी या मिस्टर मिल्स की ही राय नही है बल्कि इस वक्त हिन्दुस्तान मे विदेशी अखबारो के जितने कारेस्पाडेट है—क्या अग्रेज़ क्या अमरीकन—उनमे से लगभग सभी की यह राय है।"

"अच्छा !" सेठजी को सचमुच आश्चर्य हुआ और साथ ही उनपर इस बात का रोब भी पडा।

"उनमे से एक अग्रेज कारेस्पाडेट ने तो, जो कई महीने से हिन्दुस्तान मे है, अपने अखबार मे यहां तक लिखा है कि 'जेल मे बद महात्मा गाधी अब भारत की आत्मा का साकार रूप है' और एक दूसरे कारेस्पाडेट ने अमरीकी अखबारो मे लिखा है कि आज हिन्दुस्तान मे सरकार के मुकाबिले मे काग्रेस की बात ज्यादा मानी जाती है।"

यह बात सुनकर तो 'टाइम्स आफ इडिया' पढनेवाले सेठजी का रहा-सहा संदेह भी दूर हो गया। उन्होने अपने कागजो मे से एक छपा हुआ फार्म निकालकर पूछा, "तो फिर तुम्हारी क्या राय है, मैं इस करारनामे पर दस्तखत कर दूं ?"

अनवर ने फार्म लेकर देखा। उसने उस फार्म के बारे मे सुन तो रखा था पर उसे देखने का मौका पहली बार मिला था। यह एक ऐलान था जिसपर काग्रेस हिन्दुस्तानी कपडा मिलो के मालिको से दस्तखत कराना चाहती थी। यह ऐलान इन शब्दो से शुरू होता था कि 'हमे जनता की राष्ट्रीय आकाक्षाओ से पूरी हमदर्दी है।' इस घोषणा का मुख्य उद्देश्य तो यह था कि इस बात का पक्का प्रबध कर लिया जाए कि मिले पूरी तरह हिन्दुस्तानी कारोबारो की शक्ल मे चलाई जाएगी, उनमे सिर्फ हिन्दुस्तानियो को नौकर रखा जाएगा और वे सिर्फ हिन्दुस्तानी बीमा कम्पनियो, हिन्दुस्तानी जहाजो की कम्पनियो के साथ व्यवहार रखेगी, लेकिन साथ ही उसमे एक धारा यह भी थी जिसमे मिल-मालिको से यह घोषणा करने को कहा गया था कि वे स्वदेशी के प्रचार मे सहायता देगे, जिसके लिए सबसे पहले तो मिल के बने हुए कपडे और खादी की आपस की होड को खत्म करेगे और दूसरे कपडे की कीमते बढाकर या उसकी क्वालिटी गिराकर इस आदोलन से पैदा होनेवाली परिस्थिति का लाभ स्वय अपने हित मे नही उठाएगे।

"बोलो, तुम्हारा क्या खयाल है? क्या हम अपने मौत के परवाने पर खुद दस्तखत कर दे?"

"मेरे खयाल मे तो आपके पास इसके अलावा और कोई चारा ही नही है। जिन मिलो के मालिक इसपर दस्तखत नही करेगे उनकी लिस्ट तयार की जा रही है और विदेशी कपडे की तरह ही उनके माल का भी बायकाट कर दिया जाएगा।"

"मै जानता हू। इसीलिए ज्यादातर लोगो ने दस्तखत कर दिए हैं। मैं सिर्फ यह सोच रहा था कि क्या इस तरह अपने-आपको किसी राजनीतिक पार्टी के हाथो बेच देना मुनासिब होगा।"

अनवर ने चिंतित सेठजी को ढाढस देने के लिए कहा, "कुल मिलाकर देखा जाए तो मेरी राय मे तो आपको इसपर दस्तखत कर देने से कोई नुकसान नही होगा। बहरहाल, गाधीजी कुछ भी कहे पर हाथ के बुने हुए कपडे से तो मुल्क की आधी जरूरत भी पूरी नही होगी। और जब बायकाट होगा तो हिन्दुस्तानी मिलो का कारोबार चमक उठेगा। रहा किसी पार्टी के हाथ अपने-आपको बेच देने का सवाल, तो मेरे कुछ कम्युनिस्ट साथियो का तो यह खयाल है कि मिल-

मालिक कांग्रेस को खरीदे ले रहे है। आपके लिए यह सौदा बुरा नही रहेगा।"

"देखना यह है कि कांग्रेस कितने दिन तक इस तरह अपना आंदोलन चला सकती है," सेठ मानिकलाल ने आह भरकर सदेह के साथ कहा। "काश मुझे किसी तरह यह यकीन हो जाता कि यह घोडा जीतेगा।"

"आप मेरी बात मानिए, इसी घोडे पर दाव लगाइए। आज की सबसे अच्छी 'बैट' यही है।" अनवर ने भी बम्बई आने के बाद से घुडदौड के कुछ शब्द सीख लिए थे। "अच्छा, अब मैं चलूगा। माजी से मेरा सलाम कहिएगा।"

अपनी बीवी के जिक्र से मानिकलाल सेठ कुछ खुश नही हुए और उन्होने कुछ उदास होकर अस्फुट स्वर मे कहा, "अच्छा, कह दूगा—जब मुलाकात होगी।" अनवर जानता था कि माजी से उनकी मुलाकात तो अब अगले दिन सुबह ही होगी।

दोपहर को जब अनवर ताज पहुचा उस समय खाने का वक्त हो चुका था और राबर्ट डाइनिग रूम मे जा चुका था। अनवर ने देखा कि वह वहा सुनहरे बालोवाले किसी अजनबी के साथ खाना खा रहा है जिसके माथे की चौडाई देखकर ऐसा लगता था कि वह बहुत विद्वान है, उसकी दाढी के बाल कुछ-कुछ लाल थे। अनवर उसे कोई प्रोफसर समझ रहा था, लेकिन परिचय होने पर मालूम हुआ कि वह 'डेली हेराल्ड' का विशेष सवाददाता जार्ज स्लोकोब था। राबर्ट और स्लोकोब पुराने मित्र थे और वे दुनिया के कई ऐतिहासिक घटना-स्थलो पर साथ रह चुके थे और इस समय वे पेरिस के शाति-सम्मेलन, लेनिन, त्रात्स्की, लायड जार्ज और ब्रायां के बारे मे अपने पुराने सस्मरण दुहरा रहे थे। अनवर जानता था कि स्लोकोब का अखबार एक तरह से लेबर पार्टी का सरकारी अखबार माना जाता था। एक जमाने मे यही लेबर पार्टी भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की आकांक्षाओ के प्रति गहरी सहानुभूति रखती थी। लेकिन जब से कुछ वोटो के बहुमत से उसने अपनी सरकार बना ली थी तब से उसने भी भारत और उपनिवेशो की तरफ वही पुरानी टोरी नीति अपना ली थी। भारत के राष्ट्रवादी अखबार उन 'विश्वासघातक' लेबर पार्टीवालो की कडी आलोचना करते थे, जो एक जमाने मे समाजवाद और सभी राष्ट्रो की

बराबरी का दम भरते थे लेकिन अब उसी पुराने साम्राज्यवाद के रास्ते पर चल रहे थे। कांग्रेस के एक दैनिक पत्र ने अ.ने सम्पादकीय लेख मे लिखा था, "भारत को स्वतन्त्रता देने से इकार करके लेबर पार्टी ने यह साबित कर दिया है कि वे अग्रेज भी, जो समाजवादी होने का दावा करते है, दिल मे साम्राज्यवादी है।"

अनवर भी जला बैठा था। उसका बहुत जी चाहता था कि अब जबकि उसकी मेज पर ब्रिटेन के शासक दल का एक प्रतिनिधि बैठा था वह अपने विचार खुलकर उसके सामने व्यक्त करे। लेकिन स्लोकोब बहुत दुनिया देखे हुए था और उसके विचार बधनो मे जकडे हुए नही थे। उसका रवैया भी साम्राज्यवादियो जैसा नही था। वह अपनी भारत की विचित्र यात्रा का वर्णन जिस रोचक ढग से कर रहा था, उसे राजनीतिक बहस की दिशा मे मोडना बहुत मुश्किल था। वह उन्हे बता रहा था कि कुछ ही घटो के नोटिस पर वह पेरिस से, जहां वह सवाददाता के रूप मे नियुक्त था, भागकर लदन पहुचा था और वहा से डाक ले जानेवाले हवाई जहाज पर सवार हुआ था। जहाज एक भयकर तूफान मे फस गया था इसलिए उन्हे रात जर्मनी मे नूरेमबर्ग मे बितानी पडी थी। उसने लगे हाथो यह भी बताया कि 'दूसरे दिन नाश्ते के वक्त हम वियना पहुचे, दोपहर के खाने के वक्त बूदापेस्त और रात के खाने पर बेलग्रेड।' हवाई जहाज पर यूनान से होता हुआ वह काहिरा पहुचा था और वहा से मोटर पर पोर्ट सईद जाकर उसने हिन्दुस्तान जानेवाला पानी का जहाज पकडा था। इस मझे हुए सवाददाता ने जिस आसानी के साथ इन तमाम अनोखी जगहो के नाम गिनाए थे उससे अनवर बहुत रोमाचित हुआ था, क्योकि मन ही मन वह भी इसी प्रकार के घटनामय जीवन के लिए लालायित रहता था।

इतने मे कॉफी आई और कॉफी पीते हुए स्लोकोब उन्हे बताने लगा कि उसे इस बात का तो पूरा यकीन था कि भारत के करोडो लोग गाधीजी के इशारे पर चलते थे लेकिन—यह कहकर उसने कॉफी का एक घूट लिया—वह फिर भी उनसे कुछ सवाल पूछना चाहेगा।

उसने पूछा, "क्या गाधीजी ने इस संभावना को बिलकुल ठुकरा दिया है कि पूर्ण स्वराज्य के उस आदर्श के बजाय, जो केवल एक दूर की कल्पना है, भारत को काफी हद तक आत्मशासन का अधिकार दे दिया जाए? साराश

यह कि वे किस कीमत पर असहयोग आदोलन वापस ले सकते है ? सत्याग्रह-आदोलन वापस लेने के लिए और आगामी शरद्ऋतु मे लदन मे होनेवाले गोलमेज सम्मेलन मे अपना सहयोग देने के लिए वे क्या शर्ते रखना चाहते हैं ?"

स्लोकोब के इस सकेत पर कि गाधीजी काग्रेस की आजादी की बुनियादी मांग से कम पर भी समझौता करने को राजी हो सकते है अनवर को कुछ गुस्सा आ गया और उसने झुझलाकर कहा, "गाधीजी ने और काग्रेस ने भारत की जनता की ओर से अपनी मागे रख दी है। अब ब्रिटिश सरकार को, बल्कि ब्रिटिश जनता को, हमारी मागो का जवाब देना है, अगर उनके पास पुलिस के डडो के अलावा कोई दूसरा जवाब हो।"

स्लोकोब ने अनवर की इस झुझलाहट का बुरा नही माना। उसने कहा कि उसने पुलिस को डडे बरसाते देखा था और एक अग्रेज होने के नाते वह इस-पर बहुत लज्जित था। इसीलिए ब्रिटेन मे बहुत-से लोग चाहते है कि वर्तमान परिस्थिति समाप्त हो और इसीलिए वह अपने सवालो के जवाब जानना चाहता है।

"उनके जवाब तो गाधीजी ही दे सकते है और वे जेल मे बन्द है और मुझे यकीन है कि सरकार आपको उनसे ये सवाल पूछने का मौका नही देगी।"

इस बात का स्लोकोब ने जो रहस्यमय उत्तर दिया उसपर दोपहर के खाने के समय का यह वार्तालाप समाप्त हो गया। उसने कहा, "मुझे इस बात का इतना यकीन नही है।"

कुछ दिन बाद राबर्ट ने कहा, "अनवर, हम लोग अभी अपना सारे देश का दौरा कुछ दिनो के लिए टाल दे। जल्द ही समझौते की बातचीत शुरू होगी और इस सिलसिले मे कुछ कदम उठाए जाएगे। ऐसी हालत मे हमारे लिए बम्बई मे ही रहना बेहतर होगा, अपना जार्ज जेल मे गाधीजी से इटरव्यू करने जा रहा है।"

"राबर्ट, यह हो ही नही सकता।" अनवर इस बात पर यकीन कर ही नही सकता था कि सरकार एक ऐसे कैदी को जिसपर राजद्रोह का अभियोग लगाया

गया था, जेल मे ऐसा इटरव्यू देने की इजाजत देगी जो अखबारो मे छापा जाए।

"अनवर किसी बात का इतना ज्यादा यकीन न रखो। औरतो की तरह सरकारो का मत भी जरा-सी देर मे बदल जाता है। सच तो यह कि स्लोकोव को इजाजत मिल गई है और वह पूना चला भी गया है।"

"अगर मि० स्लोकोब गाधीजी से जेल में मिल सकते है तो आप भी इटरव्यू के लिए अर्जी क्यो नही देते ? एक अग्रेज के मुकाबले मे गाधीजी एक अमरीकन पत्रकार से ज्यादा खुलकर अपनी बात कह सकेगे।"

"इसी वजह से तो शायद सरकार मेरी अर्ज़ी को इतनी आसानी से मजूर न करे। मुझे तो यह यकीन नही है कि स्लोकोब सिर्फ एक पत्रकार की हैसियत से उनसे मिलने गया है—इसमे शायद कोई राजनीतिक चाल भी है। उसका संबध एक ऐसे अखबार से है जो ब्रिटेन के शासक दल का सरकारी अखबार है और अगर वह अपनी मर्जी से भी आया है तब भी यह मुमकिन है कि बम्बई की सरकार उसे ब्रिटिश सरकार का ही दूत या प्रतिनिधि समझेगी।"

"मुझे यह बात कुछ अच्छी नही लगी," अनवर ने स्वीकार किया, "वह शायद गाधीजी को इस बात के लिए राज़ी करने की कोशिश करेगा कि वे अपनी आज़ादी की माग को कुछ कम कर दे और डोमिनियन स्टेटस या इसी किस्म की किसी चीज़ के लिए राज़ी हो जाए।"

"वह इस बात की कोशिश तो कर सकता है," राबर्ट ने अपनी सहमति प्रकट की, "लेकिन यह क्या ज़रूरी है कि गाधीजी उसकी बात मान ही ले ?"

"कह नही सकता। गाधीजी बहुत सीधे आदमी है, राजनीति के ये दाव-पेच उनके बस के नही है और अग्रेज़ बहुत चालाक है।"

"अभी से हिम्मत हारने की कोई ज़रूरत नही है," राबर्ट ने सलाह दी, "देखे आगे क्या होता है।"

अगले दिन स्लोकोब पूना से वापस आ गया और चूकि अखबारो मे गाधीजी से उसके इटरव्यू के बारे मे कुछ नही छपा इसलिए अनवर ने यह मान लिया कि वह गाधीजी को समझौते के लिए राज़ी करने मे असफल रहा था, और यह सोचकर उसके मन को शाति हुई। उसने राबर्ट से कहना शुरू किया कि अब वे अपना दौरा शुरू कर दे। वह एक और वजह से भी घूमते रहना चाहता था। सलमा की शादी की खबर से उसके दिल को बहुत धक्का पहुचा था और उसका

खयाल था कि सफर करते रहने से, नई-नई जगहे देखने और नये-नये लोगो से मिलने से शायद उसकी यह बेचैनी कुछ कम हो।

राबर्ट बम्बई से चल देने पर कुछ-कुछ राजी हो गया था। लेकिन इतने मे एक दिन एक अप्रत्याशित घटना हुई। एक दिन 'इडियन डेली मेल' नामक अखबार ने गाधीजी के साथ स्लोकोब के दूसरे इटरव्यू का विवरण छाप दिया। उससे अदाज़ा होता था कि गाधीजी ने अपनी मागे काफी कम कर दी थी, जिसका कि अनवर को डर था। स्लोकोब के अनुसार चार शर्तो पर 'गाधीजी काग्रेस को असहयोग आदोलन वापस ले लेने और गोलमेज सम्मेलन मे सहयोग देने की सलाह देने को तयार थे' और इनमे से सबसे महत्त्वपूर्ण शर्त मे केवल यह कहा गया था कि 'गोलमेज़ सम्मेलन मे जिन समस्याओ पर विचार किया जाए उनमे एक ऐसा सविधान बनाने का सवाल भी शामिल किया जाए जिसके द्वारा भारत को स्वतन्त्रता की बुनियादी बाते मिल जाए।'

"देखा, आपके दोस्त ने क्या किया!" अनवर ने राबर्ट को, जो अभी तक बिस्तर से उठा नही था, अखबार दिखाते हुए कहा। "लेकिन मेरी समझ मे नही आता कि आखिर गाधीजी इन सब बातो के लिए राजी कैसे हो गए।"

"बुड्ढे ने भी कुछ सोच-समझकर ही यह किया होगा," राबर्ट ने अनवर को तसल्ली देने की कोशिश की। "वे भी कोई नादान तो है नही। मुझे तो ऐसा लगता है कि महात्माजी अपनी विनम्रता से जीत लेने के लिए ही झुक रहे है।"

लेकिन अनवर ने अपने दिल को ढाढस बधाने का दूसरा ही तरीका निकाल लिया था। "अगर महात्माजी समझौता करने को तैयार भी है, तब भी अग्रेज़ो को अभी हमारे जवाहर से निबटना पडेगा। यह न भूलो कि वे काग्रेस के अध्यक्ष हैं। और मुझे पूरा यकीन है कि वे पूरी आजादी और अग्रेजो से बिलकुल नाता तोड लेने से कम किसी चीज़ पर राजी ही नही होगे।"

राबर्ट ने अनवर के इस भोलेपन पर मुस्कराकर सिर्फ इतना कहा, "अनवर, राजनीति में किसी बात पर इतना यकीन नही रखना चाहिए।"

मोहन ने टेलीफोन करके अनवर को कुछ बातें करने के लिए बुलाया।

अनवर ने देखा कि मोहन के दिमाग मे तरह-तरह के सन्देह थे और एक-एक करके उसके जो दूसरे दोस्त आते गए वे भी समझौते की उस योजना की कडी आलोचना कर रहे थे, जिसका उल्लेख स्लोकोब के इंटरव्यू मे किया गया था। अजीब बात तो यह थी कि बैठे-बैठे कुर्सी तोडनेवाले इन क्रातिकारियो के सामने, जिनमे से ज्यादातर बहुत रईस घरानों के बिगडे हुए लडके थे, जो कभी एक दिन भी जेल मे नही रहे थे और जिन्होने एक भी लाठी नही खाई थी, अनवर गाधीजी के खिलाफ उनके हमलो का जवाब दे रहा था। "आखिर बुड्ढा कोई नादान तो है नही," अनजाने मे ही अनवर राबर्ट की दलील दुहरा रहा था, "यह भी तो हो सकता है कि महात्माजी अपनी खाकसारी से दुश्मन को जीतने के लिए ही झुक रहे हो और यह जाहिर करके कि वे समझौते के लिए तैयार है, वे सारी दुनिया के सामने ब्रिटिश सरकार को मुजरिम ठहरा रहे हो।"

जब सब लोग चले गए तो वे घर की बाते करने लगे। आशा को छ. महीने की सजा हुई थी और उसने माजी को लिखा था कि वह अच्छी तरह थी और उत्तर भारत की एक दूसरी स्वयसेविका से हिन्दी पढना सीख रही थी। इसके बाद अनवर ने पूछा, "तुमने सबसे ज्यादा सनसनी की खबर सुनी ? पापा ने उस करारनामे पर दस्तखत कर दिए जिसपर दस्तखत करने के लिए काग्रेस सभी मिल-मालिको पर ज़ोर डाल रही है।"

अनवर ने मोहन को बताया कि उसकी इस विषय मे उसके पापा से बात हुई थी। "मैं उसी वक्त समझ गया था कि उनका दिल बदलनेवाला है।"

"दिल-विल कुछ नही बदला है," बेटे ने अपने बाप के प्रति असम्मान की भावना के साथ कहा, "यह सब कुछ माजी की वजह से हुआ है।"

"सो कैसे ?"

"तुम्हे मालूम नही ? माजी ने धमकी दी थी कि अगर उन्होने दस्तखत नही किए तो वे उनकी मिल के सामने भूख-हडताल कर देगी। जब उनके पति खुद गद्दारी कर रहे हो तो वे दूसरो की मिलो के आगे धरना कैसे दे सकती थी ?"

अनवर को इस बात का यकीन नही था कि सिर्फ अपनी बीवी की भूख-

होगी। जब मोहन ने उसे बताया कि उन्होने न सिर्फ दस्तखत कर दिए थे बल्कि वे काग्रेस के मेम्बर भी बन गए थे और उन्होने खद्दर पहनना भी शुरू कर दिया था, तो अनवर को यकीन हो गया कि सेठ मानिकलाल ने अपना स्वार्थ देखकर ही दस्तखत किए होगे, हालाकि उसने यह बात मोहन से कही नही।

अनवर ने बस इतना कहा, "मुझे यकीन है कि यह सौदा उनके लिए बुरा नही रहेगा।" जब मोहन ने उसकी इस बात का मतलब पूछा तो उसने उसे यह नही बताया कि उसका सकेत उस बातचीत की ओर था जो राजनीतिक पार्टियो को 'खरीदने' के औचित्य के बारे मे उसने सेठ मानिकलाल से की थी।

अनवर और उसके जैसे हजारो दूसरे नौजवानो को जिस समझौते का डर था वह हुआ नही, क्योकि गाधीजी ने जो प्रस्ताव रखा था उसका ब्रिटिश सरकार की ओर से कोई जवाब नही मिला। कुछ दिन तक तो लोग यह इतजार करते रहे कि देखे अब क्या होता है और जगह-जगह सत्याग्रह-आदोलन भी कुछ समय के लिए धीमा पड गया। लेकिन जब कुछ भी नही हुआ तो आदोलन फिर शुरू हो गया। धरसाना के समुद्र-तट पर, जहा से सत्याग्रही नमक बटोरते थे, एक रणक्षेत्र बन गया। वहा निहत्थे सत्याग्रहियो और सशस्त्र पुलिसवालो के बीच रोज टक्कर होती थी।

विदेशी सवाददाताओ की अब बम्बई मे कोई कमी नही थी। इन्हीके एक दल के साथ अनवर और राबर्ट धरसाना गए। मोटर का यह लम्बा और तकलीफदेह सफर बेकार नही गया, क्योकि वहा पहुचकर उनकी मुलाकात श्रीमती सरोजिनी नायडू से हुई जो राजनीतिज्ञ होने के साथ ही कवयित्री भी थी और जिनकी जिह्वा पर सरस्वती वास करती थी। सत्याग्रह के अन्य नेताओ के साथ गिरफ्तार होने के आधे घटे पहले तक वे अपनी दिलचस्प बातो से सब लोगो को हसा रही थी। इसके बाद वालटियरो पर बडी बेरहमी से लाठिया बरसाई जाने लगी। इस भयानक दृश्य को देखकर कुछ सवाददाता तो सन्नाटे मे आ गए, क्योंकि पुलिस अत्याचार के बारे मे जो बाते उन्होने अब तक सुनी

थी उनपर वे यकीन नही करते थे। उन्होने अपनी आखो से देखा कि घुडसवार गोरे अफसर सत्याग्रहियो के बीच से सरपट घोडे दौडाते हुए गुजर गए और बहुत-सी औरतो और बच्चो को उन्होने रौद डाला। अनवर ने देखा कि सवेदन-शील अमरीकी पत्रकार वैब मिलर इस दृश्य को देखकर स्तम्भित रह गया था। बाद मे बम्बई वापस पहुचकर अनवर ने मिलर को ताज के लाउज मे किसीसे कहते सुना कि वह अठारह बरस से सवाददाता का काम कर रहा था और इस सिलसिले मे दो दर्जन देशो मे हो आया था लेकिन उसने धरसाना जैसा भयानक दृश्य आज तक नही देखा था।

एक अग्रेज़ भी उसकी बात सुन रहा था। उसने बहुत चिन्तित होकर पूछा, "लेकिन ज़ाहिर है कि ये सारी बाते तुम अखबार मे लिखोगे नही।" और यह सुनकर मृदुभाषी मिलर गरज पडा, "लिखूगा क्यो नही? और मैं यहा आया किसलिए हू?"

कुछ दिन बाद पडित मोतीलाल नेहरू बम्बई आए। उन दिनो वे जेल मे बद अपने बेटे की जगह पर काग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष थे। बम्बई मे पंडित मोतीलाल का जैसा शानदार स्वागत हुआ वैसा बडे-बडे राजे-महाराजो को भी नसीब नही था। दूसरे सवाददाताओ के साथ अनवर भी मोतीलालजी से मिलने गया। उन्होने बाड स्ट्रीट के सिले हुए सूट छोडकर अब खद्दर के कपडे पहनना शुरू कर दिया था, लेकिन खद्दर के कपडो मे भी वे खानदानी रईस मालूम पडते थे। वे बहुत ही हसमुख और मस्त किस्म के आदमी थे और विदेशी सवाददाता फौरन उनसे घुल-मिल गए। गाधीजी के तपस्वियो जैसे आध्यात्मिक रवैये के मुकाबले मे उन्हे मोतीलालजी का रईसाना ठाठ ज्यादा आसानी से समझ मे आता था। इस अवसर पर वयोवृद्ध विट्ठलभाई पटेल भी मौजूद थे। हवा मे उडती हुई उनकी वह लम्बी सफेद दाढी अनवर को अभी तक याद थी। उसने उन्हे उस दिन जब भगतसिह ने बम फेका था, लेजिस्लेटिव असेम्बली के अध्यक्ष-पद पर सुशोभित देखा था। उन्हे देखकर अनवर को उस रहस्यमय क्रातिकारी की याद आ गई जिसकी आखो मे कवियो जैसी कोमलता थी, और जिसके सिर पर मौत की क्रूर छाया मडरा रही थी। उसपर षड्यत्र का जो मुकदमा इतने दिन से चल रहा था वह अब खत्म होनेवाला था और यह लगभग निश्चित था कि उसे फासी की सज़ा दी जाएगी।

इन नेताओ से मिलकर जब पत्रकार बाहर निकल रहे थे उसी समय बाहर एक मोटर आकर रुकी और रेशमी सूट पहने हुए एक व्यक्ति, जो देखने मे कोई बडा आदमी मालूम होता था, उसमे से उतरा। एक स्थानीय पत्रकार ने अनवर को बताया कि ये उदार दल के नेता एम० आर० जयकर थे जो समझौते का कोई रास्ता ढूढ रहे थे। ऐसा लगता था कि जार्ज स्लोकोब भी इस काम मे उनके साथ था क्योकि और पत्रकारो के चले जाने के बाद भी वह जयकर से कुछ बाते करता रहा और उनके साथ फिर मोतीलालजी से मिलने गया।

दो दिन बाद पता चला कि मोतीलालजी इस बात पर राजी हो गए थे कि कोई 'तीसरा आदमी' समझौते की कोशिश करे और इसी योजना के अनुसार जयकर साहब वाइसराय से मिलने शिमला जा रहे थे। अनवर को एक बार फिर ऐसा लगा कि समझौता होनेवाला है और उसे इस बात पर आश्चर्य भी हुआ। सरकार अब भी किसी किस्म का समझौता करने को तैयार नही मालूम होती थी और जिस समय बेचारे जयकर साहब शिमला का लम्बा सफर कर रहे थे उसी समय सयुक्त प्रान्त की सरकार के वारट पर मोतीलाल नेहरू गिरफ्तार कर लिए गए।

"अब कोई समझौता नही होने का," अनवर ने विजयोल्लास के साथ घोषणा की।

"तो फिर हम लोग अपना बोरिया-बिस्तर बाधे," राबर्ट ने फैसला किया। "लड़ाई लम्बी चलेगी और हमे कई मोर्चो की खबरे लानी है।"

खबर मिली थी कि गुजरात के गावो मे लगान अदा न करने का जबर्दस्त आंदोलन चल रहा था इसलिए वे पहली ट्रेन पकडकर सूरत पहुचे और एक टूटी हुई मोटर पर, जो कुछ मील चलने के बाद बार-बार ठप हो जाती थी, उन्होने देहातो का चक्कर लगाया। यहा की जमीन बहुत उपजाऊ थी, कपास, ईख और तम्बाकू की फसल के लिए मिट्टी बहुत अच्छी थी। अब तक अनवर ने सयुक्त प्रान्त के जो गाव देखे थे उनके मुकाबले मे यहा के गाव ज्यादा समृद्ध दिखाई देते थे। यहां के गावो मे बहुत-से मकान पक्के बने हुए थे। कुछ घर दुमंज़िले

भी थे। दरवाजो के चौखट नक्काशीदार लकडी के थे और दीवारो पर रग-बिरगी तस्वीरे बनी हुई थी। इनमे से ज्यादातर धार्मिक चित्र थे—कृष्ण और गोपियो के चित्र, राम और सीता के चित्र और हनुमानजी के चित्र। कुछ आधुनिक चित्र भी थे, जैसे रेलगाडी या हवाई जहाज के चित्र। एक घर की दीवार पर उन्होने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चित्र बना हुआ देखा जिसमे गाधीजी को बीच मे बैठा हुआ दिखाया गया था (उनके सिर के चारो ओर एक गोला खीचकर उनके मुख का तेज दिखाया गया था) और वे हिंदुओ, मुसलमानो, पारसियो और ईसाइयो के एक जनसमुदाय को आशीर्वाद दे रहे थे। जन-समुदाय मे कधे पर हल रखे हुए एक किसान और काले रग का एक अछूत भी दिखाया गया था। यह जनसमुदाय भारत की समस्त जनता का प्रतीक था।

यह सचमुच गाधी का देश था। वे कई बरस तक इस इलाके मे रहे थे; यहां के लोग उनकी गुजराती भाषा बोलते थे। यहा के ज्यादातर लोगो ने उन्हे देखा था और उनकी बाते सुनी थी और उनके एक शिष्य वल्लभभाई पटेल ने कई बरसो की मेहनत के बाद यहा के किसानो को सगठित किया था। खेती की पैदावार की कीमते गिर जाने की वजह से उनकी समृद्धि मे बेहद कमी आ गई थी और उनकी आर्थिक दशा बिगडती गई थी। दो वर्ष पहले बार्दोली जिले के काश्तकारो ने भारत के इतिहास मे पहली बार लगान देने से इकार किया था क्योकि उनका कहना था कि उनका लगान बहुत ज्यादा आका गया था। क्रूर दमन के बावजूद उन्होने सराहनीय एकता का परिचय दिया था और सरकार को मजबूर होकर उनका लगान कम करना पडा था।

अब पूरे गुजरात ने घृणित विदेशी सरकार को लगान देने से इकार कर दिया था। सरकार ने भी क्रुद्ध होकर बहुत अत्याचार किए थे। इन गावो मे जिन किसानो का असर था उन्हे गिरफ्तार कर लिया गया था। बाकी लोगो को पुलिस लगातार सता रही थी। उनकी जमीन-जायदाद, यहा तक कि उनके मवेशी भी, जब्त करके मिट्टी के मोल नीलाम किए जा रहे थे और इस तरह लगान वसूल किया जा रहा था। नतीजा यह हुआ कि हजारो किसान घरबार और जमीन-जायदाद छोडकर ब्रिटिश भारत की सीमा पार करके पास की बडौदा रियासत मे जाकर बसने लगे। रोज कुछ किसान अपना घरबार छोडकर यही

रास्ता अपनाते थे। कुछ गाव बिलकुल खाली हो चुके थे और उनकी सुनसान गलियो मे घूमते हुए अनवर को वैसा ही लगा जैसा फतेहपुर सीकरी देखते समय लगा था, जहा की शानदार पुरानी इमारतो का रीतापन किसीकी प्रतीक्षा करता हुआ प्रतीत होता था—ये गाव अपने काश्तकारो की प्रतीक्षा कर रहे थे कि वे न जाने किस क्षण वापस लौट आए।

वे बडौदा रियासत की सीमा तक गए और उन्होने देखा कि सीमा के उस पार ब्रिटिश भारत से आए हुए असख्य किसानो ने सूरज की तपती हुई धूप से बचने के लिए चटाई और ताड के पत्तो के बने हुए छप्परो मे शरण ले रखी है। एक बूढे किसान से, जिसके सिर पर बहुत बडी पगडी बधी थी और जिसके चेहरे पर बडी-बडी मूछे थी, अनवर ने पूछा कि वह कब तक अपने घर लौटने की आशा करता है, जिसके जवाब मे उस बूढे किसान ने तुरत बडी दृढता से उत्तर दिया, "जब हमारे महात्माजी की सरकार बन जाएगी।"

इसी बीच मे उन्हे खबर मिली कि वल्लभभाई पटेल छोड दिए गए है और इसलिए वे दोनो उनका भाषण सुनने अपनी मोटर पर वहा से पचास मील दूर एक छोटे-से कस्बे मे पहुचे। अनवर ने 'बार्दोली के हीरो' को पहली बार देखा था। वह उनके कठोर चेहरे की गहरी लकीरो मे शक्ति और दृढता का भाव देखकर बहुत प्रभावित हुआ। ऐसा लगता था जैसे पत्थर की चट्टान को काटकर उनका चेहरा गढा हो गया हो। उनके शब्दो मे बहुत कटुता भरी थी और जनसमूह के सामने हिंदुस्तानी मे बोलते हुए उन्होने वाइसराय द्वारा दिए गए उस भाषण का मुंहतोड जवाब दिया जिसमे धमकी दी गई थी कि अगर सत्याग्रह-आदोलन वापस न लिया गया तो काग्रेस को इसका मजा चखा दिया जाएगा। पटेल राजनीतिज्ञो की तरह घुमा-फिराकर बात नही कहते थे, वे तो बिलकुल किसानो की तरह दोटूक बात कहते थे। यह स्पष्ट था कि अपने प्रांत के किसानो पर इसी कारण उनका इतना अधिक प्रभाव था।

मीटिंग के बाद राबर्ट ने कहा, "उन्होने क्या कहा यह तो मेरी समझ मे नही आया, लेकिन यह बात मुझे कुछ अजीब जरूर मालूम हुई कि ये महात्मा गाधी के अनुयायी कैसे हैं।"

"क्यो ?" अनवर ने आश्चर्य से पूछा।

"इसलिए कि महात्मा गाधी तो बहुत कोमल स्वभाव के आदमी है और

पटेल इतने कठोर, इतने निर्मम है। और ऐसा लगता है कि वे किसी चीज़ पर भी विश्वास नही रखते, हर चीज को नष्ट कर देना चाहते हैं।"

"शायद यह अच्छा ही है। उनकी सख्ती गाधीजी की हद से ज्यादा नरमी के साथ मिलकर हालत को सभाले रहती है और इसलिए यह हिन्दुस्तान के लिए अच्छा है।"

"हा, शायद भगवान की ऐसी ही मर्ज़ी है।"

गुजरात के दौरे का राबर्ट मिल्स पर बहुत गहरा असर पडा और उसने गुजरात के बहादुर किसानो के बारे मे कई बहुत ही मर्मस्पर्शी लेख लिखे। दिल्ली जाते हुए रास्ते मे उसने कहा, "अनवर, मैं सोचता हू कि शिमला जाकर मै वाइसराय से मिलू। मुझे तो ऐसा लगता है कि इस देश मे जो कुछ हो रहा है उसका उन्हे पता ही नही है। किसीको उन्हे सचाई बतानी चाहिए और चूकि कोई और नही बताएगा इसलिए मैं ही जाकर बताऊगा।"

अनवर को यकीन नही था कि इससे कोई फायदा होगा और उसने राबर्ट को इस मामले मे अपनी राय बता भी दी।

"मैं तो नही समझता कि मेरा जाना बिलकुल बेकार रहेगा। बहरहाल कोशिश कर लेने मे क्या हर्ज है। मैने सुना है कि लार्ड इर्विन बहुत ही धार्मिक आदमी है और मैं तो इस बात की कल्पना भी नही कर सकता कि जानते-बूझते वे पुलिस के इन अत्याचारो की इजाज़त देंगे जो इस समय देश मे हो रहे है।"

अनवर मिल्स के ईसाइयोवाले इस उत्साह से सहमत नही था और उसने यह बात उससे कही भी कि उसने जहा तक इतिहास पढा है उससे उसे यही अदाजा हुआ है कि पूरब मे, और पश्चिमी देशो मे भी, जो सबसे ज़ालिम बादशाह हुए है वे अपने धर्म के बहुत पक्के थे। "अरे, तुम नास्तिको से तो पार पाना मुश्किल है!" राबर्ट ने कुछ झुझलाकर कहा, "कम से कम मुझे एक पत्रकार की हैसियत से तो मुलाकात कर लेने दो और मुलाकात होने पर अगर मैं उन्हे दो-चार सच बाते बता दू तो तुम्हे क्या एतराज़ है?"

राबर्ट सीधा शिमला चला गया और अनवर कुछ दिन बाद शिमला आने

का वायदा करके रास्ते मे दिल्ली मे उतर पडा। वह कई महीनो से अपने अब्बा से नही मिला था और उसके अब्बा ने लिखा था कि वह कम से कम कुछ दिन के लिए घर जरूर हो जाए।

उस बडे-से खाली घर मे अकेले रहने की वजह से अकबरअली बहुत बूढे लगने लगे थे और वे पहले से ज्यादा उदास भी रहते थे। उनके इस अकेलेपन को देखकर उनपर तरस आता था।

दोपहर को खाना खाकर जब बाप-बेटे अदरवाले ठडे कमरे मे सोने के लिए लेटे तो अनवर ने शिकायत के लहजे मे कहा, "अब्बा, आप अपनी तन्दुरुस्ती का खयाल नही रखते। आप बहुत कमजोर और बीमार लगते है।"

"बेटा, मैं बीमार नही हू। बुढापे का असर है। अब दिन-ब-दिन कोई मै जवान थोडे ही होता जाऊगा। हा, मुझे रामेश्वर की ज़रूर फिक्र है।"

"क्यो, रामेश्वर काका को क्या हुआ?"

"तुम तो जानते ही हो कि उनकी सेहत वैसे भी कभी ठीक नही रही। खासी और दमे की शिकायत तो थी ही, बीच-बीच मे बुखार भी आ जाता था। लेकिन इधर कुछ महीनो से उनकी तबियत कुछ ज्यादा ही खराब रहने लगी है। दिन-भर हलका-हलका बुखार रहने लगा है और बलगम के साथ अब खून भी आने लगा है। डाक्टरो का कहना है कि उन्हे कई बरस से टी० बी० है। एक फेफडा तो बिलकुल बेकार हो चुका है।"

अनवर को बचपन से ही रामेश्वर काका से बहुत लगाव था और इसीलिए अब यह जानकर उसे बहुत दु ख हुआ कि वे इतने बीमार है।

"अब्बा, चलकर उन्हे देख आना चाहिए।"

"जरूर बेटा। मैं तो अभी कल ही गया था। तुम कल जाकर मिल आना। वे तुम्हारे बारे मे अक्सर पूछते रहते है।"

रामेश्वर काका के फेफडे की बात सुनकर अनवर बहुत दु.खी था। इतने दिन से टी० बी० का शिकार रहने की वजह से उन्होने कितनी तकलीफ उठाई होगी, यह विचार आते ही अनवर डर गया। डाक्टर जमशेदजी ने उससे भी तो कहा था कि उसके फेफडे कमजोर हैं और अगर उसने अपनी तन्दुरुस्ती का बहुत खयाल न रखा तो आगे चलकर…

"अब्बा!" उसने अचानक चौककर कहा, उसे डाक्टर साहब की एक दूसरी

बात याद आ गई थी। "अब्बा, मुझे अम्मा के बारे मे कुछ बताइए।"

इस तरह अचानक यह सवाल पूछ लेना बहुत अनुचित था। अनवर ने जब अपने अब्बा की खोई-खोई नजरो मे उदासी देखी तब उसे अपनी गलती का एहसास हुआ। बहुत दूर शून्य मे ताकते हुए उन्होने जवाब दिया "क्यो अनवर, उनके बारे मे क्या जानना चाहते हो ? बहुत नेक औरत थी वह।"

"नही, मैं तो उनकी सेहत के बारे मे जानना चाहता था। क्या उन्हे दिक की बीमारी थी ? क्या उनके फेफडे कमजोर थे ? क्या वे टी० बी० मे मरी थी ?"

"नही, नही," बूढे अकबरअली ने बहुत जोर देकर इंकार किया, मानो अपनी मृत पत्नी के बारे मे उन्हे इस तरह की बात बहुत बुरी लगी हो। "नही, उनकी सेहत तो हमेशा बहुत अच्छी रही। तुम्हारी पैदाइश के वक्त दाई की गलती की वजह से उनके खून मे ज़हर फैल गया था और उसीमे वे मर गई थी। लेकिन यह खयाल तुम्हारे दिमाग मे कैसे आया ?"

"कुछ नही अब्बा, बस योही। मैं बस जानना चाहता था।"

जिस समय अनवर रामेश्वरदयाल को देखने के लिए कमरे मे गया उस समय उनके चेहरे पर मौत का पीलापन छाया हुआ था। वे पलग पर लेंटे थे और चारो तरफ दवा की न जाने कितनी शीशिया रखी थी। रामेश्वरदयाल की पत्नी लाजवती ने अनवर को कमरे मे जाने से पहले बताया था कि अच्छे से अच्छे डाक्टर का इलाज करा लिया गया था और डाक्टरो का ही नही बल्कि हकीमो, वैद्यो और होमियोपैथो का भी, लेकिन कई फायदा नही हुआ था। लाजवती पहले के मुकाबले मे बहुत दुबली हो गई थी और ऐसा लगता था कि वे कई हफ्तो से सोई नही थी। उनकी सूजी हुई लाल आखो मे आसू थे और उन्होने सिसकिया लेकर रोते हुए कहा, "अब तो बस भगवान का नाम बाकी है।"

"काका !" अनवर ने धीमे से पुकारा, "मैं हू, अनवर।" रोगी की धंसी हुई आखो मे उल्लास की चमक आ गई।

"बैठ जाओ बेटा," उनकी आवाज इतनी धीमी थी कि ऐसा लगता था

जैसे किसी दूसरी दुनिया से लौटकर आ रही हो। "बम्बई से कब आए?"

अनवर से उन्हे बताया और उसे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि अपनी बीमारी में भी रामेश्वर काका यह मालूम करते रहे थे कि वह कहा है।

"आपकी तबियत कैसी है काका?" यह सवाल बेकार था, लेकिन शिष्टाचार के नाते पूछना आवश्यक था।

रामेश्वरदयाल के सूखे हुए चेहरे पर एक अजीब मुरझाई हुई मुस्कराहट दौड गई, मानो वे इस बात को समझ गए हो कि यह सवाल केवल शिष्टाचार के नाते पूछा गया था। जवाब मे लालाजी ने, जिन्होने स्कूल मे अकबरअली के साथ उर्दू और फारसी पढी थी, सिर्फ इकबाल का यह मिसरा पढा 'चिरागे-सहर हू बुझा चाहता हू।'

न जाने क्यो अनवर को ऐसा लगा कि ये असली रामेश्वर काका थे जो मौत के बिस्तर पर लेटे हुए भी इकबाल के शेर पढ रहे थे, रामेश्वर काका वे नही थे जो घटो बैठे रुपये, आने, पाई का हिसाब जोडते रहते थे।

"अकबर का क्या हाल है?" रामेश्वरदयाल ने पूछा और अनवर ने उन्हे बताया कि उनको कुछ काम पड गया था इसलिए वे कल आएगे।

"सच्चा दोस्त हो तो अकबर जैसा हो। उसने मेरे लिए बहुत कुछ किया है। अगले जनम मे भी मैं उसका एहसान नही चुका पाऊगा।" इतना कहकर वे सांस लेने के लिए रुके मानो अपने क्षीण शरीर की सारी ताकत बटोर रहे हो। फिर उन्होने एक ऐसी बात कही जो अनवर को कुछ अजीब लगी। "बेटा, उनका ध्यान रखना। और मुझसे वादा करो कि तुम उन्हे छोडकर कभी नही जाओगे।" बीमार का दिल रखने के लिए अनवर ने कहा, "काका, आप फिक्र न कीजिए। मै अब्बा को छोडकर कभी नही जाऊगा।"

बीमार रामेश्वरदयाल बिलकुल थक गए थे। उनकी पत्नी ने उनसे आराम करने को कहा। उनको अब तक यह आशा बधी हुई थी कि वे अपनी सेवा से उन्हे फिर चगा कर देगी। उनकी इस व्यर्थ आशा पर उनपर तरस आता था।

"काका, मै आपसे फिर मिलूगा," इतना कहकर अनवर चला आया, लेकिन वह जानता था कि वह झूठ बोल रहा है। वह जानता था कि यह आखिरी मुलाकात है।

दूसरे दिन रामेश्वर काका का देहान्त हो गया और जब लोग उनका क्रिया-

कर्म करके लौटे तो अनवर को ऐसा लगा कि उसके अब्बा एक दिन मे दस बरस और बूढे हो गए थे ।

अनवर ऐसे वक्त अपने अब्बा को छोडकर नही जाना चाहता था जबकि उनके दिल पर अपने सबसे गहरे दोस्त की मौत का सदमा था । इसलिए उसने राबर्ट को शिमला खत लिख दिया था कि वह अभी दिल्ली मे दो हफ्ते और रुकेगा और उसके बाद वह शिमला मे या किसी भी दूसरी जगह उससे मिल सकता है ।

अनवर के लिए दिल्ली मे ठहरना कुछ अच्छा नही साबित हुआ । उसने देखा कि उसके अब्बा की बैठक मे बहुत-से कट्टर मजहबी लोग जमा होने लगे थे । अपने बचपन मे उसने वहा जो शात और सुसस्कृत वातावरण देखा था वह अब बाकी नही रह गया था—जब हकीम बेदिल अपने शेर सुनाते थे, रामेश्वर काका अपनी जाघ पर हाथ मारकर 'वाह, वाह' करके दाद देते थे और कोई अखबार से खबरे पढकर सुनाता था और चाय या शरबत के दौर चलते थे और उनके साथ हंसी-खुशी और रवादारी के वातावरण मे राजनीतिक, सामाजिक और साहित्यिक विषयो पर चर्चा होती थी । ऐसा लगता था कि रामेश्वर काका के मरते ही एक युग समाप्त हो गया था, ज़िन्दगी का एक ढर्रा मिट गया था । पुराने दोस्तो मे बस चौधरी मुहम्मदउमर बाकी रह गए थे । और ये पजाबी व्यापारी सज्जन भी अब खान बहादुर हो गए थे, सरकारी ठेकेदार थे और म्युनिसिपल काउसिलर भी । उनका कारोबार चमक गया था और उनके बेटे मोटरों मे घूमते थे । वे बडी बेशरमी से सरकार का पक्ष लेते थे और काग्रेस को बुरा-भला कहते थे और गाधीजी को सत्याग्रह शुरू करने के कारण बहुत गालिया देते थे ; क्योकि सत्याग्रह का मतलब था आए दिन की हडताले और हर हडताल मे उनके कारोबार का बहुत नुकसान होता था । लेकिन चूकि वे इस बात को जानते थे कि अकबरअली खुद पहले सत्याग्रही रह चुके थे और वे सरकार से कुछ ज्यादा खुश नही थे, इसलिए चौधरी मुहम्मदउमर साहब काग्रेस के खिलाफ जो भी बात कहते उसे साम्प्रदायिकता की आड मे छिपाकर कहते । अनवर ने उन्हे एक बार यह भी कहते सुना था कि "अगर मै हिन्दू

होता तो शायद मैं भी गाधी के साथ होता, लेकिन चूकि मैं मुसलमान हू इसलिए मैं इस बनिये के पीछे नही चल सकता क्योकि उसकी सारी तहरीक का मकसद मुसलमानो को खत्म कर देना है।" और जब भी वे इस तरह की कोई बात कहते थे तो उनके साथ के पाच-छ हाली-मवाली हमेशा उनकी हा मे हा मिलाने को तैयार रहते थे।

ये सब बाते तो थी ही, तिसपर एक दिन ताया अमजदअली रियासत के किसी काम से दिल्ली आ धमके। इसके बाद तो अनवर के लिए वहा रहना बिल्कुल असह्य हो गया। अब वे सिर्फ रियासत के दीवान ही नही थे बल्कि छोटे नवाब साहब के ससुर भी थे, इसलिए उनकी अकड की कोई हद ही नही रह गई थी और अनवर के लिए उन्हे एक मिनट के लिए भी बर्दाश्त करना नामुमकिन था। यह जानते हुए कि अनवर काग्रेसी विचारों का है, वे जान-बूझकर उसके सामने गाधीजी के बारे मे और काग्रेस के दूसरे नेताओ के बारे मे बुरी-बुरी बाते कहते थे ताकि उसे गुस्सा आए और वे उसे डाट-फटकारकर धौंसिया सके। अकबरअली को इस तरह की बाते अच्छी नही लगती थी लेकिन अपने बडे भाई की जबान पर काबू रखना उनके बस के बाहर था। इसलिए जब उन्होने देखा कि अनवर के लिए वहा रहना बहुत मुश्किल हो रहा है तो एक दिन उन्होने खुद ही कहा, "मेरा खयाल है कि मिस्टर राबर्ट बहुत दिन से तुम्हारा इतजार कर रहे है। अब मैं भी बिलकुल चगा हो गया हू और भाई साहब भी यहा है। तुम अब शिमला क्यो नही चले जाते? वहा की आबोहवा से भी तुम्हे बहुत फायदा होगा।"

उसी रात अनवर शिमला चला गया।

इतने महीनो से साथ-साथ काम करते रहने की वजह से राबर्ट अपने इटर-प्रेटर-असिस्टेट को बहुत पसन्द करने लगा था इसलिए अनवर के वापस आ जाने पर वह बहुत खुश हुआ। उसकी पीठ पर एक ज़ोर का धप मारते हुए राबर्ट ने कहा, "हैलो, अनवर ब्वाय, बहुत अच्छा हुआ कि तुम आ गए। सरकारी अफसरों के इस मनहूस शहर मे तुम्हारा जैसा इंसान देखने को आखे तरस गईं।"

खबरों की दुनिया मे वापस पहुचकर अनवर भी बहुत खुश था। सेसिल

होटल मे, जहा राबर्ट ठहरा हुआ था, राजनीतिज्ञो की भरमार थी—जाहिर है ये सारे नेता नरम दल के थे। इनके अलावा बडे-बडे सरकारी अफसर और विदेशी मेहमान और अखबारो के विशेष सवाददाता भी बेशुमार थे।

"तो राबर्ट, भला वाइसराय से भी मुलाकात हुई ?" अनवर बडी देर स यह सवाल पूछने की राह देख रहा था। खाना खाते वक्त भी वह बडी मुश्किल से ही चुप रहा। लेकिन राबर्ट के कमरे मे पहुचते ही उसे अकेला पाकर उसने यह सवाल पूछ ही लिया।

"हा हा, मिला क्यो नही।" फिर राबर्ट ने वाइसराय के एक एडीकाग की नकल उतारते हुए कहा, "हिज एक्सेलैसी द गवर्नर-जनरल-इन-काउसिल एड वाइसराय ऑफ इडिया विल बि ग्रेशसली प्लीज्ड टु गिव यू द ऑनर ऑफ हैविंग योर कम्पनी ऐट लच एट द वाइसरीगल लॉज, डाइनिंग रूम नम्बर थ्री। ट्राउज़र्स कम्पलसरी, पिन-स्ट्राइप्स ऐड स्पैट्स आप्शनल।"

अनवर के लिए अपनी हसी रोकना मुश्किल हो रहा था। उसने कहा, "मतलब यह कि उन्होने लच पर बुलाया था। और कौन-कौन था ?"

"एक महाराजा साहब थे जिन्हे तीन पटाखो की सलामी दी जाती है। एक पादरी साहब थे जिन्हे यह शिकायत थी कि लोग ईसाई नही बन रहे है। एक आसाम के चाय के बागो के मालिक थे जो बहुत बडे शिकारी की तरह यह बता रहे थे कि हिन्दुस्तान आकर पहले-पहल शेर कैसे मारना चाहिए। और एक बूढा मेम साहब थी—मिसेज मिन-मिन जो लूली-लगडी बिल्लियो की मदद के लिए पैसे जमा करने के लिए बहुत-से बूढे सनकी लोगो की एक दावत करने के इतज़ाम मे तन-मन से जुटी हुई थी।" राबर्ट सचमुच उस दिन सबका मज़ाक उडाने पर तुला हुआ था।

"जब आपके बाई तरफ मिसेज मिन-मिन बैठी हो और दाहिनी तरफ पादरी साहब बैठे हो तो आप उनकी बात काटकर यह तो कह नही सकते थे कि 'योर एक्सेलैसी, लूली-लंगडी बिल्लियो की बात पर मुझे याद आया कि मुल्क मे जो सत्याग्रह का आदोलन चल रहा है...'।"

"यही बात थी। बातचीत के दौरान मे राजनीति का कोई सवाल उठाना नामुमकिन था, ह'लाकि एक बार चाय के बागो के मालिक ने एक मौका दिया था। शिकार की बाते करते-करते जोश मे आकर उन्होने कहा कि अगर उनका

बस चलता तो इस 'बूढे गाधी' को गोली से उडवा देते। लेकिन खाना खत्म हो जाने के बाद वाइसराय साहब जाकर एक सोफे पर बैठ गए। एक एडीकाग मेहमानो को एक-एक करके उनके पास ले जाता था और हर आदमी को सिर्फ पाच मिनट का वक्त दिया जाता था। मै पन्द्रह मिनट तक बाते करता रहा और वाइसराय साहब का सारा प्रोग्राम गडबड हो गया। दस मिनट ज्यादा लग गए। इसपर एडीकाग ने मुझे इतना घूरकर देखा जैसे ब्रिटिश सम्राज्य की नीव हिल गई हो।"

"क्या-क्या बाते हुई ?"

"वाइसराय साहब ने पहली गलती तो यह की कि वे मुझसे पूछ बैठे कि मैने हिन्दुस्तान मे क्या देखा।"

"और आपने जो कुछ देखा था सब उन्हे बता दिया ?"

"एक-एक बात खोलकर उनके सामने रख दी। लाठी-चार्ज, बम्बई मे औरतो का जुलूस, गुजरात के किसानो की बगावत—मैंने सारा कच्चा चिट्ठा उनके सामने खोलकर रख दिया। आखिर मैंने हिज एक्सेलैंसी को यह भी चेतावनी दे दी कि शिमला मे वे एक ज्वालामुखी के मुह पर बैठे है जो फूट रहा है।"

"यह बात तो उन्हे अच्छी नही लगी होगी ?"

"मेरे खयाल से तो अच्छी नही लगी होगी। लेकिन अनवर, सच कहता हू, मुझे उस बेचारे पर तरस आता है। जिस मुल्क पर वह हुकूमत करता है, उसके बारे मे उसे बहुत ही थोडी जानकारी है। तुम्हे अन्दाज़ा नही कि शिमला के लोग कितने जाहिल है।"

"इसमे किसका कसूर है ?"

"ज़ाहिर है हुकूमत के इस तरीके का जो गर्मी और धूल और मुल्क की हकीकतो से बचाकर उन्हे यहा इतनी दूर बिठाकर रखता है। यहा कोई अखबार पढता ही नही है, क्योकि यहा अखबार दो-तीन दिन देर से पहुचते है। हर आदमी, यहा तक कि वाइसराय भी, रायटर की भेजी हुई रिपोर्ट पढता है जिसमे खबरो को बहुत काट-छाटकर, एकतरफा ढंग से बहुत ही थोडे मे पेश किया जाता है। होम डिपार्टमेट सूबो की राजधानियो से आनेवाली रिपोर्टे वाइसराय के पास भेजता है, लेकिन जो कुछ होता है उसकी मोटी-मोटी रूपरेखा का पता चलने

में भी एक-एक हफ्ता लग जाता है।"

लेकिन अनवर तो यह जानने के लिए बेचैन था कि वाइसराय ने क्या कहा।

"मैने उनसे पूछा कि गाधीजी के बारे मे उनकी क्या राय है। और उन्होने मुझे अपनी र य बताई—लेकिन इस शर्त पर कि मैं किसीसे कहूगा नही। हर पत्रकार को वाइसराय से इसी शर्त पर मिलने दिया जाता है कि लाट साहब जो कुछ भी कहेगे उसे वह किसीसे कहेगा नही। लेकिन तुम्हे मैं बता सकता हूँ। मुझे उनकी बात अच्छी तरह याद है क्योकि मुझे एक वाइसराय के लिए ऐसी बात कहना कुछ अजीब लगा था। उन्होने बहुत चालाकी से गोल-मोल बात कही थी, लेकिन उनकी राय कुछ बहुत अच्छी नही थी। उन्होन कहा, 'जब मैं पहली बार गाधी से मिला तो मैं उनकी पवित्रता से बहुत प्रभावित हुआ। जब मैं उनसे दुबारा मिला तो मुझपर कानूनी मामलो मे उनकी होशियारी का बहुत असर पडा। तीसरी बार मिलने पर मुझे इस बात का यकीन हो गया।' जब मैंने पूछा, 'योर एक्सेलैंसी, आपको इन दोनो मे से किस बात का यकीन हो गया?' तो उन्होने मुस्कराकर सिर्फ इतना कहा, 'इसका फैसला आप खुद करें'।"

वाइसराय के इस मजाक पर अनवर कुछ खास खुश नही हुआ। "तो इसका मतलब यह है कि सरकार समझौता करने को तैयार नही है—और एक तरह से मुझे इस बात की खुशी ही है।"

"वाइसराय की बातो से तो मुझे ऐसा नही लगा। मैं तो समझता हू कि लाख जानकारी न होते हुए भी उन्हे अब इस बात पर खीझ होने लगी है कि गाधीजी की अहिंसा को कुचलने के लिए उन्हे पुलिस के डडो का सहारा लेना पडता है। इस बात को न भूलो कि वे भी अपनी इस ख्याति को कायम रखना चाहते है और निभाना चाहते हैं कि वे ईसाई वाइसराय हैं। जब वक्त आएगा और विलायत मे सरकार अहिंसा की ताकत को महसूस करने लगेगी तब वे भी गाधीजी से समझौते की बातचीत करने पर फौरन राजी हो जाएगे।"

"अहिंसा की ताकत को या विलायती माल के बायकाट के असर को?"

"अग्रेज के लिए दोनो एक ही चीजे है।"

राबर्ट के साथ काम करने मे सबसे बड़ा फायदा यही था कि उसमे विचारों

के आदान-प्रदान का और बौद्धिक दाव-पेच दिखाने का बहुत मौका मिलता था। इससे अनवर का दिमाग भी तेज़ रहता था और जीवन तथा काम के प्रति उसका उत्साह बना रहता था।

शिमला मे गर्मियो मे सरकार की राजधानी जरूर रहती थी लेकिन वहा खबर कोई नही मिलती थी। इसलिए वहा के ठडे मौसम का काफी दिन तक आनन्द ले चुकने के बाद उन्होने फैसला किया कि वे पहाड से नीचे उतरकर अपना दौरा फिर शुरू करेगे और अलग-अलग सूबो मे सत्याग्रह का आदोलन देखेंगे। एक दिन रात को सेसिल होटल मे खाना खाते हुए अनवर ने राबर्ट के कान मे कहा, "वे सर तेजबहादुर सप्रू बैठे हैं। उनके यहा होने मे भी कोई सियासी चाल ज़रूर होगी।" अनवर ने बताया कि सप्रू और जयकर को 'राजनीति के क्षेत्र के जुडवा भाई' कहा जाता था और चूकि यह बात सबको मालूम थी कि जयकर साहब सरकार और काग्रेस के बीच समझौता कराने की कोशिश कर रहे थे इसलिए सप्रू का भी इसमे शामिल होना जरूरी था।

कमरे में वापस पहुचकर अनवर ने 'स्टेट्समैन' उठाकर देखा। उसमे लिखा था कि उससे पिछली रात को सप्रू ने वाइसराय के साथ खाना खाया था। दूसरे दिन अनवर ने होटल के दफ्तर मे पूछा तो मालूम हुआ कि सर तेज उसी दिन इलाहाबाद वापस जा रहे थे।

"वे इलाहाबाद मे ही रहते है न ?" राबर्ट ने पूछा।

"हा," अनवर ने जवाब दिया, "लेकिन साथ ही यह बात भी है कि वहीं नैनी जेल मे जवाहरलाल भी कैद है। अगर सप्रू साहब को अपने घर ही वापस जाना होता तो वे सिर्फ दो दिन के लिए शिमला न आते।"

संयोग कुछ ऐसा हुआ कि कुछ दिन बाद जब इलाहाबाद के पास नैनी के छोटे-से स्टेशन पर एक दिन बहुत रात गए जेल की गाडी मे पडित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल और डाक्टर महमूद को लाया गया तो वहा सिर्फ दो ही पत्रकार मौजूद थे—राबर्ट और अनवर। जेल की गाडी से उतारकर उन्हे सीधे एक सुनसान प्लेटफार्म पर ले आया गया। वहा एक स्पेशल ट्रेन उनके लिए खड़ी थी। इंजन से धुआ निकल रहा था और गाडी पूना जाने के लिए तैयार थी।

अनवर ने देखा कि मोतीलालजी बीमार लग रहे थे और उनका रंग पीला पड़ गया था। उसने मौका पाकर जवाहरलाल से पूछ ही तो लिया, "आपकी राय मे क्या समझौता होने की कोई गुजाइश है ?" इतने मे गाडी चल दी और अनवर के सवाल के जवाब मे जवाहरलाल ने अपने पास सीट पर रखा हुआ उस दिन का अखबार उठाकर उसकी तरफ इशारा करते हुए बडी कटुता से पूछा, "क्या यह समझौते की निशानी है ?" अखबार के पहले ही पृष्ठ पर एक भयानक लाठी-चार्ज और काग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष वल्लभभाई पटेल, पडित मदनमोहन मालवीय, तसद्दुकअहमदखा शेरवानी और वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यो की गिरफ्तारी की खबर छपी हुई थी। साथ ही गिरफ्तार किए गए इन नेताओ की एक तसवीर भी छपी हुई थी। अनवर को तसवीर मे उनके पीछे 'बाइकल्ला हाउस आफ करेक्शन' का बडा-सा साइनबोर्ड लगा हुआ देखकर बहुत हसी आई। यहां बिगडे हुए आवारा बच्चो को सुधारने के लिए रखा जाता था।

जब ट्रेन चली गई तो राबर्ट ने कहा, "इन लोगो को इस तरह जाते देखकर मुझे उस बद गाडी की याद आ गई जिसमे लेनिन को क्राति शुरू करने के लिए जर्मनी से रूस ले जाया गया था।"

"हमे तो हिन्दुस्तान मे जो क्राति हो रही है उसकी खबरे जमा करनी हैं। चलिए, हम लोग अपना काम करे। जवाहरलाल की सूरत देखकर तो मुझे इस बात का यकीन हो गया कि कोई समझौता नही होगा।"

और एक बार फिर उस पुराने पत्रकार ने अनवर को चेतावनी दी "अनवर, किसी बात का इतना ज्यादा यकीन नही रखना चाहिए।"

उन्होने सयुक्त प्रात मे अपना दौरा शुरू किया। काग्रेस ने यहा के किसानो को सगठित करके लगान अदा न करने का आदोलन चलाया था। काग्रेस ने ज़मीदारो से भी कहा था कि वे सरकार को मालगुजारी न दें। लेकिन वे तो सरकार की दया पर पलते थे इसलिए उनमे से लगभग सभीने मालगुज़ारी अदा कर दी थी। यहा तक कि उन ज़मीदारो ने भी, जो कांग्रेस के आदोलन के साथ सहानुभूति रखने का दम भरते थे, चुपचुपाते सरकार की मालगुज़ारी भर दी

थी। लेकिन अनपढ और गरीब किसान अपनी जगह पर डटे रहे और उन्होने लगान नही दिया। उनकी गरीबी ने उन्हे अपनी जान की बाजी लगा देने की हिम्मत दी थी—उनके पास खोने को था ही क्या।

"काग्रेस ने हिंदुस्तान के गावो मे समाजवाद का सदेश पहुचा दिया है और किसानो की आखे खोल दी है," राबर्ट ने अपनी एक रिपोर्ट मे लिखा, "लेकिन एक दिन काग्रेस खुद पछताएगी जब वह देखेगी कि समाजवादी आदोलन के बढने से उसके लिए खतरा पैदा हो गया है।" अनवर ने यह पढकर कहा, "राबर्ट, तुम भी बला के 'सिनिक' हो।"

गाव का दौरा करते हुए बीच-बीच मे वे गगा की घाटी के प्रख्यात ऐतिहासिक नगरो का भी दौरा करते थे—इलाहाबाद, जिसे पुराने जमाने मे प्रयाग कहा जाता था और जो गगा और यमुना के पवित्र सगम पर बसा हुआ था; गोमती के किनारे बसा हुआ लखनऊ, जहा अवध के नवाबो के खानदानवाले अभी तक वसीका पाते थे और अपने बीते हुए ऐश के दिनो पर आसू बहाते थे;-कानपुर का तेजी से बढता हुआ औद्योगिक नगर, जहा मजदूरो मे बेचैनी पैदा होने लगी थी और जहा अब से सात साल पहले हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टो ने अपना पहला सम्मेलन किया था। दिन-रात एक जगह से दूसरी जगह घूमते हुए और राजनीतिक हलचल की खबरे जमा करते हुए अनवर ने अपने हृदय की पीडा को दबा लिया था। लेकिन एक दिन कानपुर के स्टेशन पर वेटिंग-रूम मे बैठे-बैठे उसने वक्त काटने के लिए 'इलस्ट्रेटेड वीकली' का एक पुराना अक उठा लिया जिसके पन्नो के कोने मुड गए थे। अचानक एक पृष्ठ पर, जिसपर नवविवाहितो के चित्र छपे थे, उसे सलमा और मजूर का चित्र दिखाई दिया। सलमा का चेहरा खुशी के मारे फूल की तरह खिला हुआ था और उसका खिला हुआ चेहरा देखकर अनवर को ऐसा लगा जैसे कोई उसे कोडे मार रहा हो। चित्र के नीचे लिखा था: 'अलीगढ यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर एम० सलीम की बेटी सलमा खातून जिनका विवाह अभी कुछ दिन पहले यू० पी० पुलिस सर्विस के मजूरआलम के साथ हुआ, जो आजकल कानपुर मे नियुक्त है।'

उसी दिन बाद मे एक फटीचर तागे पर सिविल लाइस से गुजरते हुए अनवर ने एक बंगला देखा जिसके चारो ओर मेहदी की झाड़िया लगी हुई थी जिन्हे बहुत सफाई से काट रखा गया था और फाटक पर एक तख्ती लगी थी

जिसपर लिखा था : 'मंजूरआलम, डी० एस० पी०।' तो यहा रहती थी उसकी सलमा— इन झाडियो के पीछे। अगर वह उसका नाम लेकर पुकारता तो वह सुन लेती। अगर वह फाटक के अदर चला जाता तो उससे मिल सकता था। वह सलमा के कितना पास था—फिर भी कितना दूर।

"क्या हुआ तुम्हे ?" राबर्ट ने पूछा। तांगा हिचकोले खाता हुआ चल रहा था, "ऐसा लगता है जैसे तुमने कोई भूत देखा हो।"

अनवर के होठो पर एक फीकी-सी मुस्कराहट दौड गई। "शायद भूत ही देखा है।"

अनवर बहुत खुश हुआ कि उसी रात वे कलकत्ता के लिए रवाना हो गए। वह कानपुर से दूर चला जाना चाहता था—बहुत दूर।

इसके बाद छ महीने तक उनकी ज़िन्दगी रेलगाडी के पहियो की गडगडाहट की धुन पर ही चलती रही। वे सारे देश का दौरा करते रहे। किसी प्रकाशक ने राबर्ट से एक किताब लिखने को कहा था, इसलिए वह अब जहा भी जाता था वहा ज़्यादा दिन तक ठहरता था और मौजूदा राजनीति की सतह के नीचे भारतीय जीवन के स्रोतो को ज्यादा गहराई से देखता था। कलकत्ता मे अनवर ने राय का पता लगाने की कोशिश की लेकिन वह जेल मे था। उनकी मुलाकात जोशीले नौजवानो से हुई, जिन्होने खुले तौर पर उन्हे बताया कि वे महात्मा गाधी को सिर्फ यह साबित करने का मोका दे रहे है कि उनकी अहिंसा कारगर हो सकती है और अगर वे कामयाब न हुए तो वे बम और रिवाल्वर का अपना तरीका इस्तेमाल करेगे। कुछ नौजवान तो सत्याग्रह की सफलता से निराश भी हो चुके थे और उन्होने पूर्वी बगाल मे चटगाव के पास जान हथेली पर रखकर एक फौजी चौकी पर छापा मारा था और क्रातिकारी आदोलन की वीरतापूर्ण घटनाओ मे 'चटगाव शस्त्रागार काड' का भी उल्लेख किया जाने लगा था। वे शातिनिकेतन मे रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भी मिले। वे कवि भी थे, दार्शनिक भी और जीवन-सौंदर्य के प्रेमी भी। इस प्रकार वे गाधीजी से बहुत भिन्न थे पर दोनो एक-दूसरे का बहुत सम्मान करते थे। साल-भर से राजनीति की हलचल मे फसे रहने के बाद अनवर को शातिनिकेतन जाकर बहुत शाति मिली।

वर्षा अभी समाप्त ही हुई थी। चारो ओर हरियाली छाई हुई थी। हर तरफ शांति का राज्य था। वह इच्छानुसार कही भी जा सकता था। कोई रोक-टोक नही थी। एक पेड के नीचे कुछ लडके घास पर बैठे हुए अध्यापक का व्याख्यान सुन रहे थे। नृत्यशाला मे काली-काली आखोवाली सुकोमल बगाली लडकिया मणिपुरी नृत्य की मनोमोहक मुद्राओं का अभ्यास कर रही थी। एक जगह कोई गायक अपनी गूजती हुई आवाज़ मे टैगोर का गीत गा रहा था।

वर्षा समाप्त होकर अब शरद्ऋतु आ गई थी, इसलिए सफर करने मे भी अब कोई तकलीफ नही होती थी। दूर तक फैले धान के खेतो को पार करते हुए, जिनपर जमीदारो का कब्जा था, वे बगाल से बिहार पहुचे। यही महात्मा बुद्ध का प्राचीन देश था जिन्होने ईसा से भी पहले अहिंसा का उपदेश दिया था। यहा से वे सयुक्त प्रात और दिल्ली होते हुए पजाब के लहलहाते हुए गेहूं के खेतो के बीच पहुचे। अनवर राबर्ट को ऐतिहासिक जलियांवाला बाग दिखाने ले गया और दीवारो पर गोलियो के निशान देखकर उसे दस वर्ष पहले के उन भयानक क्षणो की याद आ गई।

अब तक पुराने जमाने से जितने लोगो ने भी भारत पर हमला किया था वे सब पेशावर से लाहौर की तरफ आए थे। पर वे उलटी दिशा मे लाहौर से पेशावर जा रहे थे। किस्मत से यूनुस जेल के बाहर था। एक ही साल के अदर वह काफी लम्बा हो गया था और काफी बडा लगने लगा था। उसने उन दोनो को दिखाया कि उसके वतन मे कैसा चमत्कार हो गया था। सिर्फ इतना ही नही हुआ था कि हमेशा से अपनी बहादुरी के लिए सराहे जानेवाले पठानो ने अब अहिंसा का रास्ता अपना लिया था और वे मौत को तिरस्कार से देखने लगे थे बल्कि उनका एक मजबूत राजनीतिक और सामाजिक सगठन भी बन गया था जिसमे आने के बाद कबीलो और खानदानो के सारे पुराने झगडे मिट गए थे। इस सगठन का काग्रेस के साथ गहरा सबध था और ये लोग अपने को 'खुदाई खिदमतगार' कहते थे। वे राजनीतिक चेतना फैलाने के साथ ही साथ शिक्षा, समाज-सुधार और एकता के लिए भी काम करते थे। चूकि इस इलाके के उस पार, जहां दो देशो की सीमा भी ठीक से तै नही थी, खौफनाक कबीलो की बस्तिया थी जिनकी गोली का निशाना कभी नही चूकता था और जो ज़रा-ज़रा-सी बात पर मरने-मारने को उतारू रहते थे और चूकि अग्रेज़ो ने यह हौआ

खडा कर रखा था कि रूसी किसी भी वक्त अफगानिस्तान के रास्ते भारत पर हमला कर सकते है; इसलिए सरकार इस इलाके को फौजी बचाव की दृष्टि से बहुत महत्त्व देती थी। इसीलिए यहा दमन भी ज्यादा हुआ था। दूसरी जगहो पर जितनी लाठिया चली होगी उतनी ही बार यहा गोली चली थी।

यूनुस ने उन्हे एक कमाल की घटना बताई जिसके बारे मे अखबारो मे लगभग कुछ भी नही कहा गया था। ज़ाहिर था कि पेशावर से आनेवाली इन खबरो को सेसर ने काट दिया था। हमेशा से सरकार के वफादार गढवाली सिपाहियो की एक टुकडी को उनके अग्रेज अफसरो ने पेशावर की एक बड़ी सडक पर आते हुए जुलूस पर गोली चलाने का हुक्म दिया, लेकिन गढवालियो ने इकार कर दिया ; कोर्ट मार्शल की धमकी देने पर भी उन्होने गोली नही चलाई। उन सबको लम्बी सजाए दे दी गई, लेकिन आम लोगो पर इसका बहुत गहरा असर पडा।

२६ जनवरी, १९३२ ! एक और स्वतत्रता दिवस। यूनुस इस मौके पर उन दोनो को एक गाव में ले गया जो लाल कुर्तीवालो का गढ था और जहां वे काग्रेस का झडा फहराकर स्वतन्त्रता की शपथ लेनेवाले थे।

कई सौ बलिष्ठ और लम्बे-चौडे पठानो के सामने जब पश्तो मे स्वतन्त्रता की शपथ पढी गई तो अनवर के कानो को वह कुछ अजीब-सी लगी। उनमे से ज्यादातर पठान कत्थई रग की खद्दर की कमीजे पहने थे। उनके पीछे मशहूर खैबर दर्रा दिखाई दे रहा था। अनवर सोचने लगा कि इन बहादुर पठानो ने बहुत-से गुण इन्ही कठोर निर्जन पहाडियो से ग्रहण किए हैं जिनके बीच वे सदियो से रहते आए है।

जब झडाभिवादन समारोह समाप्त हो गया तो उन्हे खैबर दर्रे की तरफ से बार-बार गोलिया चलने की आवाज आती हुई सुनाई दी। थोडी ही देर बाद दो हवाई जहाज़ पहाडियो पर नीचे-नीचे उडते हुए दिखाई दिए और कही बहुत दूर चट्टानो के बीच बम का धमाका सुनाई दिया। आर० ए० एफ० के हवाई जहाज 'विद्रोही सीमात प्रदेश' मे 'विद्रोहियो को दड' दे रहे थे। भारत मे चलनेवाले आदोलन से झुझलाकर साम्राज्यवादी सीमा के उस पार अपनी

'फ़ारवर्ड पालिसी' चला रहे थे।

वे जब मोटर पर पेशावर वापस पहुचे तो उन्होने देखा कि बाज़ार मे बड़ी हलचल है। कोई बहुत बडी घटना हो गई थी। उन्होने मोटर रोककर एक आदमी से पूछा कि आखिर बात क्या थी। उस सीधे-सादे पठान ने बडे जोश के साथ पश्तो मे कहा :

"गाधीखान को छोड दिया।

"जवाहरखान को छोड दिया।

"इन्कलाबखान को मगर नही छोडा। क्यो?"

जब वे दिल्ली पहुचे उस वक्त तक गाधी-इर्विन समझौते की बातचीत शुरू हो गई थी और विंस्टन चर्चिल ने बहुत आग-बबूला होकर कहा था कि अजब अंधेर है कि एक नगा फकीर हिज मैजेस्टी किंग-एम्परर के प्रतिनिधि के साथ बराबरी से बातचीत करने के लिए वाइसराय की कोठी की सीढियो पर चढेगा।

काग्रेस के नेता डाक्टर असारी के यहा ठहरे हुए थे और अनवर बिना रोक-टोक के कही भी जा सकता था। जिसकी वजह से उसे दूसरे सवाददाताओ की तरह बरामदे मे बैठकर इन्तजार नही करना पडता था। उसने देखा कि जवाहरलाल अपने पिता के मर जाने की वजह से बहुत उदास थे। बादशाहो जैसी तबियत रखनेवाले मोतीलालजी जेल से छूटने के कुछ ही दिन बाद मर गए थे। सरोजिनी नायडू भी वहा मौजूद थी। नवयुवक अनवर इस बूढ़ी कवयित्री को देखकर बहुत प्रभावित हुआ था। उन्होने ड्राइग-रूम के एक कोने मे अपना दरबार लगा रखा था जहा उनके पुराने दोस्तो और युवा प्रशसको का जमाव था और उन्हे वे अपनी ज्ञान-भरी बाते सुना रही थी और बीच-बीच मे उन्हे हसाती भी जाती थी। देश-भर से विभिन्न प्रातो के बहुत-से नेता भी आए हुए थे और डाक्टर असारी के बावर्चियो को इतने बहुत-से लोगो को अलग-अलग उनकी पसद का खाना खिलाने मे बहुत मुश्किल पड रही थी। कुछ नेताओ का खाना तो सबसे निराला होता था। गाधीजी तो सिर्फ बकरी का दूध पीते थे और खजूर खाते थे। उनके एक चेले सिर्फ दही खाते थे। एक और सज्जन सिर्फ दर्जन-भर सतरे और छः सेब खाकर ज़िन्दा रहते थे।

सारा घर एक अजीब राजनीतिक सराय बना हुआ था। दिन-भर, और रात के वक्त भी, राजनीतिज्ञ, पत्रकार, अखबारो के फोटोग्राफर, विदेशी तमाशबीन और अवसरवादी लोग वहा मडराते रहते थे। उनमे से कुछ तो अभी कल तक सरकार के पिट्ठू थे लेकिन अब हवा का रुख पलटता हुआ देखकर उन्होने काग्रेसियो के साथ मेल-जोल बढाना शुरू किया था। बातचीत चलते हुए कई हफ्ते हो गैए थे पर अभी तक कोई समझौता नही हो पाया था। वातावरण मे एक अजीब तनाव था और हर आदमी आशा लगाए बैठा था। रोज रात को वाइसराय की कोठी से गाधीजी के वापस लौटने पर बद कमरे मे वर्किंग कमेटी की मीटिंग होती थी। लेकिन सदस्य कोई बात बाहर न कहने के लिए वचनबद्ध थे, इसलिए पत्रकारो को अटकल से काम लेना पडता था और रोज़ विशेष सवाददाताओ को कोई न कोई तर्कसगत कहानी गढनी पडती थी। कोई लिखता : समझौते की बातचीत पारस्परिक सम्मान और सद्भावना के वातावरण मे चल रही है। परिस्थिति आशाजनक है। विश्वास किया जाता है कि ब्योरे की कुछ बातो पर मतभेद के कारण समझौता होने मे विलम्ब हो रहा है। वाइसराय ने लदन तार देकर आदेश मागा है। गाधीजी वर्किंग कमेटी के सदस्यो के साथ विचार-विनिमय करके समझौते की शर्तें तै कर रहे है।

रोज रात को सब लोग जागते रहते थे और वाइसराय के यहा से गाधीजी के लौटने की प्रतीक्षा करते थे, यह सुनने की आशा मे कि समझौते पर हस्ताक्षर हो गए। कभी-कभी गाधीजी सुबह तक लौटकर नही आते थे और उनके आने मे इस विलम्ब से ही लोगो को आशा बधने लगती थी। अखबारवाले भागकर उनकी मोटर के पास पहुचते थे और पूछते थे, "हो गया ?" और वे मुस्कराकर अपना सिर हिला देते थे, "नही, मै दो दिन बाद फिर वाइसराय से मिलने जाऊगा।" फिर कोई पूछता, "क्या आपको अब भी उम्मीद बाकी है ?" और वे जवाब देते, "मैं कभी उम्मीद नही छोडता।" फिर कोई लाचारी से पूछता, "गाधीजी, कब तक समझौता होने की उम्मीद है ?" और गाधीजी आकाश की ओर आखे उठाकर कहते, "सब भगवान के हाथो मे है।"

भगवान—और समझौते की बातचीत करनेवाले दोनो व्यक्ति जो दैवी

पथ-प्रदर्शन में दृढ आस्था रखते थे—सारी दुनिया को तीन सप्ताह तक प्रतीक्षा कराते रहे। लोगो की उत्सुकता बेहद बढ गई। सवाददाता भी विलम्ब के लिए नये बहाने गढते-गढते तग आ चुके थे। अनवर, जो उस घर मे बिना रोक टोक आ-जा सकता था, बाकी लोगो से कुछ ज्यादा जानकारी रखता था। एक बार समझौते की बातचीत मे कुछ दिन खाली चले गए तो लोग यह समझने लगे कि बातचीत असफल रही। कुछ नेता तो अपना बोरिया-बिस्तर भी बाधने लगे और वर्किंग कमेटी ने फिर से सघर्ष शुरू करने की योजना पर विचार करने के लिए एक लम्बी बैठक की, लेकिन दूसरे ही दिन वाइसराय का एक दूत गाधीजी के लिए एक मुहरबद लिफाफा लाया। बाद मे पता यह चला कि उसी रात को दोनो फिर मिलेगे।

शाम को गाधीजी डाक्टर असारी के मकान की एक छत पर प्रार्थना करने-वाले थे। छत पर से सामने ही यमुना का सुन्दर दृश्य दिखाई पडता था। इस अवसर पर बहुत-से लोग वहा जमा थे। कुछ लोग तो अपनी धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वहा जमा थे और कुछ केवल उत्सुकतावश आ गए थे। जब प्रार्थना समाप्त हुई और लोग जाने लगे तो दूध जैसे सफेद खद्दर के वस्त्र पहने हुए किसी आदमी ने अनवर को नाम लेकर पुकारा। एक क्षण के लिए तो अनवर उन्हे पहचान नही पाया, पर सहसा उसे ध्यान आया कि वे सेठ मानिकलाल शाह थे। वे यहा क्या कर रहे थे ?

"हेलो, अनवर," वे जरूरत से ज्यादा तपाक से अनवर से मिले और यह बताने के बाद कि वे किसी काम से दिल्ली आए थे और माजी, आशा और मोहन के बारे मे अनवर के सवालो का जवाब देने के बाद वे फौरन अपने मतलब की बात पर आ गए। "अनवर, तुम्हारी क्या राय है ? क्या समझौता हो जाएगा ?"

अनवर खुद अभी तक इस सिलसिले मे कोई फैसला नही कर पाया था, फिर भी उसने कहा, "वाइसराय ने फिर गाधीजी को बुलाया है। इसलिए कुछ उम्मीद तो है।"

"थैंक यू !" इतना कहकर सेठजी गायब हो गए और अनवर अपने विचारों मे खोया खडा रहा।

उस रात सब सवालो का जवाब मिल गया और सारी शकाए दूर हो गई।

आशाओ का भग हो जाना भी हफ्तो की उस दुविधा से बेहतर था।

आधी रात के बाद अधेरे को चीरती हुई मोटर की तेज़ रोशनिया आगे बढती हुई दिखाई दी। सब लोग गाधीजी का स्वागत करने के लिए उठ खडे हुए लेकिन मोटर पर केवल एक उत्साही पत्रकार था, एक स्थानीय अखबार का चीफ रिपोर्टर। "हो गया!" उसने चिल्लाकर कहा, "मैं सीधा वाइसरीगल लॉज से आ रहा हू! उन लोगो ने कागज़ और कलम मगवाया है।"

घटे-भर बाद गाधीजी मोटर पर आए। मोटर पर नम्बर की जगह ताज लगा हुआ था। गाधीजी के हाथ मे एक लिपटा हुआ कागज़ था। जवाहरलाल आधी रात से कुछ पहले ही जाकर सो गए थे। उन्हे जगाया गया और वे आखे मलते हुए गाधीजी से मिलने आए। फिर दोनो वर्किंग कमेटी की मीटिंग करने के लिए अदर चले गए। मीटिंग बहुत थोडी देर चली। समझौते की शर्तें सदस्यो को पढकर सुनाई गई। और फिर सब लोग सोने चले गए।

अनवर कही से समझौते की एक नकल ले आया और उसकी शर्ते पढकर उसका दिल बैठने लगा। इसमे तो सदेह नही कि सरकार को कुछ झुकना पड़ा था, और यह समझौता खुद इस बात का सबूत था कि सरकार ने काग्रेस और गाधीजी की ताकत और साख को मान लिया था। पर अनवर को लाख ढूढने पर भी कही इस बात का उल्लेख नही मिला कि भारत को स्वतत्र और आजाद होने का अधिकार दिया गया है। 'भारत की सावैधानिक सरकार की योजना' का जहा पर उल्लेख किया गया था वही पर 'प्रतिरक्षा, वैदेशिक मामलात, अल्पमत जातियो की स्थिति, भारत के वित्तीय ऋण और दायित्वो की पूर्ति' के सबध मे कुछ अधिकार ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ मे रोक भी लिए थे। गाधीजी ने इस शर्त मे इतना जरूर जुडवा लिया था कि 'भारत के हित मे', लेकिन यह एक झूठी तसल्ली थी क्योकि इसका अर्थ हमेशा दो तरह से लगाया जा सकता था। क्या साम्राज्यवाद का यह दावा नही था कि भारतवासियो को आज़ादी न देना भी 'भारत के हित मे' था?

रात बहुत हो गई थी। वह अब घर नही जा सकता था। उसने टेलीफोन पर राबर्ट को समझौते का खुलासा बताया और ड्राइग-रूम मे सोफे पर लेट गया। लेकिन उसे नींद नहीं आई। बगलवाले कमरे मे रोशनी हो रही थी और उसने दरवाज़े के काच से झाककर देखा कि जवाहरलाल भी जाग रहे थे।

वे विचारो मे डूबे हुए थे और सामने रात्रि के अंधकार मे घूर रहे थे। अनवर सोचने लगा कि शायद वे रावी के किनारे की उस यादगार रात के बारे मे सोच रहे होगे, जनता के साहसपूर्ण कारनामो को, लोगो ने जो मुसीबते झेली थी उनको और उनकी कुरबानियो को याद कर रहे होगे। उस क्षण अनवर को ऐसा लगा कि उसके हृदय मे भी वही पीडा और उदासी थी जो उस चेहरे पर स्पष्ट झलक रही थी जिसे वह इतने समय से अपनी समस्त भावनाओ, विचारो और आशाओ का प्रतीक समझता आया था।

यही सोचते-सोचते उसकी आख लग गई और जब उसकी आख खुली उस समय रात्रि के पिछले पहर की ठडी हवा चल रही थी। नदी की ओर से आनेवाली ठडी हवा के झोके से एक खिडकी खुल गई थी और जब वह खिडकी बद करने के लिए उठा तो उसने देखा कि जवाहरलाल का कमरा खाली पडा है। वह जानता था कि रोज इस समय वे गाधीजी के साथ टहलने जाते थे। इसलिए वह हिम्मत करके कमरे मे चला गया। जहा वे बैठे थे, वहा मेज़ पर लैम्प के पास एक पैड रखा था जिसपर बार-बार उन्होने अग्रेजी मे कविता की दो पक्तिया लिख रखी थी :

This is the way the world ends,
Not with a bang but a whimper.

(ससार का अत इसी प्रकार होता है—धमाके के साथ नही बल्कि एक घुटी हुई आवाज के साथ।)

जब वह निकलकर बाहर बरामदे मे आया तो उसने गाधीजी और जवाहरलाल को टहलकर वापस लौटते हुए देखा। गाधीजी हमेशा की तरह गभीर और प्रसन्नचित्त थे। स्पष्टत उन्होने अपने असतुष्ट शिष्य को अपने मन के पक्ष मे कर लिया था। रात-भर जागते रहने के बावजूद जवाहरलाल भी ज्यादा शात दिखाई दे रहे थे। अनवर सोचने लगा कि शायद यह मुद्रा उस खिलाडी जैसी है जो हार जाने पर भी दुःखी नही होता।

नदी के पार पूर्वी क्षितिज पर धीरे-धीरे उषा की लाली फैलती जा रही थी। एक नये दिन का उदय हो रहा था। अनवर ने अपने कोट का कालर खडा कर लिया और ठडी हवा मे कापता हुआ वह एक प्याली चाय की तलाश मे बावर्चीखाने की तरफ चल दिया।

अब किधर ?

रावर्ट न्यूयार्क का जहाज़ पकड़ने के लिए बम्बई जा रहा था। जब अनवर उसे विदा करके स्टेशन से घर लौटने लगा तो उसे ऐसा लगा कि जैसे अचानक वह अन्दर से खोखला हो गया है। साल-भर तक उसने रावर्ट के साथ काम किया था, भारत को समझने मे उसकी मदद की थी। इस स्पष्टवादी और आदर्शवादी अमरीकी पत्रकार के साथ काम करना उसे बहुत अच्छा लगा था। यह एक वर्ष उसके लिए बहुत घटनामय और रोमाचकारी रहा था, और उन दोनो ने साथ रहकर बहुत-सी विचित्र और युगातरकारी घटनाए देखी थी। वे काग्रेस के कार्यकर्ताओ से मिले थे और उन्होने पूरे आदोलन को सही ढग से देखने और पेश करने की कोशिश की थी, उन्होने बडे-बडे लोगो की बातो और उनके कामो को उचित महत्त्व दिया था लेकिन वे जनसाधारण को एक क्षण के लिए भी नही भूले थे, जिनके बिना आदोलन मे कभी इतना जोर और क्रांति-कारी उत्साह पैदा न होता। रावर्ट अक्सर कहा करता था, "नेताओ को तो छोड दो। उनके भाषणो की खबर देने के लिए तो दर्जनो सवाददाता है। हमें आम लोगो को देखना चाहिए।" इसी तरह एक बार और उसने कहा था, "जनता जिस लायक होती है उसे वैसे ही नेता भी मिलते हैं, क्योकि नेता कही आसमान से नही टपकते है बल्कि जनता के बीच से पैदा होते हैं। वे जनता के व्यक्तित्व, उसकी ताकत, उसकी कमजोरियो, उसकी आकाक्षाओ और उसकी सामूहिक इच्छा को व्यक्त करते हैं।"

अनवर ने रावर्ट से इसके अलावा और भी बहुत-सी बाते सीखी थी। लेकिन अनवर अक्सर सोचा करता था कि क्या सफर मे उसका साथ देने के अलावा भी उसने रावर्ट के लिए कुछ किया था। लेकिन रावर्ट का खयाल था कि उसने उसके लिए बहुत कुछ किया था और इसीलिए उसने अपनी किताब मे भी उसकी सहायता का आभार माना था। उसने अपनी किताब 'द जाइट अवेक्स' प्रकाशक

के पास भेजते समय उसे अनवर के नाम समर्पित किया था और लिखा था : 'अनवर के नाम—जिसने भारत मे मेरी आखो और मेरे कानो का, और बहुधा मेरी जबान का भी काम किया।

घर जाते हुए अनवर इस समर्पण के बारे मे सोच रहा था और उन बहसो को याद करके मुस्करा रहा था जो सारे देश का भ्रमण करते समय उसने राबर्ट के साथ की थी। उसे इस बात का बडा अफसोस था कि राबर्ट को वापस जाना पडा, लेकिन उसे इस बात का सतोष था कि वह अमरीका मे भी उपयोगी काम करेगा। उसने अमरीका मे घूम-घूमकर विभिन्न स्थानो पर व्याख्यान देने की योजना बनाई थी जिनमे वह अपने देशवासियो को बतानेवाला था कि उसने भारत मे क्या देखा था और इस प्रकार कैथरीन मेयो जैसे लेखको ने अमरीकी पाठको के सामने भारत का जो बीभत्स और विकृत रूप प्रस्तुत किया था, उसके स्थान पर वह भारत का सच्चा चित्र प्रस्तुत करनेवाला था। राबर्ट के रूप मे भारत को एक बहुत अच्छा मित्र मिल गया था और अनवर को यकीन था कि वह हमेशा···

लेकिन सहसा उसने अपने विचारो को रोक लिया और राबर्ट की उस नसीहत को याद करके वह मुस्करा दिया जिसे वह बार-बार दुहराया करता था, 'अनवर, किसी बात का इतना पक्का यकीन नही रखना चाहिए।'

राबर्ट ठीक ही कहता था। अनवर को बहुत-सी बातो का बिलकुल पक्का यकीन था—जैसे इस बात का कि पूरी आजादी के मामले मे किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता। स्वाभाविक ही था कि उसे बहुत निराशा हुई थी। दो-तीन दिन तक तो वह बिलकुल खोया-खोया-सा रहा। वह इस नई परिस्थिति को पूरी तरह समझ नही पा रहा था। ऐसा लगता था कि उसकी नाव का लगर टूट गया है और वह निराशा के अथाह सागर के थपेडे खा रही है—उसका पथ-प्रदर्शन करने के लिए आशा की एक किरण भी नही थी।

'अब कहा जाए ?' उसे सहसा एक पत्रकार का यह प्रश्न याद आया जो उसने समझौते के दूसरे दिन सुबह पूछा था और वहा पर जो पाच-छ दूसरे पत्रकार गाधीजी से मिलने की प्रतीक्षा कर रहे थे उनमे से किसीने भी उसके

इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश नही की थी ।

अनवर चादनी चौक पार करके जामा मस्जिद की तरफ मुडा था । एक ट्राम खडखड करती हुई उसके पास से गुजरी और उससे थोडी दूर पर जाकर रुक गई । उसने ट्राम नही पकडी । वह पैदल घर जाना चाहता था ताकि रास्ते मे अपने उलझे हुए विचारो को सुलझा सके ।

'अब हमे किधर जाना है ? सचमुच किधर ?'

कुछ दिन तक तनाव के साथ शाति रहने के बाद फिर सत्याग्रह की ओर ?

अभी से यह चर्चा होने लगी थी कि समझौते मे जिन शर्तो पर दस्तखत हुए थे उनमे से कुछ को सरकार पूरा नही कर रही है । लेकिन अब एक बार यह साबित हो चुकने के बाद कि पूरी आजादी के लक्ष्य के बारे मे भी सौदेबाजी हो सकती है क्या काग्रेस फिर कभी जनता मे पहले जैसा उत्साह पैदा कर सकेगी ? क्या वह फिर कभी जनता का उतना समर्थन प्राप्त कर सकेगी ? वह सोच रहा था कि आज हजारो मामूली काग्रेसी—मर्द और औरते—जेल से बाहर आकर क्या महसूस करते होगे ? इस समझौते से गुजरात और सयुक्त प्रात के किसानो को क्या उम्मीद बधेगी जिन्हे गोलमेज सम्मेलन से कोई सरोकार नही था, जो अपने भूखे पेट भरने के लिए सिर्फ कुछ रोटिया चाहते थे ? क्या अब आक्रामक अहिंसा को हमेशा के लिए तिलाजलि दे दी गई थी ? क्या अब आजादी की लडाई फिर सम्मेलनो और कौसिल चैम्बरो मे हुआ करेगी—जिस लडाई में नेता शब्दो से लडेगे और जनता केवल तालिया बजाएगी और वाह-वाह करेगी ? क्या वे फिर वही पर पहुच गए थे जहा से वे नरम दलवालो और सविधान-वादियो के साथ चले थे ?

'अब किधर ?' इस बडे राष्ट्रीय सवाल मे अनवर का अपना निजी सवाल भी निहित था । अब वह किधर जाए ? फिर यूनिवर्सिटी वापस ? शायद अब समझौते के इस वातावरण मे उसे फिर दाखिल कर लिया जाए, लेकिन साल-भर तक बाहर की खुली हुई दुनिया मे रह चुकने के बाद क्लास मे बैठकर उसका दम घुटेगा और यूनिवर्सिटी मे जो कुछ उसे पढाया जाएगा वह उसे बहुत ही बेकार मालूम होगा । फिर क्या वह राजनैतिक काम करना शुरू कर दे ? उसने कालेज के दिनो मे भाषण देने को जो अभ्यास किया था क्या उससे वह कोई फायदा उठा सकता था ? लेकिन उसमे 'नेता बनने' का गुण नही था ।

वह कभी जेल नही गया था। उसकी उम्र बहुत थोडी थी और उसके पास पैसा भी नही था। वह अपना पेट कैसे पालेगा ? क्या वह पत्रकार बन सकता था ? लेकिन नई-नई चीजो के बारे मे जानने की उत्सुकता के अलावा उसमे इस काम के प्रति भी कोई विशेष रुचि नही थी। उसने अपनी सारी जिंदगी मे बस एक लेख लिखा था और उस एक लेख की बुनियाद पर उसे कौन अपने अखबार मे ले लेगा ? इसके अलावा उसे उन विषयो का भी बहुत थोडा ही ज्ञान था जिनके बारे मे एक पत्रकार को जानना चाहिए—अर्थशास्त्र, राजनीति, सविधान-सबधी कानून। क्या उसे 'आगे पढने' के लिए विदेश जाना चाहिए ? क्या वह जा सकता था ? आगे पढने का तो नाम था वह सचमुच दुनिया देखना चाहता था और अपना दृष्टिकोण व्यापक बनाना चहता था। वह जानता था कि उसके अब्बा के पास इतना पैसा नही है कि वे उसे बाहर भेज सके, उसे सरकारी वजीफा भी नही मिल सकता था।

'अब हमे किधर जाना है ?'—और उस वक्त के लिए तो उसने इस सवाल का जवाब ढूढ लिया और अपने घर की गली मे मुड गया।

जिस समय वह घर पहुचा उसके अब्बा कही बाहर गए हुए थे। उसने नौकर से पूछा कि कोई खत तो नही आया था और उसे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि खतो का एक पूरा ढेर उसके लिए रखा हुआ था। आशा की नाज़ुक लिखाई पहचानकर उसने सबसे पहले उसीका खत खोला। वह जेल से छूट आई थी लेकिन वह बहुत दुखी थी क्योकि उसके पीछे यशवत की हालत बहुत खराब हो गई थी और अब वह मौत की घडिया गिन रहा था। "मैं अपना दु:ख बटाने के लिए तुम्हे लिख रही हू। अनवर, यह देखकर मेरा कलेजा फटने लगता है कि इतना अच्छा और इतना हिम्मतवाला नौजवान मौत की घडिया गिन रहा हो और हम उसके लिए कुछ भी न कर सके। मैं सोचती हू कि उसे ऐसी हालत में बीमार छोडकर मैने जेल जाकर बडा अपराध किया है। लेकिन शायद तुम्हे मालूम है कि मैं क्यों इतनी कायर बन गई।" अनवर जानता था और इसीलिए उसे आशा पर बडा तरस आ रहा था।

उसने अपना पत्र समाप्त करने के बाद भी कुछ पंक्तिया लिखी थीं। "वह

मर गया । आज सुबह उसकी मौत हुई । उस वक्त तक मैं यह खत डाक में नही डाल सकी थी। लेकिन एक बात की तसल्ली है कि उसने 'कैपिटल' का अनुवाद कल रात पूरा कर लिया था ।" खत पर जहा-जहा आशा के आसू गिरे थे वहा स्याही फैल गई थी ।

यशवत और उसके वीरतापूर्ण सघर्ष के बारे मे सोचते हुए कि उसने मरते दम तक उस काम को पूरा करने मे हिम्मत नही हारी जिसमे वह दृढ आस्था रखता था, अनवर ने दूसरा लिफाफा खोला । इसपर भी बम्बई की मुहर लगी हुई थी । मोहन का खत था । हलके कासनी रग के बढिया कागज़ पर उसने इतना घसीट लिख रखा था कि पढा भी नही जाता था । उसने अपने हमेशा के अदाज़ मे लिखा था, "अनवर, माई ब्वाय, अब सुलह हो गई है, लडाई के झडे लपेट लिए गए है, इसलिए अब इस मुल्क मे रहने मे कोई मजा नही । मुझे बिदा दो, मैं अगले हफ्ते विलायत जा रहा हू । अगर कभी 'रगीन पेरिस' आने का इत्तफाक हो तो अमेरिकन एक्सप्रेस के पते पर मुझे खबर देना । मैं तुम्हें पेंटिग करना सिखाऊगा—सारे शहर को लाल रग देना ।" खत के एक-एक शब्द पर मोहन की छाप थी । वही रगीला देशभक्त, जो प्लैटिनम के सिगरेट केस मे से निकालकर बीडी पीता था और ताज के डाइनिग-रूम मे सरकार के खिलाफ पर्चे बाटता था ।

वह अब किधर जा रहा था ? पेरिस की रंगीन सडको की तरफ । ऐसा लगता था कि अनवर को छोडकर बाकी सभी लोग अपने जीवन की योजनाएं बना रहे थे । 'राज' ने लखनऊ से लिखा था कि उसने जेल मे बहुत-सी नज़्में लिखी थी और वह उन्हे जल्द ही छपवानेवाला था । किताब के नाम से ही ज़ाहिर था उसकी नज्मे बहुत जोशीली होगी । किताब का नाम उसने रखा था—'आग और आसू' । इसके बाद उसने गाव-गाव घूमकर लोकगीत और किसान कवियो की अप्रकाशित कविताए जमा करने का फैसला किया था । सुभान का भी एक खत था और आग उगलनेवाले उस मार्क्सवादी ने लिखा था कि वह सत्याग्रह से तग आ चुका था और अब वह कानपुर के चमडे के कारखानो मे मज़दूरो को सगठित कर रहा था । उसने लिखा था—"अब पुलिस की नजर मेरे ऊपर भी रहने लगी है और मुझे दो बार चेतावनी भी मिल चुकी है । भला जानते हो यहा का डी० एस० पी० कौन है ? सलमा के शौहर मंज़ूर-

आलम। वे अपने दफ्तर मे मुझसे सवाल-जवाब कर रहे थे कि इतने मे वह भी वहा आ गई। काफी मोटी हो गई है और ऐसी खुश नजर आती है जैसे खिला-पिलाकर तैयार की हुई मोटी-ताज़ी गाय।" अनवर इस भद्दी उपमा पर तिलमिला उठा लेकिन इसके बाद जो कुछ लिखा था उसे पढकर उसे बहुत हसी भी आई। 'मैने तुमसे कहा था न कि हार्मोन ज़िंदगी के लिए उन शायरो की हवाई बकवास से ज्यादा जरूरी है जो एक ऐसी चीज़ के बारे मे जो हमारे लिए उतनी ही जरूरी है जितना कि पीने का पानी, जमीन-आसमान के कुलाबे मिलाते रहते है।"

दुनिया बहुत छोटी थी और लाख कोशिश करने पर भी सलमा की याद उसके दिल से नही जाती थी। वह उसे भूल क्यो नही जाता था? काश वह कुछ दिनो के लिए इन सब चीज़ो से दूर विलायत जा सकता। शायद उससे कुछ फायदा होता। हालाकि तब भी सुभानोव्स्की यह कहने से न चूकता कि यह हकीकत से दूर भागना था, जो उसके सामती ढग के पालन-पोषण और दृष्टिकोण का प्रमाण था।

सारे खत पढ चुकने के बाद उसने सुबह का अखबार उठाया। उसकी नजर पहले ही पन्ने पर छपी हुई एक मोटी-सी खबर पर पढी आतकवादी क़ैदी फासी लगने से पहले ही जेल से भाग निकला। जल्दी-जल्दी उसने पूरी खबर पढ़ डाली। यह उसका पुराना दोस्त रतन ही था। वह उन कैदियो मे से एक था जिन्हे फासी की सज़ा सुनाई गई थी। जब उसे बैरक से कालकोठरी मे ले जाया जा रहा था उस वक्त वह जेल से भाग निकला था। कहा जाता था कि पुलिस उसे खोज रही थी पर अनवर को यकीन था कि अब वह उनके चगुल मे आनेवाला नही था।

इसके पास ही एक दूसरी खबर छपी हुई थी जिसमे लिखा था कि भगतसिह, सुखदेव और राजगुरु की मौत की सजाए रद्द कराने मे गाधीजी की सारी कोशिशे बेकार साबित हुई थी और चूकि कैदियो ने दया की भीख मागने से इकार किया था इसलिए उन्हे फौरन फासी पर चढाया जानेवाला था। कम से कम तीन नौजवान ऐसे थे जिनके सामने यह सवाल नही था कि 'अब हमे किधर जाना है?' उन्होने मौत का रास्ता चुना था और उनके कदम आखिर तक नहीं डगमगाए थे।

उस दिन रात को जब अकबरअली मस्जिद से नमाज़ पढकर लौटे और बाप-बेटे खाना खाने बैठे तो उन्होंने अनवर से पूछा, "अच्छा अनवर, अब तुमने क्या करने का फैसला किया है? मेरा तो खयाल है कि अगर तुम एम० ए० पास करना चाहो तो यूनिवर्सिटीवाले तुम्हे फिर वापस ले लेगे।"

"नही अब्बा, अब अलीगढ जाने को जी नही चाहता। मैं तो दो-एक बरस के लिए विलायत जाना चाहता हू, लेकिन मैं यह भी जानता हू कि आपके पास मुझे बाहर भेजने के लिए पैसे नही है। इसलिए मेरा तो खयाल है कि मैं कुछ दिन यही रहकर कोई नौकरी तलाश करूंगा। अगर किसी अखबार मे मिल जाए तो अच्छा है।"

"मेरा तो खयाल है कि अखबार मे फौरन इतनी अच्छी नौकरी नही मिलेगी। अगर विलायत से कोई डिग्री ले आओ तो अच्छा रहेगा। कुछ दुनिया भी देख लोगे और तजुर्बा भी हो जाएगा, जो आगे चलकर अखबार की नौकरी मे काम आएगा।"

'यह तो ठीक है अब्बा लेकिन इतना पैसा कहा से आएगा? मैं नहीं चाहता कि आप कही से कर्ज ले या कोई चीज़ गिरवी रखे।"

"इसकी जरूरत नही पडेगी," अकबरअली ने धीरे-धीरे कुछ झिझकते हुए कहा। 'तुम अपने पैसे से जा सकते हो। अनवर, बात यह है कि तुम्हारे रामेश्वर काका मरते वक्त तुम्हारे लिए दस हज़ार रुपये छोड़ गए थे।"

"दस हज़ार!" अनवर ने आश्चर्य से कहा। यह तो बहुत बडी रकम थी। "लेकिन क्यो?"

"उनके अपनी कोई औलाद नही थी. और वे तुम्हे बहुत प्यार करते थे। इसलिए वे अपनी जायदाद का कुछ हिस्सा तुम्हारे लिए छोड गए थे। वह तुम्हारा पैसा है और तुम जिस तरह चाहो उसे ख़र्च कर सकते हो।"

अपने बीमार और बूढे रामेश्वर काका की याद आते ही अनवर की आखो मे आसू आ गए। वे बहुत ही उदार आदमी थे और अनवर को अभी तक याद था कि वे उसे सोने के बटन बनवा देने को कहा करते थे और अगर अकबरअली ने उन्हे ज्यादा लाड करके बेटे को तबाह कर देने से रोका न होता तो वे बनवा भी देते। लेकिन दस हज़ार रुपये। रामेश्वरदयाल जैसे अमीर आदमी

के लिए भी यह काफी बडी रकम थी ।

"मै सोचता हू कि इगलैड चला जाऊ," अनवर ने अपने अब्बा से कहा, "और वहा से लन्दन स्कूल आफ इकॉनॉमिक्स की डिग्री ले आऊ । हो सका तो जर्नलिज्म का डिप्लोमा भी ले लूगा । लेकिन बुनियादी तौर पर तो मै सारी दुनिया घूमना चाहता हूं, अगर आप यह न समझे कि यह वक्त बरबाद करना होगा ।"

अकबरअली पक्के मुसलमान थे । उन्होने अनवर की देश-देश घूमने की इच्छा का समर्थन किया क्योकि रसूल ने भी कहा था कि हर सच्चे मुसलमान का यह फर्ज़ है कि 'वह इल्म हासिल करे, चाहे इसके लिए उसे चीन ही क्यों न जाना पडे ।' उस जमाने मे, अब से तेरह सौ साल पहले, अरबवालो के लिए चीन ही दुनिया की हद थी ।

'मैं एक और बात के बारे मे तुमसे पूछना चाहता था । आम तौर पर तो यह मा के पूछने की बात होती है…" इतना कहकर वे कुछ सकोच मे पडकर रुक गए । अनवर समझ गया कि उसके अब्बा क्या कहना चाहते है लेकिन वह उनके कहने की प्रतीक्षा करता रहा ।

"अब तुम जवान हुए," अकबरअली ने फिर कहना शुरू किया "और इस उम्र मे आदमी शादी करके घर बसाने की सोचता है । अगर तुम कहो तो मैं तुम्हारे लिए कोई लडकी देखू…"

"नही, नही अब्बा," अनवर ने विरोध करते हुए कहा, "अभी जल्दी क्या है ?"

"तुम इक्कीस बरस के हो," उसके अब्बा ने उसे याद दिलाया । "जब मेरी शादी हुई थी उस वक्त मैं तो उन्नीस ही बरस का था ।"

"यह तो सच है," बेटे ने बहस करते हुए कहा, "लेकिन अब्बा, जमाना बदल गया है । कम से कम मुझे इगलैड तो हो आने दीजिए ।"

बाप ने बेटे की बात मान ली । "मैं तुम्हे मजबूर नही करना चाहता । तुम खुद अच्छी तरह सोच-समझकर फैसला कर लो । लेकिन यह बता दो कोई लडकी है तो नही ।" बेटे से ऐसी बात कहते हुए उनकी जबान कुछ लडखडा गई—"मेरा मतलब है कोई खास लड़की जिसे तुम जानते हो और जो तुम्हें पसद हो ‥?"

"जी नही अब्बा, ऐसी कोई लड़की नही है," अनवर ने काफी यकीन

के साथ कहा और उसने अपने मन को भी समझा लिया कि अब यही सच बात भी थी।

गाधी-इर्विन समझौते की शर्तें छपी तो देश मे लोगो पर उसका अलग-अलग असर हुआ। जो क्रातिकारी नौजवान ब्रिटिश सरकार की टक्कर पर अलग सरकार बनाने के स्वप्न देख रहे थे उनकी आशाओ पर पानी फिर गया। नरम दलवालो ने सप्रू और जयकर की समझौता कराने की कोशिशो की कामयाबी पर अपने-आपको बधाई दी। सरकार के पुराने वफादारो मे वाइसराय के इस कदम पर बौखलाहट फैल गई कि उन्होने एक पुराने राजद्रोही को बराबरी का पद दे दिया था और वे इसमे आगे चलकर अपने वर्ग का विनाश देखने लगे। सरकारी अफसर यह सोच सोचकर परेशान थे कि अब खद्दरधारी काग्रेसी नेता शासन करेगे और उनपर हुक्म चलाएगे। हिन्दू सम्प्रदायवादियो का खयाल था कि अब वे सिर्फ सरकार का सहारा नही ले सकते, उन्हे अपने हितो की रक्षा के लिए काग्रेस के पास भी जाना पडेगा। मुसलमान सम्प्रदायवादियो ने तो घोषणा कर दी कि यह उनके साथ विश्वासघात था, उन्हे हिन्दुओ के हाथ बेच दिया गया था और उन्होने 'इस बनिये गाधी' से अपना नाता तोडने और उसे बदनाम करने के लिए अपना सगठन भी बनाना शुरू कर दिया। उन्हे शिकायत थी कि वह सब हिदुस्तानियो की तरफ से बोलने का दावा कैसे करता है। छ सौ से ऊपर देसी रजवाडे यह महसूस करने लगे कि जैसे कोई भूकम्प आ गया हो और उनके सिहासन डोल गए हो। काग्रेस-राज का भूत उनके सिर पर मडराने लगा। उन्हे ऐसा दिखाई देने लगा कि लोकतन्त्र का दानव उन्हे खा जाने के लिए मुह फाडे बढा आ रहा है। उनमें से कुछ तो इतने भयभीत हो गए कि वे भागे-भागे वाइसराय के पास फरियाद लेकर आए कि उन्हे गाधी से बचाया जाए, कुछ ने इसी उद्देश्य से नई दिल्ली के खुदा के पास अपने दूत भेजे।

इन सहमे हुए रजवाडो मे सलामपुर के नवाब साहब भी थे जिन्होने सरकार के राजनीतिक विभाग के सामने अपनी फरियाद रखने के लिए ताया अमजदअली को भेजा था। अनवर की विलायत जाने की तैयारियो के वक्त उनके वहा पहुचने से उसका सारा जोश ठडा पड़ गया, क्योकि यह जाहिर था

कि वे इस बात से खुश नही थे। और उन्होने अपनी इस राय को अपने तक ही नही रखा। उन्होने अनवर के सामने यह बात कही कि नौजवान लड़के विलायत जाकर बिगड जाते है और दीन-मजहब सब कुछ भूल जाते है। उनकी उम्र का लिहाज करके अनवर ने कुछ भी नही कहा और इस डर से कि कही झगडा बढ न जाए वह उठकर कमरे से बाहर चला गया।

जब अनवर वापस आया तो उसने देखा कि अमजदअली अपने छोटे भाई के साथ किसी गभीर समस्या पर बाते कर रहे है। अनवर को आता देखकर उन्होने अपनी आवाज और धीमी कर दी लेकिन अनवर ने अपने अब्बा को कहते सुना, "भाई साहब, माफ कीजिएगा लेकिन यह मुमकिन ही नही है।" अनवर सोचने लगा कि वे क्या बाते कर रहे होगे।

उस रात दरियागज के मुसलमानो की एक मीटिंग होनेवाली थी। 'नापाक' गांधी-इर्विन समझौते की निंदा करने के लिए और यह ऐलान करने के लिए कि गोलमेज सम्मेलन मे गाधीजी को 'काग्रेस के हिंदुओ' के अलावा और किसी का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नही था। दिल्ली के मुहल्लो मे ही नही बल्कि सारे देश मे इस तरह की मीटिंगे की जा रही थी। अनवर जानता था कि इन सभी मीटिगो मे एक ही प्रस्ताव स्वीकार किया जाना था और इस प्रस्ताव के अत मे भारत के मुसलमानो की तरफ से यह घोषणा की जानी थी कि वे हिज हाईनेस द आगाखा के नेतृत्व मे गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेनेवाले मुसलमान प्रतिनिधियो मे पूरा विश्वास रखते थे।

अकबरअली साहब को इस मीटिंग की सदारत करने के लिए राजी कर लिया गया था। अनवर चाहता था कि उसके अब्बा गोलमेज सम्मेलन मे सबका प्रतिनिधित्व करने के गाधीजी के अधिकार का विरोध करने की इस प्रतिक्रियावादी कोशिश मे न फसते। लेकिन चूकि कुछ ही दिन बाद वह विलायत जानेवाला था इसलिए वह अपने अब्बा के साथ कोई राजनीतिक झगडा नही मोल लेना चाहता था। यही सोचकर वह चुप रह गया।

लेकिन ताया अमजदअली अनवर को चिगाने पर तुले हुए थे। जब वे लोग खाना खा चुके और मीटिंग मे जाने की तैयारी करने लगे, जो पास की ही एक मस्जिद मे होनेवाली थी, तो उन्होने अनवर की तरफ गौर से देखा। वह एक किताब लेकर सोने जा रहा था। उन्होने अनवर से पूछा, "अनवर, तुम नही

चलोगे ?"

अकबरअली ने बेकार के झगडे को रोकने के लिए शेरवानी के बटन बंद करते हुए कहा, "भाई साहब, उसे रहने दीजिए, उसे हमारी मीटिंगो मे दिल-चस्पी नही है।"

अनवर ने सोचा था कि ताया अमजदअली अब चुप हो जाएगे, लेकिन वे इतनी आसानी से हार माननेवाले नही थे। "अगर वह काग्रेसी भी है," और 'काग्रेसी' शब्द उन्होने बडे तिरस्कार के साथ कहा, "तब भी उसे कभी-कभी यह भी सुनना चाहिए कि मुसलमान क्या कहते हैं।" और फिर वे अनवर से बोले, "या तुम्हे उस मीटिंग मे जाते शर्म आती है जिसमे तुम्हारे अब्बा सदारत कर रहे हो ?"

यह बहुत ही ओछा और कमीनेपन का वार था। अकबरअली को अपने भाई की यह बात अच्छी नही लगी लेकिन मुह से निकली हुई बात वापस तो नही ली जा सकती थी। अनवर नही चाहता था कि उसके ताया-अब्बा की वजह से उसके अब्बा को उसकी तरफ से किसी तरह की गलतफहमी हो, इस-लिए उसने उठकर शेरवानी पहन ली। अमजदअली की तरफ कोई ध्यान दिए बिना उसने अपने अब्बा से कहा, "अब्बा, अगर आपको कोई एतराज़ न हो तो मैं भी चलू।"

अनवर इन मीटिंगो से भली भाति परिचित था। पहले कुरान की कुछ आयते पढी गईं ताकि सुननेवालो पर मज़हबी फज़ा छा जाए और फिर जोशीली नज़्मे पढी गईं जिनमे बताया गया था कि इस्लाम ने कितने शानदार दिन देखे थे और किस तरह मुसलमानो ने स्पेन से लेकर चीन तक सारी दुनिया को जीत लिया था। इन नज़्मो से सुननेवालो मे लडने का जोश पैदा किया गया। इसके बाद अकबरअली साहब से मीटिंग की सदारत करने को कहा गया।

प्रस्ताव पेश करते समय अपने भाषण मे अकबरअली ने जितनी भी बाते कही थी उनमे से ज्यादातर से अनवर सहमत नही था। लेकिन उसे यह मानना पडा कि उसके अब्बा बहुत सभलकर भाषण दे रहे थे और उन्होने गाधीजी पर या काग्रेस के दूसरे नेताओ पर कोई बेहूदा ज़ाती हमला नही किया था। उनमे

अब तक पुराना साम्राज्य-विरोधी जोश कुछ-कुछ बाकी था और उन्होने सबसे ज्यादा सख्त बाते काग्रेस के बारे मे नही बल्कि अग्रेजो के बारे मे कही थी। उन्होने अग्रेज़ो पर सारी दुनिया मे, और हिन्दुस्तान मे भी, मुसलमानो को तबाह कर देने की साज़िश करने का इलजाम लगाया था। उन्होने मध्य-पूर्व के देशों मे साम्राज्यवादी षड्यन्त्रो का उल्लेख किया था लेकिन न जाने किस तरह गाधी-इर्विन समझौते को भी उनमे शामिल कर दिया था।

अकबरअली के भाषण के बाद दूसरे लोगो के भाषणो का रुख खराब होता गया। जिन नेताओ की अनवर इज़्ज़त करता था उन्हे ऐसी गदी-गदी गालिया दी गईं कि अनवर सुनकर दग रह गया। कई वक्ताओ के 'खालिस इस्लामी' भाषण सुनकर तो वह हैरत मे आ गया—खास तौर पर अपने ताया-अब्बा का भाषण सुनकर जो उस जमाने की डीग मार रहे थे जब सारी दुनिया पर मुसलमानो की हुकूमत थी। "हम अग्रेजो की तरह यहा तिजारत करने के बहाने से नही आए थे, हम हाथ मे तलवार लेकर इस मुल्क मे आए थे और हमने तलवार के जोर से इसे जीता था।" इसके बाद उन्होने धमकी दी कि एक बार फिर मुसलमानो को 'इस्लाम की तलवार' निकालनी पडेगी और फिर से इस्लामी सल्तनत कायम करनी होगी, चाहे उन्हे खून की नदिया ही क्यो न पार करनी पडे। उसके ताया-अब्बा ने अपने भाषण मे जो भयानक चित्र खींचा था उसकी कल्पना करके अनवर के रोगटे खडे हो गए। उसने देखा कि उसके अब्बा सदर की हैसियत से वक्ता को रोकने का असफल प्रयत्न कर रहे थे। अमजदअली गरज रहे थे, "हम सरकार को बता देना चाहते है कि हम मुसलमानो का गाधी से कोई नाता नही है। गोमूत्र पीनेवाले हिन्दुओ से हमे कोई सरोकार नही है। हम मुसलमान एक अलग कौम है, हमारी अलग ज़बान है, हमारी अलग तहज़ीब है, हम हमेशा अलग रहे है और हमेशा अलग रहेगे।"

थोडी देर बाद अनवर को ऐसा लगा कि उसे यह भी सुनाई नही दे रहा है कि ताया अमजदअली क्या कह रहे है। उसे उनकी सूरत भी नही दिखाई दे रही थी। उसके सामने न जाने कितने अमजदअली खडे थे—हिन्दू अमजदअली, मुसलमान अमजदअली, पारसी और सिख अमजदअली, ईसाई और हरिजन अमजदअली, जिनके दाढिया थी, चोटिया थीं, जिनके गले मे जनेऊ पडे थे और जिनके गले मे ज़ंजीरो से सलीबे लटक रही थी—और सब चिल्ला रहे थे, 'हम

अलग कौम है !' उनके हाथो मे इस्लाम की तलवार, हिन्दुत्व की तलवार, सिख धर्म की तलवार चमक रही थी और वे भारतमाता के शरीर मे ये तलवारें भोंक रहे थे। थोडी देर बाद अनवर ने देखा कि हर तलवार से खून टपक रहा था।

बडा भयानक दृश्य था। अनवर चौंक पडा और उसका ध्यान फिर उस मीटिंग की तरफ लौट गया। अमजदअली अपना भाषण खत्म कर चुके थे और सदर साहब प्रस्ताव पर वोट लेने जा रहे थे। "लेकिन इससे पहले कि मैं आप लोगो से हाथ उठाने को कहू अगर यहा पर कोई इस तजवीज के खिलाफ हो और वह यहा आकर बोलना चाहता हो तो वह खुशी से बोल सकता है।" अनवर को ऐसा लगा कि उसके अब्बा की नजरे सीधे उसीपर जमी हुई थी और जिस तरह से उन्होने यह बात कही थी उससे ऐसा लगता था कि वे अनवर को बोलने के लिए ललकार रहे थे।

"अनवर मिया !" किसीने उसे पीछे से पुकारा और जब उसने मुडकर देखा तो उसकी नजरे खद्दरधारी रहमत चाचा पर पडी। रहमत सफेद दाढी-वाला बूढा जुलाहा था जो सत्याग्रह और खिलाफत के जमाने मे अकबरअली के साथ काम कर चुका था। वह कांग्रेस से अलग नही हुआ था और सत्याग्रह मे जेल भी हो आया था। समझौते पर दस्तखत होने के बाद वह अभी जेल से छूटकर आया था। "अनवर मिया" वह अपने सीधे-सादे ढग से कह रहा था, "तुम बोलते क्यो नही ? ये गौरमिटवाले हमारी आवाज भी तो सुने।"

'हा रहमत चाचा, मै जरूर बोलूगा," उसने इस सीधे-सादे देशभक्त को आश्वासन दिलाया और उठकर खडा हो गया। अपने अब्बा की आखो मे आखें डालकर उसने कहा, "मैं इस तजवीज के खिलाफ बोलना चाहता हू।"

अनवर जब अपने अब्बा की बगल मे जाकर खडा हुआ तो उसे इस बात का आभास था कि उसकी इस हरकत से सभा मे एक सनसनी फैल गई थी। सैंकडो लोगो की नजरें उसपर जमी हुई थी और उन नजरो मे उसे आश्चर्य, यह जानने की उत्सुकता कि वह क्या कहने जा रहा है, घृणा, जिज्ञासा और भय सभी कुछ दिखाई दे रहा था—जैसे वे किसी नये किस्म के खूखार जानवर

को देख रहे हो। ताया अमजदअली गुस्से के मारे खौल रहे थे और अपनी लम्बी मूछो की नोके चबा रहे थे। अगर उनका बस चलता तो शायद वे अपने इस गुस्ताख भतीजे को वही कोडे लगवा देते। लेकिन सबसे ज्यादा ताज्जुब तो उसे अकबरअली के चेहरे को देखकर हुआ। वे न सिर्फ मुस्कराकर उसका हौसला बढा रहे थे बल्कि अजीब बात यह थी कि अपने बेटे की इस हिम्मत को देखकर उनका चेहरा खुशी से खिल उठा था।

अनवर को यह सोचकर काफी तसल्ली हुई कि कम से कम उसके अब्बा उसकी तकरीर पर नाराज़ नही होगे। अनवर ने बोलना शुरू किया और छूटते ही उसने ऐसी बात कही जिससे सुननेवाले दग रह गए। "जितने लोग यहा बोले है उन सबने गाधी-इर्विन समझौते की बुराई की है। मै भी इस समझौते को अच्छा नही समझता।" इसके बाद वह कुछ देर के लिए रुका ताकि उसकी यह बात लोगो के दिमाग मे अच्छी तरह बैठ जाए। फिर उसने बोलना शुरू किया, "इसलिए नही कि सरकार ने महात्मा गाधी और काग्रेस की कुछ मागे मान ली है, बल्कि इसलिए कि कुछ इससे भी ज्यादा बुनियादी मागे नही मानी गई है। मैं तो यह चाहता था कि गाधीजी आज़ादी के बुनियादी मसले पर समझौता न करते।"

शुरू-शुरू मे उसे जो घबराहट थी वह अब दूर हो गई थी और उसने उन वक्ताओ पर जबर्दस्त हमला शुरू किया जिन्होंने काग्रेस को 'हिदुओ की जमाअत' कहकर उसपर हमला किया था। अलीगढ यूनिवर्सिटी की यूनियन मे उसने व्यग करने का जो अभ्यास किया था उससे उसने इस वक्त पूरा फायदा उठाया।

"तो काग्रेस हिन्दुओ की जमाअत है। मेरी राय मे तो कुछ लोग यह भी कहेगे कि काग्रेस मे कोई मुसलमान है ही नही। मेरे अब्बा एक जमाने मे, जब खिलाफत का ज़ोर था, मौलाना अबुलकलाम आजाद को इमाम उल-हिंद कहा करते थे। मेरे खयाल से अब मौलाना आजाद शायद हिंदू हो गए है। मेरे खयाल से मौलाना हुसेनअहमद मदनी और जमीअत-उल-उलेमा के दूसरे मौलानाओ के बारे मे भी यही बात सच है। जस्टिस अब्बास तयबजी और हसनइमाम साहिब को भी हिंदू कहा जाना चाहिए, क्योकि वे गाधीजी के दोस्त है। अगर मैं अपने दोस्तो के नाम गिनाऊ, जैसे असगरहुसेन, 'राज़', सुभान और यूनुस तो

आप कह देगे कि ये सब दहरिये हैं। क्या सरहद के खुदाई खिदमतगार और उनके लीडर खान अब्दुलगफ्फारखा भी दहरिये है? दिल्ली के, बल्कि कहना चाहिए अपने दरियागज के, आसफअली साहब के बारे मे आपका क्या खयाल है? आपमे से ज्यादातर लोग उन्हे जाती तौर पर जानते है। क्या आप उनके बारे मे भी यह कहेगे कि वे हिन्दू हो गए हैं?" अनवर ने देखा कि वह तडातड जो नाम गिनाता जा रहा था उन्हे सुनकर वे लोग तिलमिला उठे थे। इसके बाद उसने अपना तुरुप का पत्ता निकाला। सफेद दाढीवाले उस बूढे जुलाहे को सम्बोधित करके, जो वक्ता के तीखे व्यग पर बैठा मन ही मन हस रहा था, अनवर ने ऊचे स्वर मे पूछा, "रहमत चाचा, तुम कब से इस्लाम छोडकर काफिर बन गए?" अब बहस अपने घर की मिसालो पर आ गई थी और जब रहमत ने जवाब दिया, "अनवर मिया, तुम्हे मालूम नही? मेरी शुद्धी तो इसी मस्जिद मे इसी मीटिग से पहले अभी ईशा की नमाज के बाद हुई है।" सब लोग हस पडे। रहमत चाचा की इस बात मे बडा तीखा व्यग था, क्योकि सब लोग जानते थे कि रहमत चाचा उस इलाके के सबसे पक्के मुसलमान थे। मस्जिद मे आकर पाचो वक्त की नमाज पाबदी के साथ पढते थे।

यह देखकर कि वहा पर बैठे हुए लोग उसकी बात अब गौर से सुन रहे हैं, अनवर ने राजनीतिक तर्क देने शुरू किए। उसने काग्रेस का इतिहास बताना शुरू किया और यह बताया कि किस तरह हिन्दुओ और मुसलमानो ने मिलकर उसे बनाया था। फिर अपने ताया-अब्बा की तरफ देखकर उसने भरपूर वार किया, "लेकिन जाहिर है, एक खास किस्म के मुसलमान ऐसे भी है, और हिंदू भी, जो कभी काग्रेस मे नही रहे है। ये लोग वे है जो हमेशा सरकार के टुकडो पर पले है।" फिर उसने चौधरी मुहम्मदउमर की तरफ देखकर कहा, 'और जो सरकारी ठेके पाने की उम्मीद लगाए रहते है।" इसके बाद तो वह बरस पडा, "आप इस्लाम की तलवार फिर निकालने की बात करते हैं। क्या आप इसे सिर्फ अपने हिन्दुस्तानी भाइयो के खिलाफ इस्तेमाल करना चाहते हैं? अजीब बात है कि जिन विदेशियो ने मुगलो से उनका तख्त छीना था, आपके बादशाह को कैद करके बर्मा भेज दिया था, आपके शाहजादो और जागीरदारो को इसी दरियागज मे इसी मस्जिद के सामने सूली पर लटका दिया था, आपकी शाहजादियो की बेइज्जती की थी, उनके खिलाफ यह तलवार चलते मैने न

देखी। जी नही, आप अपनी इस्लाम की तलवार अंग्रेजो के खिलाफ कैसे उठा सकते है, क्योकि आपकी तजवीज के मुताबिक आपके लीडर तो आगाखा है जो अंग्रेजो के पुराने वफादार दोस्त है। जहा तक मेरा सवाल है मैं आपके आगाखा के मुकाबले मे रहमत चाचा को मुसलमानो का ज्यादा अच्छा लीडर समझता हू।"

वह समझता था कि उसकी इस बात पर तहलका मच जाएगा, लेकिन किसी ने चू भी नही की। उसने अपने अब्बा की तरफ देखा। वे सोच मे डूबे हुए मुह लटकाए बैठे थे। सिर्फ ताया अमजदअली दात पीस रहे थे। उन्हे देखकर अनवर को उनकी जहर में बुझी हुई तकरीर याद आ गई।

"यहा कुछ लोगो ने कहा है कि मुसलमान एक अलग कौम है, जिनका हिन्दुओ और दूसरे लोगो के साथ कोई ताल्लुक नही है। मैं आपको बताता हूं कि उनका क्या ताल्लुक है।" इसके बाद उसने बहुत गभीर और धीमे स्वर मे उन्हे जलियावाला बाग की भयानक दास्तान सुनाई जहा हिदुओ, मुसलमानो और सिखो का खून एकसाथ बहा था। "उस खून को अलग करने की कोशिश कीजिए," उसने कहा और उसका गला भर आया। फिर उसने बताया कि बम्बई मे उसने क्या देखा था—किस तरह पठान और सिख वालटियरो पर एकसाथ लाठिया बरसाई गई थी और उन्होने मिलकर उन लाठियो का मुकाबला किया था। "यह भी खून बहाने का एक तरीका है। लेकिन यहा कुछ लोग यह देखना ज्यादा पसद करेगे कि मुसलमान और सिख एक-दूसरे के छुरे भोके।"

बहुत देर हो गई थी। अनवर का भाषण समाप्त होने का समय आ गया था। इसलिए उसने सिर्फ इतना कहा कि हिंदुस्तान मे ऐसा नही है कि एक तरफ हिंदू है और दूसरी तरफ मुसलमान, बल्कि बटवारा इस तरह है कि एक तरफ वे लोग है जो अपने मुल्क को आजाद देखना चाहते है और दूसरी तरफ वे लोग है जो ऐसा नही चाहते। "और भी कई बटवारे हैं," उसने कहा, "एक तरफ किसान हैं जो भूखो मरते है और दूसरी तरफ जमीदार है, जो जरा भी मेहनत किए बिना मोटे होते जाते हैं। एक तरफ मजदूर है जो कारखानो मे अपना खून-पसीना एक करते हैं और दूसरी तरफ सरमायादार है जो दूसरो की मेहनत पर ऐश करते हैं। आप खुद फैसला कर लीजिए कि आप

किस तरफ है। आपमे से कुछ लोग सरकार की हिमायत करके और काग्रेस को गालिया देकर अपना धन दौलत और अपनी ताकत बचाए रखना चाहेगे। आप खुशी से ऐसा कीजिए। लेकिन कम से कम इस्लाम की दुहाई न दीजिए और अपने मजहब को अपनी बुजदिली और अपनी खुदगरजी के लिए आड न बनाइए।"

वह बिलकुल थककर बैठ गया और उसने देखा कि उसके अब्बा की आखो मे आसू थे। वे उठे और उन्होने भारी मन से बहुत धीरे-धीरे कहा, "अनवर ने जो कुछ कहा है उसकी हर बात को मैं सही नही समझता, लेकिन मुझे इस बात का फख है कि मेरे बेटे मे इतनी हिम्मत थी कि वह जिस बात को सही समझता था वह उसने खुलकर सबके सामने कही। अब जो लोग इस तजवीज़ के हक मे हो…"

अमजदअली फौरन उठ खडे हुए और अपने भाई की बात काटकर बोले, "जो लोग हक मे हो वे अल्लाहो-अकबर का नारा लगाए।"

अल्लाहो-अकबर के नारे से आसमान गूज उठा और सदर साहब ने ऐलान किया कि तजवीज़ मजूर हो गई, जिसपर अमजदअली साहब ने चिल्लाकर कहा, "इत्तफाके-राय से!"

एक क्षण मे सब कुछ हो गया, जैसे गर्मियो मे निर्मल आकाश से अचानक तूफान फट पडे।

वे तीनो चुपचाप घर वापस जा रहे थे। एक अजीब तनाव था। किसीने एक शब्द भी नही कहा। फिर भी ऐसा लगता था कि यह खामोशी ज़रा-सी ठेस लगने पर काच की तरह टूट जाएगी। जब वे घर के भीतर पहुचे और आगन के दरवाजे की कुडी चढा दी गई तो अमजदअली ने अपनी व्यगपूर्ण हसी से इस खामोशी को भग किया। "तो तुम्हारा यह खयाल था कि तुम अपनी लच्छेदार बातो से और अपनी ढिठाई से सुननेवालो को अपनी तरफ कर लोगे! मगर देखा, एक आदमी ने भी तुम्हारी तरफ वोट नही दिया।"

अकबरअली कपडे बदलने अदर के कमरे मे चले गए थे और अमजदअली उनके मौजूद न होने का पूरा फायदा उठा रहे थे। फिर भी अनवर ने सोचा

कि उसके ताया-अब्बा की बातो मे व्यग और चोट जरूर है पर यह वक्ती बात है, वे शायद उसकी सख्त बातो पर नाराज़ हो गए होगे। इसलिए उसने भी योही उन्हे छेडने के लिए कह दिया, "लेकिन ताया-अब्बा, तजवीज इत्तफाके-राय से नही पास हुई थी—जैसाकि आपने ऐलान किया था।" शायद उसने 'आपने' शब्द पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया था और अमजदअली यह सुनते ही आपे मे बाहर हो गए।

"तुम्हारे कहने का मतलब है कि मैं झूठा हू, क्यो ?" उन्होने चिल्लाकर कहा। 'तो मैं भी तुम्हे बता दू कि मेरा मतलब यह था कि किसी मुसलमान ने खिलाफ वोट नही दिया था। 'वह मीटिंग मुसलमानो की थी और तुम्हारे जैसे हिंदू हरामज़ादो के वोट की कोई हैसियत नही थी।"

अकबरअली अदर के कमरे से भागकर बाहर निकल आए और उन्होने बेहद परेशानी और घबराहट के साथ कहा, "भाई साहब !"

अनवर के लिए जिस अपमानजनक शब्द का प्रयोग किया गया था उसका पूरा तात्पर्य समझने मे उसे कुछ क्षण लग गए। अनवर को 'हरामजादा' शब्द अतीत की एक प्रतिध्वनि जैसा लगा और न जाने क्यो वह उस दिन की याद करने लगा जब उसने अपने अब्बा से इस शब्द का अर्थ पूछा था और आज दस बरस बाद भी उसने देखा कि यह शब्द सुनते ही अकबरअली के चेहरे पर फिर वही अजीब परेशानी छा गई।

"भाई साहब !" आज अपने बडे भाई से ये शब्द कहते समय उनके चेहरे पर फिर वही भाव था। "आपको मेरे बेटे को इस तरह की बात कहने का कोई हक नही है।' और इतना कहकर वे अनवर का हाथ पकडकर उसे दूसरे कमरे की तरफ ले जाने लगे।

"अब्बा, मुझे छोड दीजिए !" यह कहकर उसने अपना हाथ छुडा लिया। फिर वह अपने ताया-अब्बा के पास गया और एक-एक शब्द को तौलकर बोला, "आपने अभी जो कुछ कहा था जरा फिर तो कहिएगा।"

"अनवर, जाने दो।" अकबरअली के हाथ-पैर फूल गए थे। "तुम इनकी बात न सुनो। इनका तो दिमाग खराब है।" और फिर वे लपककर अपने बडे भाई के पास गए और आखो मे आसू भरकर बोले, "भाई साहब, खुदा के वास्ते, मेरी खातिर मेरे बेटे को मुझसे न छीनिए।"

लेकिन अमजदअली पर तो जैसे भून सवार था। उन्होने बडी क्रूरता से कहा, "वह आपका बेटा नही है। उसने आज साबित कर दिया कि आपकी इक्कीस बरस की परवरिश का उसपर कोई असर नही हुआ। आज वह फिर उसी घूरे पर वापस पहुच गया जहा से वह आया था। उसने साबित कर दिया कि वह एक काफिर के बीज से पैदा हुआ है; कि वह एक रडी का अनचाहा बेटा है।" फिर वे अनवर की तरफ मुडे जो अवाक् खडा यह सब सुन रहा था, "और कुछ जानना चाहते हो? अपने बाप का नाम जानना चाहते हो? वह वही दिक का मारा हुआ खबीस काफिर रामेश्वर था। वह तो जहन्नुम पहुच गया, लेकिन तुम अपनी मा छमिया के पास क्यो नही जाते? वह तो बहुत नामी औरत है। हर आदमी चावडी बाजार मे उसका कोठा जानता है।"

आखिरकार अनवर ने भी अपनी जबान खोली। अकबरअली को सम्बोधित करके उसने पूछा, 'क्या यह सच है?" अकबरअली की आखो से आसू बह-बहकर उनकी दाढी पर गिर रहे थे। उन्होने कहा, "लेकिन अनवर, सुनो तो…" वे उससे कहना चाहते थे कि कुछ भी हो पर वह उनका बेटा है। लेकिन अनवर उनकी यह बात सुनने के लिए वहा था ही नही।

बिना कुछ कहे वह घर से बाहर निकल गया।

अकबरअली ने आसू और गुस्से से भरी हुई आखो से अपने बडे भाई को देखा और उम्र मे पहली बार उन्होने उनकी अवज्ञा करते हुए कहा, "आपने मुझसे मेरा बेटा छीन लिया। अब आपको तसल्ली हो गई? अब आप यहा से तशरीफ ले जाइए।"

घर से बाहर निकलकर और गलियो मे निरुद्देश्य घूमते हुए अनवर अपने-आपसे कहता रहा : नही! नही! यह नही हो सकता! यह असभव है! यह हो ही नही सकता! इस तरह एक क्षण मे किसीके कुछ शब्द कह देने से किसीकी पूरी जिंदगी तबाह नही हो सकती। ऐसा कही नही होता। जरूर कही कोई गलती होगी। ये सारी बाते उसके ताया-अब्बा के दूषित मस्तिष्क की उपज होगी। या कही ऐसा तो नही है कि आवेश मे स्वय उसकी कल्पना ने यह चित्र बना लिया हो!

उसके कदमो की ताल पर उसका दिल भी धडक रहा था। 'नही! नही! ऐसा नही हो सकता! यह नामुमकिन है! ऐसा हो ही नही सकता!'

लेकिन उसके दिल की गहराई मे यह डर धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था कि जो कुछ उसने सुना था वह सच था। समझ मे आनेवाली बात नही थी लेकिन फिर भी सच थी! नामुमकिन जरूर थी—लेकिन फिर भी हुई थी!

उसकी आखो के सामने बचपन के चित्र घूमने लगे। उसके कानो मे बचपन के सुने हुए शब्दो की प्रतिध्वनि गूजने लगी और अब वे नया अर्थ धारण करने लगे और अभी उसके सामने जो रहस्य खोला गया था, उसकी पुष्टि करने लगे।

चावडी बाजार की वे 'दूसरी औरतें'! क्या यही वजह थी कि जब उसने अकबरअली से 'छज्जो पर खडी हुई रगी-पुती औरतो' के बारे मे पूछा था तब से वे उस रास्ते से कतराकर जाने लगे थे?

क्या यही वजह थी कि जब अनवर ने उनसे 'हरामज़ादा' का मतलब पूछा था तो वे इतने परेशान हो गए थे और खिसिया गए थे?

आखिरकार उसे इस रहस्य का पता चल गया था कि उसकी सेहत इतनी खराब क्यो थी और डाक्टर जमशेदजी उसकी बीमारी का कारण क्यो नही समझ पाए थे। उसे यह स्वास्थ्य अपने असली बाप से उत्तराधिकार मे मिला था। तो रामेश्वर काका इसीलिए उसे इतना प्यार करते थे। इसीलिए वे उसके लिए दस हजार रुपये छोड गए थे।

दस हज़ार रुपये! एक इसान की ज़िदगी की कीमत? हरामजादा होने का मुआवज़ा? रडी के बेटे का कलक छिपाने के लिए रिश्वत? रगीन-मिजाज सेठजी यह कीमत चुकाकर, यह मुआवजा अदा करके, यह रिश्वत देकर चले गए थे—निर्वाण प्राप्त करने। अनवर का दिमाग इसी तरह के कटु विचारो से भर गया।

अनवर सुनसान सडको के भयानक सन्नाटे मे घूम रहा था। कभी-कभी कोई खजहा कुत्ता उसके पीछे हो लेता था। अनवर ने यकायक महसूस किया कि वह इस दुनिया मे अकेला है और दुनिया उसके लिए अब मिट चुकी है। उसे ऐसा लगा कि वह अकेला है और नगा और उसके जन्म का कलक अब सबकी आखो के सामने है। उसे ऐसा लग रहा था कि उसे जीवन के जिन सिद्धातों का सम्मान करना सिखाया गया था—शराफत और भलाई, उदारता और नेकी,

दया और मानवता—वे सब मागे के कपडो की तरह उसके शरीर से उतार लिए गए थे, क्योकि ये कपडे उसके ठीक नही आते थे। अब केवल घृणा उसके साथ रह गई थी।

अब अपने कलकित जन्म का चित्र उसके सामने स्पष्ट रूप से आता जा रहा था। शायरी का शौक रखनेवाले एक रंगीन-मिज़ाज लेकिन बुज़दिल नौजवान ने चोरी-छिपे पाप की गलियो मे ऐयाशी के बीज बोए थे और जब इस बीज से फल निकला तो वह कडवा था। उसने यह फल अपने एक ऐसे मित्र के हवाले कर दिया जिनके कोई बेटा नही था और जो उस बच्चे को गोद लेने को तैयार थे। अनवर को उस आदमी से और उस औरत से कितनी नफरत थी जिन्होने उसे इस दुनिया मे पैदा किया था और पैदा होते ही उसके कलक का टीका लगा दिया था। उसे उस ऐयाश आदमी से और उस वेश्या से नफरत थी।

वह जल्दी-जल्दी लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ चला जा रहा था। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि वह किस चीज से भाग रहा था। क्या वह कभी भी अपनी उस पिछली ज़िदगी से दूर भाग सकेगा जिसने अचानक उसे आ दबोचा था।

'अब हमे कहा जाना है ?' अब इस प्रश्न मे जो नया अर्थ पैदा हो गया था उसपर विचार करते हुए उसे हसी आ गई—एक व्यगपूर्ण कटु हसी। और जब उसने देखा कि उसके कदम उसे चावडी बाज़ार तक ले आए थे तो उसे कोई आश्चर्य नही हुआ। उसने अपने-आपसे पूछा क्या उसका खून का रिश्ता उसे यहा खीचकर लाया है या उत्तराधिकार मे मिली हुई पाप की प्रवृत्ति ?

"नवाब साहब," एक चिकने-चुपडे दलाल ने शरारत-भरी मुस्कराहट के साथ उसे पुकारा, "कैसा माल चाहिए, गद्दर या पक्का, पजाबी, कश्मीरी···?"

"छमियाबाई का ठिकाना मालूम है ?"

"वह तो अब बूढी हो गई है और बहुत दिन से उसने धधा भी छोड रखा है। लेकिन कुछ पटाखा लौडिया ज़रूर रख छोड़ी है। अगर हुज़ूर कहे तो···"

"मुझे उसीके यहा ले चलो।"

रास्ते मे अनवर के दिमाग मे अपनी मा की सूरत की एक झलक देखने की उत्सुकता ने एक भयानक योजना का रूप धारण कर लिया। जीवन-भर वह अपने-आपको उस चीज से बचाता आया था जो उसे 'पाप' बताई गई थी। उसने अपने शरीर को पवित्र रखा था, उसपर कोई कलक नही लगने दिया था, क्योकि वह अपने-आपको शरीफ बाप का बेटा समझता था। लेकिन अब उसे पता चला था कि वह खुद उसी 'पाप' से पैदा हुआ था जिससे उसे अपने-आपको बचाना था। किस्मत ने उसके साथ बहुत क्रूर मजाक किया था और उसने बदला लेने की ठान ली थी···। उसी रात···अपनी मा के ही घर की किसी लडकी के साथ···। उसका जी चाहा कि उसने जो पैशाचिक योजना बनाई थी उसपर ठहाका मारकर हस पडे।

लकड़ी की सीढिया पैर रखते ही चरमरा उठी—गंदी, अधेरी और बदबूदार सीढिया। जैसे-जैसे वह सीढियो पर ऊपर चढता गया उसकी हिम्मत जवाब देती गई और उसके उम्र-भर के दब्बूपन ने फिर उसे आ दबोचा। अब उसकी हालत उस आदमी जैसी नही थी जो किसीसे बदला लेने जा रहा हो बल्कि उस शर्मीले नौजवान जैसी थी जो पहली बार रडी के कोठे पर जा रहा हो।

एक औरत, जो वक्त से पहले ही बूढी हो गई थी, फर्श पर बिछी हुई सफेद रंग की गदी चादनी पर गाव तकिये के सहारे बैठी हुई पान लगा रही थी। अपने छोटे कद की वजह से वह कुछ मोटी लगती थी। उसकी खाल अब भी कोमल थी पर उसपर झुर्रिया पड गई थी और उसके सफेद बालो में मेहदी की लाली थी।

"छमियाबाई," दलाल ने उस औरत को सम्बोधित करते हुए कहा, "नवाब साहब छोकरियो को देखना चाहते हैं।"

छमियाबाई ने नज़रें ऊपर उठाकर देखा और इतना कमउम्र ग्राहक देखकर वह कुछ चौंक गई। "बैठिए, तशरीफ रखिए," उसने अपने पेशे की परम्पराओ के अनुसार ज़रूरत से ज़्यादा तकल्लुफ के साथ कहा।

तो यह थी उसकी मा। यह सोचकर अनवर ने खून का घूट पी लिया। उसने सुन रखा था कि मा अगर पचास बरस बाद भी अपने बच्चे को देखे तो वह उसे पहचान लेती है, लेकिन उसकी मां ने तो उसे नही पहचाना था। शायद अपने नीच पेशे की वजह से उसमे इसानियत इतनी मर चुकी थी कि अब मनुष्य के

स्वाभाविक गुण भी उसमे बाकी नही रह गए थे। वह उतनी पतित, अश्लील और घृणास्पद नही लगी जितनी कि अनवर ने उसकी तरह की औरतो के बारे मे कल्पना की थी, फिर भी अनवर के दिल मे उसके लिए वह प्यार नही पैदा हुआ जो बेटे को मा से होता है। उसके दिल मे सिर्फ नफरत थी—गहरी नफरत, जिसकी कोई सीमा नही थी।

दलाल अपनी दलाली लेकर खट-खट करता हुआ सीढियां उतर गया और अनवर उस औरत के पास अकेला रह गया—वह अपने विचारो मे भी उसे मां नही कहना चाहता था।

"बिजली! श्यामा! यहा तो आओ," उसने ज़ोर से आवाज़ दी और दो लडकियां, जो मुश्किल से सोलह-सोलह बरस की रही होगी, शरमाती हुई कमरे मे दाखिल हुईं। उन्होने अपने चेहरो पर इतनी सुर्खी पोत रखी थी कि यह बताना भी मुश्किल था कि उनके चेहरे अन्दर से कैसे थे। अनवर को वे सुन्दरता का भोडा स्वाग लग रही थी। उसकी स्वीकृति की प्रतीक्षा करते हुए वे इतनी दयनीय लग रही थी जैसे मवेशियो के मेले मे गाय-बकरिया हो। मनुष्य का शरीर खरीदने के विचार से ही अनवर को मतली होने लगी और पहली बार एक झलक देख लेने के बाद वह आख भरकर उन्हे देख भी नही सका। एक क्षण के लिए तो वह यह भी भूल गया कि वह वहा आया किस काम से था। जब एक लडकी पान लेकर उसके पास आई तो उसने पान लेने से इन्कार कर दिया और उसे यह भी ध्यान नही रहा कि उसे तश्तरी मे कुछ पैसे रख देने चाहिए थे।

"अभी शरम आती है, क्यो?" छमियाबाई ने उससे पूछा और कोई उत्तर न मिलने पर उसने लडकियो को हाथ के इशारे से अन्दर जाने को कहा और बडी देर तक फर्श पर बिछी हुई सफेद चादनी पर पान के धब्बो को देखती रही।

लडकिया अपनी पायले छनकाती हुई कमरे से चली गईं और थोडी देर बाद अनवर को दूसरे कमरे से खिलखिलाकर हसने की आवाज़ सुनाई दी। अनवर समझ गया कि वे उसकी नामर्दी का मज़ाक उडा रही थी।

"ऐसी जगह आने का पहला इत्तफाक है, क्यो?" छमियाबाई की आवाज़ मे एक पेशेवर औरत की दिलचस्पी की अपेक्षा एक इन्सान का कौतूहल ज्यादा था।

अनवर ने चुपचाप सिर हिलाकर स्वीकृति प्रकट की। उसे ऐसा लगा कि शर्म के मारे उसका चेहरा लाल हो रहा है। उसने रूमाल निकालकर अपने तमतमाए हुए चेहरे पर से पसीना पोछा।

"किसी अच्छे घर के मालूम होते हो," छमियाबाई ने यह बात अनवर से नही कही थी बल्कि शायद वह अपने-आपसे बाते कर रही थी, इसलिए अनवर ने भी कोई जवाब देना जरूरी नही समझा।

कुछ देर तक वह विचारो मे डूबी हुई चुपचाप बैठी रही, मानो अपने मन मे कोई फैसला कर रही हो। फिर उसने बेहद प्यार से अनवर से कहा, 'जाओ बेटा, अपने घर जाओ। और अब फिर कभी यहा न आना।"

अनवर को ऐसा लगा कि यह बात छमियाबाई ने नही बल्कि किसी दूसरी ही औरत ने कही हो। वह कुछ कहे बिना जाने के लिए उठ खडा हुआ और जब वह टटोल-टटोलकर सीढिया उतर रहा था तो उसने छमियाबाई की आवाज सुनी, "जीते रहो बेटा !"

बेटा !

हा, उसने उसे यही तो कहा था। उसे इससे पहले भी कई लोगो ने बडे प्यार से बेटा कहा था—अकबरअली ने, जो अभी घटे-भर पहले तक उसके बाप थे; रामेश्वरदयाल ने, जिन्हे हमेशा से यह मालूम था कि वह उनका बेटा है; और बम्बई मे माजी ने। लेकिन इस शब्द मे इससे पहले उसने कभी इतनी मिठास, इतना स्नेह, जीवन की सबसे आधारभूत भावना की इतनी परिपूर्णता अनुभव नही की थी, जितनी कि इस समय इस पतित नारी के मुह से सुनने पर, पाप की इस बेटी के मुंह से—अपनी इस मा के मुह से।

अगर उसे यह मालूम होता कि वह सचमुच उसका बेटा है तो शायद यह बात न होती। तब इसमे कोई अनोखी या महत्त्वपूर्ण बात न होती। सारी दुनिया मे करोड़ों माएं अपने बेटो के साथ प्यार का बरताव करती है। लेकिन छमियाबाई की नजरों में तो वह उसकी छोकरियों का एक कमसिन गाहक था, जिसे इस चीज का अभी नया-नया शौक पैदा हुआ था। फिर भी उसने अपने मुनाफे को भूलकर उसे पाप के रास्ते पर चलना सिखाने के बजाय उसे वहा से

वापस भेज दिया था; उसने उसे 'बेटा' कहा था और मा की तरह उसे दुआ की थी। उसने मानवता और उदारता की श्रेष्ठतम भावनाओ का परिचय दिया था। अब अनवर को उसे अपनी 'मां' समझने मे कोई लज्जा नही आ रही थी।

जितनी देर मे अनवर सीढियो से नीचे उतरा उसकी दुनिया ही बदल चुकी थी। अब उसकी दुनिया घृणा और लालच और गन्दी स्वार्थपरता से भरी हुई नही थी। छमियाबाई ने उसकी दुनिया बदल दी थी—केवल एक शब्द से।

यह जानकर कि इन्सानियत उस गन्दे और कुरूप वातावरण में भी पाई जाती है जहां उसकी मा रहती थी, अनवर के मन से मानो वह सारी कटुता दूर हो गई जो अभी घंटे-भर पहले तक मौजूद थी। उसने अपने जीवन से संबधित इस नाटक के पात्रो को एक नये प्रकाश मे देखा और उसे उन सबसे सहानुभूति हुई—रामेश्वरदयाल, जो बुज़दिल आदमी थे लेकिन जिनके हृदय मे उदारता थी, जिन्होने अपनी युवावस्था की उच्छृंखलता के फल को तिरस्कार से ठुकरा नही दिया था बल्कि उसके लिए एक शरीफ घर मे रहने का प्रबन्ध कर दिया था, और उसे एक परिवार का सदस्य बना दिया था और मरते समय भी वे उसके लिए उचित प्रबन्ध करना नही भूले थे, छमिया, जो एक ऐसी औरत थी जिसे न जाने किन परिस्थितियो ने पाप का यह जीवन व्यतीत कर देने पर विवश कर दिया था, पर जिसमे उसकी बुनियादी इन्सानियत और नेकदिली अभी तक बाकी थी, और अकबरअली, जो उनमे सबसे ज्यादा नेक और शरीफ थे, जिन्होने एक दूसरे आदमी की जारज सतान को अपने बेटे की तरह पाला था, उसे किसी दूसरे इन्सान से बढकर चाहा था, उसकी हर इच्छा को समझने और पूरा करने की कोशिश की थी।

लेकिन वह खुद, जो क्रूर भाग्य की पैदावार था? क्या उसके जन्म और पालन-पोषण की इन विचित्र परिस्थितियों के पीछे भी कोई सुव्यवस्थित योजना थी? वह एक हिन्दू का बेटा था जो सबसे अभागे तथा तिरस्कृत वर्ग की औरत की कोख से पैदा हुआ था और जिसका पालन-पोषण एक मुस्लिम परिवार मे, एक मुस्लिम के रूप मे हुआ था। वह एकता का एक अनोखा प्रतीक था, मानवता का एक ऐसा सगम जिसमे रक्त और सस्कृति की अनेक धाराए आकर मिली थी। वह देश मे उभरते हुए साम्प्रदायिक द्वेष और घृणा के बारे मे सोचने लगा, उस तीव्र हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के बारे मे जिसकी आग फिर

भडकाई जा रही थी। कल रात की मीटिंग इसी खतरे की सूचक थी। और भी बहुत-सी बाते इसी दिशा मे सकेत करती थी। यदि अमजदअली इस्लामी सल्तनत के ख्वाब देख रहे थे तो बहुत-से दूसरे लोग हिन्दू-राज के भी स्वप्न देख रहे थे। लोगो मे घृणा थी और इससे बुरी बात यह थी कि उनमे भय था—हिन्दुओ के मन मे मुसलमानो का भय और मुसलमानों के मन मे हिन्दुओ का भय। और जब भय के वश मनुष्य शासन-सत्ता के स्वप्न देखने लगता है तो रक्तपात अनिवार्य हो जाता है।

हो सकता है कि आज खतरा बहुत बडा न हो लेकिन आगे चलकर बढते-बढते वह न सिर्फ उस आज़ादी के लिए खतरा बन सकता था जिसके लिए वे सभी सघर्ष करते आए थे, बल्कि सामाजिक न्याय के उस अधिक विशाल तथा विस्तृत ध्येय के लिए भी खतरा बन सकता था जिसके लिए उन्हे अभी सघर्ष करना था। क्या यह सच नही था कि वह जो अपने जन्म की दृष्टि से न हिन्दू था न पूरी तरह मुसलमान ही, या बल्कि जो दोनो ही था, जो भारतमाता की सतान का एक अनोखा प्रतीक था, दोनो ही सम्प्रदायो की मनोवृत्ति को ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता था, और उनकी एकता के लिए काम कर सकता था जिसका कि वह प्रतीक था, और साथ ही अपनी मा की याद उसे हमेशा अभागे, ठुकराए हुए और उत्पीडित लोगो के हितो के लिए लडने के लिए प्रेरणा प्रदान कर सकती थी?

'अब हमे कहा जाना है?'

अब सडको पर उतना सन्नाटा नहीं था। जब उसने अपने थके हुए कदम घर की तरफ उठाए तो सडको पर कुछ कुछ चहलपहल दिखाई देने लगी थी। दूधवाले बंहगियो मे पीतल के कलसे लटकाए जल्दी-जल्दी भागे जा रहे थे। कारखानो के मजदूर रात-पाली पूरी कर जल्दी-जल्दी घर की तरफ कदम बढा रहे थे। चाय की दुकानो और होटलो के दरवाज़े खुल रहे थे। नानबाइयो की दूकानो से ताज़ी डबल रोटियो की सोंधी-सोंधी गर्म खुशबू आ रही थी।

जिंदगी! ज़िदगी!! जिदगी!!!

अनवर अपने थके हुए शरीर मे भी ज़िदगी को, उसकी लय को और उसकी तेज़ी को महसूस कर रहा था। वह अपने भविष्य के बारे मे सोचने लगा, वह पढ़ने और घूमने के लिए विदेश जाएगा, भारत वापस आकर फिर काम करेगा